CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८७१४

ॐ

* ॐ राम *

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा

[हिन्दीटीकासमलङ्कृता]

टीकाकारः प्रकाशकः सम्पादकश्च

स्वामी श्री हनुमद्दासः षट्शास्त्री

प्रथमं संस्करणं १००० संख्या परिमितम्

विजया दशमी २०२२ विक्रमाब्दः } १९६५ ईशवीयाब्दः { अमूल्यं वितरितम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या................ प्राप्ति-संख्या....................

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा

लेखक श्री हनुमानदास शास्त्री

लेनेवाले का | देनेकी | |

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Presented
by
गिरिराज चन्द्र द्वे
to
Prof. Jain SAHAI
17/6/69

खुशालचन्द्र गोरावाला

20 13

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ ॐ राम ॥

❁ तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा ❁

[हिन्दीटीकासमलङ्कृता]

टीकाकारः प्रकाशकः सम्पादकश्च

स्वामी श्री हनुमद्दासः षट्शास्त्री ।

प्रथमं संस्करणं १००० संख्या परिमितम् ।

विजया दशमी २०२२ विक्रमाब्द } १९६५ ईशवीयाब्द { अमूल्यं वितरितम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक —
स्वामी श्री हनुमद्दासः षट्शास्त्री ।

धन्यवाद

इस ग्रन्थ के लेखन प्रकाशनादि में श्री
कबीर कीर्ति मन्दिर द्वारा सर्वथा
सुविधा मिली है। अतः उनके
प्रति सादर धन्यवाद है।

मुद्रक—
श्री हरि प्रेस,
सी० ६/७३ बाग बरियार सिंह
वाराणसी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका—विषय सूची

पृष्ठ		पृष्ठ	
१	मङ्गलादि ।१।।	१०	विचारादि फल ६
६	धर्म ।२।।	१२	वस्तुविभाग ७
७	अधर्म २।।	२०	मुक्ति भेद ८
८	ज्ञान ३।।	२३	विचार फल ९
९	मुक्ति = आत्मा ४।।		

विषय-सूची

मूल विषय प्रथम खण्ड।।१।।

१	मंगल पदार्थविभाग।
३	तटस्थ स्वरूप लक्षणादि
८	अनात्म वर्णन।
१२	अनुबन्ध वर्णन।
१३	ज्ञानाधिकारी।
१४	विवेकादि।
२२	विचार वर्णन

द्वितीय खण्ड ।।२।।

३५	अनुवन्ध विशेष विचार।
३६	अधिकारि खण्डन।
३८	विषय खण्डन
४१	मोक्षार्थक कर्मादि
४४	शंकाओं का समाधान

तृतीय खण्ड ।।३।।

६७	गुरुलक्षण वर्णन
७९	शिष्यलक्षण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८७ चतुर्थ खण्ड ॥४॥

शुभसन्तति राजा की कथाऽऽरम्भ

९६ उपदेशारम्भ ।

१२१ असत् ख्याति आदि रूप भ्रम

१०८ अद्वैतात्मोपदेशः ।

११२ घटाकाशादि कूटस्थादि

१२१ आभास की सप्तावस्थादि

१२८ प्रमाणादि वर्णन

⊙

१४७ पञ्चम खण्ड ॥५॥

गुरुवेदादि मिथ्यात्व वर्णन ।

१५१ भर्छुराजमन्त्री की कथा

१७५ राजान्तर की कथा ।

संसार के मिथ्यात्वादि ॥

भूत प्रकृति आदि ।

२०६ प्रणव के ध्यानासि ॥

⊙

षष्ठ खण्ड ॥६॥

२२७ संसार में स्वप्नतुल्यता वर्णन ॥

२४३ अगृधदेव की कथा ॥

जीवेश्वर के स्वरूपादि, सृष्टिक्रम, शक्ति लक्षण, आदि वर्णन ॥

⊙

सप्तम खण्ड ॥७॥

जीवन्मुक्त की स्थिति" अष्टाङ्गयुक्तसमाधि

३२३ ज्ञानी के शरीर त्याग, विद्या प्रस्थानादि ।

⊙

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

॥ ॐ कं खं ब्रह्म ॥ ॥ ॐ तत् सत् ॥

नित्यानन्द निरवधिरसं निर्मल निर्विकारम् ।
सत्यज्ञानं सदसदवधिं सर्वदा सङ्गहीनम् ॥
शब्दातीतं सकलकरणागोचरं स्वप्रकाशम् ।
विश्वावासं विगतविभिद स्वाश्रये सर्वभासम् ॥१॥

नित्यानन्द स्वरूप, निरवधि = निःसीम, रस = वीर्यादि[1]वाले, निर्मल = अविद्या रहित, निर्विकार = सदा एक रस, सत्य = अविनाशी ज्ञानस्वरूप, सदसत् = मूर्तामूर्त का अवधि = आश्रय = अधिष्ठान, सदा असङ्ग, शब्दातीत = शब्दों का अवाच्य, इन्द्रियों का अविषय, स्वयंप्रकाश सर्वाधार सजातीयादि त्रिविध भेद रहित सर्वप्रकाशक तत्त्व ब्रह्मात्मा का मैं सम्यक् आश्रयण करता हूँ ॥१॥

यस्य ध्यानं क्षणमपि कृतं हन्ति सर्वाघराशिम् ।
यस्य ज्ञानं हरति सकलं मोहपुञ्जं यथार्कः ॥
ध्यातो ज्ञातः स्वयमपि सदा पाति यो विश्वहेतुः ।
तं वन्देऽहंस्मृतमभयदं कामकर्मादि केतुम ॥२॥

एक क्षण मात्र भी किया गया जिसका ध्यान सब पाप समूह को नष्ट करता है, जिसका ज्ञान सूर्य के समान सब मोह समूह

---

१. शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को हरता है और ध्यात = ध्यान के विषय तथा ज्ञात = अनुभूत होने पर जो विश्वेश्वर सदा रक्षा करता है, स्मरण के विषय मात्र होने से अभयदाता और काम-कर्मादि के केतु = शत्रु = नाशक = मोक्षप्रद उस विश्वेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ ।।२।।

यस्याऽज्ञानाज्जनिमृतियुताः सर्वजीवा भ्रमन्ति ।
जालद्वन्द्वैर्धृतनिगडिता यात्यमाना भवन्ति ।।
तस्मिञ्छुद्धे निरवधिसुखे निर्गुणे सर्वहेतौ ।
मायाधीशे विशति स हि चेज्जायते द्वन्द्वहानिः ।। ३ ।।

जिसके अज्ञान से सब जीव जन्म मरणादिरूप संसृतियुक्त होकर भ्रमते हैं और जाल तुल्य द्वन्द्वों से गृहीत तथा निगडित = बद्ध हैं। और नरकादि द्वारा यात्यमान = पीड्यमान हैं। उस शुद्ध, निःसीम सुख, निर्गुण, मायाद्वारा सर्वहेतु अतएव मायाधीश मायी ईश्वर में यदि वह जीव प्रवेश करता है = सगुण ईश्वर के भजन विचारादि पूर्वक यदि निर्गुण ब्रह्मनिष्ठ होता है, तो सब द्वन्द्वों की निवृत्ति होती है ।। ३ ।।

यस्माद्विश्वं भवति विविधं यत्र तिष्ठत्यनन्ते ।
यत्रैवान्ते विशति सकलं सर्वभेदप्रतिष्ठम् ।।
सर्वाधारं स्ववशमनिशं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।
धर्मैर्ध्यानैर्निगमगुरुभिर्ज्ञेयमद्धाऽऽश्रयेऽहम् ।। ४ ।।

जिससे अनेक प्रकार के विश्व = भुवन उत्पन्न होते हैं और जिस अनन्तस्वरूप में स्थिति पाते हैं तथा अन्त = प्रलय काल में सब प्रविष्ट = लीन होते हैं। अतः जो सब भेद की प्रतिष्ठा = आश्रय है। सर्वाधार, सदा स्वतन्त्र, योगियों से ध्यान द्वारा गम्य (ज्ञेय) और धर्म, ध्यान तथा वेद, गुरु द्वारा जानने योग्य उस परब्रह्मात्म-तत्त्व का मैं आश्रयण करता हूँ ।। ४ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभेच्छा सुविचाराद्यै र्मनसो निर्मलत्वतः ।
ज्ञायते यत् परं ब्रह्म स सर्वात्मा सदव्ययः ॥ ५ ॥
निर्गुणं निर्मल ब्रह्म सद्गुणं सगुणं भवेत् ।
सगुणत्वेऽपि सद्ब्रह्म मायी सन्नीश्वरोऽपिच ॥ ६ ॥

शुभेंच्छा मोक्षेच्छा और श्रवणादिरूप सुविचारादि द्वारा तथा मन की निर्मलता आदिरूप मन की तनुता=सूक्ष्मता द्वारा जो परब्रह्म समझा जाता है सोई सर्वात्मा सत्य स्वरूप निर्विकार है और वही निर्गुण शुद्ध ब्रह्म श्रेष्ठ सत्त्वप्रधान माया रूप गुणवाला होकर सगुण ब्रह्म होता है। अर्थात् निर्गुण से भिन्न सगुण की सत्ता नहीं रहती है किन्तु एक सत्य ब्रह्म ही सगुणत्वावस्था में मायी=मायोपाधिक होता हुआ ईश्वर हिरण्यगर्भादि भी कहा जाता है ॥ ५-६ ॥

अविद्यया समायुक्तं ब्रह्मैव याति जीवताम् ।
वासनादियुतं लिङ्गं कामकर्मादिमद्भवेत् ॥ ७ ॥
तदेवैति जगद्रूपं तामस्या मायया युतम् ।
ब्रह्मणोहि विवर्तं तन्मायापरिणतिर्जगत् ॥ ८ ॥

साभास अविद्यात्मक मायारूप उपाधि संयुक्त ब्रह्म ही जीवत्व को प्राप्त सा होता है और जीव के वासनादि से युक्त लिङ्ग=सूक्ष्म शरीर काम कर्मादि वाला होता है। वह ब्रह्म ही तामसी (तमः प्रधान) माया युक्त होकर भूत भौतिक जगत् स्वरूपता को प्राप्त होता है, परन्तु वह जगत् और जीवत्वादि रज्जुसर्प स्वप्नादि समान ब्रह्म का विवर्त और माया का परिणाम होता है। मिथ्या अन्यरूपता को विवर्त और कारण तुल्य अन्य रूपता को परिणाम कहते हैं ॥ ७-८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वात्मत्वेऽप्यसङ्गत्वान्निर्गुणत्वाच्च वस्तुतः ।
न विकारं न वा सङ्गं भजते न क्रियां विभु ॥ ६ ॥
साभासे लिङ्गदेहेऽथ साभासे मायिके विभौ ।
वर्तेते जीवतेशत्वे न सद्रूपे तु निर्गुणे ॥ १० ॥
इत्थं विवेचनं सम्यग् धर्मार्थादि विवेचनम् ।
विचारः कथ्यते सद्भिः सत्प्रवृत्ति विवेकतः ॥ ११ ॥

सर्वात्मता से जीवत्वादि को प्राप्त होते भी वस्तुतः निःसङ्गता और निर्गुणता के कारण, विभु = व्यापक = त्रिविध भेद रहित निर्गुण ब्रह्म, विकार, सङ्ग और क्रिया = कर्म = चेष्टा आदि को कभी नहीं भजता = धारण करता है। किन्तु चिदाभासयुक्त लिङ्गदेह में प्राणधारित्वादिरूप जीवत्व रहता है और मायिक विभु-स्वरूप में ईश्वरता रहती है, निर्गुण सत्स्वरूपमात्र में नहीं। इस प्रकार ज्ञान के साधन और ज्ञेय आत्मा तथा अनात्मा के सम्यक् विवेचन को तथा धमार्थादि के विवेचन को विचार कहते हैं। और विवेचन पूर्वक सत = श्रेष्ठ प्रवृत्ति को विचार कहते हैं॥ ६-११

विविधेन प्रकारेण धर्मज्ञानविशोधनम् ।
विवेचनं सुतर्काद्यै विचारः कथ्यते शुभः ॥ १२ ॥
धर्मात्मादि प्रकाराणां विवेचनं विधानतः ।
मतावस्थाविभेदेन विचारो ज्ञानसाधनम् ॥ १३ ॥
न विचारं विना ज्ञानं न विचारं विना सुखम् ।
न विचारं विना स्वार्थो धर्मो वा लभ्यते क्वचित् ॥१४॥

विविध प्रकार से धर्म और ज्ञान विशेष के शोधन अन्वेषणादि को और सुन्दर सत्शास्त्र अनुकूल तर्कादि से उनके विवेचन को शुभ विचार कहा जाता है। धर्म, आत्मा, अनात्मा, ज्ञान, अज्ञानादि के प्रकार (भेदाभेदादि) विशेष को विधि (शास्त्र) के अनुसार मत और अवस्था आदि भेद पूर्वक विवेचनरूप विचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान का साधन होता है। क्यों कि ऐसे विचार के विना ज्ञान नहीं होता है, अतः विचार के विना सुख नहीं होता है, न विचार के विना कहीं सुन्दर अर्थ या धर्म मिलता है॥ १२-१४॥

विचाराल्लभते धर्मं धनं स्वर्गं सुखं महत्।
विचारेण विहीनस्तु नरकं प्रतिपद्यते॥१५॥
अतस्तद्वारणार्थं वै सद्विचारस्वरूपिणः।
सर्वे प्रकटिता वेदा उपवेदाः सदङ्गकाः॥१६॥
स्मृतयश्च पुराणानि सतां सद्वचनानि च।
सद्विचारात्मकान्येवमितिहासागमास्तथा॥१७॥

विचार से धर्म, धन, स्वर्ग और महासुख (मोक्ष) को मनुष्य पाता है। और सर्वथा विचार रहित मनुष्य तो नरक में जाता है। अतः उस नरक के निवारण रूप प्रयोजन वाले, सद्विचार स्वरूप वाले सब वेद और वेद के श्रेष्ठ अङ्गों के सहित सब उपवेद प्रकट किये गये हैं। स्मृति=धर्मशास्त्र, पुराण, सन्तों के सद्वचन, इतिहास और आगम=तन्त्रशास्त्र ये सब विचार स्वरूप ही हैं।॥ १५-१७॥

क्वचित् पुरुषदोषेण वर्तते कुविचारणा।
तां त्यक्त्वा मनुजैः कार्या सर्वदा सुविचारणा॥१८॥
सर्वदा सुविचारेण यथाशक्ति नरैरिह।
लभ्यते परमं तत्वमन्यत्र वा यथा सुखम्॥१९॥
विचारिणं महाप्राज्ञं धर्मनिष्ठं तपस्विनम्।
नासादयन्ति कुत्रापि ह्यविद्याविभवाः खलु॥२०॥

स्मृति आदि में कहीं पुरुष सम्बन्धी लोभादि दोषों से कुविचार भी हैं, विवेक द्वारा उन कुविचारों को त्याग कर मनुष्यों को सदा सुविचार कर्तव्य है। शक्ति के अनुसार सदा सुविचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से मनुष्य इसी शरीर और लोक में वा शरीरान्तर लोकान्तर में सुख पूर्वक परम तत्व (मोक्ष) को प्राप्त करता है। क्योंकि प्रथम विचारशील होने पर वह विचारवान् महाप्राज्ञ = पूर्ण विवेकी होता है। फिर योग ज्ञानादिरूप धर्मों में निष्ठा = स्थिति = प्रीतिवाला होकर तपस्वी = भोग के संक्षेप वाला विरक्त होता है, अतः उसके प्रति अविद्या के विभव = विस्ताररूप मोह कामादि कहीं भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १८-२० ॥

विचारा एव सर्वाणि दर्शनानि पृथक् पृथक् ।
धर्मादेर्ज्ञानमुक्त्यादेः साधनानां तथाऽऽत्मनः ॥ २१ ॥

सब दर्शनशास्त्र भी धर्म अधर्म के तथा ज्ञान और मुक्ति आदि के और धर्म ज्ञान तथा मुक्ति के साधनों के और आत्मा के पृथक् पृथक् विचार रूप ही हैं ॥ २१ ॥

तत्र धर्मः ॥ १ ॥

यतोऽभ्युदयसिद्धिः स्याद् भवेन्निःश्रेयसं यतः ।
धारणाद्धर्म उक्तः स चोदनालक्षणोऽर्थदः ॥ २२ ॥

जिससे अभ्युदय = यश शुद्धि प्रकाश उन्नति हो तथा निश्चित श्रेयः (शुभ = मोक्ष) हो, धारण (अधः पात का निवारण) करने से वही चोदना (विधि) रूप लक्षण वाला, पुरुषार्थों को देने वाला धर्म कहा गया है ॥ २२ ॥

इज्याऽऽचारदमाऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च ।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥२३॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धी र्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥२४॥
अहिंसासत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभ्युदय और मोक्ष के उपयोगी अपर और पर दो प्रकार के धर्म कहे जाते हैं। तहाँ इज्या = निष्काम सात्विक यज्ञ, सदाचार, दम = मन इन्द्रिय का दमन = कुमार्ग से निरोध, तन मन वचन से अहिंसा, सत्पात्र के प्रति सात्त्विक दान और स्वाध्याय = वेद सत् शास्त्र का विधि के अनुसार अध्ययन अध्यापन, नाम जपादि रूप कर्म, ये सब अपर धर्म कहे जाते हैं और विचार, ध्यान, भक्ति, योग द्वारा जो आत्मानुभव किया जाता है, उसको परम धर्म कहते हैं, यह याज्ञवल्क्य स्मृति कहती है। अतः सात्त्विक धैर्य, क्षमा, मन का दमन, चोरी का अभाव, बाहर भीतर का शौच, इन्द्रियों का निषिद्ध विषयों से निरोध, धी = शास्त्र ज्ञान = धर्मादि का विवेक, आत्मविद्या, सत्य और काम क्रोधादि का अभाव = त्याग, ये दश धर्म के लक्षण = स्वरूप हैं। यह मनुस्मृति का उपदेश है। और अहिंसा, सत्य भाषण, अस्तेय, काम क्रोध और लोभ रूप नरक द्वार का त्याग और सब प्राणि के लिये यथा शक्ति प्रिय और हित के लिए चेष्टा करना यह सब वर्णों के लिये धर्म है, यह पुराण है॥ २३-२५॥

अधर्मः ॥ २ ॥

अधर्मो धर्मवज्ज्ञेयस्त्यागाय कायिकस्तथा।
वाचिको मानसश्चैव कारितस्त्वनुमोदितः ॥२६॥
व्यसनानि समस्तानि कामकोपादिजानि च।
व्यस्यन्ति नरकेतस्मात्त्याज्यान्येव शुभेच्छुभिः ॥२७॥

कायिक, वाचिक और मानस दशविध[1] अधर्म त्यागने के लिये जानने योग्य हैं, इसी प्रकार स्वयं कृत और कारित तथा

---

१ :—चोरी अविहित हिंसा और व्यभिचार ये तीन पाप शरीर से होते हैं। क्रूर वचन, झूठ, चुगली और निष्प्रयोजन विवाद, ये चार पाप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुमोदित ज्ञातव्य हैं और काम क्रोध कुसङ्गादि जन्य सब व्यसन[२] नरक में फेकते हैं, अतः शुभेच्छु से सर्वथा त्याज्य हैं ॥२६-२७॥

ज्ञानम् ॥३॥

ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः ।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥२८॥
निर्विकारो निराकारो निरवद्योऽहमव्ययः ।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥२९॥
अपरोक्षानुभूतिः ॥

आत्मज्ञानं विदु र्ज्ञानं ज्ञानान्यन्यानि यानि तु ।
तानि ज्ञानावभासानि सारस्यानवबोधतः ॥३०॥
योगवासिष्ठ ॥

सम = एकरस, शान्त = निर्द्वन्द्व और सच्चिदानन्द स्वरूप मैं हूँ, अत एव ब्रह्म ही हूँ, देह नहीं हूँ, न असत्स्वरूप = परिच्छिन्न = मन प्राण इन्द्रियादिक हूँ, इस निश्चय को विद्वान् लोग ज्ञान कहते हैं। विकार और आकार से रहित, निर्दोष और अव्यय = अविनाशी शिवस्वरूप मैं हूँ, असत्स्वरूप देहादि मैं नहीं हूँ, ऐसा निश्चय

वचन से होते हैं। अन्याय से परद्रव्यादि के ग्रहण का विचार, पर के अनिष्ट का मन से चिन्तन और असत्य झूठ में आग्रह रूप मन से अधर्म होते हैं। स्वयं किया जाय वह कृत अधर्म होता है, अन्य से करवाया जाय सो कारित होता है और जिसमें सलाह दिया जाय सो अनुमोदित होता है।

२ :—जूआ, मद्य, मांस, वेश्या, शिकार, चोरी और पर स्त्री संगादि व्यसन कहे जाते हैं। ईर्ष्या, असूया, पारुष्य, निन्दा आदि भी व्यसन कहाते हैं ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वानों से ज्ञान कहा जाता है। उक्त आत्मज्ञान को ही महात्मा ज्ञान = सत्यानुभव जानते हैं और इससे अन्य ज्ञान, ज्ञानावभास (ज्ञानतुल्य भासने वाले) हैं, परन्तु सत्य ज्ञान नहीं हैं। क्योंकि उनसे सारस्य = ब्रह्मानन्दरूप रस युक्तता का बोध नहीं होता है, अतः सार = सत्य तत्त्व के बोध रहित अन्यज्ञान भ्रमरूप होते हैं ॥ २८-३० ॥

मुक्ति ॥ ४ ॥

जीवन्मुक्तस्य मुक्तिर्हि स्वात्मरूपाऽतिनिर्मला ।
निर्गुणा निष्कला शान्ता निरवद्यस्वलक्षणा ॥३१॥

(विमुक्तश्च विमुच्यते । ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति) जीवन काल में ही विमुक्त होता हुआ, तथा ब्रह्मस्वरूप होता हुआ, विदेह काल में फिर विमुक्त हुआ जाता है तथा ब्रह्म को प्राप्त किया जाता है। इत्यादि श्रुति के अनुसार, उक्त निश्चय से जो प्रथम जीवन्मुक्त होते हैं, उनकी मुक्ति अत्यन्त निर्मल, निर्गुण, निष्कल = निरवयव, शान्त, निर्दोष, स्वलक्षणवाली स्वात्मस्वरूप ही होती है, किसी आगन्तुक स्वरूप लोकादि की प्राप्तिरूप मुक्ति ज्ञानी की नहीं होती है किन्तु औपाधिक मिथ्या स्वरूप की निवृत्तिरूप निर्वाण पद की प्राप्ति मात्र होती है ॥३१॥

आत्मा ॥५॥

यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह ।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कथ्यते ॥३२॥

(सता सोम्य ! तदा सम्पन्नो भवति । छा० ६।८।१) सुषुप्ति काल में सत के साथ सम्पन्न होता (मिलता) है। इससे सत्य स्वरूप में प्राप्त होता है। स्वप्न में जाग्रत की वासना का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदान=ग्रहण करता है और जाग्रत में यहाँ विषयों को भोगता है। तथा यतः वस्तुतः इस जीवात्मा का सन्तत=नित्य निरन्तरभाव (सत्ता) रहता है, अतः (आप्नोति, आदत्ते, अत्ति, अतति) इति आत्मा कहा जाता है, तहाँ आत्मा के तीन व्यावहारिक स्वरूप कहे गये हैं और एक अन्तिम पारमार्थिक स्वरूप कहा गया है ॥३२॥

विचारादि फल प्रदर्शन ॥६॥

आत्मादिसुविचारेण धर्मादिसुविचारतः ।
ज्ञानसाधनयोगादे विचारोऽप्यागतो भवेत् ॥३३॥
निष्कामेन कृतं कर्म यज्ञदानादिलक्षणम् ।
उपासनाऽपि निष्कामा कर्मयोगो निगद्यते ॥३४॥
ईश्वरार्पणबुद्धया वा विहितं क्रियते शुभम् ।
कर्मयोगो स कालुष्यवारकः सुखदो भवेत् ॥३५॥

आत्मा अनात्मा के सुन्दर विचार द्वारा, तथा धर्माधर्म के सुन्दर विचार से अनात्माऽऽसक्ति और अधर्मों के त्याग पूर्वक ज्ञान के साधन योगादि का विचार भी स्वयं आगत=प्राप्त होता है। तहाँ निष्काम पुरुष से किया गया यज्ञ, दान, तप आदिरूप कर्म और निष्काम उपासना भी कर्मयोग कहा जाता है। अथवा ईश्वरार्पण बुद्धि से जो शुभ विहित कर्मादि किया जाता है, सो कलुषता=मलिनता का नाशक सुखप्रद कर्मयोग होता है ॥३३-३५॥

भक्ति र्भगवतश्चैवमीश्वरस्य विभोः प्रभोः ।
गुरोः सत्पुरुषस्यैवं भक्तियोगो निगद्यते ॥३६॥
कर्म चोपासना भक्तिः कामिनां कामदं स्मृतम् ।
अर्थदं भोगदं सर्वं निष्कामाय च मुक्तिदम् ॥३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यापक, प्रभु = स्वामी, ईश्वर = अन्तर्यामी, भगवान् = सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमात्मा की निष्काम भक्ति तथा सद्गुरु और सत्पुरुष महापुरुष की निष्काम भक्ति = मन वचन और शरीर से यथायोग्य सेवा प्रेम को भक्तियोग कहते हैं। कर्म उपासना और भक्ति ये सब कामियों के कामप्रद होते हैं, अर्थात् अर्थ और भोग देते हैं और अन्तःकरण की शुद्धि शान्ति आदि के द्वारा निष्काम के लिये मुक्तिप्रद होते हैं ॥३६-३७॥

कामो बन्धनमेवैकं नान्यदस्तीह बन्धनम् ।
कामबन्धनमुक्तो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥३८॥
कामानां हृदये वासः संसार इति कीर्तितः ।
तेषां सर्वात्मना नाशो मोक्ष उक्तो मनीषिभिः ॥३९॥
कमानां विनिवृत्त्यर्थं ज्ञानार्थं तत्त्ववस्तुनः ।
दर्शनानि प्रवृत्तानि सद्विचारात्मकानि वै ॥४०॥

वस्तुतः रागद्वेष मूलक एक काम ही धर्माधर्मादि द्वारा इस संसार में एक = मुख्य = प्रधान बन्धन है। यहाँ उस काम के विना अन्य बन्धन नहीं है। अतः कामरूप बन्धन से मुक्त पुरुष रागद्वेष धर्माधर्मादिरूप सब बन्धनों से तथा त्रिगुणात्मक माया से रहित होकर निर्गुण ब्रह्मरूपता = मोक्ष के लिये समर्थ होता है। क्योंकि कामों का हृदय में निवास ही संसार इस शब्द से कहा गया है। और उन कामों का सर्वात्मना (समूल) नाशही विद्वानों से मोक्ष कहा गया है। और अशुभ कामों की सर्वथा निवृत्ति के लिये तथा सत्य वस्तु के ज्ञान के लिये सद्विचारात्मक सब दर्शन शास्त्र प्रवृत्त हुए हैं ॥३८-४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुविभागः ॥७।

जडात्मकं हि वस्त्वेकं तच्च मायात्मकं स्मृतम् ।
चिदात्मकं तु वस्त्वन्यत्तद्धि ब्रह्मात्मकं मतम् ॥४१॥
प्रमाणात्मकवस्त्वेकं प्रमेयं चापरं तथा ।
द्विविधं वर्तते वस्तु तद्विस्तारस्त्वनेकधा ॥४२।
प्रमाप्रमातृरूपाभ्यां प्रमाणेन प्रमेयतः ।
चतुर्धा वर्तते यद्वा हेय हेत्वादि रूपतः ॥
वर्ण्यते बहुधा सद्भिर्बोधवैशद्यसिद्धये ॥४३॥

तहाँ दर्शनों से ज्ञातव्य विचारार्ह एक जड़स्वरूप वस्तु है और वह मायारूप प्रकृति (उपादान) स्वरूप (मिथ्या) कही गयी है और दूसरी वस्तु चेतन स्वरूप है, वह ब्रह्म (सच्चिदानन्दस्वरूप) कही गयी है। अथवा एक प्रमाण स्वरूप और अन्य प्रमेयस्वरूप द्विविध वस्तु हैं और उनके विस्तार भेद अनेक प्रकार के हैं। अर्थात् यद्यपि न्याय दर्शन में प्रमाण प्रमेय, संशय, प्रयोजनादि सोलह पदार्थ कहे गये हैं और प्रत्यक्ष अनुमानादि चार प्रमाण कहे गये हैं। तथा आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ = विषय, बुद्धि = ज्ञान, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फलदुःख और अपवर्ग (मोक्ष ये बारह कार्य कारणरूप प्रमेय कहे गये हैं। तथापि प्रमा ज्ञान की विषयतारूप प्रमेयता संशय, प्रयोजनादिरूप सब पदार्थों में रहती है, अतः द्रव्यगुण कर्मादि में भी प्रमेयता रहती है। जो पदार्थ जीव को प्रमा के विषय नहीं हो सकते, सो भी सर्वज्ञ ईश्वर की प्रमा के विषय होते हैं। अतः प्रमाण और प्रमेयरूप दो प्रकार की वस्तु हैं। अथवा प्रमा और प्रमाता = ज्ञातारूप से और प्रमाण सहित प्रमेयरूप से चार प्रकार की वस्तु हैं। अथवा हेय = त्याज्य दुःख (१) हेय हेतु = दुःख के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण अविद्या तृष्णादि (२) हान हेय की निवृत्ति का साधन तत्त्वज्ञान (३) हानहेतु = तत्त्वज्ञान का उपायरूप शास्त्र तथा मोक्ष (४) ये चार प्रकार की वस्तु ज्ञातव्य हैं। तथापि बोध की विशदता के लिये सत्पुरुषों से बहुधा = षोडशधा आदिरूप से वस्तु कही जाती है ॥४१-४३॥

विहिताविहिते चैव कर्मणी द्विविधे स्मृते ।
विहितं धर्मशब्देन कथ्यते दर्शनादिषु ॥ ४४ ॥
षड्धा षोडशधा पञ्चाधिकविंशतिरेव च ॥
षड्विंशतिश्च शास्त्रेषु पदार्था बहुधोदितः ॥ ४५ ॥
सर्वे दर्शनकृद्भिश्च ह्यात्मानो विभवः स्मृताः ।
सगुणा निर्गुणाश्चैव कथ्यन्ते मतभेदतः ॥ ४६ ॥

विहित और अविहित = प्रतिसिद्ध भेद से दो प्रकार के कर्म कहे गये हैं। उनमें विहित कर्म और कर्म जन्य अदृष्ट = संस्कार विशेष धर्म शब्द से दर्शनादि में कहे जाते हैं। वैशेषिक दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य = जाति, विशेष और समवायसम्बन्ध-रूप छः प्रकार के पदार्थ बोध वैशद्य के लिये कहे गये हैं। और अभाव सहित सात पदार्थ का वर्णन भाष्य और टीकाकार करते हैं। उससे भी अधिक बोध विशदता के लिये पञ्चावयव न्यायोपयोगी सोलह प्रकार के प्रमाण, प्रमेय, संशयादिरूप पदार्थों का वर्णन न्याय दर्शन में किया गया है। सांख्य दर्शन में एक मूल प्रकृति = त्रिगुण की साम्यावस्थारूप प्रधान और महत्तत्त्व, अहङ्कार, पाँच शब्दादिनामक तन्मात्रारूप सात प्रकृति विकृति (कारण कार्य) उभयात्मक वस्तु और पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँच कर्मेन्द्रिय, एक मन तथा स्थूल पाँच भूतरूप सोलह विकार = केवल कार्य मिलाकार पुरुष = आत्मा सहित पचीस पदार्थ कहें गये हैं। योगदर्शन में एक ईश्वर सहित उनको ही छबीस पदार्थ कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है। इस प्रकार शास्त्रों में पदार्थ बहुधा कहे गये हैं और सब वैदिक दर्शनकारों से आत्मा विभु (व्यापक) माने गये हैं और मत भेद से सगुण तथा निर्गुण आत्मा कहे जाते हैं, परन्तु वेदान्त दर्शन के बहुत व्याख्याता आत्मा को परमाणुरूप सगुण ही मानते हैं॥ ४४-४६॥

प्रभाकरास्तार्किकाश्च प्राहुरस्यचिदात्मताम्।
आकाशवद् द्रव्यमात्मा शब्दवत्तद्गुणश्चितिः॥ ४७॥
इच्छाद्वेषप्रयत्नाश्च धर्माधर्मौ सुखासुखे।
तत्संस्काराश्च तस्यैते गुणाश्चितिवदीरिताः॥ ४८॥
आत्मनो मनसा योगे स्वादृष्टवशतो गुणाः।
जायन्तेऽथ प्रलीयन्ते सुषुप्तेऽदृष्ट सत्क्षयात्॥ ४९॥

श्रीकुमारिलभट्ट के शिष्य प्रभाकर के अनुयायी और नैयायिक इस आत्मा को स्वरूप से अचेतन कहते हैं और आकाश के समानद्रव्य कहते हैं और आकाश के शब्द गुण के समान चिति=ज्ञान को आत्मा के गुण मानते हैं। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, सुख, दुख और ज्ञानादि के संस्कार=भावना को ज्ञान के समान आत्मा के गुण कहते हैं और आत्मा के मन साथ अपने अदृष्ट वश संयोग विशेष के होने पर वे गुण उत्पन्न होते हैं और वर्तमान भोगप्रद अदृष्ट के क्षय से सुषुप्ति में उन गुणों का विलय होता है॥ ४७-४९॥

तत्रैवं समदेशित्वात्ससङ्गत्वाच्च सर्वथा।
गुणानामत्र साङ्कर्यप्राप्तिं वेदविदो विदुः॥ ५०॥
कालाकाशदिशामाहुः समदेशजुषामपि।
नाकाशगुणशब्दस्तु क्वचिदन्यत्र वर्तते॥ ५१॥
आत्माभिर्वर्तते तद्वत्समवायः पृथक् पृथक्।
तत्तदगुणगणानां च सांकर्यं नहि विद्यते॥ ५२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु उक्त रीति से सब गुणों के सब आत्मा के समदेश में वृत्तित्व से तथा आत्माओं के सर्वथा सङ्गित्व से इन आत्माओं में गुणों की संकरता = अविभाग की प्राप्ति को वेदज्ञ जानते हैं और प्रभाकर तथा नैयायिक कहते हैं कि काल, आकाश और दिशाओं के सर्वथा समदेश वृत्तित्व विभुत्व और ससङ्ग होते भी जैसे आकाश में समवेत शब्द गुण अन्य किसी में नहीं वर्तते हैं, तैसे ही तत्तद्गुणों का तत्तदात्मा के साथ पृथक् पृथक् समवाय सन्बन्ध रहता है, अतः सांकर्य नहीं है ॥ ५०-५२ ॥

समवायबहुत्वे हि भवेदेवं व्यवस्थितिः ॥
एकत्वात्समवायस्य सर्वत्र समता भवेत् ॥ ५३ ॥
एवं मनसि संयोगः समः सर्वस्य वर्तते ।
कस्य किञ्च मनो ज्ञेयं व्यवस्था वर्तते न हि ॥ ५४ ॥
स्वीयत्वाख्योऽपि सम्बन्धो मनसा सम्भवेन्नहि ।
स्वीयत्वे ज्ञानमूलत्वाज्ज्ञाने तन्मूलकत्वतः ॥ ५५ ॥
सम्बन्धत्वे स्वरूपाणां तेषां नास्ति विशेषकम् ।
सर्वे सर्वत्र वर्तेरन् सांकर्य्यं स्यात्तथा सति ॥ ५६ ॥

वेदवेत्ता कहते हैं कि समवाय के बहुत होने पर ऐसी उक्त व्यवस्था = गुणों की पृथक् पृथक् स्थिति कथञ्चित् होती, परन्तु समवाय के एक होने से सब गुणों की सब आत्माओं में समता = तुल्य स्थिति होगी। इसी प्रकार सब आत्माओं का सब मन में तुल्य संयोग है, तो किस आत्मा का कौन मन समझा जाय, इसमें कोई व्यवस्था नहीं है। स्वीयत्व = स्वकीयत्व = ममता नामक भी पृथक् पृथक् मन के साथ सम्बन्ध का सम्भव नहीं है, क्योंकि ममता ज्ञानमूलक होती है और उक्त रीति से ज्ञान में ममता मूलकत्व होने पर अन्योन्याश्रयादि की प्राप्ति होती है और स्वरूपों को सम्बन्धत्व हो अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध माना जाय, तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन स्वरूपों का विशेषक = भेदक नहीं है, स्वरूपों में विलक्षणता नहीं है। अतः सब गुण, सब मन और सब आत्मा में रहेगें और ऐसा होने पर सांकर्य होगा ॥ ५३-५६ ॥

असङ्गात्मबहुत्वे तु व्यर्थता सर्वथा स्थिता ।
बुद्धिमूलकबन्धादिव्यवस्थायाः प्रसिद्धितः ॥ ५७ ॥
यः कर्ता सैव भोक्ता स्यादन्यथा नैव सम्भवेत् ।
अविकेकजभोगेतु कतृत्वं तादृशं भवेत् ॥ ५८ ॥

सांख्य और योग की रीति से असङ्ग आत्मा के बहुत्व में तो सर्वथा व्यर्थता वर्तमान हैं, क्योंकि अनन्त बुद्धिरूप उपाधि से ही बन्ध मोक्षादि की व्यवस्था की सिद्धि एकात्मा में भी हो सकती है और बुद्धि को कर्त्री आत्मा को भोक्ता मानकर भोग, बन्ध मोक्षादि की व्यवस्था के लिये अनन्त आत्मा का स्वीकार सर्वथा अनुचित है। क्योंकि लोक में जो कर्ता होता है, सोई कर्मफल का भोक्ता होता है, अन्यथा होना सम्भव नहीं है, नहीं तो विष कोई अन्य खायगा और उसके शत्रु मरेंगें तो सहज ही जगत् का संहार होगा। यदि आत्मा में अविवेक जन्य भोग माना जाय, तो उसमें अविवेक जन्य कर्तृत्वादि भी सिद्ध होगा ही इसी से आत्मा में मायामूलक ईश्वरत्व, जगत् कर्तृत्वादि भी श्रुति में कहे गये हैं और माया अविद्यादि मूलक मिथ्या कर्तृत्व भोक्तृत्वादि से सत्यात्मा में सत्यभेद की सिद्धि नहीं हो सकती है।५७॥

एकस्मिन्नपि संशुद्धे नित्यमुक्ते निरामये ।
ब्रह्मात्मनि विकल्प्यन्ते यथा भूतान्यनेकधा ॥५९॥
तथैव बद्धमुक्तादिकल्पनैव विजृम्भते ।
स्वप्नतुल्यविवर्तोऽसौ तस्माद्भेदो न विद्यते ॥६०॥
"न निरोधो न चोत्पत्ति र्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षु र्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥६१॥,, (आत्मोप०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ।
तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ।६२।।"
(भा० स्क० २।१।३९)

विशुद्ध, नित्यमुक्त, निरुज, एक ब्रह्मात्मा में भी जैसे माया = अविद्या से अनेक प्रकार के प्राणी कल्पित होते हैं, तैसे बद्ध मुक्तादि की भी कल्पना ही विस्तृत होती है, सो स्वप्न तुल्य व्यावहारिक विवर्त होता है, अतः आत्मा में सत्य भेद नहीं है, अतः सत्य निरोध = प्रलय नहीं होता है, न आत्मा में सत्य सृष्टि होती है, आत्मा न बद्ध है, न मोक्ष का साधक = साधन कर्ता है, न मुमुक्षु है, न मुक्त होता है, अतः यही आत्मा परमार्थ स्वरूप है। जिस विभु सर्वात्मा से भिन्न, पर = सत्य कुछ भी नहीं है, वही सर्वसाक्षीस्वरूप एक आत्मा सब बुद्धि की वृत्तियों द्वारा भी सब को इस प्रकार अनुभव करनेवाला है कि जैसे स्वप्न में स्वप्नजनों को देखने वाला एक ही रहता है, यद्यपि स्वप्न में द्रष्टा, श्रोता, वक्ता आदि अनेक सत्य भासते हैं, तथापि वे सब प्रातिभासिक रहते हैं, एकहि जीवात्मा सत्य रहता है, तैसे ही सब बुद्धि वृत्ति द्वारा सब को प्रकाशने वाला सर्व साक्षी एक ही है। वही सत्य और आनन्द का निधि = खजाना (आनन्द स्वरूप) है, उसी का भजन करना चाहिये, अन्य में नहीं आसक्त होना चाहिये कि जिससे स्वएक स्वरूप से पतित होकर व्यावहारिक जीव को संसार में भटकना होता है ॥ ५९-६२॥

देशकालादिकं येषां येभ्यः किञ्चिन्न भिद्यते ।
भेदकाभावतस्तेषां भेदः सत्यो न विद्यते ॥ ६३ ॥
उपाधिकल्पितो भेदो व्यवस्थासाधको भवेत् ।
व्यावहारिक भेदेन व्यवहारोऽपि सिद्ध्यति ॥ ६४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनानार्थेऽव संदेहे हरणं हार उच्यते ।
नाना संदेह हारित्वाद् व्यवहार इति स्मृतः ॥ ६५ ॥

जिन आत्माओं का जिन आत्माओं से, जिन पदार्थों का जिन पदार्थों से, देश, काल, स्वरूप, स्वभावादि कुछ भी भिन्न नहीं है, उनके भेदक देशादि के अभाव से उनका परस्पर भेद सत्य नहीं है। मन, बुद्धि, आदि उपाधि से कल्पित = सिद्ध मिथ्या भेद ही बद्ध मुक्त, सुखी, दुःखी आदि की व्यवस्थाओं का साधक हो सकता है और व्यवहारकालिक मिथ्या भेद से ही उपास्य उपासक, गुरु, शिष्य, ईश्वर जीवादिरूप भिन्न व्यवहार = कथन और ज्ञान भी सिद्ध होता है। क्योंकि व्यवहार शब्द में "वि" नानार्थक है। "अव" संदेहार्थक है। हरण = निवारण अर्थ को हार कहता है। अतः नाना संशयों के नाशक होने से व्यवहार कहा जाता है, अर्थात् एक आकाश में नाना घटाकाशादि के व्यवहार होते भी आकाश की एकता से आत्मा में नानात्व संशय की निवृत्ति होती है॥ ६३-६५ ॥

सर्वत्र नभसोंऽशे वै वायुतत्त्वं प्रकल्पितम् ।
वाय्वंशे तेजसस्तत्त्वं जलं तत्र प्रकल्पितम् ॥ ६६ ॥
तत्र च कल्पिता भूमिः सूक्ष्मस्थूलक्रमादयम् ।
कल्पना विस्तरस्तत्र वस्तुतत्त्वं न भिद्यते ॥ ६७ ॥
स्थूलानि सर्वभूतानि सूक्ष्मेषु कल्पितानि वै ।
सूक्ष्मेषु पूर्वपूर्वेषु कल्पितं चोत्तरोत्तरम् ॥ ६८ ॥

शरीर के बाहर भीतर सर्वत्र आकाश के अंश विशेष में ईश्वरीय इच्छा के अधीन वायु का स्वरूप कल्पित है। अर्थात् आकाश से भिन्न स्वतन्त्र सत्ता रहित वायु आकाश में सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार वायु के अंश में तेज, तेज के अंश में जल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और जल के अंश में भूमि आदि कल्पित हुए हैं और यह कल्पना रूप विस्तार सूक्ष्म और स्थूल के क्रम से होता है, तहाँ वस्तु तत्त्व भिन्न नहीं होता है। क्यों कि स्थूल सब भूत सूक्ष्म भूतों में कल्पित होते हैं और आकाशादि पांच सूक्ष्म भूतों में भी पूर्व पूर्व में उत्तरोत्तर कल्पित रहते हैं, स्वतन्त्र सत्ता रहित सिद्ध होते हैं॥ ६६-६८॥

आकाशः कल्पितोऽव्यक्ते मायायां तच्चकल्पितम्।
ब्रह्मण्यारोपिता माया ब्रह्मैवैकमकल्पितम् ॥६९॥
मायैव कारणं कार्यो व्यष्टिरूपेण देहिनाम्।
समष्टिरीश्वरोपाधिस्तत्र विश्वं प्रकल्पितम् ॥७०॥
विश्वस्य कल्पनायोनिः सापि ब्रह्मणि कल्पिता।
अद्वैतं तत्परं ब्रह्म सर्वात्मा निर्गुणः शिवः ॥७१॥
सत्यं सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च तदेव महतो महान्।
सदैकरसमेकं तन्नामरूपादिवर्जितम् ॥७२॥
यथा कल्पितकार्येण कारणत्वेन बुध्यते।
तथा कल्पित नाम्ना तु बुध्यते नात्र संशयः ॥७३॥

सूक्ष्म आकाश अव्यक्त = महत्तत्त्वादि में कल्पित है। वह अव्यक्त त्रिगुणात्मक मायाशक्ति में कल्पित है, माया ब्रह्म = विभु चिदात्मा में कल्पित है। त्रिविध भेद रहित सर्वाधार, सर्वाधिष्ठान, सर्वसाक्षी-स्वरूप एक ब्रह्म ही अकल्पित = स्वतः सिद्ध स्वयं प्रकाश, स्वतन्त्र सदा एक रस वर्तमान रहता है। माया ही व्यष्टि = अंशरूप से सब प्राणी का कारणशरीररूप है और समष्टि माया ईश्वर की उपाधि = ईश्वरत्व का साधक है और उस उपाधि वाले ईश्वर में विश्व = संसार कल्पित है। विश्व की कल्पना की योनि = मूल कारण वह माया भी ब्रह्म में कल्पित है अतः उसकी भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वतन्त्र सत्ता के अभाव होने के कारण सर्वात्मा निर्गुण अद्वैत वह परब्रह्म ही शिव = कल्याण स्वरूप स्वतन्त्र सत्य है। और वह सत्य ब्रह्म ही सूक्ष्म से अति सूक्ष्म, महान् से अति महान्, सदा एक रस, निर्विकार, नाम रूपादि से रहित एक है। और नाम रूपादि से रहित होते भी जैसे कल्पित कार्यों द्वारा कारण रूप से ब्रह्म समझा जाता है, तैसे ही कल्पित नामों के द्वारा भी ब्रह्म समझा जाता है, इसमें संशय नहीं हैं ॥ ६९-७३ ॥

मुक्ति भेदाः ॥ ८ ॥

जीवन्मुक्तो भवेन्मुक्तो विदेहोऽपि विवासनः ।
मरणादेव या मुक्तिः साऽनित्या स्वर्ग लक्षणा ॥७४॥

उक्त शब्दादिजन्य ब्रह्मज्ञान से वासना रहित जीवन्मुक्त विदेहमुक्त भी हो सकते हैं और ज्ञान के विना अन्य प्रकार से मरण के बाद ही जो मुक्ति होती है, सो अनित्य स्वर्ग की प्राप्तिरूप मुक्ति होती हैं। उसमें त्रिविध देह से राहित्यरूप विदेह मुक्ति नहीं होती है ॥ ७४ ॥

तच्चित्तास्तद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च तन्नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥७५॥

तेषां ज्ञानैकनिष्ठानामात्मज्ञानविचारिणाम् ।
सा जीवन्मुक्ततोदेति विदेहे मुक्ततैव या ॥७६॥

यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन् ।
विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते ॥७७॥

जीवन्मुक्तिपदं त्यक्त्वा, स्वदेहे कालसात्कृते ।
विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥७८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त ब्रह्मात्मगत चित्तवाले, तद्गत प्राणवाले = आत्मज्ञानोपयोगी जीवनव्यापार वाले, आत्मा ही का परस्पर बोध करते कराते हुए तथा उस आत्मा का सदा कथन करते हुए सन्तुष्ट होते हैं और रमते हैं, आनन्दित होते हैं। उन एक ज्ञान में निष्ठा वाले आत्मज्ञान के विचार शीलों को वह जीवन्मुक्तता प्रकट होती है कि जो विदेह होने पर भी शुद्ध मुक्तता ही रहती है। (यो० वा० प्र० ६। २। २८। २४-२५) जैसे जलचर पक्षी जल में चरता हुआ जल से लिप्त नहीं होता है। तैसे ही मुक्तात्मा योगी = ज्ञानी गुण दोष = पुण्य पापादि से लिप्त नहीं होता है। (म० भा० शा० अ० २४८।१७) अपने देह के काल = मृत्यु के अधीन होने पर ज्ञानी जीवन्मुक्ति पद = अवस्था को त्याग कर विदेह मुक्तता में इस प्रकार प्रविष्ट होता है कि जैसे वायु स्पन्द रहितता को प्राप्त होता है। (यो० वा० प्र० ३। ६। १४) ॥७५-७८॥

सालोक्या चाथ सामीप्या सारूप्याऽथ मताऽपरा।
सायुज्या मुक्तिरन्येति तां वदन्ति चतुर्विधाम् ॥७९॥
वृक्षे लीनाःखगा भिन्ने वने लीना मृगा यथा।
तथा मुक्ताः प्रभोः काये लीना भिन्ना वसन्ति च ॥८०॥
रमन्ते तत्र मोदन्ते केचिदेव वदन्ति हि।
तच्च शुक्रमकायं तत् कार्यं च करणं न हि ॥८१॥
तस्य ब्रह्मण इत्यादि श्रुत्या वै विमले हरौ।
ईशे ब्रह्मस्वरूपे वा सम्भवेन्न कदाचन ॥८२॥

देवे स्यात्सपरिच्छेदे लीनत्वं तादृशं खलु।
अनित्यं मुक्तिरूपं तत् सापेक्षं न स्वरूपगम् ॥८३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य भेद से चार प्रकार की उस मुक्ति को कोई कहते हैं। तहाँ सायुज्य मुक्ति दशा में भी अपने से भिन्न वृक्ष में जैसे पक्षी लीन होते हैं, भिन्न बन में मृग लीन होते हैं, तैसे मुक्त जीव प्रभु = ईश्वर के शरीर में लीन होते हैं और भिन्न ही बसते हैं। उस प्रभु के देह में रमण करते हैं, आनन्द भोगते हैं, इत्यादि। कोई इस प्रकार कहते हैं। परन्तु इस प्रकार के रमणादि का सम्भव ईश्वर स्वरूप विमल हरि में या ब्रह्म स्वरूप में नहीं हो सकता है, क्यों कि वह ब्रह्म शुद्ध (शुक्र) शरीर रहित है, उस ब्रह्म या ईश्वर के कार्य (शरीर) और करण (इन्द्रिय) नहीं है। इत्यादि श्रुति से सिद्ध विमल हरि में उक्त लीनता का सम्भव कभी नहीं हो सकता है। किन्तु परिच्छेद (भाग, भेद, अंश) सहित एकदेशी सगुण देव में वैसी लीनता हो सकती है, सो सापेक्ष और अनित्य मुक्ति का स्वरूप हो सकता है स्वरूपात्मक नित्य निरपेक्ष मुक्ति का स्वरूप नहीं हो सकता है ॥७९-८३॥

स्वरूपस्थितिरूपा वै मुक्तिर्नित्याऽचलाऽव्यया ।
व्यज्यते ज्ञानतः सा च नोत्पाद्यादिस्वरूपिणी ॥८४॥

विवेकादियुतस्तस्य ज्ञानस्य कारणं दृढम् ।
सत्सङ्गः सद्विचारश्च सम्मतः श्रुतिसाधुभिः ॥८५॥

ब्रह्मसूत्रात्मकः सोऽत्र विचारः परमो मतः ।
सर्वाप्युपनिषच्चैव ज्ञानात्मा नात्र संशयः ॥८६॥

ब्रह्मात्मसन्निधौ नीत्वा स्वाविद्याबन्धनाशकः ।
उपनिषत्पदस्यार्थो ज्ञानमेव निगद्यते ॥ ८७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप में स्थिति (उपाधि अज्ञानादि की निवृत्ति) रूप मुक्ति अचल और अव्यय होती है और वह ज्ञान से व्यक्त = आविर्भूत = प्रकट होती है। उत्पाद्य, प्राप्य, विकार्यादि स्वरूपवाली नहीं होती है। उस ज्ञान के दृढ़ कारणरूप विवेकादि सहित सत्सङ्ग और सद्विचार श्रुति और साधुओं से माना गया है। ब्रह्मसूत्र स्वरूप वह विचार यहाँ उत्तम माना गया है और सब उपनिषद् तो ऋषियों के प्रातिभ ज्ञान स्वरूप ही हैं, इसमें संशय नहीं है। ब्रह्माभिन्न आत्मा के समीप में प्राप्त कराकर अपनी अविद्यारूप बन्धका नाशक बोध (ज्ञान) उपनिषद् पद का अर्थ होता है, सो आत्मज्ञान ही कहा जाता है ॥ ८४-८६ ॥

विचारतत्फलप्रदर्शन ॥ ६ ।

नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः ।
पुरुषार्थस्य सिद्ध्यर्थं विचारं तत आचरेत् ॥८८।
शुद्धोऽत्र पुरुषार्थो हि विचारेण विना नहि ।
कोऽपि सिद्ध्यति तस्मात् स कर्तव्यः सर्वदा जनैः ॥८९॥

विचार के विना अन्य साधन मात्र से ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है। अतः पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए विचार अवश्य करना चाहिये। अर्थ धर्मादि रूप कोई भी शुद्ध = पवित्र निर्मल पुरुषार्थ विचार के विना नहीं सिद्ध होता है, अतः मनुष्यों को सदा विचार करना चाहिये।

कोऽहंकथमिदं जातं को वै कर्ताऽस्य विद्यते ।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः ॥९०॥
कोऽह कथमयं दोषः संसाराख्य उपागतः ।
न्यायेनेति परामर्शो विचार इति कथ्यते ॥९१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहेन्द्रियादि में मैं कौन हूँ और यह भूत भौतिक जगत् कैसे उत्पन्न हुआ है, इसका कर्ता कौन है, इनमें उपादान कारण कौन है, वह सर्वोत्तम मोक्ष हेतु ज्ञान का साधन रूप विचार इस प्रकार का होता है कि जिससे निज स्वरूप जगत् के कर्ता आदि का ज्ञान होता है। मैं कौन हूँ और यह संसारनामक दोष मुझे कैसे प्राप्त हुआ है। शास्त्रीय तर्क युक्ति द्वारा इस प्रकार के परामर्श = चिन्तन = गुरु शिष्यादि के सम्बाद = कथा ही विचार इस शब्द से कहा जाता है, कि जिस विचार द्वारा संसार दोष से रहित देहादि के साक्षीस्वरूप असङ्ग नित्यमुक्त आत्मा का अनुभव होता है॥ (अपरोक्षानुभूतिः ।

देहेन्द्रियमनःप्राणसंघेष्वत्र किमस्म्यहम् ।
कर्तव्यं विद्यते किं मे त्वकर्तव्यं किमस्ति च ॥६२॥
के पूज्याः क्वचगन्तव्यं सेव्यं किं त्याज्यमेव वा ।
इत्येवं सुविचारेण स्वात्मानं चेतनं दृढम् ॥६३।
आदौ ज्ञात्वा स्वकर्तव्यमनुष्ठेयं विधानतः ।
पूज्यान् गुरुजनान् ज्ञात्वा गन्तव्यं साधुसङ्गतौ ॥६४॥
निषिद्धश्चैव दुःसङ्गं त्यक्तव्यं निष्फलं च यत् ।
चित्तञ्च निर्मलं कार्यं योगाङ्गाचरणादितः।६५॥
देशकालादिकं ज्ञात्वा बुध्वैव च व्ययागमौ ।
दानादिकं शुभं कार्यं तपो ध्यानादिकं सदा ॥६६॥
सदाचारः सदा कार्यः सर्वं शक्त्यानुसारतः ।
आरम्भं न्यायतः कृत्वा निरारम्भस्ततो भवेत् ॥६७।
सच्चरित्रं सतां सङ्गः कर्तव्यं मधुरं हितम् ।
वक्तव्यं परुषं नैव त्यक्तव्यं दुश्चरित्रकम् ॥६८॥
शान्तः समाहितो भूत्वा ध्यातव्यं ब्रह्मनिर्मलम् ।
प्रज्ञानेन च तल्लब्ध्वा स्थातव्यं तत्र सर्वदा ॥६९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस देहादि में मैं क्या हूँ, मेरा कर्तव्य क्या है और अकर्तव्य क्या है, पूज्य कौन है, गन्तव्य क्या है, सेव्य क्या है या त्याज्य क्या है, इस प्रकार के सुविचार से प्रथम अपने आत्मा को दृढ़ = सामर्थ्य युक्त चेतन को जानकर कर्तव्य कर्म ध्यानादि का अनुष्ठान = आचरण विधि के अनुसार करना चाहिये और पूज्य गुरुजनों को जानकर उनकी पूजा कर्तव्य है तथा उनकी आज्ञा आदि के अनुसार सत्सङ्ग में जाना चाहिये और सतशास्त्र से निषिद्ध कर्म तथा दुष्ट सङ्ग का हेतुरूप कर्म और निष्फल कर्मादि त्यक्तव्य हैं और योग के अंगों के आचरणादि से मन को प्रथम निर्मल कर्तव्य है और देशकालादि को जानकर तथा खर्च और आगम = आमद को समझ कर दानादि शुभकर्म, तप ध्यानादि सदा कर्तव्य है। सदाचार (सत्पुरुष से आचरित व्यवहार) सदा कर्तव्य है तथा शक्ति के अनुसार ही न्यायपूर्वक सब आरम्भ अवस्था के अनुसार करके चित्त की निर्मलता पूर्ण विवेक विरागादि होने पर फिर निरारम्भ आत्म विचारादि परायण होना चाहिये। सच्चरित्र = ब्रह्मचर्य शौचादि और सत्सङ्ग तो सदा कर्तव्य है तथा मधुर हित मित वचन सदा वक्तव्य है, परुष = क्रूर, अहित, परनिन्दा आदिरूप वचन कभी नहीं वक्तव्य है और व्यभिचार हिंसादि रूप दुश्चरित्र सदा त्याज्य है। इस प्रकार शान्त समाधान होकर ही निर्मल निर्गुण ब्रह्म ध्यातव्य = विचारणीय = चिन्तनीय है। फिर प्रकृष्ट अपरोक्ष ज्ञान द्वारा उसका निजात्म रूप से लाभ (अनुभव) करके उसमें सदा स्थिर रहने योग्य है ॥ ९२-९९ ॥

ब्रह्मचारी सदाचारी मिताहारी विचारवान् ।
सद्विवेकी जितारिः सन् सर्वं सत् फलमश्नुते ॥१००॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"विराजते विचारेण पुरुषः सर्वतोऽधिकः ।
विचाराद्विधिरुत्कृष्टो विचारात्पूज्यते हरिः ॥१०१॥
सर्वज्ञस्तु विचारेण शिव आसीन्महेश्वरः ।
अविचारवशादेव विपदः प्राप्नुवन्ति हि" ॥१०२॥

सदा यथाशक्ति ब्रह्मचर्ययुक्त, सदाचार परायण, परिमित शुद्धाहारवाला, विचारवान् पुरुष, सत्यात्मा के विवेकी और कामादि षडरियों का विजेता होकर लौकिक वैदिक सब सत्य फलों को प्राप्त करता है। विचार द्वारा ब्रह्मचर्यादि युक्त पुरुष सबसे अधिक विराजता (शोभता) है विंचार से ही ब्रह्मा उत्कृष्ट=श्रेष्ठ हुए और विचार से विष्णुदेव पूजे जाते हैं। विचार से ही शिवजी सर्वज्ञ और महेश्वर हुए और विचार के अभाव से ही विपत्तियाँ प्राप्त होती है। (त्रिपुरारहस्य ज्ञान खं० अ० २।५१-५२) ॥ १००-१०२ ॥

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्तापि सर्वावनि,
र्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्चसम्पूजिताः ।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ,
यस्य ब्रह्म विचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ।१०३।

सङ्गं त्यक्त्वा विचारेण ह्यसङ्गं भावयन् हरिम् ।
सर्वात्मानं शिवं ब्रह्म तदात्मत्वं प्रपद्यते ॥१०४॥

जिसका मन तीस कला रूप क्षण काल मात्र भी सदा ब्रह्म विचार में स्थिरता को प्राप्त होने लगा, उसने सब तीर्थों के जलों में स्नान कर लिया, सम्पूर्ण भूमि का दान कर चुका, हजारों यज्ञ कर लिया सब देव उससे पूजे गये और अपने पितरों का उसने संसार दुःख से उद्धार किया अर्थात् उसने सब कर्तव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर लिया अतएव वह त्रिलोक वासी का पूज्य है। क्योंकि कुसङ्ग को त्याग कर असङ्ग हरि (भक्ति ज्ञान मात्र से सब पाप अविद्या को नष्ट करने वाले) सर्वात्मा शिव (कल्याण) स्वरूप ब्रह्म की भावना (चिन्तन = ध्यान = विचार) करता हुआ विवेकी तद्रूपता को प्राप्त होता है ॥ १०३-१०४ ॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा सद्विचारात्मिका शुभा ।
श्रोतव्या चाथ मन्तव्या लब्धव्या सुजनैः सदा ॥१०५॥

तत्रानुबन्धलक्ष्येण धर्मः सर्वः समासतः ।
वर्णितो विद्यते चात्मा समाधे र्लक्षणं शुभम् ॥१०६॥

संक्षेपेण च कामस्य तथार्थस्यापि वर्णनम् ।
तथाप्येषास्ति मुख्येन तत्त्वार्थस्य विचारणा ॥१०७॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा सद्विचारस्वरूप और शुभ है अत: सज्जनों से श्रोतव्य, मन्तव्य और सदा लब्धव्य = प्राप्त करने योग्य हैं। उसमें अनुबन्धों के लक्ष्य = व्याज = बहाने से, समास = संक्षिप्त रूप में सब धर्म वर्णित हैं तथा आत्मा वर्णित है और समाधि के शुभ लक्षण वर्णित हैं यद्यपि संक्षेप से काम का तथा अर्थ का भी वर्णन है तथापि यह मुख्यरूप से तत्त्वार्थ = सत्य ब्रह्मात्म वस्तु का विचार स्वरूप है ॥ १०५-१७ ॥

शुभेऽनुबध्यते येन ज्ञातेन संप्रवर्त्यते ।
वेदान्ते सोऽनुबन्धोऽपि पावनः परमो मतः ॥१०८॥

पावन तं समासाद्य पावनात्पावनं परम् ।
अद्वितीयात्मविज्ञानमद्वैतं प्राप्नुयान्नरः ॥१०९॥

जिस ज्ञात अधिकारी आदि के द्वारा मनुष्य शुभवेदान्त में अनुबद्ध = प्रवृत्त कराया जाता है, सो अनुबन्ध भी परम पावन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माना गया है। उस पावन अधिकारादि को सम्यक् प्राप्त करके पावन से भी परम पावन अद्वितीय आत्मा के विज्ञान को और अद्वैत आत्मा को मनुष्य प्राप्त करें ॥१०८-१०९॥

सुकृतान्मानवो भूत्वा विचारं न करोति यः ।
सदाचार मतिं त्यक्त्वा पशु र्भूत्वा स खिद्यते ॥११०॥
खेदानां विनिवृत्त्यर्थं सुविचारोऽयमस्तु वै ।
अनेन कुविचारस्य त्यागाद् यान्तु च निर्वृत्तिम् ॥१११॥
हनूमता विचाराय रमणाय सतामिह ।
कृतोऽयमनुवादादिर्भवतात् सत्सुखाय वै ॥११२॥

जो पूर्व पुण्य के प्रभाव से मनुष्य होकर सद्विचार विवेकादि का सम्पादन नहीं कर सकता है, वह सदाचार और भावि हित प्रद मति (ज्ञान) को त्याग कर, जीते जी पशु तुल्य होकर तथा मरने पर भी पशु आदि होकर दुःखी होता है। उन खेदों की अत्यन्त निवृत्ति के लिए यह सुविचार हो और इस सुविचार द्वारा कुविचार के त्याग से मनुष्य सुख को प्राप्त करें। सुविचार के लिये तथा सत्पुरुषों के इस में रमण के लिये हनूमान ने यह अनुवाद संग्रह किया है, सो सत्पुरुषों को सत्सुख के लिये हो ॥११०-११२॥

न्यायागतधनः शान्तो ब्रह्म विद्यापरायणः ।
स्वधर्मपालको नित्यं भवत्वेतेन मानवः ॥११३॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसङ्गः कामवर्जितः ।
प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम् ॥११४॥
गुरुप्रज्ञा प्रमादेन मूर्खो वा यदि पण्डितः ।
यस्तु सम्बुध्यते तत्त्वं विरक्तो भवसागरात् ॥११५॥
रागद्वेषविनिमुक्तः सर्वभूतहिते रतः ।
दृढबोधश्च धीरश्च स गच्छेत् परमं पदम् ॥११६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस उक्त विचार से मनुष्य, न्याय से प्राप्त धन वाले, शान्त, ब्रह्मविद्यापरायण और सदा स्वधर्म पालक हों। ब्रह्म = ईश्वर में कर्मों का अर्पण करके आसक्ति और काम से रहित मनुष्य प्रसन्न मन के द्वारा स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ भी उस परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है और मूर्ख = शास्त्र ज्ञान रहित या शास्त्रज्ञ जो संसार से विरक्त पुरुष गुरुकृपा और बुद्धि की प्रसन्नता = स्वच्छता से परम तत्त्व को जानता है, राग द्वेष से रहित, सब प्राणी के हित में रत, दृढ़ बोध वाला, वह धीर = विद्वान् अवश्य परम पद को प्राप्त करता है ॥ ११३-११६ ॥

प्रत्येक समुदायो वा जगज्जन्मादि लक्षणम् ।
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म बुध्यते तेन सर्वगम् ॥११७॥
मायायां प्रकृतित्वं वै श्रुत्यैव बुध्यते यतः ।
अतो माया जगद्योनिरीश्वरेऽस्ति निमित्तता ॥११८॥
मायाविशिष्टदेवस्य कारणद्वयरूपता ।
शुद्धस्य ब्रह्मणश्चास्ते विवर्ते हेतुताऽपरा ॥११९॥

उक्त परमपदस्वरूप ब्रह्म के जगत् के जन्म, पालन = स्थिति और संहार रूप प्रत्येक (जुदे जुदे) लक्षण हैं तथा जन्मादि समुदाय रूप भी लक्षण हैं, तिस लक्षण से (जन्माद्यस्य यतः) इत्यादि शास्त्र के अनुसार सगुण और निर्गुण सर्वगत (व्यापक) ब्रह्म समझा जाता है। "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" इत्यादि श्रुति से ही माया में प्रकृतित्व = जगदुपानत्व जिस से समझा जाता है, अतः माया उपादान कारण है और ईश्वर में निमित्त कारणता है। वस्तुतः ईश्वर में भी तटस्थ कारणता नहीं होने से माया विशिष्ट ईश्वर को उपादान और निमित्त उभय कारण रूपता है और शुद्ध निर्गुण ब्रह्म को विवर्तमात्र में सामान्य कारणता है ॥११७-११९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविद्योपाधिका जीवा नानोपाधिविभेदतः ।
सात्त्विका राजसाद्याश्च भिद्यन्ते गुणभेदतः ॥१२०॥
अविद्योपाधिनिष्ठाश्च विक्षेपावरणात्मिकाः ।
भिद्यन्ते[१] शक्तयो याभि र्जीवो जीवत्वमनुश्ते ॥१२१॥

अनेक अविद्यारूप उपाधि के विविध भेद से अविद्यारूप उपाधिवाले जीव गुणभेद से सात्त्विक, राजस और तामस भेद से भिन्न होते हैं, स्वरूप से नहीं और अविद्यारूप उपाधियों में वर्तमान विक्षेप और आवरणरूप शक्तियां अनेक प्रकार की भिन्न भिन्न रहती हैं, कि जिनके द्वारा जीवत्व = अल्पज्ञत्व, पराधीनत्व, मूढत्व, चलत्व, सुखित्व, दुःखित्वादि को जीवात्मा प्राप्त करता है ॥१२०-१२१॥

अत्यल्पेनापि मेघेन रविराच्छाद्यते यथा ।
अस्मद् दृष्ट्या तथाऽविद्याशक्त्या संछाद्यते विभुः ॥१२२॥
अधिष्ठानं हि सर्वस्य ब्रह्म यद्यपि विद्यते ।
वर्तते चेश्वराधीनमीश्वरे च जगत्तथा ॥१२३॥
तथाप्यज्ञो न जानामि संसारी मोहितोऽस्म्यहम् ।
इत्याद्यनुभवाज्जीवेऽविद्या मोहो जगत्तथा ॥ १२४ ॥
वर्तते च सुबोधेन नश्यत्यज्ञानसंक्षयात् ।
जन्मादिलक्षणं ह्येवं कृत्वैव निश्चयं खलु ॥ १२५ ॥
तत्त्वार्थमणिमञ्जूषाऽध्येतव्या विद्यते तथा ।
श्रोतव्या च विवेकन श्रद्धासद्भक्तिपूर्विका ॥ १२६ ॥

---

१. ब्रह्मण एवैकस्य तत्तदनाद्यविद्यावच्छेदेनानन्तजीवनिर्भासास्पदत्वम् । एकस्यापि जीवस्यानेकाविद्यासद्भावाभ्युपगमाद् । इष्टसिद्धिकारैरपि यावन्ति ज्ञानानि तावन्त्यज्ञानानीत्यनेकाविद्यास्वीकारान्नैकज्ञानेन सर्वमोक्षादि प्रसंङ्गो दोष इत्यादि तत्त्वदीपिकायां चित्सुखमुनिवर्यैरुक्तम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यन्त अल्प मेघ के द्वारा भी जैसे हम लोगों की दृष्टि से महान् सूर्य मानों ढाँपे जाते हैं, इसी प्रकार अविद्या की शक्ति रूप आवरण से विभु ब्रह्माऽऽत्मा ढाँपा जाता है और यद्यपि माया, अविद्या जगत् इन सब का अधिष्ठान शुद्ध समान ज्ञानरूप ब्रह्म है और यह जगत् ईश्वराधीन तथा ईश्वराश्रित है, तो भी मैं अज्ञ हूँ, नहीं जानता हूँ, संसारी और मोहित हूँ, इत्यादि अनुभव व्यवहार जीव में होते हैं। अतः जीव में भी आभिमानिक सम्बन्ध से वा किसी रूप से अविद्या मोह और जगत् रहता है और सुन्दर बोध = ब्रह्माभिन्न अपरोक्षात्मज्ञान से प्रथम अज्ञान का सम्यक् नाश होता है और अज्ञान के नाश से मोह कामादि का नाश होता है। फिर मोहादि मूलक जन्मादि स्वरूप संसार का नाश होता है, ऐसा निश्चय करके ही तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा अध्ययन करने योग्य है, तथा श्रद्धा सद्भक्ति पूर्वक विवेक से श्रवण करने योग्य है॥ १२३-१२६ ॥

तत्त्वार्थ मणिमञ्जूषा भूमिकैषा निरूपिता।
विदुषां सा विनोदाय सतां भवतु तुष्टये ॥ १२७ ॥

मञ्जूषायां तथैवास्यां भूमिकायां न किञ्चन।
ममास्ति किन्तु सद्वाक्यानुवादो मननात्मकः ॥ १२८ ॥

सद्वाक्यमनननेनाथ सुविचारेण सज्जनाः।
तुष्यन्ति च रमन्तेऽत्र विद्वांसो गतमत्सराः ॥ १२९ ॥

नमोऽस्तु सर्वसद्भ्योऽथ गुरुभ्यः परमात्मने।
हरन्तु तेऽखिलान् विघ्नान् मङ्गलानि दिशन्तु च ॥१३०॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा की यह भूमिका निरूपित = वर्णित हुई, सो विद्वानों के विनोद और सन्तों की तुष्टि के लिए हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मञ्जूषा में तथा इस भूमिका में कुछ भी मुझ से कल्पित नहीं है किन्तु मननात्मक सद्वाक्यों का अनुवादात्मक ही है। और सद्वाक्यों के मनन तथा विचार से मत्सर रहित सज्जन विद्वान् सन्तुष्ट होते हैं, तथा इस विचार में रमते हैं। सन्तुष्ट सद्विचारी सब सज्जनों के प्रति तथा सद्गुरुओं के प्रति और परमात्मा के प्रति नमस्कार है, वे सज्जनादि श्रोता आदि के सब विघ्नों को नष्ट करें और मङ्गलों का प्रदान करें ॥ १२७-१३० ॥

★

खुशाल [illegible] गोरावाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ ॐ राम ॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषायाः प्रथमः खण्डः ॥१॥

मङ्गलम् (नमस्कारात्मकम्)

ॐ नमः सच्चिदानन्दसर्वविघ्नविनाशिने ।
सर्वात्मने गणेशाय रामाय स्वप्रकाशिने ॥१॥
नमस्ते गुरवे तस्मै ज्ञानविज्ञानदायिने ।
विशुद्धसच्चिदानन्दरूपाय सर्वसाक्षिणे ॥२॥

ॐ शब्द के वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ स्वरूप सच्चिदानन्द ध्यात ज्ञात होने पर सर्व विघ्नविनाशक सर्वात्मा, स्व = आत्म प्रकाश शील गणेश राम के (ईश्वर के) प्रति नमस्कार है। ज्ञान विज्ञान के दाता, विशुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वसाक्षी उस गुरु के (ईश्वरात्मक[1] गुरु के) प्रति नमस्कार है ॥१-२॥

ग्रन्थ करण प्रतिज्ञा, वस्तु निर्देश मङ्गलम्, पदार्थ विभागश्च ।

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा क्रियते मङ्गलाश्रयः ।
यां लब्ध्वा सुजनो ह्यत्र सर्वथा कुशली भवेत् ॥३॥
पदार्थं द्विविधं मन्ये स्वात्मानात्मविभेदतः ।
तत्र स्वात्मसुविज्ञानात्कुशली केवलो भवेत् ॥४॥

१—(स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् । योग दर्शन) सर्वात्मा ईश्वर पूर्वके गुरुओं का भी गुरु है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब मङ्गल का आश्रयरूप तत्वार्थमणिमञ्जूषा की जाती है, कि जिसको प्राप्त करके सुजन यहाँ सर्वथा कुशली होगें।

अर्थात् मञ्जूषास्थ विवेकादि को प्राप्त करके पुण्यात्मा जीवन्मुक्त होगें। इस मञ्जूषा में वर्णनार्थ पदार्थ स्वात्मा अनात्मा भेद से दो प्रकार के मानते हैं, उसमें स्वात्मा के ब्रह्मस्वरूप से अपरोक्ष निश्चित ज्ञान से मनुष्य कुशली = पुण्यात्मा और केवल = एक सर्वात्मस्वरूप = समदर्शी होता है ॥३-४॥

सुखं नित्यं प्रकाशो यच्चाधारो नामरूपयोः।
मतेरविषयः शुद्धं विभ्वपारं तदस्म्यहम् ॥५॥
अपाराब्धिस्वरूपे च मयि विष्णुः शिवोविधिः।
रविचन्द्रौ गणेशाद्यास्तरङ्गा इव संस्थिता ॥६॥
यं कृपालु सुसर्वज्ञं ध्यायन्ति मुनयो हृदि।
स ममात्मनि मिथ्यैव भासते मायया पृथक् ॥७॥
बोधमिच्छन् हि पुण्यात्मा निष्कामो भजते च यम्।
स ममात्मा विभूरामः प्रणमामि च कं ह्ययम् ॥८॥

जो शुद्ध, विभु, अपार, बुद्धि इन्द्रियादि का अविषय, नाम रूप का आधार, नित्य सुख नित्य प्रकाशस्वरूप ब्रह्म है, सो मैं हूँ। अर्थात् आत्मा ब्रह्मस्वरूप है। अपार समुद्रस्वरूप मुझ (आत्मा) में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, गणेश, धनेश, शक्ति (देवी) आदि सब देवादि तरङ्ग तुल्य वर्तमान हैं। जिस कृपालु निरपेक्ष सर्वज्ञ ईश्वर को मुनि लोग हृदय में ध्यान करते हैं उस ईश्वर की मेरे आत्मा में मायारूप उपाधि से मिथ्या ही पृथक् प्रतीति होती है। अर्थात् उपाधि से वह ईश्वर मिथ्या ही पृथक् प्रतीत होता है, वस्तुतः सर्वात्मस्वरूप ही ईश्वर है। निष्काम पुण्यात्मा पुरुष जिस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सच्चिदानन्द सर्व रमणाधार रमता राम को ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा से भजते हैं, सो विभु=ब्रह्मस्वरूप (नाममात्र से भिन्न) राम मेरा (सबका) आत्मा है, ऐसी अनुभवदशा में मैं किस राम को प्रणाम करूँ, स्वरूप का चिन्तन ही इस अवस्था में कर्तव्य है ॥५-८॥

तटस्थ और स्वरूप लक्षण ।

यतो जन्मादिकं सर्वं जगतस्तत्परं सुखम् ।
स्वयं ज्योतिः स्वरूपश्च बुद्धयादीनां प्रकाशकम् ॥९॥
ब्रह्मात्मैव जगद्योनिः शास्त्रयोनिश्च शास्त्रतः ।
सम्यग् ज्ञेयो न कालादिस्तत्र शास्त्रसमन्वयात् ॥१०॥
जायते च जगत् सर्वमानन्दात्सुविलक्षणात् ।
सर्वज्ञान्नप्रधानादेर्जडान्नैवान्यतः क्वचित् ॥११॥

जिससे जगत् के जन्मादि और अन्य सब कार्य बन्ध मोक्षादि होते हैं, सो ब्रह्म परम सुखस्वरूप स्वयं ज्योतिः=प्रकाश=ज्ञानस्वरूप है, अतः वही बुद्धि इन्द्रियादि का तथा सूर्यचन्द्रादि का भी प्रकाशक है। अतः माया विशिष्ट ब्रह्मस्वरूप=आत्मा=ईश्वर ही जगत् का योनि=कारण है और सत् शास्त्र=वेद का कारण है तथा शास्त्र से सम्यक् जानने योग्य है। काल स्वभावादि शास्त्र से ज्ञेय कारण नहीं है। क्यों कि उपनिषदादिरूप सत् शास्त्र का प्रतिपादकरूप से ब्रह्मात्मा में ही समन्वय (सम्बन्ध) है। अत्यन्त विलक्षण आनन्दस्वरूप सर्वज्ञ से सब जगत् उत्पन्न होता है, जड़ प्रधानादि से या अन्य कर्म जीवात्मादि से कहीं जगत् उत्पन्न नहीं होता है ॥९-११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्यत्वमात्मता तद्वदेकान्तप्रियरूपता ।
अतएव सुखत्वं च नित्यत्वं च निरङ्गता ॥१२॥
शुद्धता व्यापिता चापि निराकारत्वमेव च ।
अनन्तरूपता तद्वत्सर्वथाऽसङ्गरूपता ॥१३॥
जगदाकारता शक्त्या सा चाधिष्ठानतो भवेत् ।
अनन्तत्वमखण्डत्वमजत्वममलात्मनः ॥१४॥

उक्त रीति से जगत् की उत्पत्ति आदि आत्मा के तटस्थ लक्षण कहे गये हैं और निरपेक्ष सत्यता तथा एकान्त = अत्यन्त प्रियरूपता आत्मा का स्वरूप लक्षण है, क्यों कि आत्मार्थक अन्य प्रिय होते हैं आत्मा स्वतः प्रिय है, अत एव आत्मा में सुखरूपता और नित्यता है और निरङ्गता = निरंशता = निरवयवता लक्षण है। साङ्ग शरीरादि अशुद्ध के सङ्ग रहित होने से तथा त्रिविध भेद रहित होने से शुद्धता, व्यापिता, निराकारता, अनन्त (देशादि परिच्छेद रहित) रूपता तथा सर्वथा असङ्ग स्वरूपता लक्षण है। अधिष्ठान होने से अद्भुत मायाशक्ति द्वारा वह शास्त्र प्रसिद्ध जगदाकारता ब्रह्मात्मा की होती है, स्वरूप से नहीं। अतः अमल= निर्गुण आत्मा को स्वरूप से अनन्तत्व, अखण्डत्व और अजत्व ही रहता है।१२-१४॥

निर्विशेषत्वमेकत्वं कल्पिताऽऽधारता तथा ।
शक्त्या त्रिगुणया चैवं कल्पनैव न सत्यता ॥१५॥
निर्गुणत्वं विभुत्वञ्च विमुक्तत्वञ्च सर्वथा ।
केवलत्वे कलावत्त्वं कल्पितं न निरन्तरम् ॥१६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साक्षी सर्वस्य यो नित्यं विषयो न कदाचन ।
तमात्मानमहं मन्ये ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥१७॥
सवितारं विधातारं कर्तारं जगतां प्रभुम् ।
मन्ये तं निर्मलं शान्तं देवदेवं परं पदम् ॥१८॥
आत्मानन्दमहासिन्धौ ब्रह्म विष्ण्वादिमूर्तयः ।
तरङ्गैरेव तुल्याश्च भवन्ति न भवन्ति च ॥१९॥

निर्विशेषता और एकता तो स्वरूप लक्षण है, परन्तु त्रिगुण शक्तिरूप माया से कल्पित की आधारता तथा अनेकता आदि कल्पना = मिथ्यास्वरूप ही है, आधारता अनेकता आदि में सत्यता नहीं है और निर्गुणत्व, विभुत्व, तथा नित्यमुक्तत्व सर्वथा सत्य (स्वरूपात्मक) है, किन्तु केवलत्व = एकत्व के रहते भी कलावत्त्व ब्रह्मात्मा में कल्पित = मिथ्या है, निरन्तर = सत्य नहीं है। "कलाः षोडश भूतानि प्राणोऽक्षं नाम कर्म च। श्रद्धा लोकास्तपो मन्त्रा मनो वीर्यं शरीरकम् ॥ १ ॥" पाँच भूत, प्राण, इन्द्रिय, नाम, कर्म, श्रद्धा, लोक, तप, मन्त्र, मन, वीर्य और शरीर = अन्न, ये सोलह कला आत्मा के कहे जाते हैं (प्रश्न० ६।४)। जो नित्य (सदा) सब का साक्षी है, कभी किसी का विषय (किसी से प्रकाशित) नहीं होता है, उस आत्मा को ही भिन्न भिन्न त्रिगुणोपाधि से विभु ब्रह्मा विष्णु महेश्वरात्मक मानते हैं और सविता = सर्वोत्पादक = प्रकाशक, विधाता = विधारण कर्ता तथा सब संसार का कर्ता प्रभु = स्वामी, उस निर्मल देव देव को ही परपद मानते हैं। यद्यपि परमार्थ स्वरूप से ब्रह्मा विष्णु आदि एक सर्वात्मस्वरूप और विभु हैं, तथापि उस आत्मानन्दरूप महासमुद्र में ब्रह्माविष्णु आदि की परिच्छिन्न मूर्तियाँ मायाजन्य तरङ्ग तुल्य हो होती हैं और लीन होती हैं ॥ १५-१९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स राम: सदा काममुक्तो ललामं,
सदा सर्वथा सैव युक्तोऽर्थधाम ।
भजन्तो लभन्ते ह्यनर्थं न केऽपि,
ततः सज्जनाः संभजन्ते तमीशम् ॥ २० ॥

वह आनन्दात्मा ही राम है और सदा काम रहित = नित्यतृप्त और ललाम = प्रधान = सब का मुख्य स्वरूप है, और सदा सर्वथा युक्त उपयोगी = सर्वज्ञ = सर्ववेत्ता और सर्व अर्थों = फलों का धाम = आश्रय है। उसको भजने वाले कोई भी अनर्थ को नहीं पाते हैं, अतः सज्जन उस ईश = राम को सम्यक् भजते हैं ॥ २० ॥

श्रवणं कीर्तनं तस्य मननं ध्यानमेव च ।
स्मरणं साधुभिः सार्द्धं विचारो भजनं परम् ॥२१॥
एतन्मङ्गमत्यन्तं सर्वकामार्थधर्मदम् ।
अकामेभ्यो ददात्येतज्जनेभ्यो निर्वृतिं पराम् ॥२२॥
यद्यप्यद्वैतसत्यत्वे भजनं सम्भवेन्नहि ।
तथापि व्यवहारस्थद्वैतात्सर्वं प्रसिद्धयति ॥२३॥

गुरु शास्त्र द्वारा उसके श्रवण, कीर्तन, मनन, ध्यान, स्मरण और साधुओं के साथ विचार ही उसका परम भजन है और यह भजन अत्यन्त मङ्गलरूप है, कामी को सब काम = भोग, अर्थ और धर्म को देने वाला है। अकामी जनों को उत्तम निर्वृत्ति = मोक्ष सुख देता है। यद्यपि अद्वैत की सत्यता होते भजन का असम्भव भासता है तथापि व्यवहार में व्यावहारिक द्वैत की वर्तमानता से श्रवणादिरूप सब भजन प्रसिद्ध होता है असम्भव नहीं है ॥ २१-२३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवत्वं च तथेशत्वं कल्पितं न स्वरूपतः ।
व्यावहारिकमेवैतत्सर्वदा स्यादुपाधितः[1] ॥२४॥
"बुद्धयवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथाऽपरम् ।
आभासस्त्वपरं विम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥२५॥
जीवः कर्मफलं भुङ्क्ते स्वात्मा निर्लिप्त एव च ।
आत्मनः प्रतिविम्बं च देही जीवः स एव च" ॥२६॥

जीवत्व और ईश्वरत्व आत्मा में कल्पित (औपाधिक) है, स्वरूप से नहीं है । अतः यह जीवत्व ईश्वरत्व उपाधि से ही सदा व्यावहारिक होता है। बुद्धिरूप उपाधि से अवच्छिन्न = परिमित = बुद्धिदेशवर्ती एक चेतन है और पूर्ण = विभु = विम्बस्वरूप = प्रतिविम्ब का मूलात्मक, अपर = दूसरा है और बुद्धि में आभास = अभिव्यक्तिरूप प्रतिविम्ब तीसरा है। इस प्रकार चेतनात्मा तीन प्रकार का व्यावहारिक भेद से है (अध्यात्मरा० बाल का० स० १) आत्मा का प्रतिविम्ब (आभास) रूप जीव ही देहधारी होकर कर्म करता है और कर्म के फलों को भोगता है। अतः वही प्राणधारी जीव है, स्वात्मा तो सदा निर्लेप = असङ्ग एक है (ब्रह्मवैवर्त पुराण) ॥ २४-२६ ॥

शुद्धमीश्वरचैतन्यं जीवचैतन्यमेव च ।
प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं च फलं तथा ॥२७॥

---

१ संसारकारणमूलभूताऽविद्या यद्यप्येकैव तथापि तस्याः सन्त्येव बहव आकाराः । विद्यार्थानि कर्माणि कर्मान्तरारब्ध शरीरे फलं जनयन्ति—इत्यादि तत्त्वदीपिकायाम् । (एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगात्) इत्यादि श्रुतयश्च कल्पिते भेदे प्रमाणमस्ति ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति सप्तविधं प्रोक्तं भिद्यते व्यवहारतः ।
मायाविद्यादिकस्तत्र ह्युपाधिर्भेदकः स्मृतः ॥२८॥
मायोपाधिविनिर्मुक्तं शुद्धमित्यभिधीयते ।
मायासम्बन्धतश्चेशो जीवोऽविद्यावशस्तथा ॥२९॥
अन्तःकरणसम्बन्धात् प्रमातेत्यभिधीयते ।
तथा तद्वृत्तिसम्बन्धात्प्रमाणमिति कथ्यते ॥३०॥
अज्ञातमपि चैतन्यं प्रमेयमिति कथ्यते ।
तथा ज्ञातं च चैतन्यं फलमित्यभिधीयते ॥३१॥

शुद्ध, ईश्वर, जीव, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और फल इस प्रकार सात प्रकार का कहा गया चेतन व्यवहार से भिन्न होता है तहाँ माया अविद्या आदिरूप उपाधि भेदक = भेद का हेतु माना गया है। माया आदिरूप उपाधि से निर्मुक्त = रहित चेतन शुद्ध इस शब्द से कहा जाता है। माया के सम्बन्ध से ईश्वर और अविद्या की वशता से जीव कहा जाता है। अन्तःकरण के सम्बन्ध से प्रमा ज्ञान का कर्ता = प्रमाता कहा जाता है, और अन्तःकरण की शब्दाद्याकार होने वाली वृत्ति - परिणाम के सम्बन्ध से चेतन ही प्रमाण चेतन कहा जाता है क्योंकि शब्दादि को वृत्तिस्थ चेतन ही प्रकाशता है। अज्ञात = विषयदेशवर्ती चेतन प्रमेय कहा जाता है क्योंकि अज्ञानकृत आवरण चेतन में रहता है, जड़ में नहीं। अतः इसी प्रकार ज्ञात - विषय देशवर्ती चेतन प्रमाण का फल कहा जाता है (कठरुद्रोपनिषद्) ॥ २७-३१ ॥

अनात्म वर्णन ।

उपाधिः प्रकृतिस्त्वाद्यो मायाऽविद्यादिनामिका ।
अनात्मा सा च वै मिथ्या ह्यनिर्वाच्या गुणात्मिका ३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अप्राप्तःप्राप्यते योऽयमत्यन्तं त्यज्यतेऽथवा ।
जानीयात्तमनात्मानं बुद्ध्यन्तं वपुरादिकम्" ॥३३॥
अव्यक्तनामिका सा च कार्याय प्रोन्मुखासती ।
अविद्याऽज्ञाननाम्नी सा ह्यवस्थातोंशतस्तथा ॥३४॥
साधिका कार्यवर्गस्य योनिभूता सनातनी ।
शक्तिर्महेशितुः सा च मध्याद्यन्तविवर्जिता ॥३५॥
"अव्यक्तं प्रकृतिर्माया प्रधानं ब्रह्म कारणम् ।
अव्याकृतं तमः पुष्पं क्षेत्रमक्षरनामकम्" ॥३६॥

माया अविद्यादि नामवाली प्रकृति=मूलोपादान कारणरूप आद्योपाधि है, सो अनात्मा और मिथ्या है, अतएव अनिर्वाच्य और त्रिगुणात्मक है। अप्राप्त जो त्रिगुणात्मक पदार्थ प्राप्त किया जाय अथवा कभी अत्यन्त त्यागा जाय उस बुद्धि पर्यन्त शरीरादि को अनात्मा समझना चाहिये। वह प्रकृति ही कार्य के लिये प्रोन्मुख होती हुई अव्यक्त नाम वाली होती है और अवस्था विशेष से तथा अंशरूप से अविद्या और अज्ञान नाम वाली वह प्रकृति ही होती है (इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते) ईश्वर माया से बहुरूप होता है। इत्यादि श्रुतियों के अनुसार अनन्त शक्ति और अंश वाली माया है, आवरण और विक्षेप रूप में सब शक्ति विभक्त हैं। तहाँ आवरण शक्ति जीव के स्वरूप को आवृत्त करती है, ईश्वर को नहीं। अतः शुद्ध सत्त्व और मलिन सत्त्वादि रूप अवस्था के भेद से माया में भेद होता है। और सनातनी=अनादि, योनि=कारण स्वरूप, कार्य समूह को सिद्ध करने वाली ईश्वर की शक्ति रूप वह प्रकृति आदि मध्य और ज्ञान के विना अन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहित है और प्रकृतिरूप माया, अव्यक्त, प्रधान, ब्रह्म, कारण, अव्याकृत, तम, पुष्प, क्षेत्र, अक्षर नामक भी होती है ॥३२-३६॥

अव्यक्तपूर्वकं तस्याः समष्टिबुद्धिसंयुतः ।
व्यज्यते सर्वशक्तः स हिरण्यगर्भनामकः ॥३७॥
"बुद्धिर्महान् मनो ब्रह्मा मतिः ख्यातिरपूर्वकम् ।
प्रज्ञाभूतिर्धृति र्ज्ञानं सन्ततिः स्मृतिरित्यपि ॥
हैरण्यगर्भ्या बुद्धेस्तु महतो नाम सूचितम्" ॥३८॥
तस्यैवोपाधिरूपा या बुद्धिः सा महदुच्यते ।
ततो भवत्यहङ्कारः[1] संकल्पः स महेशितुः । ३९॥
ईश्वरस्याथ संकल्पान्मायाकार्यंवियज्जनि ।
नभसो जायते वायुर्वायोरग्निश्च जायते ॥४०॥
अग्नेरापः प्रजायन्ते ताभ्यो भूमे र्जनिस्तथा ।
तत्र चोषधितो देहा जायन्ते सर्वं देहिनाम् । ४१॥

उस प्रकृति से अव्यक्त पूर्वक वह ईश्वर ही हिरण्यगर्भ नामक व्यक्त होता है । सो समष्टि बुद्धियुक्त और सर्व कार्य में समर्थ होता है, बुद्धि, महान्, मन, ब्रह्मा, मति, ख्याति, अपूर्व, प्रज्ञा, भूति, धृति, ज्ञान सन्तन्ति और स्मृति ये सब हिरण्यगर्भ की महत्त-त्वनामक बुद्धि के नाम कहे गये हैं क्योंकि उस हिरण्यंगर्भ की उपाधिरूप जो बुद्धि सो महत् कही जाती है और उस बुद्धि से अहङ्कार होता है, सो यद्यपि सांख्य और योग दर्शन के अनुसार

---

१ (अहङ्कारस्य सूक्ष्मावस्थाऽस्मिता, इदमेव महत्तत्त्वं सामा-न्याहङ्कार इति चोच्यते । स्वीकृतस्य पुनस्त्यागाऽसहिष्णुताऽभि-निवेशः । इत्यादि तत्त्वानुसंधाने ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वतन्त्र द्रव्य = पदार्थ होता है तथापि वेदान्त के अनुसार वह अहङ्कार ईश्वर का संकल्प रूप होता है। फिर उस ईश्वर के संकल्प से माया का परिणाम रूप आकाश की उत्पत्ति होती है, आकाश से वायु उत्पन्न होता है, वायु से अग्नि = तेज, तेज से जल, जल से भूमि ये क्रम से उत्पन्न होते हैं। इनके पञ्चीकरण पूर्वक भूमि में ओषधियों द्वारा सब देहियों की स्थूल देहों की उत्पत्ति होती है ॥३७-४१॥

देह एव च संसारो दुःखमूलं शरीरिणाम् ।
अविद्या कारणं काय आनन्दमयनामकः ॥४२॥
प्राणस्वान्तमयाऽऽयुक्तविज्ञानमयसंयुतः ।
वासनाद्याश्रयो देहो लिङ्गमित्युच्यते बुधैः ॥४३॥
स्थूलश्चतुर्विधोदेहः प्रत्यक्षं परिदृश्यते ।
पञ्चीकृतजभूतोत्थः प्राणिकर्मानुसारतः ॥४४॥
इत्यनन्तप्रभेदैर्हि युक्तोऽनात्माऽभिधीयते ।
सर्वभेदविहीनस्तु सत्यात्मा नात्र संशयः ॥४५॥
शास्त्रैर्यद्यपि विज्ञेयः स्वात्मैव प्रतिपाद्यते ।
अनात्मानमबुद्ध्वा तु स्वात्मानं नैव बुध्यते ॥४६॥
अनात्मानं जडं बुद्ध्वा त्वनित्यमनृतं सदा ।
तद्भिन्नः सच्चिदानन्द आत्माज्ञेयोऽव्ययोऽमलः ॥४७॥

स्थूल सूक्ष्म देह ही प्रत्यक्ष संसार है, सो देहियों के दुखों का मूल कारण है और आनन्दमय नाम वाला स्थूल, सूक्ष्म देह का कारण रूप काय = देह अविद्या = अज्ञान है। प्राणमय और स्वान्तमय =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनोमय से आयुक्त = संयुक्त तथा विज्ञानमय से संयुक्त और वासना काम कर्मादि का आश्रय देह, विद्वानों से लिङ्ग = सूक्ष्म देह कही जाती है। अण्डज, पिण्डज=जरायुज, उष्मज और स्थावर = उद्भिज्ज ये चार प्रकार के स्थूल देह प्रत्यक्ष देखी जाती है, सो प्राणियों के कर्मानुसार पञ्चीकृत=पञ्चीकरण से जन्य स्थूल भूतों से उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार अनन्त भेदों से युक्त अनात्मा कहा जाता है और सब भेदों से रहित सत्य आत्मा है, इसमें संशय नहीं है। यद्यपि शास्त्रों से विज्ञेय = ज्ञातव्य निजात्मा ही प्रतिपादित होता है, तथापि अनात्मा को समझे विना कोई आत्मा को नहीं समझता है। अतः जड़, अनित्य, सदा मिथ्या, अनात्मा को जानकर उससे भिन्न सच्चिदानन्द स्वरूप निर्विकार शुद्ध आत्मा ज्ञातव्य है ॥४२-४७॥

आत्मज्ञानं समुद्दिश्य ग्रन्थः सर्वः प्रवर्तते ।
वेदान्त सद्वचो मूलः स्वाध्यायेन सुशान्तिदः ॥४८।

वेदान्त = उपनिषद और सद्वचनमूलक तथा अध्ययनादि से सुन्दर शान्तिप्रद सब ग्रन्थ आत्मज्ञान को उद्देश्य (लक्ष्य) करके प्रवृत्त होता है।

(अनुबन्धवर्णन)

अज्ञात्वा चानुबन्धं नो ग्रन्थे कश्चित्प्रवर्तते ।
कुशलस्तेन वक्तव्यो भवत्येवानुबन्धकः ॥४९॥

अधिकारी च सम्बन्धो विषयोऽथ प्रयोजनम् ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुरनुबन्धं विवेकिनः ॥५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिकारं विना सर्वं कृतं भवति निष्फलम् ।
विपरीतफलं वाऽतस्तं निरीक्ष्य प्रवर्तते ॥५१॥
सम्बन्धं विषयं चापि निरीक्ष्यैवं प्रयोजनम् ।
प्रवृत्तो लभते स्वेष्टमन्यथा दैवयोगतः ॥५२॥

और अनुबन्ध को समझे विना कोई कुशल=विवेकी ग्रन्थ के अध्ययनादि में प्रवृत्त नहीं होता है। अतः ग्रन्थ कर्ता से अनुबन्ध वक्तव्य होता है। ग्रन्थ के अधिकारी, सम्बन्ध, विषय, और प्रयोजन इस चार प्रकार के अनुबन्ध को विवेकी कहते हैं। कर्म अध्ययनादि के अधिकार=योग्यता शक्ति आदि वाले को अधिकारी कहते हैं, तहाँ अधिकार के विना किए गए सब कर्मादि निष्फल होते हैं, अथवा विपरीत अनिष्ट फल वाले होते हैं। अतः उस अधिकार और अधिकारी को समझ करके ही विवेकी अध्ययनादि में प्रवृत्त होते हैं। सम्बन्ध और विषय को एवं प्रयोजन को भी समझकर प्रवृत्त पुरुष अपने इष्ट का लाभ करता है, अन्यथा=समझे विना तो दैवयोग से कहीं प्रवृत्त को इष्ट की प्राप्ति होती है, सर्वत्र नहीं ॥ ४९-५० ॥

(आत्मज्ञानाधिकारिवर्णन)

मलविक्षेपनिर्मुक्तः स्वाज्ञानसहितो जनः ।
चतुर्भिः साधनैर्युक्तोऽधिकारी मतिमान् भवेत् ॥५३॥
निष्कामैः कर्मभिः सद्भिरुपास्त्या गुरुसेवया ।
तपसा हरिभक्त्या च मलविक्षेपनाशनम् ॥५४॥
दोषदृष्ट्या विचाराद्यैः शास्त्राणां चावलोकनैः ।
अभ्यासैश्च सतां सङ्गैः साधनानि भवन्ति हि ॥५५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेकः सुविरागश्च षट्सम्पत्तिः शुभाचला ।
तीव्रामुमुक्षुता चैव साधनानि स्वसम्विदः ।।५६।।

मल = ज्ञान के प्रतिबन्धक पाप और विक्षेप = चञ्चलता से निर्मुक्त = रहित शुद्ध शान्त चित्त वाला और आत्मज्ञान रहित = अज्ञानी, वक्ष्यमाण चार साधनों से युक्त मतिमान् (अनागत दुःख निवारणेच्छुक) जन ज्ञान का अधिकारी होता है। आत्म ज्ञान के प्रतिबन्धक चित्त में मल और विक्षेप रूप दोष रहते हैं, तहाँ निष्काम सत्कर्म = सात्त्विक यज्ञ दानादि, उपासना, गुरुसेवा, तप और हरिभक्ति = ईश्वर भक्ति से मल विक्षेप का नाश होता है। विषयादि में दोष दृष्टि, विचारादि, शास्त्रों के अवलोकनादि, अभ्यास और सन्तों के सङ्गादि से विवेक वैराग्यादि ज्ञान के साधन होते हैं। विवेक, तीव्र विराग, शुभ अचल षट् सम्पत्ति और तीव्र मोक्षेच्छा आत्मज्ञान के साधन होते हैं -।५३-५६।।

(विवेक वर्णन)

आत्मा नित्योऽचलः शुद्धो जगत्तस्माद्विलक्षणम् ।
इत्थं बोधो विवेकः स्यान्मूलं तत्साधनं मतम् ।।५७।।
"नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम् ।
एवं यो निश्चयः सम्यग् विवेकः स हि वस्तु नः" ।५८।
धर्माधर्मार्थकामानां कार्याकार्यादिकर्मणाम् ।
विविच्य ज्ञानमारम्भः सम्यग्धी हिं विवेकिता ।५९।

आत्मा नित्य = अविनाशी, अचल = अक्रिय और शुद्ध है । और संसार = शरीरादि उस आत्मा से विलक्षण अनित्य चल और अशुद्ध है, ऐसा निश्चय रूप ज्ञान विवेक कहा जाता है सो वैरा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्यादि सब साधनों का मूलरूप माना गया है। आत्मा का स्वरूप नित्य है और दृश्य = अनात्मा उससे विपरीत गति (स्वभाव) वाला विनश्वर है, इस प्रकार जो सम्यक् निश्चय वही आत्मवस्तु का विवेक कहा जाता है। इसी प्रकार धर्म, अधर्म, अर्थ, काम और कर्तव्याकर्तव्य कर्मादिका विवेक पूर्वक ज्ञान, आरम्भ, और सम्यग् बुद्धि ही विवेकिता = विवेक है ॥ ५७-५९ ॥

(विराग वर्णन)

ब्रह्मलोकान्तभोगानां त्यागस्यैवाभिवाञ्छनम् ।
मुनिभिर्वेदतत्त्वार्थज्ञैरुक्ता सुविरागिता ॥६०॥
"ऐहिकामुष्मिकार्थेषु ह्यनित्यत्वेन निश्चयात् ।
नैस्पृह्यं तुच्छबुद्धिर्यत् तद्वैराग्यमितीर्यते ॥६१॥"

ब्रह्मलोक पर्यन्त के भोगों का त्याग की ही सर्वथा इच्छा को वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाले मुनियों ने सुविरागिता = सुन्दर विराग कहा है। लोक परलोक के अर्थों में अनित्यत्व के निश्चय से जो निस्पृहता = ईच्छारहितता होती है और तुच्छ = अनादेय मिथ्या बुद्धि होती है सो वैराग्य कहा जाता है। श्रुति में (तद्यथेह कर्मचितोलोकः क्षीयते) इत्यादि से विवेक दर्शाया गया है। (आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति) इत्यादि से फल विराग दर्शित हुआ है। (शान्तो दान्तः) इत्यादि से शमादि दर्शित हुए हैं। और (वरुणं पितरमुपससार) यह गुरु शरणागति कही गई है। इत्यादि ॥ ६०-६१ ॥

षट् सम्पत्ति वर्णन

शमो दमस्तथाश्रद्धा समाधानं च शान्तिदम् ।
तितिक्षोपरतिश्चैव नाम्ना सम्पत्तयस्तु षट् ॥६२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शम, दम, श्रद्धा, शान्तिप्रद समाधान, तितिक्षा और उपरति ये छह सम्पत्ति नाम वाले हैं। इन षट् साधनों की सम्यक् प्राप्ति ज्ञान के एक साधनरूप लक्ष्मी है ॥ ६२ ॥

मनसः सन्निरोधो यो विषयेभ्यो निरन्तरम् ।
शमः सैवेन्द्रियाणां तु निरोधो दम उच्यते ॥६३॥

सदैव वासनात्यागः शमशब्देन कथ्यते ।
निग्रहो बाह्य वृत्तीनां दम इत्यभिधीयते ॥६४॥

गुरुवेदवचः सत्यमितिविश्वास ईरितः ।
स श्रद्धा च तया सत्यं ज्ञानं मुक्तिरवाप्यते ॥६५॥

चित्तैकाग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम् ।
मनश्चञ्चलतानाशरूपं तत्सुसमाधिदम् ॥६६॥

मन का जो विषयों से सदा सम्यक् निरोध किया जाता है, सोई शम कहा जाता है और इन्द्रियों का विषयों से निरोध दम कहा जाता है अर्थात् सदा ही वासना कामादि का त्याग शम शब्द से कहा जाता है। और बाह्य इन्द्रियजन्य मन की बाह्यवृत्तियों के निरोध को दम कहते हैं। और गुरु तथा वेदादि सत शास्त्र के वचन उपदेशादि सत्य हैं, इस निश्चय को विश्वास कहा गया है। वह विश्वास ही श्रद्धा कही जाती है। उससे सत्य ज्ञान और मुक्ति की प्राप्ति होती है। उत्तम लक्ष्य = ध्येय में चित्त की एकाग्रता समाधान इस शब्द से कहा गया है। मन की चञ्चलता का नाश रूप वह समाधान सुन्दर समाधिप्रद होता है ॥६३-६६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तापशीतक्षुदादीनां सहनं यत्स्वभावतः ।
तितिक्षा कथिता सैषा शुभा सर्वार्थसाधिका ॥६७॥
"अध्यात्मिकादि यद्दुःखं प्राप्तं प्रारब्धवेगतः ।
अचिन्तया तत्सहनं तितिक्षेति प्रचक्षते ॥६८॥
तितिक्षया तपोदानं यज्ञस्तीर्थं व्रतं श्रुतम् ।
भूतिः स्वर्गोऽपवर्गश्च प्राप्यते तत्तदर्थिभिः ॥६९॥

ताप, शीत, क्षुधा = भूख, प्यासादि का जो स्वभाव = प्रकृतिरूप शील = सदाचार से सहना सोई सब प्रयोजन का साधक शुभ-तितिक्षा कही गई है। प्रारब्ध के वेग = बल से जो आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दुःखप्राप्त होते हैं, चिन्ता के विना उनके सहन को तितिक्षा कहते हैं, तितिक्षा से तप, दान, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, श्रुत श्रवण = वेद, सम्पत्ति, स्वर्ग और मोक्ष को उनके इच्छुक साधनों द्वारा प्राप्त करते हैं ॥६७-६९॥

साधनैः सहितं सर्वं कर्म त्यक्त्वा विषं यथा ।
विषयान् दूरतस्त्यक्त्वा तेषां च स्मरणं त्यजेत् ॥७०॥
त्यजेत् कामकथां तद्वत् तरुणीतनुदर्शनम् ।
कदाचिद्दर्शने तस्याः कामाद्धर्षं न चानयेत् ॥७१॥
सर्वथा सर्वभोगेभ्यो दोषदृष्टयादितः सदा ।
विषयेभ्यः परावृत्तिरित्येषोपरतिः स्मृता ॥७२॥
शमादिषट्सम्पत्तिरेकं साधनमिष्यते ।
अतश्चतुर्विधं प्राहुः साधनं नवधा न हि ॥७३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शमादि साधनों के विरोधी कर्मों के साधनों के सहित सब कर्मों को विष तुल्य त्याग कर और विषयों को दूर से त्याग कर उन के स्मरण को भी उपरतीच्छुक त्यागे। और काम की कथा को तथा कुदृष्टि से तरुणी के तनु के दर्शन को त्यागे, कभी स्वाभाविक उसके दर्शन होने पर भी काम से हर्ष=मोह को नहीं प्राप्त करे। इस प्रकार सर्वथा और सदा सब भोगों से और विषयों से परावृत्ति=निवृत्ति ही उपरति कही गई है। शमदमादि उपरति पर्यन्त छह की सम्पत्ति=सिद्धिरूप ज्ञान का एक साधन माना जाता है। अतः विवेक, वैराग्य षट्सम्पत्ति और मुमुक्षता ये चार प्रकार के साधन कहते हैं, नव प्रकार के नहीं ॥७२=७३॥

(मुमुक्षुता वर्णन)

ब्रह्मानन्दस्य संप्राप्ति र्निवृत्ति र्बन्धनस्य च।
रूपमेतद्विमोक्षस्य तस्येच्छैव मुमुक्षुता ॥७४॥
संसारबन्धनिर्मुक्तिः कदा मे च कथं भवेत्।
इति या सुदृढाऽऽकाङ्क्षा कथिता सा मुमुक्षुता ॥७५॥
साधनानां तु सर्वेषां मुमुक्षा मूलकारणम्।
अनिच्छोरप्रवृत्तस्य क्व श्रुतिः क्व नु तत्फलम् ॥७६॥
नित्यानित्य विवेकश्च देहे क्षणिकता मतिः।
मृत्यो र्भीतिश्च तापश्च मुमुक्षावृद्धिकारणम् ॥७७॥
शिरो विवेकस्त्वत्यनन्तं वैराग्यं वपुरुच्यते।
शमादयः षडङ्गानि मोक्षेच्छा प्राण उच्यते ॥७८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मानन्द की सम्यक् प्राप्ति = सर्वथा वितृष्णता और संसारबन्ध की निवृत्ति = अज्ञान कामादि का सर्वथा नाश, यही मोक्ष का स्वरूप है। उसकी प्रबल इच्छा ही मुमुक्षुता होती है। मेरे संसार बन्धन की निवृत्ति कब और कैसे होगी, ऐसी जो सुदृढ़ = प्रबल इच्छा सो मुमुक्षुता कही गयी है, यही शुभेच्छा भी कही जाती है और विवेकादि के वाद होने वाले श्रवणादि सब साधनों का मोक्षेच्छा मूल कारण है। क्योंकि इच्छा रहित को श्रुति (श्रवणादि) कहाँ हो सकती है और उसका फल ज्ञान वा मोक्ष भी कहाँ और कैसे हो सकता है। नित्य = आत्मा और अनित्य = अनात्मा का विवेक तथा देह में क्षणिकता = विनश्वरता का निश्चय मृत्यु से भय और ताप = दुःख ये सब मोक्षेच्छा की वृद्धि के कारण हैं। जिज्ञासु के आठ अङ्गों में अत्यन्त विवेक उसका शिर है, अत्यन्त वैराग्य वपु = धड़ है, शम दमादि अन्य छह अङ्ग हैं और मोक्ष की इच्छा प्राण स्वरूप है ॥७४ = ७८॥

ईदृगङ्गसमायुक्तो जिज्ञासुर्युक्तिकोविदः।
शूरो मृत्युं निहन्त्येव सम्यग् ज्ञानासिना ध्रुवम् ॥७९॥

विवेकादीनि चत्वारि श्रवणादीनि शोधनम्।
तत्त्वं पदार्थयोरष्टौ भवन्ति ज्ञानहेतवः ॥८०॥

इन उक्त प्रकार वाले अङ्गो = साधनों से संयुक्त, युक्तियों को जानने वाला जिज्ञासुरूप शूर, सम्यग् ज्ञानरूप तरवार से अज्ञान कामादिरूप मृत्यु को अवश्य नष्ट करता है। क्योंकि विवेक वैराग्यादि चार और श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप तीन और (तत्त्वमसि इस वाक्य गत) तत् और त्वम् पद के अर्थों का शोधन = शुद्ध लक्ष्यार्थ मात्र का विवेचन, ये आठो ज्ञान के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण हैं, इन से ज्ञान द्वारा अज्ञानादि की निवृत्ति अवश्य होती है ॥७८—८०॥

(श्रवणादि वर्णन)

सर्ववेदान्तवाक्यानां षड्भिरङ्गैः सदद्वये ।
परे ब्रह्मणि तात्पर्यनिश्चयं श्रवणं विदुः ।.८१॥

उपक्रम, उपसंहारादिरूप छह अंगों द्वारा, सत्य अद्वैत पर-ब्रह्म में सब वेदान्त वाक्यों के तात्पर्य के निश्चय को वेदज्ञ श्रवण जानते हैं। तहाँ (उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता-फलम् अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये) उपक्रम = आरम्भ और उपसंहार = वाक्य की समाप्ति की एकरूपता (१) अभ्यास (२) अपूर्वता (३) फल वर्णन (४) अर्थवाद = स्तुति आदि (५) और उपपत्ति = युक्ति प्रदर्शन (६) ये छह वेदान्त वाक्य के तात्पर्य निर्णय के हेतुरूप लिङ्ग कहे गये हैं। वे ही निर्णय के अङ्ग हैं। और (श्रोतव्य इत्यादि श्रुत्या फलोपकार्यङ्गाभ्यां मनन-निदिध्यासनाभ्यां सह श्रवणं नामाङ्गि विधीयते) इस विवरण प्रमेय संग्रह के अनुसार मनन और निदिध्यासन फल में उपकारक अङ्ग होते हैं, परन्तु श्रवण ही अङ्गी = प्रधान है, उसी का (श्रोतव्यः) इत्यादि श्रुति से अङ्ग सहित श्रुति का (श्रवण का) ही विधान किया गया है ॥८१॥

श्रुतस्यैवाद्वितीयस्य वस्तुनः प्रत्यगात्मनः ।
वेदान्तवाक्यानुगुणयुक्तिभिस्त्वनुचिन्तनम् ॥८२॥

मननं तच्छ्रुतार्थस्य साक्षात्कारस्य कारणम् ।
अभेदसाधनाच्चैव भेदानां बाधनाद् भवेत् ॥८३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विजातीयशरीरादिप्रत्ययत्यागपूर्वकम् ।
सजातीयात्मवृत्तीनां प्रवाहकरणं सदा ॥८४॥
निदिध्यासनमित्युक्तं ध्यानं चापि तदुच्यते ।
तस्यैव परिपाकस्तु समाधिरभिधीयते ॥८५॥

"श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि ।
निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम्" ॥८६॥

प्रथम श्रुत=सुना हुआ अद्वितीय अन्तरात्म वस्तु का ही जो वेदान्तवाक्य के अनुगुण=अनुकूल युक्तियों=तर्कों से अनुचिन्तन=विचार, सो मनन होता है। और वह मनन अभेद के साधन और भेदों के बाधन द्वारा श्रुत अर्थ के साक्षात्कार का कारण होता है। आत्मा से विजातीय शरीरादि के ज्ञानों का त्याग पूर्वक जो सजातीय=एकाकार आत्म विषयक वृत्तियों=ज्ञानों का प्रवाह सदा किया जाता है। सो निदिध्यासन कहा गया है और वही ध्यान भी कहा जाता है। और उस ध्यान की ही परिपक्वावस्था को समाधि कहते हैं। श्रवण से सौ गुण श्रेष्ठ मनन को, मनन से लाख गुण श्रेष्ठ निदिध्यासन को समझना चाहिये और निर्विकल्प समाधि को अनन्त अपरिमित मोक्ष स्वरूप ही समझना चाहिये ॥ ८२-८६ ॥

तावत्कालं प्रयत्नेन कर्तव्यं श्रवणं सदा ।
प्रामाण्यसंशयो यावत्स्वबुद्धे र्न निवर्तते ॥८७॥

प्रमेयसंशयो यावत्तावत्तु श्रुतियुक्तिभिः ।
आत्मयाथात्म्यनिश्चित्यै कर्तव्यं मननं मुहुः ॥८८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विपरीतात्मधी र्यावन्न विनश्यति चेतसः ।
तावन्निरन्तरं ध्यानं कर्तव्यं मोक्षमिच्छता ॥८९॥

शक्यलक्ष्यार्थबोधार्थो विचारस्तत्त्वमर्थयोः ।
विचारेण पृथक्कारः शोधनं परिचक्ष्यते ॥९०॥

उतने काल तक प्रयत्न से सदा श्रवण कर्तव्य होता है कि जब तक अपनी बुद्धि से उपनिषदादिरूप प्रमाणगत प्रमाणता की संशय नहीं निवृत्त हीती है। क्योंकि प्रमाण गत संशय की निवृत्ति का साधन श्रवण होता है। श्रवण से निश्चय होता है कि यह शास्त्र अमुक अर्थ का प्रतिपादक है। इससे संशय की निवृत्ति हो जाती है। और ब्रह्मात्मा की एकता आदिरूप प्रमेयविषयक संशय जब तक हो तब तक तो आत्मा की यथार्थता के निश्चय के लिये श्रुति और युक्तियों से बार बार मनन कर्तव्य होता है और जब तक चित्त से विपरीतात्म बुद्धि=भ्रान्ति नहीं नष्ट=दूर होती है तब तक मुमुक्षु को निरन्तर=सदा ध्यान कर्तव्य है। तत् और त्वम् पद के शक्यार्थ और लक्ष्यार्थ के ज्ञानार्थक=ज्ञान के लिये तत्, त्वम् के अर्थ का विचार और विचार से शुद्धार्थ को पृथक् करना=विवेक करना ही शोधन कहा जाता है॥ ८७-९० ॥

(विचार वर्णन)

विचारेण विविक्तं सल्लक्ष्यते येन मुच्यते ।
तं मन्ये परमं साध्यं साधनं सौख्यसद्गतेः ॥९१॥

"अद्वयानन्दरूपस्य सद्वयत्वं च दुःखिता ।
बन्धः प्रोक्तः स्वरूपेण स्थिति मुक्तिरितीर्यते ॥९२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविचारकृतो बन्धो विचारेण निवर्तते ।
तस्माज्जीवपरात्मानौ सर्वदैवविचारयेत् ॥९३॥
"नाहं भूतगणो देहो नाहं चाक्षगणस्तथा ।
एतद्विलक्षण कश्चिद्विचारः सोऽयमीदृशः ॥९४॥
परमात्माचिदानन्दः सत्यं सर्वविलक्षणः ।
शुद्धः स निगु णो ज्ञेयो विचारः सोऽयमीदृशः ॥९४॥
युक्तिवाक्यैरनेकैश्च अप्रत्यक्षार्थसाधनः ।
अनेकोपायसंयुक्तो विचार इति कीर्तितः" ॥९६॥

विचार से विविक्त = शुद्ध आत्मा लक्षित = ज्ञात होता है कि जिस ज्ञान से जीवात्मा मुक्त होता है । अतः उस विचार को परम-साध्य = कर्तव्य और सुख सद्गति का साधक मानते हैं । अद्वैत आनन्द स्वरूप को सद्वयत्व भेद और दुःख रूपता की प्रतीति बन्ध कहा गया है और निज = नित्य स्वरूप से स्थिति = भ्रम विनाश ही मुक्ति कही जाती है । अतः अविचार जन्य बन्ध = भ्रम है और विचार जन्य ज्ञान से बन्ध निवृत्त होता है, अतः जीव और पर-मात्मा का सदा विचार करना चाहिये । मैं भूतों का समूह रूप देहस्वरूप नहीं हूँ, न इन्द्रियों का समूह स्वरूप हूँ । किन्तु जड़ इन सब से विलक्षण कोई साक्षीस्वरूप मैं हूँ । वह शोधन रूप विचार ऐसा होता है । परमात्मा भी सब अनात्मा से विलक्षण चिदानन्द स्वरूप सत्य = ब्रह्म है, सो शुद्ध निर्गुण स्वरूप समझने योग्य है, वेदान्तादि से ज्ञातव्य है, वह संशोधन रूप विचार यह ऐसा होता है । अनेक युक्ति वाक्यों द्वारा अप्रत्यक्ष अर्थ का साधक = बोधक अनेक उपायों से संयुक्त विचार इस शब्द से कहा गया है ॥ ९१-९६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अन्तरंगसाधन की कर्तव्यता)

आत्मज्ञानस्य चोत्पत्तौ तत्त्वमस्यादि लक्षणम् ।
प्रमाणं गुरुवाक्यं स्यात्साक्षान्न श्रवणादिकम् ॥९७॥

तथापि संशयभ्रान्तिवारणैकप्रयोजनम् ।
श्रवणादेस्तु हेतुत्वं ज्ञानस्य ज्ञायतां स्फुटम् ॥९८॥

सद्ब्रह्मास्तीति वाक्येन परोक्षा जायते मतिः ।
तत्त्वमस्यादिवाक्येभ्योऽपरोक्षाया मते र्जनिः ॥९९॥

विवेकाद्यष्टकं ज्ञेयमन्तरङ्गं सुसाधनम् ।
वहिरङ्गं तु कर्मादि शोधकं मतिदेहयोः ॥१००॥

आत्मज्ञान की उत्पत्ति में तत्त्वमसि इत्यादि स्वरूपवाला गुरु-वाक्य ही साक्षात् प्रमाण=हेतु होता है। तहाँ अवाधित वस्तु विषयक ज्ञान के जनक वाक्य को प्रमाण कहते हैं। विचार ध्यानादिरूप श्रवण मननादि ऐसा ज्ञान का जनक नहीं होते हैं, तो भी श्रवणादि का संशय भ्रमादि का वारण रूप एक प्रयोजन= फल होता है। अतः श्रवणादि की ज्ञान हेतुता को स्फुट समझना चाहिये। सत्य ब्रह्म है ऐसे वाक्य से ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान होता है और तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्यों से अधिकारी को अपरोक्ष ब्रह्मात्मज्ञान की जनि=उत्पत्ति होती है। विवेक, वैराग्य, शमादि सम्पत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और पदार्थ शोधन इन आठों को ज्ञान के अन्तरङ्ग=समीपवर्ती सुसाधन समझना चाहिये और मन बुद्धि शरीर के शोधक कर्मादि को वहिरंग साधन समझना चाहिये ॥९७-१०० .

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"वहिरङ्गं कर्मजातं संन्यासस्यान्तरङ्गता ।
प्रत्यासन्नतराः शान्तिदान्ताद्या इत्यसौ क्रमः" ॥१०१॥
जिज्ञासायां प्रवृत्तायां विवेकादिस्थितौ तथा ।
विहाय वहिरङ्गं तदन्तरङ्गं समाश्रयेत् ॥१०२॥

कर्म समूह ज्ञान के वहिरङ्ग साधन हैं और संन्यास=उपरति की अन्तरङ्गता है। और शान्ति, दान्ति आदि अत्यन्त अन्तरङ्ग हैं, यह क्रम है। जिज्ञासा की प्रवृत्ति=उत्पत्ति=प्राप्ति और विवेकादि की स्थिति होने पर उन वहिरङ्ग कर्मों को त्याग कर अन्तरङ्ग श्रवणादि का सम्यक् आश्रयण करे ॥१०१-१०२॥

(सम्बन्ध वर्णन)

निरूपक निरूप्यत्वे ग्रन्थस्य ब्रह्मणा सह ।
बोध्यबोधकताख्यश्च सम्बन्धो विद्यते सदा ॥१०३॥
प्राप्यप्रापकताख्यश्च फलेनैवाधिकारिणः ।
विचारेण समं ज्ञेयः कर्तृकर्तव्य लक्षणः ॥१०४
जन्यत्वजनकत्वे च सम्बन्धा बहुधा मताः ।
अतः सर्वप्रयत्नेनाऽध्येतव्यो ग्रन्थ ईदृशः ॥१०५

ब्रह्म के साथ ग्रन्थ का निरूप्यत्व सम्बन्ध है, ग्रन्थ से ब्रह्म विरूपणीय=प्रतिपाद्य है और ब्रह्म का ग्रन्थ के साथ निरूपकत्व सम्बन्ध है। ग्रन्थ ब्रह्म का निरूपक=प्रतिपादक है। इसी प्रकार बोध्य बोधकता नामक भी परस्पर सदा सम्बन्ध है, ब्रह्म बोध्य है, ग्रन्थबोधक है। अधिकारी को फल=मोक्ष के साथ प्राप्य प्रापकता नामक सम्बन्ध होता है फल प्राप्य और अधिकारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रापक = प्राप्त कर्ता होता है। विचार के साथ कर्तृकर्तव्यरूप सम्बन्ध ज्ञातव्य है। अधिकारी कर्ता होता है विचार कर्तव्य है। इसी प्रकार जन्यत्व जनकत्व भी सम्बन्ध है। तहाँ ज्ञान जन्य होता है, विचार जनक होता है, इसप्रकार बहुधा सम्बन्ध सम्मत हैं। अतः अधिकारी को सम्बन्धादियुक्त ऐसा ग्रन्थ अध्ययन योग्य है ।।१०३-१०४।।

(विषय प्रयोजन वर्णन)

एकत्वं सर्वजीवानां ब्रह्मणा विषयो मतः ।
विदस्तेषां तु भेदं यो वेत्ति मन्दमति र्हि सः ।।१०६।।

परानन्दस्वरूपस्य प्राप्ति र्हानिश्च संसृतेः ।
समूलानर्थजन्मादेः फलमेतद्विदुर्बुधाः ।।१०७।

सूत्रितं ब्रह्मणो ज्ञानं ह्यनर्थहेतुहारकम् ।
प्रमातृतादिकोऽनर्थः कर्तृत्वभोक्तृलक्षणः ।।१०८।।

यदि वस्तुकृतं तत्स्याज्ज्ञानं तन्नाशयेन्नहि ।
अतोऽज्ञानकृतं सर्वं ज्ञानेन परमं पदम् ।।१०९।।

सब जीवों के पारमार्थिक स्वरूप का ब्रह्म के साथ एकत्व = अभेद इस वेदान्त ग्रन्थ का विषय = प्रतिपाद्यार्थ विद्वानों को सम्मत है। उन जीवों के भेद को जो जानते हैं, सो मन्दमति ही हैं और उत्तम आनन्द स्वरूप की प्राप्ति तथा मूल सहित अनर्थरूप जन्मादि संसृति = संसार प्रवाह की हानि = निवृत्ति जो होती है, इसी को वेदान्त ग्रन्थ के फल = प्रयोजन पंडित = ज्ञानी समझते हैं। अनर्थ के हेतु अज्ञानादि के नाशक ब्रह्म के ज्ञान को (अथातो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मजिज्ञासा) इस सूत्र से सूत्रित (प्रतिपादित) किया गया है। तहाँ आत्मा में प्रतीयमान प्रमातृता आदिक ही अनर्थरूप= मिथ्यादुःखद संसार रूप है। क्योंकि वह कर्तृत्व भोक्तृत्वादिस्वरूप है। वह कर्तृत्वादि यदि वस्तुकृत=सत्य हो, तो ज्ञान उसे नष्ट नहीं कर सकता है। अतः आत्मा के अज्ञान से सब कर्तृत्वादि आत्मा में प्रतीत होते हैं और ज्ञान से उनके नाश पूर्वक परमानन्द की प्राप्तिरूप परमपद की प्राप्ति होती है ॥१०९॥

(उक्तार्थ में शंका और समाधान)

ननु जीवस्वरूपं यत्तदानन्दघनं सदा ।
इत्थं वदन्ति वेदान्तास्तत्सुखाप्तिर्न संभवेत् ॥११०॥
अप्राप्तं प्राप्यते लोके नित्यप्राप्तस्य वस्तुनः ।
प्राप्तिर्न सम्भवत्येतां शङ्कां कृत्वास्वहृद्गमाम् ॥
त्यक्तव्यो नास्ति विश्वासः प्रयोजनविधौ श्रुतौ ।
गुरुप्रसादतः किन्तु विचारेण स्वतर्कतः ॥११२॥
कुतर्कः संशयः पङ्को विनिवार्योऽस्ति सर्वथा ।
यतः प्राप्तमपि भ्रान्त्या त्वप्राप्तं प्राप्यते पुनः॥११३॥

शंका होती है कि जीवों का जो सत्य स्वरूप है, सो सदा आनन्दघन=अविरल=निरन्तर आनन्द स्वरूप है। इस प्रकार सब वेदान्त कहते हैं। अतः उस आनन्द की प्राप्ति का सम्भव नहीं है क्यों कि अप्राप्त की प्राप्ति होती है, अप्राप्त ही लोक में प्राप्त किया जाता है। अतः नित्य प्राप्त वस्तु की प्राप्ति का सम्भव नहीं है। इस शंका को हृदय गत करके प्रयोजन के विधिरूप श्रुति में विश्वास त्यागने योग्य नहीं है, किन्तु गुरु की कृपा, विचार,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निजतर्क=स्वयुक्ति से कुतर्क और संशय रूप पङ्क=मालिन्य=दोष सर्वथा निवारणीय है, यतः प्राप्त वस्तु भी भ्रान्ति से अप्राप्त होकर फिर प्राप्त होती है ॥११०-११३॥

करस्थं भूषणं यस्य भ्रमाद् भाति विमुष्टवत् ।
ज्ञानात्प्राप्तसमं भाति तस्यैवात्र सुखप्रदम् ॥११४॥
नित्यप्राप्तसुखं तद्वद् ब्रह्मानन्दाभिधं विभु ।
अप्राप्तवत्सदाऽबोधाज्ज्ञानेन प्राप्यतेऽमलम् ॥११५॥
"सचेतनं जीवगुणं वदन्ति स चेष्टते चेष्टयते च सर्वम् ।
अतः परं क्षेत्रविदो वदन्ति प्रावर्तयद्यो भुवनानि सप्त ॥
तं पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥११७॥
चित्तस्य हि प्रसादेन हित्वा कर्म शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमानन्त्यमश्नुते" ॥११८॥

जिसके हाथ के स्थिर भूषण भी भ्रम से विमुष्ट=चौरापहृत तुल्य भासता है, फिर उसी को यहाँ ज्ञान से प्राप्त के समान भासता है और सुखप्रद होता है। इसी प्रकार ब्रह्मानन्द नामक, विभु, नित्य प्राप्त सुख भी अज्ञान से सदा अप्राप्त के समान रहता है और ज्ञान द्वारा अविद्यादि मल की निवृत्ति से अमल=विमल सुख प्राप्त किया जाता है। सचेतना=चेतना=मतिसहित कार्य करण के संघात को व्यावहारिक जीव के गुण=भोगोपकरण=भोग साधन कहते हैं। और वह जीव ही चेष्टा=हिताहित की प्राप्ति परिहार के लिये व्यापार करता है। और शरीरादि सबकी चेष्टा=व्यापार को कराता है। और क्षेत्रविद=ज्ञानी, इस व्यावहारिक जीव से पर=

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भिन्न=उत्तम आनन्दघन ब्रह्मात्मा को कहते हैं, कि जो क्षेत्रज्ञ ब्रह्मात्मा अपनी मायात्मक शक्ति से सातो भुवनों को प्रवृत्त=उत्पन्न किया हैं, वह नित्य प्राप्त भी अप्राप्त है। अल्पाहारी शुद्धान्तः करण वाला बुध=विवेकी पूर्वापर रात्रियों में उसका सदा ध्यान करता हुआ उस आत्मा को अपनी आत्मा=हृदय=बुद्धि में प्रत्यक्ष समझता है। प्रसन्न मनवाला विवेकी चित्त के प्रसाद=निर्मलता=स्वच्छता से शुभाशुभ कर्मों को त्याग कर, आत्मनिष्ठ होकर, सुखस्वरूप आनन्त्य=मोक्ष को प्राप्त करता है ॥११४-११८॥

एवं नित्यनिवृत्तोऽपि भ्रान्त्या भातो निवर्तते ।
रज्जौ सर्पवदेवात्र जगन्नात्मनि विद्यते ॥११९॥
तथापि रज्जुबोधेन सर्पस्य विनिवृत्तिवत् ।
आत्मज्ञानेन बन्धस्य विनिवृत्तिः प्रजायते ॥१२०॥
परमानन्दसम्प्राप्तिबन्धहानिस्वरूपता ।
मोक्षे प्रयोजने चेत्स्याद् भावाभावस्वरूपता ॥१२१॥
विरुद्धा भासते तस्मात्सा न युक्तेति नोच्यताम् ।
यतोऽधिष्ठानभिन्ना नो बन्धहानिरिहोच्यते ॥१२२॥

जैसे नित्य प्राप्त की प्राप्ति होती है, तैसे ही भ्रम से भासित नित्यनिवृत्त की ज्ञान से निवृत्ति होती है, क्योंकि रज्जु में सर्प के समान इस आत्मा में जन्मादि रूप संसार नहीं है। यद्यपि रज्जु समान आत्मा में सर्प तुल्य संसाररूप बन्ध नहीं है तथापि रज्जु के ज्ञान से मिथ्यासर्प की निवृत्ति के समान आत्मज्ञान से मिथ्या बन्ध की अत्यन्त निवृत्ति होती है। फिर शंका होती है कि यदि मोक्ष रूप प्रयोजन में परमानन्द की सम्यक् प्राप्ति और बन्ध की निवृत्ति स्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपता होगी तो विरुद्ध, भाव और अभाव रूपता उस प्रयोजन में भासती है और एक वस्तुमें वह भावाभावरूपता युक्त = उचित नहीं है। ऐसी शंका होने पर उत्तर कहा गया है कि यह विरुद्ध-रूपता दोष नहीं है, क्योंकि बन्ध की हानि = निवृत्ति अभाव रूप नहीं होती है, यतः अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्मात्मा से भिन्न बन्ध की निवृत्ति इस वेदान्त सिद्धान्त में नहीं कही जाती है, अतः भावरूप ही मोक्षरूप प्रयोजन फल होता है ॥११९-१२२॥

(मोक्ष विषयक न्यायमकरन्द मत)

न सद्रूपा न चासत्या नैव सा चोभयात्मिका ।
नाऽनिर्वाच्या जगद्धानिः सदसदभ्यां विलक्षणा ॥१२३॥

सत्त्वे हि द्वैततापत्तिरसत्त्वेऽपुरुषार्थता ।
विरोधान्नोभयात्मत्वमनिर्वाच्या न तद्धतेः ॥१२४॥

तस्मात्पञ्चमरूपा सा मान्येति मकरन्दके ।
कथ्यते नैव तद्युक्तं सर्वथैवाप्रसिद्धितः ॥१२५॥

मकरन्दकार कहते हैं कि जगत्रूप बन्ध की निवृत्ति न सत्य स्वरूप होती है, न असत्य होती है, न सत्यासत्य उभयस्वरूप होती है, न सदसद् से विलक्षण अनिर्वचनीय होती है। क्योंकि बन्ध निवृत्ति के सत्य होने पर सत्य द्वैत की प्राप्ति होगी, असत्य होने पर वह पुरुषार्थ रूप नहीं होगी, उभयरूपता के विरुद्ध होने से सत्या-सत्य उभयरूप नहीं हो सकती और अनिर्वाच्य अविद्यादि की निवृत्तिरूप होने से अनिर्वाच्य नहीं हो सकती। अतः वह निवृत्ति पञ्चमरूप वाली = उक्त चार स्वरूप से विलक्षण मन्तव्य है। इस प्रकार न्यायमकरन्द नामक ग्रन्थ में कहा गया है। परन्तु पञ्चम स्वरूप की सर्वथा अप्रसिद्धि से वह मकरन्द का कथन युक्त नहीं है ॥१२३-१२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सिद्धान्त प्रदर्शन)

किन्तु सा सदधिष्ठानरूपैव जगतो हृतिः ।
ज्ञाताधिष्ठानरूपैव मन्तव्या नान्यथा तु सा ॥१२६॥
निवृत्तिरात्ममोहस्य ज्ञातत्त्वेनोपलक्षितः ।
उपलक्षणनाशेऽपि स्यान्मुक्तिः पाचकादिवत् ॥१२७॥
शुद्धस्याविषयत्वेऽपिसोपाधि विषयो भवेत् ।
उपाधे विंषयत्वस्याऽभावान्न भ्रमिता धियः ।१२८॥

किन्तु वह जगत् की निवृत्ति सत्याऽधिष्ठान रूप ही होती है, अतः वह ज्ञात अधिष्ठानस्वरूप ही मन्तव्य है, अन्यथा नहीं। आत्म मोह = अज्ञानादि की निवृत्ति ज्ञातत्त्व से उपलक्षित = पृथक्त्वेन ज्ञात आत्मस्वरूप ही होती है, अहो जीवन्मुक्ति काल में ज्ञातत्व युक्त आत्मा रहता है और विदेहमोक्ष काल में ज्ञातत्वरूप उपलक्षण के नाश होने पर भी मुक्ति पाचकादि के समान रहेगी अर्थात् पाक क्रियादि रूप उपलक्षण के अभाव काल में भी जैसे पाचकादि रहते हैं, तैसे ज्ञातत्व के अभाव काल में मुक्ति स्वरूप आत्मा रहता है। और (निरूपाधिब्रह्मविषयी कुर्वाणा वृत्तिः सोपहितं गृह्णाति स्वाविषया स्वस्याप्युपाधित्वाविशेषात्) इत्यादि कथनों के अनुसार सब अनात्म वस्तु के अभाव = मिथ्यात्व निश्चय काल में शुद्धात्मा के स्वयं प्रकाश होने के कारण उसे ज्ञान के विषय नहीं होते भी ज्ञानी के (अहं ब्रह्मास्मि) इत्यादि अन्तः करण की वृत्ति का विषय सोपाधि = उपहित आत्मा होता है। अतः निरुपाधि ब्रह्म को विषय करने वाली वृत्ति स्वस्वरूपात्मक उपाधि वाला ब्रह्म को ही ग्रहण करती है। और आत्माश्रयता से अपने स्वरूप को विषय नहीं करती है। अतः उस वृत्ति में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ्रमरूपता की प्राप्ति नहीं होती है। अर्थात् ब्रह्म भिन्न अपने को ब्रह्मरूप से विषय करती, तो भ्रमरूप होती और अपने को विषय नहीं करती हुई स्वोपहित शुद्धात्मा को ब्रह्मरूप से विषय करती है, अतः उसमें भ्रमरूपता नहीं होती है। और अन्य उपाधिओं के समान वृत्ति में भी उपाधित्व रहता है ।।१२६-१२८।।

अथवाऽद्वैतवेदान्ते निवृत्तिर्ध्वंस इष्यते ।
क्षणिकः स स्वयं नष्टो भवत्येव क्षणान्तरे ।।१२९।।
भवध्वंसस्य नाशो हि ब्रह्मरूपश्च शिष्यते ।
तस्मान्न द्वैततापत्ति र्विरोधो नैव विद्यते ।।१३०।।
सत्प्रयोजनवत्त्वेन ग्रन्थारम्भः सुयुज्यते ।
अधिकार्यादि युक्तत्वादध्येतव्योऽधिकारिभिः ।।१३१।
खण्डमाद्यमधीयीत साधनं प्राप्य पुष्कलम् ।
यस्तं कुर्याद् गुरु र्मुक्तं सद्यो ज्ञानप्रदानतः ।।१३२।।
सर्वसाधनयुक्तोऽपि सद्गुरोः करुणां विना ।
न ज्ञानं वा विमोक्षं वा लभते सर्वथा जनः ।।१३३।।

अथवा अद्वैत वेदान्त में बन्ध की निवृत्ति बन्ध का ध्वंस = नाश रूप माना जाता है और ध्वंस को न्याय के समान अविनाशी नहीं माना जाता है, किन्तु (नश्यति) ऐसी प्रतीति कालिक क्षणिक माना जाता है, अतः क्षणान्तर में ध्वंस स्वयं ही नष्ट होता है। फिर संसार ध्वंस का नाश ब्रह्मरूप ही शेष रहता है, अतः द्वैतता की प्राप्ति नहीं होती है, न मोक्ष में भावाभाव रूप विरोध होता है। इस प्रकार सत्य मोक्षरूप प्रयोजन वाला होने से ग्रंथ का आरम्भ सुयुक्त है। और अधिकारी आदि से युक्त होने के कारण अधि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारियों से अध्ययनार्ह है। जो कोई पुष्कल ज्ञान साधन को प्राप्त करके इस ग्रंथ के प्रथम खण्ड को भी गुरु से पढ़े, उसे ज्ञान प्रदान द्वारा गुरु शीघ्र मुक्त करें। सब साधन से युक्त भी मनुष्य गुरु की दया के बिना ज्ञान या सर्वथा विमोक्ष को नहीं पाता है, अतः गुरुकृपा प्रार्थनीय है ॥१२९-१३३॥

दयालुः सद्गुरुस्तस्मात् करोतु करुणां जने ।
गुरुमूर्त्या कृपां कृत्वा ददतां मुक्तिमव्ययाम् ॥१३४॥

प्रजापतिर्गुरुः शिष्यान् मनुष्यान् दानवान् सुरान् ।
दानं दयादमौ धर्मान् दशब्देन समादिशत् ॥१३५॥

दानं दयादमौ धर्मानद्दुर्यं उपदेशतः ।
ते हि दादुरिति प्रोक्ताः सर्वे सद्गुरवः समाः ॥१३६॥

परमानन्दरूपेभ्यः सद्गुरुभ्योऽस्तु मे सदा ।
नमो यत्पापपुञ्जानां नाशकं तद्वचोऽमलम् ॥१३७॥

इति हनुमदीय तत्त्वार्थमणिमञ्जाषायां प्रथमः खण्डः ॥

उक्त हेतु से दयालु सद्गुरु जन पर कृपा करें और गुरु मूर्ति द्वारा कृपा करके अविनाशी मुक्ति दें। प्रजापतिरूप गुरु ने मनुष्य, असुर[1] और

---

१ मनुष्य में दया और दम स्वाभाविक होना चाहिये, दान उपदेश साध्य है, अतः मनुष्यों के प्रति दान का विशेष रूप से उपदेश दिया गया है, सर्वथा दया दम रहित मनुष्य वस्तुतः मनुष्य नहीं कहा जा सकता है। तामस तप स्वाध्यायादि मे प्रवृत्त दानवों में तप के अनुकूल दम दान स्वाभाविक रहते हैं, क्रूरता के कारण दया उपदेश साध्य होती है। अतः उन्हे दया का उपदेश दिया गया है। दानादि से देवभाव के प्राप्त होने पर सात्त्विक देव में दान का फल और दया वर्तमान रहते हैं, परन्तु विषय सङ्ग के कारण दम उपदेश से साध्य होता है, अतः उन्हें दम का उपदेश दिया गया है और वे सब अपनी प्रकृति के अनुसार उपदेश के तात्पर्य को समझ पाये। यह वृहदारण्यक उपनिषद् में कथा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुर=देव रूप शिष्यों के प्रति दान दया और दम रूप धर्मों का द शब्द द्वारा उपदेश दिया। इस प्रकार उपदेश द्वारा दान दया दमादि धर्मों का जो प्रदान किये सो सब सद्गुरु तुल्य रूप से दादु इस शब्द से कहे गये हैं परमानन्दस्वरूप सद्गुरुओं के प्रति मेरा सदा प्रणाम हों, जिससे उनका विमल वचन पापपुञ्ज का नाशक होता है, अतः सद्गुरु सदा प्रणम्य होते हैं ॥१३७॥

दयादानदमचित्तविशोधक । सद्गुरु परमतत्त्व का बोधक ।
भक्ति सकल साधनकरमूला। ताते कटत महा भवशूला ॥
त्यागि कुकर्म भक्ति उरधारी । काम क्रोध मद मोह निवारी ।
करिय विचार सकल सुखदायी । तम तृष्णा दुख जाते जाई ॥
जन्म मरण दुख अगम अपारा। मिटै न विनु सद्भक्ति विचारा।
किए विचार राम प्रकटाहीं। हरहि विकार सकल क्षण माँही ॥

राम अनन्त अपार सुख, सागर अति गम्भीर ।
मधुर मनोहर न्हाय तहँ, ताप मिटाइय वीर ॥१॥

सद्गुरुभक्ति करिय मनलाई । मिटै मोहममता उर आई ।
सद्गुरुराम एक लखि भजिये । भेद भावना संशय तजिये ॥
सत्सङ्गति शम-शुभसन्तोषा। करिय विचार मिटै सब दोषा।
राम सन्त सद्गुरु ये तीनों । देव देव नाशत गति हीनो ॥
भजिय इनहि सम सुखद पिछानी। तजिय विषयरस नाना वानी।

तब निज आतमरूप से, प्रकट करिय भगवन्त ।
लहिये परमानन्द शिव, कहत योंहि सब सन्त ॥२॥

शुभ इच्छामय खण्ड यह, मोक्षेच्छा शुभ साँच ।
प्रबल शुभेच्छा युक्त जन, पावत नहिं भव आँच ॥३॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ ॐ राम ॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषाया द्वितीयखण्डः ॥२॥

(समङ्गलानुबन्ध विशेष विचार प्रतिज्ञा)

ॐ श्री सद्गुरुसद्भ्योऽस्तु नमो मे सर्वसिद्धये ।
सच्चिदानन्दरूपेभ्यः सर्वविघ्ननिवृत्तये ॥१॥
भगवन्तं भजे नित्यं भजमानं च तं भजे ।
ययोः संभजनात्सद्यो जनो द्वन्द्वाद्विमुच्यते ॥२॥
तत्त्वार्थमणिमञ्जूषाखण्डो योऽयं द्वितीयकः ।
तत्र शंका समाधानैरनुबन्धः स्फुटो भवेत् ॥३॥
सामान्येन विचार्याथ विशेषेण विचार्यते ।
अनुबन्धगणास्तावत्पूर्वपक्षो निरूप्यते ॥४॥

सर्व शुद्ध पुरुषार्थों की प्राप्ति और सब विघ्नों की निवृत्ति के लिये सच्चिदानन्द स्वरूप ओंकार=सर्वरक्षक प्रकाशक ईश्वर और सद्गुरु तथा सत्पुरुष महामुनि देवादि के प्रति मेरा नमस्कार स्वीकृत हो। मैं भगवान् ईश्वर को भजता हूँ तथा उसको भजते हुए को भजता (नमस्कारादि करता) हूँ कि जिन दोनों को भजने से मनुष्य द्वन्द्वों से शीघ्र मुक्त होता है। तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा का जो यह द्वितीय खण्ड है उसमें शंका समाधानों के द्वारा अनुबन्ध स्फुट=व्यक्त होगा। अनुबन्ध गण=समूह को सामान्य रूप से विचार कर, अब विशेषरूप से विचार किया जाता है, तहाँ प्रथम पूर्व पक्ष (शंका) का निरूपण किया जाता है ॥१-४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(पूर्वपक्ष अधिकारिखण्डन)

समूलभवनाशोऽथ प्राप्तिः परसुखस्य च ।
मोक्ष उक्तस्तदिच्छैव मुमुक्षा कथिता पुरा ॥५॥

त्रिविधानां हि दुःखानां नाशमिच्छन्ति संज्जनाः ।
समूलभवनाशं ते नेच्छन्ति सुखलब्धये ॥६॥

मूल सहित संसार का नाश और परमानन्द की प्राप्ति भी मोक्ष कहा गया है और उसकी इच्छा ही प्रथम मुमुक्षा = मुमुक्षुता कही गयी है। तहाँ मूल सहित भवनाश की इच्छा अंश का असम्भव है। क्योंकि (बाधनालक्षणं दुःखम् । तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः । न्यायदर्शन) पीड़ा रूप दुःख है और उसकी अत्यन्त निवृत्ति ही मोक्ष है। इत्यादि शास्त्र के अनुसार सज्जन = मुमुक्षु लोग त्रिविध दुःख का नाशमात्र ही चाहते हैं, क्योंकि दुःख ही प्राणिमात्र के लिये अनिष्ट = प्रतिकूल है अन्य नहीं। अतः वे सज्जन सुख = स्वर्ग मोक्षादि की प्राप्ति के लिये भी मूल सहित संसार के नाश = इस में मिथ्यात्व के निश्चयादि को नहीं चाहते हैं ॥५-६॥

भाव है कि कारण सूक्ष्म और स्थूल इन त्रिविध निज देहजन्य दुःखों को दैहिक तथा आध्यात्मिक दुःख कहते हैं। ग्रह, वायु, तेज जलादि देव जन्य दुःखों को दैविक तथा आधिदैविक दुःख कहते हैं सिंह व्याघ्रादि भूत प्राणी जन्य दुःखों को भौतिक तथा आधिभौतिक कहते हैं। इन तीनों दुःखों की निवृत्ति, औषधि, भोग, मन्त्र, जन्त्र, विवेकादि से हो सकती है और दुःखों की निवृत्ति रूप ही सुख है, अतः दुःखों की निवृत्ति वा सुख की प्राप्ति के लिये मूल सहित जगत् की निवृत्ति की इच्छा नहीं हो सकती है। अतएव सांख्य में कहा गया हैं कि (दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेतौ । दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥१॥ दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः । तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥२॥ त्रिविधदुःखों के अभिघात = प्रबल चोट के कारण उनके नाशक हेतु की जिज्ञासा = ज्ञानेच्छा होती है। दुःखनाशक दृष्ट उपायों = साधनों की वर्तमानता से वह जिज्ञासा अपार्था = व्यर्थ नहीं हो सकती, क्योंकि दृष्ट उपायों से दुःखों की एकान्त = अवश्य और अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती है ॥१॥ दुःख निवृत्ति के दृष्ट = प्रत्यक्ष साधन औषधादि के समान आनुश्रविक वेदादि से श्रुत यज्ञादि साधन भी हैं। क्योंकि उनसे भी अवश्य और अत्यन्त दुःखों की निवृत्ति नहीं होती है। पुण्य के क्षय होने पर स्वर्ग से भी लौटना होता है। क्योंकि वे यज्ञादि हिंसादि दोषों से = अविशुद्धियों से युक्त होते हैं। और यज्ञादि जन्य पुण्य तथा फल क्षय = नाश तथा अतिशय = भेद से युक्त राग द्वेषादि के हेतु होते हैं। अतः इनसे भी जिज्ञासा व्यर्थ नहीं हो सकती है। अत एव दृष्ट साधन और श्रुत यज्ञादि से विपरीत = नित्य शुद्ध निरतिशय जो श्रेयान् = अत्यन्त श्रेष्ठ मोक्ष है, उसके लिये जिज्ञासा होती है। सो मोक्ष व्यक्त (कार्य) अव्यक्त (कारण) और ज्ञ = ज्ञाता आत्मा के विज्ञान = विविक्त ज्ञान से प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भी समूल भवनाश की इच्छा अयुक्त भासती है ॥६॥

समूलभवनाशेन विनैव चान्यसाधनात् ।
विनाशे सर्वदुःखानां सम्भवेन्नान्य काङ्क्षणम् ॥७॥

किञ्चानुभूतवस्तूनामिच्छा भवति लब्धये ।
नानुभूतं परं ब्रह्म तदिच्छाऽतो न सम्भवेत् ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टे विषयजानन्दे प्रेप्सवश्च जनाः समे ।
न मोक्षप्रेप्सवः केचिदधिकारी ततो न हि ॥९॥

क्योंकि ज्ञान द्वारा समूल संसार के नाश = मिथ्या निश्चयादि के बिना ही अन्य विवेकादि रूप साधनों से सब दुःखों के विनाश सिद्ध होने पर अन्य = समूल भवनाश की इच्छा हो नहीं सकती है और मोक्ष के द्वितीयांश ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा भी नहीं हो सकती है। क्योंकि प्राप्त करने के लिये अनुभूत = ज्ञात इष्ट वस्तु की इच्छा होती है और वह परब्रह्म किसी अज्ञ (जिज्ञासु आदि) को अनुभूत नहीं है, अतः उसकी इच्छा का सम्भव नहीं है। और दृष्ट = अनुभूत विषयजन्य आनन्द विषयक प्राप्ति की इच्छा वाले सब जन हैं और उक्त मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा वाले कोई नहीं हैं। अतः ज्ञान का = वेदान्त ग्रन्थ का अधिकारी नहीं है॥७-९॥

(विषयखण्डन)

एकत्वं ब्रह्मजीवानां विषयः सम्भवेन्नहि ।
क्लेशवत्त्वाद्धि जीवानां ब्रह्मणस्तद्विपर्ययात् ॥१०॥

बहुत्वा ज्जीवसाक्षी च सममीश्वरसाक्षिणा ।
सर्वज्ञेन न चैकेन वैकत्वप्रतिपत्तिभाक् ॥११॥

ब्रह्म और जीवों की एकता = अभेद ग्रन्थ का विषय नहीं बन सकता है, क्योंकि जीवों को अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेशरूप क्लेशवत्ता है और ब्रह्म को उन क्लेशों का अभाव है। यदि कहा जाय कि ब्रह्म वा ईश्वर के साथ जीवों की एकता नहीं होने पर भी जीव साक्षी = कूटस्थात्मा की ईश्वर साक्षी ब्रह्म के साथ वा ईश्वर के साथ एकता हो सकती है, तो सो कहना ठीक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं, क्योंकि सबके सुख दुःखादि के ज्ञान सब जीवों को नहीं होता है। अतः जीवसाक्षी बहुत = अनन्त हैं और ईश्वर तथा ईश्वर साक्षी एक है। अतएव ईश्वर साक्षी सर्वज्ञ एक ईश्वर के साथ जीव साक्षी भी एकत्व की प्रतिपत्ति = प्राप्ति वा ज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकता है ॥१०-११॥

(प्रयोजनखण्डनार्थक अध्यास साधनखण्डन)

अज्ञानाध्यासजन्यं चेद् भवेत्संसारबन्धनम् ।
तदाऽध्यासनिवृत्त्यैव ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥१२॥
अध्याससाधनाभावान्न तस्यात्मनि सम्भवः ।
अतो ज्ञानेन मोक्षेच्छां त्यक्त्वा कर्मादिकं चरेत् ॥१३॥

सत्यार्थानुभवाज्ज्ञातः संस्कारः प्रथमो भवेत् ।
प्रमातृदोषो लोभादि द्वितीयो हेतुरुच्यते ॥१४॥

प्रमाणस्थस्तृतीयस्तु दोषः कारणमुच्यते ।
प्रमेयस्थश्चतुर्थः स्यादज्ञानं वस्तुनोऽपरः ॥१५॥

एतै र्लोके भ्रमो भाति सामान्यज्ञानपूर्वकः ।
एकात्मनि चिदानन्दे हेतूनां सम्भवो न हि ॥१६॥

अज्ञानात्मक अध्यासजन्य यदि संसार बन्ध हो, तो ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति द्वारा ही अधिकारी जीव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। परन्तु अध्यास के साधनों के अभाव से आत्मा में उस बन्धाध्यास का सम्भव नहीं है अतः आत्मा में बन्ध अध्यस्त = मिथ्या नहीं है, किन्तु सत्य है। इस लिये ज्ञान से मोक्ष की इच्छा को त्याग कर मोक्ष के लिये भी कर्मादि का अनुष्ठान करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकी सत्यार्थ के अनुभव जन्य संस्कार अध्यास का प्रथम = एक हेतु होता है और लोभ भयादिरूप प्रमाता = जीवगत दोषरूप द्वितीय हेतु होता है। प्रमाण गत पित्तादि दोष तीसरा अध्यास का कारण कहा जाता है। प्रमेयगत सादृश्य दूरत्वादि दोष चतुर्थ हेतु होता है। और भ्रमाधार वस्तु का सामान्यरूप से ज्ञान और विशेष रूप से अज्ञान यह अपर पञ्चम हेतु होता है, अतः सामान्य ज्ञान पूर्वक इन पांचो से ही लोक में भ्रम प्रतीत होता है और चिदानन्द स्वरूप स्वयं प्रकाश एक = सामान्य विशेष भावादि रहित आत्मा में, सूर्य में अन्धकार के समान इन हेतु ओं का सम्भव नहीं है ॥ १२–१६॥

वेदान्ते न क्वचिद् बन्धः सत्यो यत्संस्कृति र्भवेत् ।
प्रमाणादेश्च मिथ्यात्वे दोषाणां सम्भवः कुत ॥१७॥
आत्मनो नैव सामान्यं विशेषो वास्ति कश्चन ।
अतो नात्मनि बन्धस्य विभ्रमो किन्तु सत्यता ॥१८॥
अध्यासासम्भवाद् बन्धो न मिथ्यात्वं समर्हति ।
सत्यत्वे च न बोधेन बन्धनाशो भविष्यति ॥१९॥

वेदान्त के सिद्धान्त में कहीं सत्य बन्ध नहीं है, कि जिसके ज्ञान जन्य संस्कार हो। और प्रमाणादि के भी मिथ्या होने पर दोषों का कहाँ किससे सम्भव हो सकता है। आत्मा को समान्य (सादृश्य साधारण धर्म) और विशेष (भेदक धर्म) भी कोई नहीं है; अतः आत्मा में बन्ध का विभ्रम = अध्यास नहीं है, किन्तु बन्ध की सत्यता है। और अध्यास के असम्भव से बन्ध मिथ्यात्व के योग्य नहीं है। और सत्य होने पर ज्ञान से बन्ध का नाश नहीं होगा ॥ १७–१९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मोक्षार्थक कोर्मादि वर्णन)

कर्मभिर्नित्ययुक्तैश्च योगै भक्त्या ह्युपासनैः ।
सतोऽपि विनिवृत्तिः स्यात्तस्मात्कर्मादिकं चरेत् ॥२०॥
मोक्षेच्छुः काम्यकर्माणि निषिद्धानि च संत्यजेत् ।
नित्यानि सततं कुर्यान्नैमित्तिकमथाऽऽचरेत् ॥२१॥
कर्मणः सञ्चितस्यापि विनाशाय च पाप्मनः ।
सामान्यं च विशेषं वै प्रायश्चित्तं समभ्यसेत् ॥२२॥
योगेनैव मनोरुद्ध्वा स्वरूपस्थोऽथवा भवेत् ।
भक्त्योपासनया वापि परमात्मानमर्चयेत् ॥२३॥
नित्यं नैमित्तिकं कर्म कुर्वाणः सततं नरः ।
तयोस्त्यागनिमित्तं वै नाघं प्राप्स्यति कुत्रचित् ॥२४॥
कृतस्याथ सकामस्य शुभस्य कर्मणः फलम् ।
तदिच्छायाः परित्यागात्तस्य नैव भविष्यति ॥२५॥

अतः बन्ध की निवृत्ति के लिये मुमुक्षु कर्मादिक सदा करे, क्योंकि कर्मों से और नित्य युक्त = समाहित प्राप्त योगों से तथा भक्ति और उपासनाओं से सत्य बन्ध की भी निवृत्ति हो सकती है, अतः कर्मादि करे। और काम्य कर्म तथा निषिद्धों को सर्वथा त्यागे, नित्य कर्म सदा करे और समय पर नैमित्तिक का आचरण = अनुष्ठान करे। और पूर्व के तथा वर्तमान जन्म में कृत पाप कर्मों के विनाश के लिये सामान्य (साधारण) और विशेषप्रायश्चित्त = पापनाशक कर्म का सम्यक् अभ्यास करे (बार बार आचरण करे) अथवा योग द्वारा ही मन का निरोध करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनिष्ठ होवे। या भक्ति (गुरु ईश्वर विषयक प्रीति) और उपासना = चिन्तन ध्यान से परमात्मा की पूजा करे। क्योंकि नित्य = संध्या अग्निहोत्रादि और नैमित्तिक = श्राद्धदानादि को सदा करता हुआ मनुष्य उनके त्याग निमित्तक पाप को कहीं नहीं पा सकता है और किये गये सकाम शुभ कर्म का फल उसकी इच्छा के त्याग से ही उस मुमुक्षु को नहीं प्राप्त होगा ॥२०-२५॥

वेदान्तेऽपि यथा मान्यः कर्मकाले फलेच्छया ।
विना कृतानि कर्माणि स्वफलानि दिशन्ति नो ॥२६॥
तथा कृतेऽपि सर्वस्मिँछुभे कर्मणि सर्वदा ।
फलेच्छाया परित्यागात्तत्फलं न भविष्यति ॥२७॥
नीत्यं नैमित्तिकं कर्म चिरं वा स्वनुतिष्ठतः ।
क्लेशं यज्जायते तेन सर्वं पापं विनङ्क्ष्यति ॥२८॥
पुण्यं ब्रह्मार्पणात्तस्माज्जनो जन्माद्यभावतः ।
मुक्तो भविष्यति ब्रह्मज्ञानादि वै निरर्थकम् ॥२९॥
पूर्वकृताखिलं कर्म जन्मैकं वा करिष्यति ।
ततो भुक्त्वाऽखिलं कर्म मुमुक्षु र्न जनिष्यति ॥३०॥

क्योंकि वेदान्त में भी जैसे मान्य (सिद्धान्त) है कि कर्मों के अनुष्ठान काल में फलेच्छा के विना किये गये कर्म अपने स्वर्गादि फल को नहीं देते हैं। इसी प्रकार सब शुभ कर्मों के सदा कर लेने पर भी फलेच्छा के परित्याग से उनके फल नहीं होगें। अथवा नित्य नैमित्तिक कर्मों के चिरकाल तक विधि के अनुसार अनुष्ठान करने वाला मुमुक्षु को जो क्लेश (दुःख) होता है, उसी से उसके सब पाप नष्ट हो जायगें, क्योंकि वे कर्म पापनाशक तपरूप होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। और ब्रह्मार्पण, इच्छा के अभावादि से पुण्य विनष्ट होगें, अतः जन्मादि के अभाव से ही मुमुक्षु जन मुक्त होगें। अतः ब्रह्मात्मा के अद्वैत ज्ञानादि व्यर्थ ही हैं। अथवा मुमुक्षु के प्रथम के किये हुये सब कर्म मिल कर एकभविक वाद की रीति से एक भावी जन्म को सिद्ध करेंगे, उससे सब कर्मों को भोग कर, कर्माभाव के कारण मुमुक्षु फिर जन्म नहीं पावेगा ॥२६-३०॥

एकस्मिन्नथवा काले नाना देहं करिष्यति।
पूर्वं कर्म ततो भुक्त्वा मुमुक्षु र्न जनिष्यति ॥३१।
प्रायश्चित्तादिभिः पापे विनिष्टे पुण्यकर्मतः।
जाते देहेऽपिदुःखस्य नामापि न भविष्यति ; ३२।
एवं चैकेन देहेन भुक्त्वा कर्मफलं समम्।
विमुक्तः स्वस्वरूपस्थः पुनर्जन्जन्यते नहि। ३३॥
एक एव भवो यस्य स मुमुक्षुश्च कथ्यते।
मुमुक्षूणां न जन्मातो भविष्यद् बहुधा भवेत् ॥३४॥
एवं मोक्षस्य संसिद्धौ किं ज्ञानेन प्रयोजनम्।
समूलभवनाशेन किमन्यल्लभ्यते फलम् ॥३५॥
ग्रन्थाधिकारिश्चैवं विषयस्याप्यसम्भवे।
प्रयोजनं विना चैवं सम्बन्धो नैव सम्भवेत् ॥३६॥
अभावे चानुबन्धानां ग्रन्थाऽऽरम्भो न युज्यते।
इत्येवं समभिप्राप्ते सिद्धान्तोऽत्राभिधीयते ॥३७॥

अथवा पूर्व के मुमुक्षु के सब कर्म एक काल में नाना देह को कायव्यूह के समान करेंगें कि जिससे कर्मों को भोग लेने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण मुमुक्षु जन्म नहीं लेगा। और (नाभुक्तं क्षीयते कर्म) इत्यादि शास्त्र से विरोध इस पक्ष में नहीं होगा। और नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त रूप कर्मों से पाप के विनष्ट होने पर पुण्य कर्म मात्र से भावी एक देह के उत्पन्न होने पर भी उस देह में दुःख का नाम तक भी नहीं होगा, सो ज्ञान विना ही जीवन्मुक्ति होगी। इस प्रकार एकही देह से सब कर्म फलों को भोग कर विदेहमुक्त स्वरूपस्थ होकर मुमुक्षु जीव फिर बार बार नहीं जन्मता है। और भावी जिसको एकही भव = जन्म = संसार हो, सोई कर्म कर्ता मुमुक्षु कहा जाता है। अतः मुमुक्षु के भावी बहुत प्रकार के जन्म नहीं होते है। इस मत को (एकभविकवाद) कहते हैं। उक्त रीति से कर्मादि द्वारा ही पुनर्जन्मादि के अभावरूप मोक्ष की सम्यक् सिद्धि सिद्ध होने पर अभिन्न ब्रह्मात्मज्ञान से कौन प्रयोजन = फल पाया जा सकता है, तथा मूल सहित संसार के नाश द्वारा भी अन्य कौन फल पाया जा सकता है, अर्थात् उक्त ज्ञान निष्फल है। अतः भवनाश द्वारा भी कोई फल नहीं मिलता है। और उक्त रीति से ही ज्ञान ग्रन्थ के अधिकारी के तथा विषय के आभाव से (असम्भव से) और प्रयोजन के विना पूर्व वर्णित प्राप्य प्रापक-भावादि सम्बन्ध नहीं सिद्ध हो सकते हैं। और अनुबन्धों के अभाव रहते ग्रन्थारम्भ युक्त नहीं है, ऐसी शंका होने पर अब यहाँ सिद्धान्त (समाधन) कहा जाता है ॥३१-३७॥

(शंकाओं का समाधान सिद्धान्त प्रदर्शन)

नासतो जन्मना योगः सतः सत्त्वान्न विद्यते ।
जन्यत्वेनैव जन्यानां मायिकत्वसमर्पकम् ॥३८॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
इत्यादि शास्त्र युक्ताद्यैः सतो नाशो न सम्भवी ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतो नश्यन्ति यत् किञ्चित् तन्मिथ्या मायिकं जगत् ।
समूलं तद्विनाशेन विना दुःखं न नश्यति ॥४०॥

सर्वथा असत् खपुष्पादि का जन्म के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता है और सत्यात्मा की सदा विद्यमानता से उसका जन्म नहीं हो सकता है। अतः जन्य घटादि देहादि के जन्यत्व ही उनके मायिकत्व (असत्त्व=अनिर्वाच्यत्व) रूप मिथ्यात्व का समर्पक (साधक) होता है। असत (कारण की सत्ता के विना स्वतः सत्ता रहित) का भाव (सत्त्व) नहीं है और सत का अभाव नहीं होता है। इत्यादि शास्त्र और युक्ति आदि से सत के नाश की सम्भावना नहीं हो सकती है। अतः जो कुछ कभी किसी प्रकार नष्ट होता है, वह जगत् मिथ्या मायिक है। और मूल सहित उस जगत् (देहादि) के विनाश के विना दुःख नष्ट नहीं होता है ॥३८-४०॥

अविद्या रचितं ह्येतज्जगद् दुःखस्यकारणम् ।
अतो दुःखविनाशार्थं जगन्नाशं चिकीर्षति ॥४१॥
अनुभूतसजातीयमिष्टमिच्छन्ति जन्तवः ।
न चानुभूतमात्रं वै कश्चिदिच्छति बुद्धिमान् ॥४२॥
सुखमिष्टं जनस्यातो यत्पुरा प्रमितं भृशम् ।
श्रुतं ब्रह्म सुखञ्चाऽपि तद् वाञ्छन्ति विवेकिनः ।४३॥

अविद्या से रचित=जन्य यह स्थूल सूक्ष्म देहादिरूप जगत् व्यावहारिक जीवों के दुःखों का कारण है, अतः दुःख के नाश के लिये मुमुक्षु अविद्या रूप मूल सहित जगत् के नाश की इच्छा करता है और अनुभूत=ज्ञात इष्ट वस्तु की सजातीय इष्ट वस्तु की ही प्राणी इच्छा करते हैं। कोई भी बुद्धिमान् अनुभूतमात्र की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छा नहीं करता है। और इस जन को सुख इष्ट है, अतः जो सुख प्रथम बार-बार अत्यन्त प्रमित=अनुभूत है और ब्रह्म भी गुरुशास्त्र से नित्य सुखस्वरूप सुना जाता है, कि (यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम् (छा० ७।२३) जो व्यापक ब्रह्म है, सो सुखस्वरूप है। परिच्छिन्न वस्तुओं में सुख नही है, किन्तु ब्रह्म ही सुख है अतः उस सुखस्वरूप की इच्छा विवेकी अवश्य करते हैं ॥४१-४३॥

नित्यं तच्चाभिवाञ्छन्ति सुखं न क्षणभङ्गुरम्।
विषयप्रभवं वाऽन्यदात्मानन्दपिपासवः ॥४४॥
जगद्दुःखतया ज्ञातं विवेकादियुतैर्नरैः।
ततः संजायते तस्य जिहासा नात्रसंशयः ॥४५॥
जगदद्दुःखजिहासुश्च ब्रह्मानन्दस्य कामुकः।
अधिकारी भवत्येवं ग्रन्थारम्भोऽपि युज्यते ॥४६॥

क्योंकि आत्मानन्द=अपरोक्ष आत्मसुख के इच्छुक उस नित्य ब्रह्म सुख को चाहते हैं, क्षणभङ्गुर विषयजन्य सुख को या अन्य किसी वस्तु को नहीं चाहते हैं। और विवेकादि युक्त मनुष्य से जगत् दुःखात्मक समझा जाता है, अतः उस दुःख रूप जगत् को त्यागने की इच्छा भी मनुष्य को अवश्य होती है इसमें संशय नहीं है। और जगत् रूप दुःख के त्याग की इच्छा वाला तथा ब्रह्मानन्द के इच्छुक ज्ञानार्थक ग्रंथ के अध्ययन का अधिकारी होता है, इस प्रकार से ग्रन्थ का आरम्भ भी युक्त होता है ॥४४-४६॥

ज्ञानादेव तु कैवल्यं वेदेषु शतशः श्रुतम्।
ज्ञानं तच्छ्रवणादिभ्यो जायते सद्विवेकिनः ॥४७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रवणादि तु संसिद्धयेद् ग्रन्थतो गुरुतस्तथा ।
ततो ज्ञानं समुद्दिश्य ग्रन्थारम्भोऽपि युज्यते ॥४८॥
पामरो विषयी धूर्तो नाधिकारीह यद्यपि ।
भक्तस्तथापि जिज्ञासुरधिकारी भवेद् ध्रुवम् ॥४९॥
सर्वसाक्षिस्वरूपस्य ब्रह्मणा सह चैकता ।
विषयो ग्रन्थरत्नस्य स्यादेवात्र न संशयः ॥५०॥

और वेदों में ज्ञान से ही मोक्ष सैकड़ो स्थान में सुना गया है, और श्रवणादि से वह ज्ञान सद्विवेकी को होता है। और ग्रन्थ से तथा गुरु से श्रवणादि सम्यक् सिद्ध हो सकते है, अतः ज्ञान को उद्देश्य=लक्ष्य करके ग्रन्थ का आरम्भ भी युक्त होता है। यद्यपि पामर=नीच, विषयी और धूर्तादि ऐसे ग्रन्थ के अधिकारी नहीं हो सकते हैं, तथापि हरिगुरु भक्त जिज्ञासु अवश्य अधिकारी होते हैं। और सब जीवों के साक्षिस्वरूप की ब्रह्म के साथ एकतारूप विषय ग्रन्थरत्न (श्रेष्ठ ग्रन्थ) का हो ही सकता है, इसमें संशय नहीं है। क्योंकि जीव साक्षियों में औपाधिक मिथ्या अनेकता है, सत्य नहीं ॥४७-५०

व्यावहारिकजीवेषु क्लेशाः सर्वे भवन्त्यपि ।
पारमार्थिकतत्त्वे तु क्लेशवार्ता न विद्यते ॥५१॥

क्योंकि व्यावहारिक जीवों में व्यावहारिक सब क्लेश हैं भी परन्तु पारमार्थिक तत्व=साक्षिस्वरूप में क्लेश की चर्चा भी कहीं नहीं है। भाव है कि (अनित्याशुचिदुःखाऽनात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या। दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। सुखानुशयी रागः। दुःखानुशयी द्वेषः। स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेशः। योगदर्शन पा०२।५-९) अनित्यादि में नित्यादि बुद्धिरूप विपर्यय ज्ञान १, बुद्धिचिदात्मा में एकात्मता = तादात्म्यतुल्य अविवेक २, सुखानुसारी = सुख स्मृति पूर्वक सुखद वस्तु में स्नेह ३, दुःखानुसारी क्रोधादि ४, तथा स्वरसवाही = स्वाभाविक संस्कार मात्र से प्रवाहित, विद्वान् तथा अविद्वान् सब को देहाभिमान जनित प्रसिद्धमरण का भय ५, ये पाँच क्लेश साक्षी में नहीं होते हैं ॥५१॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥५२॥
क्षेत्रज्ञ एक एवात्मा ब्रह्मैव न ततः पृथक् ।
उपाधिकृतभेदोऽत्र भाति तस्य न सत्यता ॥५३॥
जीवात्मा बुद्धिवृत्तिस्थः सुखादीनां तु भासकः ।
न भेदं भजतेऽसङ्गो नभःस्थ इव भास्करः ॥५४॥
भेदानां सत्यताऽभावादभिन्नो बन्धो न सन् क्वचित् ।
सत्त्वाऽभावाच्च बोधेन तन्निवृत्तिः प्रयोजनम् ॥५५॥

अतएव शास्त्र कहता है कि जैसे सर्वगत आकाश सूक्ष्मता के कारण किसी से लिप्त नहीं होता है, तैसे ही सब देहों में स्थिर आत्मा लिप्त नहीं होता है। और (क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि) इत्यादि शास्त्र के अनुसार एक आत्मा ही क्षेत्रज्ञ है और वह क्षेत्रज्ञ ब्रह्म ही है, ब्रह्म से पृथक् नहीं। क्योंकि इस ब्रह्म में ही उपाधिकृत भेद भासता है, अतः उस भेद को सत्यता नहीं है। बुद्धिकी वृत्ति में वर्तमान जीवात्मा साक्षी रूप से सुखादि का प्रकाशक होता हुआ भी असङ्ग वह आत्मा आकाश में वर्तमान सर्व प्रकाशक सूर्य के समान भेद का भागी नहीं होता है। और मायिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

औपाधिक भेदों के सत्य नहीं होने के कारण, भिन्न=भेद युक्त बन्ध भी कहीं सत्य नहीं है और बन्धमें सत्यता के अभाव से ज्ञान द्वारा बन्ध की निवृत्ति ग्रन्थ का प्रयोजन (फल) है ।।५२-५५।।

अध्यासमूलको बन्धो ज्ञानेन विनिवर्तते ।
अध्याससाधनाभावो[1] न वक्तव्यः कथञ्चन ।।५६।।

मिथ्या होने से ही अध्यास मूलक बन्ध है, अतः ज्ञान से अत्यन्तनिवृत्त होता है और अध्यास के साधनों का अभाव तो किसी प्रकार भी वक्तव्य नहीं है ।।५६।।

सजातिज्ञानजन्यस्तु संस्कारोऽध्यासहेतुताम् ।
प्राप्नोति नास्य जन्यत्वे नियमः सत्यबोधतः ।।५७।।
सर्वदोषस्य हेतुत्वमध्यासे न हि विद्यते ।
एकेनापि हि दोषेणाऽध्यासो लोकेषु दृश्यते ।।५८।।
आत्मन्यज्ञानदोषेण द्विजातित्वादि भासते ।
शङ्खे करणदोषेण पीतता भासतेऽनृता ।।५९।।
प्रमेयदोषतः शुक्तौ रजतं बुध्यते यतिः ।
दूरतादोषतस्तद्वत् खे नीलादि प्रभासते ।।६०।।

---

१ (स्मृतिरूप=अन्यत्रान्यावभासोऽध्यासः) स्मृतेरूपमिव रूपमस्येति, स्मृत्या साम्यं वैषम्यं च लक्ष्यते । साम्यं संस्कारजन्यत्वं, वैषम्यं सम्प्रयोगजन्यत्वमिति तत्त्वदीपने । अतस्मिंस्तद्बुद्धि र्ज्ञानाध्यासः । प्रमाणजन्य ज्ञानविषयपूर्वदृष्टसजातीयोऽर्थाध्यासः । सोऽपिद्विविधः प्रातीतिको व्यावहारिकश्चेति, तत्रागन्तुकदोषजन्यःप्रातीतिकस्तद्भिन्नो व्यावहारिकः) इति तत्त्वानुसंधाने ।।

४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सजातीय वस्तु के ज्ञानजन्य संस्कार ही अध्यास की कारणता को प्राप्त होते हैं। इस संस्कार को सत्य वस्तु के ज्ञान से जन्यत्व विषयक नियम नहीं है। और प्रमाता प्रमाण प्रमेय इन सब के दोषों को सब अध्यास में हेतुता = कारणता नहीं है। क्योंकि एक दोष से भी लोक में अध्यास देखा जाता है। अविवेक = अज्ञानादिरूप प्रमाता के दोष तथा मालिन्यादि मनो दोष से आत्मा में द्विजातित्वादि का अध्यास होता है। और पित्त रूप करण = नेत्र गत दोष से शंख में पीतता का अध्यास होता है, मिथ्या पीतता भासती है। सादृश्यरूप प्रमेय दोष से यति = विरक्त संन्यासी लोभादि के विना शुक्ति में रजत समझता है। इसी प्रकार एक दूरतारूप प्रमेय दोष से आकाश में नीलता आदि प्रतीत होते हैं ॥५७-६०॥

अनादाविह संसारे तादृशाद् वासनादितः ।
अविद्यादोषजन्यस्तु सदाऽध्यासःप्रवर्तते[1] ॥६१॥

अनादि इस मिथ्या संसार में तादृश = अनादि ही वासनादि से अविद्यारूप दोषजन्य अध्यास तो सदा प्रवृत्त रहता है ॥६१॥

अज्ञानमूलकं बन्धं ज्ञानेन विनिवारयन् ।
ज्ञानग्रन्थो भवत्येव प्रयोजनैः सुसंयुतः ॥६२॥

---

१ अध्यास कारणं दोषस्त्रिविधः, विषयगतः सादृश्यादिः करणगतस्तिमिरादि, द्रष्टृगतो रागादिश्च । द्विविधोऽध्यासो ज्ञाननिष्ठोऽर्थोऽर्थनिष्ठं ज्ञानं चेति । तत्रार्थस्य तावत् स्मर्यमाणसदृशोऽन्याऽऽत्मनाऽवभास्यमानोऽन्योऽर्थोऽध्यास इति लक्षणम् । ज्ञानस्य तु स्मृतिसमानोऽन्यस्याऽन्यात्मतावभासो लक्षणमिति, विवरणप्रमेयसंग्रहे । धर्मिस्वरूपाध्यासो, धर्माध्यासो विशिष्टाध्यासः, सम्बन्धाध्यास इत्यादि बहुधा ध्यासभेदो वर्तते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयंप्रकाशशुद्धेऽर्थे मोहाविद्याद्यसम्भवात् ।
अध्यासस्य न सम्भूतिरियमुक्तिर्न शोभते ॥६३॥

यतो ब्रह्म प्रकाशात्म नाविद्याबाधकं क्वचित् ।
अतः सौषुप्तिकाऽज्ञानं ब्रह्मणैव प्रकाश्यते ॥६४॥

सामान्यचेतनात्मैव सदा सर्वप्रकाशकः ।
नाशको न च कस्यापि विशेषात्मा तु नाशकः ॥६५॥

सामान्यतेजसा यद्वदन्धकारो न नश्यति ।
नश्यतीद्धेन चैवं हि बोधान्मोहो विनश्यति ॥६६॥

और अज्ञान मूलक बन्ध का ज्ञान द्वारा निवारण (नाश) करता हुआ ज्ञानात्मक ग्रन्थ, अवान्तर प्रयोजन ज्ञानध्यानादि और मुख्य प्रयोजनों से सुसंयुत होता ही है। स्वयं प्रकाश शुद्ध ब्रह्मात्म वस्तु में मोह अविद्या आदि के असम्भव से उस में अध्यास की सम्भूति = उत्पत्ति नहीं हो सकती है, यह पूर्वपक्षी की उक्ति = वाणी नहीं शोभती है, अर्थात् यह कथन अयुक्त है। क्योंकि स्वयं प्रकाश स्वरूप ब्रह्मात्मा कहीं भी अविद्या का नाशक नहीं है, अत एव सुषुप्ति काल के अज्ञान ब्रह्म से ही प्रकाशित होता है, नष्ट नहीं होता है, क्योंकि सामान्य चेतनस्वरूप आत्मा सदा सबका प्रकाशक होता है, किसी का भी नाशक नहीं होता है किन्तु अन्तःकरण की वृत्ति के द्वारा विशेषरूपता को प्राप्त विशेषात्मा अज्ञान का नाशक होता है। जैसे काष्ठादिगत सामान्य तेज से अन्धकार नष्ट नहीं होता है, किन्तु इद्ध = उज्ज्वलित तेज से नष्ट होता है, इसी प्रकार ब्रह्म से अनष्ट मोह ज्ञान से विनष्ट होता है ॥६२-६६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"वृत्त्युपारूढचैतन्यं वृत्ति र्वा चित्कलान्विता ।
निर्वर्तिकाऽस्त्यविद्याया दोषो नास्ति मतद्वये ॥६७॥

तृणादिभासिकाऽप्येषा सूर्यदीप्तिस्तृणं दहेत् ।
सूर्यकान्तमुपारूह्य तं न्यायं चिति योजयेत् ॥६८॥

जड़त्वाच्छुद्धधीवृत्ते र्भासकत्वाच्चितेस्तथा ।
मायाऽनिवर्तकत्वेऽपि विशिष्टेऽतोऽस्य सम्भवः । ६९॥

अतः वृत्ति = अन्तः करण के परिणाम विशेष में स्थिर चेतन या चेतन की कला = प्रकास से अन्वित = युक्त वृत्ति ही अविद्या की निर्वर्तिका होती है, इन दोनों मतों में दोष नहीं है । तृणादि के प्रकाशक भी यह सूर्य की ज्योति सूर्यकान्तमणि में प्राप्त होकर तृणादि का नाशक होती हैं, उस न्याय = युक्ति दृष्टान्त को चेतन में भी युक्त समझना चाहिये, कि जड़ होने के कारण केवल बुद्धि की वृत्ति अविद्या का नाशक नहीं होती है और अविद्यादि का प्रकाशक होने से केवल चेतनात्मा भी अविद्यादि का अनिवर्तक है, किन्तु वृत्ति विशिष्ट चेतन में इस निवर्तकत्व का सम्भव है ॥६७-६९॥

प्रमाणादि र्यथा लोके तथा दोषादिकं भवेत् ।
सामान्यत्वं विशेषत्वं द्वयश्चात्मनि कल्पितः ॥७०॥

आत्मत्वसत्यता धर्मो भासते बहुकालिकः ।
तत्सामान्यं विशेषत्वमल्पकालं प्रभासि यत् ॥७१॥

आनन्दरूपता चित्त्वमखण्डत्वं विशुद्धता ।
असङ्गताऽगुणत्वादि विशेषत्वं च वर्तते ॥७२॥

विशेषरूपतो ज्ञात आत्मा सच्चित्सुखात्मकः ।
बोधवृत्तिस्थितो देवः कर्मजालं दहत्ययम् ॥७३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और लोक में जैसे व्यावहारिक प्रमाणादि हैं, तैसे दोषादिक होंगे और होते हैं और समानता विशेषता ये दोनों भी आत्मा में कल्पित हैं। अतः सामान्य रूप से ज्ञान और विशेष रूप से अज्ञान रूप अध्यास का हेतु होता है। आत्मत्व और सत्यतारूप जो धर्म बहुकालिक (सदा) सबको भासता है, वही आत्मा में सामान्य (समानता) कल्पित है और अल्पकाल में जो कुछ आत्मा में भासने वाला है, सोई विशेषत्व है। अतः अल्पकाल में भासने वाले आनन्दरूपत्व, चेतनत्व, अखण्डत्व, विशुद्धत्व, असङ्गत्व और निर्गुणत्वादि रूप विशेषता आत्मा में रहती है और सच्चिदानन्द स्वरूप यह आत्मस्वरूप देव विशेषरूप से ज्ञात और बोधरूपवृत्ति में स्थिर होकर कारण कार्य सहित कर्म समूह को, नष्ट करता है ॥ ७०-७३ ॥

बोधवृत्तिस्थितं ब्रह्म तत्राऽऽभाससमर्पणात् ।
ज्ञानत्वं प्रतिपद्याथ सकार्यं हन्ति तत्तमः ॥७४॥
बहुकल्पार्जितं कर्म नैकजन्मार्जितेन तु ।
कर्मणोद्वासितुं शक्यमिति वेदान्तनिश्चयः ॥७५॥
ज्ञानसाधनतां प्राप्य प्रायश्चित्तादिकं समम् ।
कर्मनाशकतामेति नान्यथा कल्पकोटिभिः ॥७६॥

क्योंकि बोधस्वरूप वृत्ति में स्थिर सर्वात्मारूप ब्रह्म उस वृत्ति में आभास = प्रकाश के समर्पण से ज्ञानत्व को प्राप्त करके कर्मादि कार्य सहित उस मूल कारणरूप अविद्यात्मक तम को नष्ट करता है और बहुत कल्पों में उपार्जित कर्म तो एक जन्म में उपार्जित कर्म द्वारा उद्वास = विनाश के योग्य नहीं है, यह वेदान्त का निश्चय है। अतः प्रायश्चित्तादि रूप सब कर्म भी ज्ञान की साधना को पाकर (ज्ञान द्वाराही) कर्मनाशकता को प्राप्त होते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यथा (साक्षात्) कोटि कल्पों द्वारा भी कर्मनाशकता को कर्म नहीं पा सकते हैं ॥ ७४-७६ ॥

कर्मणा[1] कर्मनिर्हारो नैव सिद्ध्येत् कदाचन ।
अविरोधान्न कुत्रापि तमसा नाश्यते तमः ॥७७॥

वेदावसानवाक्योत्थसम्यग्बोधाद्विलक्षणात् ।
दहनात्तस्य नाशस्तु शास्त्रात्सम्यक् प्रतीयते ॥७८॥

"अज्ञानहानमात्रत्वान्मुक्तेः कर्म न साधनम् ।
कर्मपमार्ष्टि नाज्ञानं तमसीवोत्थितं तमः ॥७९॥

न सांख्येन न योगेन कर्मणा नो न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मुक्तिः सिद्ध्यति नान्यथा ॥८०॥

कर्म से (कर्मणा बध्यते जन्तु विद्यया तु विमुच्यते) इत्यादि शास्त्र के अनुसार बन्धन होता है। अतः कर्म जन्य = कर्मात्मक बन्ध का निर्हार = निवारण = नाश कभी कर्म से नहीं हो सकता है। क्योंकि कर्म से कर्म का अविरोध है। अविरोध से ही कहीं भी तम से तम (अन्धकार) नष्ट नहीं किया जा सकता है। कर्म के विरोधी वेदान्त वाक्य जन्य सम्यग् बोधरूप अग्नि से उस कर्म का नाश तो शास्त्र से सम्यक् प्रतीत = ज्ञात होता है। और अज्ञान की निवृत्तिमात्र मुक्ति के होने से कर्म मुक्ति का साधन नहीं हो सकता, क्योंकि कर्म अज्ञान का अपमार्जन = निवारण नहीं करता है। जैसे तम में उत्पन्न तम से तम का नाश नहीं होता है। अतः भिन्नात्म-

---

१—नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् । काम्येऽकाम्ये च साध्यत्वाऽविशेषात् । सांख्यद० अ० १।८२-८५॥ नियत कारणत्वान्न समुच्चय विकल्पौ । सां० द०अ० ३।२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेकरूप सांख्य या चित्तवृत्ति के निरोधरूप योग वा कर्म या अन्य विद्या से मुक्ति नहीं सिद्ध होती है, किन्तु ब्रह्मात्मा के एकत्व बोध से मुक्ति सिद्ध होती है, अन्यथा बोध से नहीं ॥७७-८०॥

ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन विनाऽविद्या न नश्यति ।
अविद्यायाश्च सत्त्वे हि भयं भेदः प्रभासते ॥८१॥

भेदेऽनुकूलबुद्ध्यादेः स्याच्चेद् रागादिसम्भवः ।
रागादेश्च प्रवृत्तः सँश्छुभे शुद्धेऽपि कर्मणि ॥८२॥

धर्माधर्मौ सुसम्पाद्य जायते देहवाञ्जनः ।
ततो देहादिजं दुःखं लभते च सुखं क्षणम् ॥८३॥

अविद्या हेतवः कामाः काममूलाः प्रवृत्तयः ।
धर्माधर्मौ च तन्मूलौ देहोऽनर्थाश्रयस्ततः ॥८४॥

क्योंकि ब्रह्मात्मा के एकत्व (अभेद) के बोध के विना भेद बुद्धि के हेतु अविद्या का नाश नहीं होता है और अविद्या के रहते भेद और भय अवश्य प्रतीत होते हैं। और यदि सत्यभेद रहता = भासता है, तो अनुकूल और प्रतिकूल बुद्धि से रागद्वेषादि का सम्भव (उत्पत्ति) होगा ही। और रागादि से शुभ तथा अशुद्ध (अशुभ) कर्म में प्रवृत्त होता हुआ जन (मनुष्य) धर्माधर्म का सुसम्पादन (उपार्जन) करके फिर देह वाला होता है। फिर उस देहादि से जन्य महान् दुःख और क्षणिक सुख पाता है। क्योंकि अविद्यामूलक भेदादि बुद्धि पूर्वक कामनायें होती हैं और काममूलक शुभाशुभ प्रवृत्तियाँ होती हैं, फिर प्रवृत्तिमूलक धर्माधर्म होते हैं। उनसे अनर्थों दुःखों के आश्रय ही देह होती है ॥८१-८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्माद् दुःखनिवृत्त्यर्थं पराऽऽनन्दस्य चाप्तये ।
ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सुसंपाद्यं मुमुक्षुभिः ॥८५॥
कर्मजेनाल्पदुःखेन कर्मराशि र्न नश्यति ।
एकेन जन्मना सर्वं कर्म भोक्तुं न शक्यते ॥८६॥
नाना शरीरमाकर्तुमेककाले न चार्हति ।
अयोगी नैव योगित्वनियमश्च मुमुक्षताम् ॥८७॥
न योग्यपि स्वबोधेन विना मोक्षमवाप्नुयात् ।
न निवर्तेत तिमिरं प्रकाशेन विना क्वचित् । ८८॥

जिससे आत्मा के एकत्व के अज्ञानमूलक भेदादि से भय दुःखादि होते हैं, अतः दुःखों की निवृत्ति और परानन्द = उत्तम परमानन्द की प्राप्ति के लिये मुमुक्षुओं को ब्रह्मात्मा के एकत्व (अभेद) का ज्ञान पूर्ण रीति से सम्पादनीय है। यदि कहा जाय कि कर्मानुष्ठानादिजन्य दुःख भोगादि से ही दुःखद कर्मादि के नाशादि से ही दुःखों की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति मुक्ति हो सकती है ज्ञानादि की जरूरत नहीं है, तो सो कहना ठीक नहीं है। क्योंकि कर्मानुष्ठान जनित अल्प दुःख भोगसे सञ्चित कर्मों की राशि = समूह का भोग नहीं हो सकता है, अतः भोग से कर्म राशि नष्ट नहीं होती है। अतः एक जन्म द्वारा सब कर्म भोगे नहीं जा सकते हैं। और योगी से भिन्न मुमुक्षु एक काल में नाना शरीरों की सिद्धि और उनके द्वारा सब कर्मों की भोगद्वारा निवृत्ति नहीं कर सकता है और मुमुक्षुओं के योगित्व का भी नियम नहीं है। और योगी भी आत्मज्ञान के विना मोक्ष नहीं पा सकता है क्योंकि प्रकाश रूप ज्ञान के विना अन्धकाररूप अविद्यामूलक बन्ध कहीं निवृत्त नहीं होता है ।।८५-८८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्धकारसमो बन्धो ब्रह्मज्ञानप्रकाशतः ।
नश्यत्येव ध्रुवं तेन ज्ञानार्थं यतते सुधीः ॥८९॥

नित्य नैमित्तिकाभावात् पापोत्पत्ति र्न सम्भवेत् ।
अभावाज्जन्म भावस्य दृश्यते न च युज्यते ॥९०॥

नित्यान्नैमित्तिकात्तस्मात्कर्मणोऽदृष्टसंभवात् ।
तद्भोगार्थं भवेज्जन्म मोक्षश्च दूरतो व्रजेत् ॥९१॥

यदि कर्मफलं नैव भवेद् वै वेदबोधितम् ।
अप्रामाण्यं तदा वेदे भवेदेव न संशयः ॥९२॥

और अन्धकार तुल्य संसार बन्धन ब्रह्मज्ञान रूप प्रकाश से अवश्य नष्ट होता ही है। इस हेतु से विवेकी अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान के लिये यत्न करता है। और नित्य नैमित्तिक कर्मादि के अनुष्ठानादि द्वारा, कर्मानुष्ठानाभाव जन्य पाप की अनुत्पत्ति आदि से ही कर्मजन्य मोक्ष मानना ठीक नहीं है, क्योंकि नित्य नैमित्तिक कर्मों के आभाव से भावरूप पाप की उत्पत्ति का सम्भव नहीं है, कि जिसका निवारण करके नित्यादि कर्म सफल हो सकें, क्योंकि अभाव से भाव का जन्म न देखा जाता है, न युक्त है। इस कारण से नित्य और नैमित्तिक भावरूप कर्म से भावस्वरूप अदृष्ट (पुण्यादि) की उत्पत्ति होने के कारण उस कर्म के भोग के लिये ज्ञान रहित कर्मानुष्ठाता का जन्म ही होगा और मोक्ष तो दूर चला जायगा फलानिच्छा या स्वभावसिद्ध पापाऽनुत्पत्ति मात्र से यदि वेद वोधित स्वर्गादिरूप कर्मफल नहीं हो, तो फल बोधक वेद में अप्रमाणता अवश्य होगी, इसमें संशय नहीं है ॥८९-९२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रामाण्यं न वेदानां सहन्ते साधुसम्विदः ।
तस्मान्नित्यादिकृत्यानां सर्वेषां ते फलं विदुः ।९३॥

कर्मजा वासना काचिन्नश्यत्यन्येन हेतुना ।
अदृष्टं धर्मपापाख्यं नाश्यते नान्यहेतुना ॥९४॥

यदि चानिच्छया कर्मफलभोगो न संभवेत् ।
तदाऽधर्मफलं दुःखं नैव भुञ्जीत कश्चन ॥९५॥

अनिच्छया कृतं कर्म शुभं क्वापि न निष्फलम् ।
अन्तःकरण शुद्धयाद्यैस्तत्साफल्यं प्रपद्यते ॥९६॥

और सुन्दर विवेक ज्ञान वाले आस्तिक वेदों की अप्रमाणता को नहीं सह सकते (मान सकते) हैं । अतः नित्यादि सभी कर्मों के वे लोग स्वर्गादि फल जानते (मानते) हैं । कोई कर्मजन्य वासना सुसङ्गादि रूप अन्य हेतु से नष्ट होती है । परन्तु धर्म (पुण्य) और पाप रूप अदृष्ट, तज्जन्यफल भोग के विना अन्य हेतु से नहीं नष्ट होते हैं । और यदि कर्म फल की अनिच्छा मात्र से कर्मफल का भोग नहीं सम्भव हो, तो अधर्म के फल को कोई नहीं भोगेगा, क्योंकि अधर्म करके भी कोई अधर्मफल नहीं, चाहता है । यदि कहा जाय कि कर्मफल स्वर्गादि की इच्छा के विना किये गए शुभ कर्म वेदान्त के अनुसार जैसे स्वफल प्रद नहीं होते हैं, तैसे ही हमारे मत में भी मुमुक्षु की अनिच्छा से कृत कर्म भी फल-प्रद नहीं होगें, तो सो कहना अनुचित है। क्योंकि फल-इच्छा के बिना भी किए गए शुभकर्म कहीं निष्फल नहीं होते हैं। क्योंकि अन्तःकरण की शुद्धि आदि के द्वारा वे भी सफलता को प्राप्त करते हैं ॥९३-९६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तःकरणशुद्धयाद्यै ज्ञानसाधनलाभतः ।
ज्ञानं जाजायते शीघ्रमन्यथा न हि जायते ॥९७॥
स्वज्ञानार्थी ततः सम्यङ् मुमुक्षुः श्रवणादिकम् ।
कुर्यात्त्यजेच्च कर्माणि विरुद्धानि स्वसम्विदः ॥९८॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं प्रायश्चित्तं चतुर्विधम् ।
विहितं धर्मरूपं स्यान्निषिद्धं पापमुच्यते ॥९९॥
सन्ध्यादिकं भवेन्नित्यं सर्वदा तद्विधानतः ।
ग्रहणस्नानदानादि नैमित्तिकं निमित्तजम् ॥१००॥

निष्काम शुभ कर्मों से अन्तःकरण की शुद्धि सद्गुरु की प्राप्ति प्रसन्नता आदि द्वारा विवेकादि प्रबल मोक्षेच्छा पर्यन्त और श्रवणादि रूप ज्ञान के शाधनों की प्राप्ति से शीघ्र ही अवश्य ज्ञान होता है, अन्यथा अशुद्धि आदि के रहते दैवयोग से श्रवणादि करने पर भी अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता है। अतः कर्मानुष्ठानादि पूर्वक प्रथम सम्यग् ज्ञानार्थी प्रवल मोक्षेच्छायुक्त मुमुक्षु होकर, आत्मज्ञान के विरोधी कर्मों को त्याग दे और श्रवणादि करे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य और प्रायश्चित्त चार प्रकार के विहित-धर्मरूप कर्म होते हैं। निषिद्ध कर्म पाप कहा जाता है। स्वाभाविक शरीर के हलन चलनादि विहित वा निषिद्ध कर्म नहीं कहे जाते हैं। संध्यावन्दनादि नित्य कर्म कहे जाते हैं, क्योंकि उनका सदा कर्तव्य रूप से विधान है। ग्रहणकालिक स्नानदानादि निमित्त जन्य नैमित्तिक कहे जाते है ॥९७-१००॥

स्वर्गसौख्याद्यमुद्दिश्य कर्म यत् क्रियते नरैः ।
पौर्णमासादिकं सर्वं तत्काम्यमभिधीयते ।१०१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञाताऽनुमितपापानामज्ञातानां च सर्वथा ।
निवृत्त्यर्थं कृतं कर्म प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥१०२॥
सामान्याघविनाशार्थं ध्यानं जापादिकं समम् ।
प्रायश्चित्तं हि सामान्यं सर्वपापविनाशकम् ॥१०३।
विशेषाघविनाशार्थं दानादि क्रियते हि यत् ।
विशेषाख्यं भवेत्तद्धि प्रायश्चित्तं सुनिर्मलम् ॥१०४॥

स्वर्ग सुख आदि फल की इच्छा से जो कर्म मनुष्यों से किये जाते हैं, सो दर्शपौर्णमासादि सब कर्म काम्यकर्म कहे जाते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञात वा अनुमित वा सर्वथा अज्ञात पापों की निवृत्ति के लिये किए गये कर्म को पण्डित लोग प्रायश्चित्त जानते हैं। सामान्य पाप की निवृत्ति के लिये किये गये ध्यान जापादि सबके सब पाप का विनाशक सामान्य प्रायश्चित्त जानते हैं। विशेष पाप की निवृत्ति के लिये जो दानादि किए जाते हैं, सो विशेष नामक सुनिर्मल प्रायश्चित होते हैं ॥१०-१०४॥

त्यक्त्वा निषिद्धकर्माणि हिंसाऽनृतमुखानि ये ।
कुर्वन्ति विहितं सर्वं कामलोभादि वर्जिताः ॥१०४॥
तेषां विशुद्धबुद्धीनामत्र वाऽन्यत्र जन्मनि ।
योग्यतायाः समापत्तौ विज्ञानं जायते शिवम् ॥१०६॥
शान्तं ध्यानेन चेच्चितं दान्तं चेदिन्द्रियव्रजम् ।
भक्त्याद्यै निर्मलं जातं योग्यतां प्रतिपद्यते ॥१०७॥
शान्तो विचारतो ज्ञानं लब्ध्वा कर्माखिलं दहेत् ।
मुक्तश्चैव विमुक्तः स्यादेतच्छ्रुतिसतां मतम् ॥१०८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निषिद्धकर्म हिंसा मिथ्याभाषणादि को त्याग कर जो काम लोभादि रहित प्राणी सब विहित स्वधर्मरूप कर्म शक्ति के अनुसार करते हैं, उन विशुद्ध बुद्धि वालों को इस वर्तमान जन्म में या भावी अन्य जन्म में ज्ञान के प्रतिबन्धक कर्मों की भोग द्वारा निवृत्ति होने पर योग्यता (सामर्थ्य बुद्धि आदि) की सम्यक् प्राप्ति होने पर शिव स्वरूप विज्ञान होता है और यदि ध्यानाभ्यासादि से चित्त शान्त होता है। तथा यदि निग्रह से इन्द्रिय समूह दान्त (दमयुक्त) होते हैं और भक्ति श्रद्धा आदि से भी यदि चित्त निर्मल हुआ रहता है, तब मनुष्य ज्ञान की योग्यता को प्राप्त करता है। शान्त सुयोग्य ज्ञानाधिकारी विचार से ज्ञान को प्राप्त करके उस ज्ञानाग्नि से मूलसहित सब कर्म (बन्ध हेतु) को दग्ध करता है। अतः वह जीवन्मुक्त होकर के ही फिर विदेह मुक्त होता है यही सब वेद और ज्ञानी सब सन्तों का मत है। केवल भक्तों का मत कुछ और है ॥१०५-१०८॥

कर्माधिकारिणो ये च ये च योगाधिकारिणः ।
तेषामर्थे विधि र्ज्ञेयः कर्मयोगादि तन्त्रतः ॥१०९॥
प्ररोचना तदर्थैव सार्थिका विधिसंयुता ।
सच्छास्त्राणां न चानर्थ्यं विद्यते क्वापि कर्हिचित् ॥११०॥

उक्त ज्ञान योग्यता रहित जो सकाम पुरुष कर्मादि के अधिकारी हैं, उनके लिये कर्मयोगादि शास्त्रों से कर्मादि के विधानों को समझना चाहिये। और उन अधिकारियों के लिये ही विधि सहित प्ररोचना = अर्थवाद (कर्मस्तुति) भी सार्थक है। क्योंकि सत् शास्त्रों को कभी कहीं भी अनर्थकता नहीं है (सर्वांल्लोकाञ्जयति, मृत्युं तरति, पाप्मानं तरति, ब्रह्महत्यां तरति यो ऽश्वमेधेन यजते)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादि (अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति) इत्यादि अर्थवाद हैं ॥१०६-११०॥

सांख्ययोगापृथक्त्वं यद् उक्तं भगवता हि तत् ।
अन्यत्सांख्याच्चयोगाच्चज्ञानंध्यानात्सुनिर्मलम् ॥१११॥
बोधस्तु ग्रन्थतो जातः स्वाविद्यानाशको यतः ।
अतोऽनुबन्धसंयुक्तग्रन्थारम्भः सुयुज्यते ॥११२॥
चिदानन्दस्वरूपश्च दयालुः सद्गुरुः स्वयम् ।
तेन प्रबोधितःशिष्यो ब्रह्मत्वं प्रतिपद्यते ॥११३

भगवान् ने जो गीता में सांख्य योग में अपृथकता कही है, सो अस्सी श्लोक में उक्त सांख्य योग से भिन्न ध्यान से निर्मल ज्ञानरूप होता है और यतः ग्रन्थ से जन्य बोध = आत्मज्ञान, आत्माज्ञान का नाशक होता है। अतः अनुबन्ध संयुक्त ग्रन्थ का आरम्भ अत्यन्त युक्त है। और स्वयं चिदानन्द स्वरूप दयालु सद्गुरु होते हैं, उनसे प्रबोधित शिष्य ब्रह्मस्वरूपता को प्राप्त करता है ॥११३॥

साधुकर्म सुसङ्गाद्यैः कृत्वा चित्तं सुनिर्मलम् ।
ध्यानाद्यैर्निश्चलंकृत्वाज्ञेयं सद्गुरुतोऽमलम् ॥११४॥
समन्वितोऽपिभूतेषु भौतिकेषु चराचरे ।
सर्वेभ्यो वहिरेवास्ते तमोंकारं गुरुं भजे ॥११५॥
सर्वं भूतानि यः पाति चराचरमयं जगत् ।
लिप्यते नैव केनापि तं चिदानन्दमाश्रये ॥११६॥

साधु = सुन्दर शुभ कर्म और सुसङ्गादि द्वारा चित्त को सुन्दर निर्मल और ध्यानादि से निश्चल करके ग्रन्थादि द्वारा सद्गुरु से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अमल तत्त्व ज्ञातव्य है। कि जो अमलात्मा भूत भौतिक और चराचर में अन्वित = व्याप्त होता हुआ भी सबसे बाहर = असङ्ग ही है उस ओंकार स्वरूप गुरु को भजता हूँ। जो सब भूत = प्राणी और सब चराचरमय जगत् की रक्षा करता है, परन्तु किसी के साथ लिप्त नहीं होता है। उस चिदानन्दात्मा का आश्रयण करता हूँ ॥११६॥

स्मृतो हरति पापानि ध्यातो मोहं विनाशयेत् ।
अनुभूतः करोत्येव स्वं रूपं तं हरिं श्रये ॥११७॥
दूरी करोति दुःखानि दुःखबीजं विनाशयेत् ।
स हरी रमणो रामस्तं शरण्यं भजाम्यहम् ॥११८॥

"अजममरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं
शिवमचलमनादिं भूतदेहादिहीनं ।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं
तं हरिमकलममायं सर्वगं वन्द एकम् ॥११९॥

इति हनुमदीयतत्त्वार्थमणिमञ्जूषायां द्वितीयः खण्डः ॥२॥

जो स्मृत (स्मृति का विषय) होकर पापों को नष्ट करता है। ध्यान का विषय होकर मोह को विनष्ट करता है। अनुभूत = अपरोक्ष यथार्थ स्वरूप से ज्ञात होने पर निज सत्य स्वरूप करता है, उस हरि का आश्रयण करता हूँ। जो दुःखों को दूर करता है, प्राप्त दुःखों का निवारण करता है। अप्राप्त दुःखोंके बीज को नाश कर सकता है। सोई हरि सब का रमण = स्वामी स्वरूप राम है, उस शरणागत रक्षक को मैं भजता हूँ। जन्म मरण रहित देश कालादि कृत अन्त रहित ज्ञान स्वरूप, विभु शिव = कल्याण स्वरूप, अचल = अक्रिय, अनादि, भूतदेहादि से रहित सब इन्द्रियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से रहित, सब, प्राणियों में स्थिर,निरवयव, माया रहित, सर्वगत, एक हरि की वन्दना करता हूँ।।११७-११९।।

बन्दौ सत गुरु सन्तजनों को, जो नित परउपकारी हैं।
हरि जिनके अनुचर बनते हैं, जिनके नित रखवारी हैं।।
देव दनुज सब नर नारी के, समरस नित हितकारी हैं।
ऊँच नीच लघु भेद त्यागिके, सबमें राम विचारी हैं।।
निज सुख दु:ख सम सब के देखत, प्रबल दया उरधारी हैं।
हिंसा रागद्वेष तजि मत्सर, रामभजन अधिकारी हैं।।
सरल स्वभाव सुशील विभूषण, गर्हि दूषण जिन टारी हैं।
काम क्रोध मद लोभ त्यागिके,नित निज तत्त्व सम्हारी हैं।।
ब्रह्म अनन्त भजन्त सन्त सो, निर्गुण ब्रह्म विहारी हैं।
अचल अखण्ड अभय पद दाता, सो सुख धाम मुरारी हैं।।
मुरा अविद्या मोह असुर मुर, ताके शिर बल हारी हैं।
क्लेश कर्म कलि कपट मारि के, अगम पन्थ पगुधारी हैं।।
अब उनको कर्तव्य और नहिं, चलत पन्थ अघहारी हैं।
सन्त वसन्त तुल्य जन बन के, नव पल्लव सुखकारी हैं।।
हनूमान जिन उन सन्तों की, सदा भक्ति उर धारी हैं।
जीवन्मुक्त विभुक्त भये सो, सन्त सकल बनवारी हैं।।१।।
विमल विचार स्वरूप यह, खण्डसुमङ्गल रूप।
करि विचार जन पाइ हैं, शुद्ध सुसत्य स्वरूप।।१।।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ राम

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषायास्तृतीयखण्डः ॥३॥

नमोऽस्तु सद्गुरुभ्यो यत्कृपालेशेन सज्जनाः ।
प्रतीर्य दुःखपाथोधिं व्रजन्ति सुखवारिधिम् ॥१॥

लोके च बहवःशास्त्रे गुरवो य उदाहृताः ।
माता पिता च संस्कर्ता विद्यादाता तथाऽन्नदः॥२॥

स्वामी धर्मस्य वक्ता च ज्येष्ठो भ्राता सुहृज्जनाः।
मान्याः पूज्याश्च ते सर्वे सदैव हितमिच्छता ॥३॥

धर्मं चरत माऽधर्मं सत्यं वदत माऽनृतम् ।
भद्रं कुरुत माऽभद्रं सेवध्वं चानघं सदा ॥४॥

आचार्यस्य हितं कार्यमहितं नैव कस्यचित् ।
अप्रमादः सदाकार्यो विचारे तत्त्वचिन्तने ॥५॥

देयं दानं यथाशक्ति भक्तिः कार्या गुरौ शिवे ।
सेवनीयाः सदा सन्तो वर्जनीयाश्च दुर्जनाः ॥६॥

उन सद्गुरुओं को नमस्कार हो, कि जिनकी कृपा के लेश से सज्जन=भक्त जिज्ञासु जन दुःख स्वरूप संसार समुद्र को तर कर, सुख समुद्र को प्राप्त करते हैं। लोक और शास्त्र में जो माता, पिता, संस्कार कर्ता, विद्यादाता, अन्नदाता, स्वामी, धर्मोपदेशक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़ाभाई,सुहृद्,निरपेक्ष उपकारीजन इत्यादि, ये बहुत गुरु कहे गये हैं सो सब सदा ही हितेच्छु से मान्य और पूज्य हैं और शास्त्र में कहा गया है कि आप सब धर्म करो अधर्म नहीं, सत्य बोलो असत्य नहीं, शुभ करो अशुभ नहीं और अनघ=पाप रहित तत्त्व देव मनुष्यादि का सदा सेवन करो। गुरु आचार्य का हित अवश्यकर्तव्य है और अहित किसी का भी नहीं करना चाहिये धर्म सत शास्त्रादि के विचार और आत्म परामात्मतत्त्व=सत्य स्वरूप के चिन्तन=ध्यान स्मरणादि में सदा अप्रमाद=सावधानी कर्तव्य है, प्रमाद नहीं। शक्ति के अनुसार दान=देय वस्तु विद्या आदि अवश्य देय दातव्य है और गुरु तथा ईश्वर विषयक भक्ति मनुष्य मात्र के लिये कर्तव्य है, सन्त सदा सेवनीय हैं और दुर्जन त्यागार्ह है ॥१-६॥

देववत् पितरौ पूज्यौ गुरुवोऽतिथयस्तथा ।
पूजनीयाः समे नित्यमुक्तो धर्मः सनातनः ॥७॥

धर्मं कृत्वाऽतियत्नेन स्वात्मानात्माविचेचनात् ।
मोहं मृदित्वा चित्तस्य रोधात्स्थातव्यमात्मनि ॥८॥

ईदृशं जागरं नित्यं प्रकर्तव्यं मुमुक्षुभिः ।
सुखेच्छुभिः सदा प्राप्या सदाचार्यान्मतिः शुभा ॥९॥

आचार्याद्विदिता विद्या साधिष्ठं प्रापयत्यतः ।
शोकं तरति तस्मात्तमाचार्यं प्रणमेत्सुधीः ॥१०॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषाखण्डश्चायं तृतीयकः ।
सद्गुरोश्चैव शिष्यस्य लक्षणं यत्र विद्यते ॥११॥

अनुवन्धैर्युतं ज्ञानग्रन्थं ज्ञानिगुरोर्मुखात् ।
संश्पठेच्छृणुयाद् वा यो मोक्षमार्गं स प्राप्नुयात् ॥१२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माता पिता गुरु और अतिथि ये देव तुल्य पूज्य हैं और अन्य सब पूज्य भी सदा पूजने योग्य हैं क्योंकि यह पूज्य के पूजा सत्कारादि सनातन धर्म कहे गये हैं। अत्यन्त यत्न से उक्त धर्मों का आचरण करके और स्वात्मा तथा अनात्मा के विवेचन से मोह को नष्ट करके, चित्त के निरोध से आत्मनिष्ट होना चाहिये। मुमुक्षु को ऐसी जागृति सदा कर्तव्य है और सुखेच्छु को सदा आचार्य से शुभ मति = विवेक बुद्धि प्राप्त करने योग्य हैं क्योंकि आचार्य से विदित = ज्ञात = प्राप्त विद्या साधिष्ठ = अत्यन्त साधु = शुभ को प्राप्त कराती है और इस शुभ की प्राप्ति से मनुष्य शोक रहित होता है। अतः उस आचार्य को विवेकी प्रणाम करे। तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा का यह तृतीय खण्ड है, कि, जहाँ सद्गुरु और शिष्य का लक्षण है। जो अधिकारी अनुबन्ध सहित ज्ञानार्थक ग्रन्थ को ज्ञानी गुरु के मुख से सुनेगा या सुन कर पढ़ेगा सो मोक्षमार्ग को प्राप्त करेगा ॥७-१२॥

अनायासेन धीभूमौ ज्ञानोपवनजन्मनः ।
सिद्धचर्थं शुभसम्वादः कथ्यते गुरुशिष्ययोः ॥१३॥

परिश्रम के विना बुद्धिरूप भूमि में ज्ञानरूप उपवन (बाग) के जन्म की सिद्धि के लिये गुरु और शिष्य का शुभ सम्बाद कहा जाता है ॥१३॥

(गुरुलक्षण वर्णन)

सम्यग् गृहीतवेदार्थो ब्रह्मात्मैकत्वविन्मुनिः ।
भेदपञ्चकबुद्धेस्तु नाशने कुशलः सदा ॥१४॥
अद्वैतं निर्गुणं ब्रह्म निर्मलं सर्वसाक्षि यत् ।
तस्योपदेशने युक्तो भवमिथ्यात्ववर्णने ॥१५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यो गुरुः स ददात्यच्छमद्भुतञ्चोपदेशनम् ।
नैव वेषादिमात्रेण संस्कर्ता सद्गुरुर्भवेत् ॥१६॥
स्वोपदेशेन खड्गेन भवग्राहाद् विमोचयेत् ।
यस्तं बुधा गुरुं प्राहु नैंव वेषपरं नरम् ॥१७॥
"श्रोत्रियो ब्रह्मनिष्ठश्च प्रशान्तः समदर्शनः ।
निर्ममो निरहङ्कारो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥१८॥
अनपेक्षः शुचि र्दक्षः करुणामृतसागरः ।
एवं लक्षणसम्पन्नः सद्गुरु ब्रंह्मवित्तमः ॥१९॥
अविद्याहृदयग्रन्थिबन्धमोक्षो भवेद्यतः ।
तमेव गुरुमित्याहु गुंरुशब्दार्थवेदिनः ॥२०॥

परिश्रम के विना बुद्धिरूप भूमि में ज्ञान रूप उपवन (वाग) के जन्म की सिद्धिके लिये गुरु और शिष्य का शुभ सम्बाद कहा जाता है। तहाँ जो गुरु वेद के अर्थ को सम्यग् ग्रहण = ज्ञान किये हों और ब्रह्म तथा आत्मा के एकत्व अभेद को जानते हो, तथा मुनि हों, शिष्यगत पाँच प्रकार की भेदबुद्धि को निवारण में सदा कुशल हों और अद्वैत, निर्गुण, निर्मल, सर्वसाक्षी जो ब्रह्म है, उसके उपदेश में तथा संसार के मिथ्यात्व के वर्णन में युक्त = साव-धान = कुशल हों, सोई गुरु पवित्र निर्मल अपूर्व उपदेश देते हैं। वेषादि मात्र से संस्कार करने वाले तो सद्गुरु नहीं हो सकते हैं। क्योंकि अपने उपदेशरूप तरवार द्वारा जो संसार रूप संसार सम्बन्धी ग्राह से विमुक्त करें उन्ही को विद्वान् लोग गुरु कहते हैं, वेषमात्र को उत्तम माननेवाले नर को नहीं। वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ, अत्यन्त शान्त, समदर्शी, ममताऽहङ्कार रहित, द्वन्द्व परिग्रह रहित,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनपेक्ष = निष्काम, पवित्र, उपदेशादि में कुशल, दयारूप अमृत का समुद्र इस प्रकार के लक्षणों से युक्त ब्रह्मानुभवी सद्गुरु होते हैं, कि जिनसे अविद्या और कामादि ग्रन्थि (बन्धन) तज्जन्य जन्मादि का नाश होता है। और गुरु शब्दार्थ को जानने वाले उस मोक्ष, दाता को ही गुरु कहते हैं ॥१४-२०॥

ईशजीवौ सदा भिन्नौ जडो भिन्नस्तथेश्वरात्।
जीवाः परस्परं भिन्ना जीवभिन्ना जडास्तथा ॥२१॥
परस्परं जडा भिन्ना वर्तन्ते सर्वदा समे।
एते त्वौपाधिका भेदाः कल्पितेषु न वस्तुनि ॥२२॥
सत्यत्वबुद्धितो भेदा भवन्ति भयदायकाः।
अतः सद्गुरुभिस्तेऽत्र वारणीया भवन्ति हि ॥२३॥
सर्वथाऽसत्खपुष्पादे रज्जुसर्पाद्यसत्स्वपि।
सत्त्वं वै वर्तते लोके प्रतीतिसमकालिकम् ॥२४॥
रज्जुसर्पादितो लोके घटादिष्वधिकं ध्रुवम्।
सत्त्वं संवर्तते तेन व्यवहारोऽपि सिद्ध्यति ॥२५॥
घटादितोऽपि चोत्कृष्टं सत्यत्वं मृतिकादिषु।
वर्तते येन लोकेऽत्र घटादि जायते सदा ॥२६॥

जीव और ईश्वर सदा भिन्न हैं, (१) तथा ईश्वर से जड़ भिन्न हैं २) जीव पस्पर भिन्न हैं (३) तथा जीव से भिन्न जड़ हैं (४) सब जड़ परस्पर सदा भिन्न रहते हैं (५) परन्तु ये पाँचो औपाधिक (उपाधि निमित्तक = मिथ्या) भेद कल्पित = मिथ्या पदार्थों में रहते हैं, सत्य सर्वात्म वस्तु में नहीं। मिथ्या भेद में सत्यता के ज्ञान से भेद भयदायक होते हैं। अतः सद्गुरु द्वारा वे सत्यरूप से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेद के बोध (ज्ञान निवारणीय होते हैं और सर्वथा असत् आकाश पुष्पादि की अपेक्षा असत् रज्जु सर्पादि में भी लोक में प्रतीति समकालिक = प्रातिभासिक सत्त्व तो रहता ही है। और रज्जु-सर्पादि की अपेक्षा भी लोक में घटादि में अधिक सत्त्व अवश्य सुन्दर रहता है, कि जिससे जलानयनादि व्यवहार की सिद्धि होती है और घटादि से भी उत्कृष्ट = अधिक सत्यता मृत्तिकादि में रहती है। अर्थात् पाँच भौतिक कार्यों से उनके कारणरूप भूतों में अधिक सत्ता रहती है कि जिससे इस लोक में घटादिरूप भौतिक कार्य सदा होते हैं और भूतों में लीन होते हैं ॥२१-२६॥

मृत्तिकातो जलस्यास्ति सत्त्वं श्रुत्यादिषु श्रुतम् ।
अधिकं चानुमानेन प्रत्यक्षेणाऽपि गम्यते ॥२७॥

जलेन च विना भूमिः स्वकार्यं न करोति हि ।
न तिष्ठ'त विना तेन सत्त्वं तस्माज्जलेधिकम् ॥२८॥

जलतस्त्वधिकं सत्त्वं तेजस्तत्त्वे प्रवर्तते ।
एवं वायौ तथाऽऽकाशे मायायां प्रकृतावपि ॥२९॥

श्रुतिभ्यः परमं सत्त्वं ब्रह्मणि ज्ञायते ततः ।
सर्वात्मत्वाद्विचारेण ज्ञायते च स्वयंप्रभे ॥३०॥

विचारात्सर्वबाधे[1] च समाधौ निर्विकल्पके ।
विमुक्तौ[2] सर्वशान्तौ च ब्रह्म सत्तैव शिष्यते ॥३१॥

१—अज्ञानस्य वर्तमानेन प्रविलीनेन वा स्वकार्येण सह तत्त्वज्ञानेन विनिवृत्ति र्बाधः, इति विवरणप्रमेयसंग्रहे ।

२—दुःखप्रागभावासहवृत्ति दुःखतत्साधनध्वंसो मोक्ष इति केचित् । दुःखमयसंसारवीजमिथ्याज्ञानध्वंसो मुक्तिरित्यपरे । प्रपञ्चसम्बन्धविलयो मोक्षः । शरीरेन्द्रियबुद्धयादितन्निदानधर्माधर्मध्वंसो मोक्षः । इत्यादि मोक्षवादाः । समुच्चयवादिनः श्रीकण्ठाचार्यास्तु-ईश्वरतुल्यगुणप्राप्तिमेव मोक्षं मन्यन्ते ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मृत्तिका से जल की अधिक सत्ता श्रुति आदि में सुनी जाती है और अनुमान तथा प्रत्यक्ष से भी जल की अधिक सत्ता समझी जाती है, क्योंकि जल के विना भूमि अपने कार्यों को नहीं करती है। तथा उस जल के विना भूमि की स्थिति नहीं है, अतः भूमि से जल में कालादि कृत अधिक सत्त्व है। जल से भी अधिक सत्त्व तेजरूप तत्त्व में सदा रहता है। इसी प्रकार वायु में तथा आकाश में और सत्त्वगुण प्रधान माया में तथा गुण साम्ययुत (प्रधान) प्रकृति में भी उत्तरोत्तर अधिक सत्त्व समझा जाता है। फिर श्रुतियों से परम सत्त्व परम ब्रह्म में समझा जाता है, तथा सर्वात्मा होने के कारण विचार से भी स्वयंप्रकाश ब्रह्म में परम सत्त्व समझा जाता है। और विचार से सब के बाध=मिथ्या निश्चय=निवृत्ति होने पर तथा निर्विकल्प समाधि में और सब की शान्तिरूप विमुक्ति में ब्रह्मात्मा की ही सत्ता शेष रहती है, अतः वह परम सत्त्व है ॥२७-३१

न्यूनाधिकस्वरूपेण ब्रह्मसत्तैव सृष्टिषु ।
वर्तते मृतिका सत्ता घटादिषु यथा तथा ॥३२॥

एवं सातिशयं सत्त्वं वियदादिषु विद्यते ।
सत्त्वं त्वतिशयापेतं ब्रह्मण्येवास्ति सर्वथा ॥३३॥

सूक्ष्मत्वञ्चापि भूतेषु यथापूर्वं प्रवर्तते ।
सत्त्वप्रबृद्धिरप्येवं ज्ञातव्या शास्त्रयुक्तितः ॥३४॥

ब्रह्मसामीप्यतो यद्वत्सत्त्वबृद्धिः क्रमात्तथा ।
चित्त्वबृद्धि र्भवत्येव क्रमशो धीन्द्रियादिषु ॥३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद् वस्त्वतिशयापेतं तदेकं सत्यमद्वयम् ।
मिथ्या सातिशयं तत्तत् कथ्यते द्वैतमित्यपि ॥३६॥
अद्वैतं तत्त्वमालोक्य द्वैतं मिथ्या प्रबुध्य च ।
विरक्तः सर्वभावेभ्यो ब्रह्मनिष्ठो भवेन्मुनिः ॥३७॥

न्यूनाधिक स्वरूप से ब्रह्मस्वरूप ही सत्ता सृष्टि में इस प्रकार वर्तमान है कि जैसे घटादि में मृत्तिका स्वरूप सत्ता रहती है। अत एव मृद्घटः प्रतीति के समान (सन्घटः) इत्यादि प्रतीति होती है। इस प्रकार अतिशय (भेदयुक्त) सत्ता आकाशादि घटादि में रहती है और सर्वथा अतिशय रहित सत्त्व ब्रह्म में (ब्रह्मस्वरूप) ही है। पृथिवी आदि की अपेक्षा पूर्व पूर्व भूतों में सूक्ष्मता भी अधिक रहती है। सत्त्व की प्रबृद्धि = अधिकता भी इसी प्रकार शास्त्रमूलक युक्ति से ज्ञातव्य है और जैसे ब्रह्म की समीपता द्वारा क्रम से भूतों में सत्ता की बृद्धि होती है, इसी प्रकार बुद्धि और इन्द्रियादि में क्रम से सामीप्य मूलक चेतनता की बृद्धि होती है। जो वस्तु (ब्रह्मात्मा) अतिशय = न्यूनाधिक भाव = भेद से रहित है, वह एक अद्वैत सत्य है, और जो वस्तु अतिशय युक्त है, वही द्वैत, और मिथ्या भी कहा जाता है। अद्वैत तत्त्व = सत्य-वस्तु को प्रत्यक्षात्म स्वरूप समझ कर और द्वैत को सर्वथा मिथ्या जान कर, सब द्वैत पदार्थों से विरक्तमुनि ब्रह्मनिष्ठ होता है ॥३२-३७॥

ब्रह्मनिष्ठोऽमृतत्वं च श्रुतं प्राप्नोति निश्चितम् ।
तदर्थाः सर्ववेदान्ताः साधूनां च प्रवृत्तयः ॥३८॥
मायाविशिष्टमेवात्र कारणं शब्दशक्तितः ।
बुध्यते परमं ब्रह्म निर्गुणं लक्षणादितः ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मायिनः प्रथमं कार्यं शब्दतन्मात्रनामकम् ।
सूक्ष्मं द्रव्यं भवत्येतत् कालाकाशादिनामकम् ।।४०।।
पञ्चीकरणतस्तच्च शब्दादिगुणसंयुतम् ।
जायते न ततो भिन्नौ देशकालौ च सिद्ध्यतः ।।४१।।
दिक्कालौ न यतो भिन्नौ नभसो भवतस्ततः ।
श्रुतौ तयो र्न चोत्पत्तिः पृथक् कुत्रापि कथ्यते ।।४२।
अन्धकारोऽपि मायायाः कार्यं साक्षाद्धि विद्यते ।
आकाशात्मैव सर्वत्र व्यज्यते तेजसोऽत्यये ।।४३।।

और ब्रह्मनिष्ठ ही वेद में श्रुत और निश्चित अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त करता है और उस अमृतत्व के ही लिये सब वेदान्त की प्रवृत्तियाँ (उपदेश) हैं। तथा साधुओं (सन्तों) के उपदेश योग ज्ञान ध्यानादि रूप सब प्रवृत्ति भी निज पर के अमृतत्व के ही लिये होती है। और इस वेदान्त में मायायुक्त कारण रूप ब्रह्म ही शब्दों की शक्ति वृत्ति से समझा जाता है, निर्गुण पर ब्रह्म लक्षणावृत्ति मननादि से समझा जाता है। मायी = मायाविशिष्ट ब्रह्म का प्रथम = पहला कार्य शब्दतन्मात्र नाम वाला सूक्ष्म द्रव्य (पदार्थ) ही होता है। और यही द्रव्य काल आकाशादि नामक भी होता है। वही शब्द तन्मात्रारूप सूक्ष्म द्रव्य पञ्चीकरण = पाँचों सूक्ष्म भूतों के परस्पर संमेलन से शब्दादि गुणसहित होता है और उस आकाशरूप द्रव्य से भिन्न दिशा और काल नहीं सिद्ध होते हैं। और जिससे दिशा और काल आकाश से भिन्न नहीं सिद्ध होते हैं, इसीसे श्रुति में उनकी पृथक् उत्पत्ति कहीं भी नहीं कही जाती है। अन्धकार भी साक्षात् माया का ही कार्य है, सो सर्वत्र आकाशरूप ही रहता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। विशेष तेज = प्रकाश के अभाव होने पर वह अन्धकार व्यक्त = प्रकट होता है ॥३८-४३॥

कारणात्मकरूपेण सृष्टेः पूर्वं स विद्यते ।
तमः शब्देन वेदोऽतः सैव पूर्वं निगद्यते ॥४४॥

शब्दतन्मात्ररूपं यत्तदोंकारात्मकं खलु ।
सर्वात्मकं जगद्बीजं सारशब्दोऽपिकथ्यते ॥४५॥

"[1]नाभावोऽभाव वैधर्म्यान्नारोपो बाधहानितः ।
द्रव्यादिषट्कवैधर्म्याज्ज्ञेयं मेयान्तरं तमः" ॥४६॥

इत्यादिवचनैस्तस्मिन् भाति द्रव्यादितो भिदा ।
तथापि नान्धकारोऽयं मायाकार्याद्विभिद्यते ॥४७॥

यथैकोऽपि भवन् प्राणः क्रियाभेदाद्विभिद्यते ।
तथैकोऽपि महाकाशो भिद्यते व्यवहारतः ॥४८॥

वह अन्धकार कारणात्मक = माया स्वरूप से सृष्टि से प्रथम भी रहता है, अतः वेदमें (तम आसीत्) इत्यादि तम शब्द द्वारा वह अन्धकार ही प्रथम कहा जाता है। जो वह शब्द तन्मात्रारूप वस्तु है, सो ओंकार स्वरूप ही है, कि जो ओंकार सर्वात्मक जगत्

१—अस्मन्मते तमसो भावान्तरत्वम्, इत्यद्वैतसिद्धौ । आलोकाभाव इति तार्किकाः । रूपाभाव इति प्रभाकरास्तन्न युक्तमुपचयापचयावस्थाभेदवत्त्वेनाभावत्वायोगात् । तत्कारणं तु मूलाविद्यैवेत्यादि । मूलाज्ञानस्यैवावस्थाभेदा, रजताद्युपादानानि शुक्त्यादिज्ञाने निवर्तन्ते । इत्यादि विवरणप्रमेय संग्रहे ॥ (आसीदिदं तमो भूतम्) इत्यादि स्मृतिः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का बीज है और सार शब्द भी कहा जाता है। किसी महात्मा का कहना है कि अन्धकार तेज का अभाव रूप नहीं है, क्योंकि चलनादि रूप अभाव से विरुद्ध धर्मवाला अन्धकार होता है। बाध के अभाव से रज्जु सर्प के समान अन्धकार का आरोप = भ्रम नहीं होता है। और द्रव्य, गुण, कर्मादि छह भाव पदार्थ से विरुद्ध स्वभाव वाला तम है। अतः तम इन सब से मेयान्तर = भिन्नप्रमेय है। इत्यादि वचनों से यद्यपि उस तम में द्रव्यादि से भेद भासता (प्रतीत) होता है। तथापि यह अन्धकार माया कार्य से भिन्न नहीं होता है। किन्तु जैसे प्राण एक वायु विशेष रूप होते भी क्रिया के भेद से विभिन्न = पाँच स्वरूप होता है, तैसे ही एक भी महाकाश व्यवहार से भिन्न होता है (व्यवहार भेद से भिन्न समझा जाता है) ॥४४-४८॥

अवकाशस्य दानेन य आकाश उदीर्यते ।
स आवरणशक्त्या तु तमः शब्देन कथ्यते ॥४९॥

भूतादि व्यवहारस्य हेतुत्वेन च कालता ।
एकस्मिन्नेव सत्तत्त्वे वर्तते वियदात्मनि[1] ॥५०॥

दृष्टिरेव च या सृष्टिरथवा दृष्टिकालिकी ।
कथ्यते सा सदीशस्य दृष्टिः सृष्टि र्न चान्यथा ॥५१॥

मानसी सा च जीवस्य व्यवहारस्थरूपिणः ।
स्वप्नादौ सम्भवेन्नात्र सर्वसाधारणी यतः ॥५२॥

१—सर्व संहारक काल परमात्मस्वरूप ही शास्त्र में प्रसिद्ध है, सो गीता भागवतादि में द्रष्टव्य है ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

''जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्भिदा ।
अविद्या तच्चितो योंगः षडस्माकमनादयः ॥५३॥

एभ्यो भिन्नपदार्थानां दृष्टिसृष्टि निगद्यते ।
तेषां यत्कारणाकारैः सत्त्वमास्ते सुनिश्चितम् । ५४॥

अवकाश के देने से जो आकाश कहा जाता है, वही तो आवरण शक्ति से तमः शब्द से कहा जाता है और भूत भविष्यादि व्यवहार के हेतु होने से एकही आकाश स्वरूप सत्तत्त्व में कालता प्रतीत होती है और जो दृष्टिरूप हो या दृष्ट कालिक सृष्टि कही जाती है, सो सत्य ईश्वर की दृष्टि रूप सृष्टि समझनी चाहिये, अन्यथा = व्यावहारिक जीव की दृष्टि रूप नहीं । क्योंकि व्यवहार वर्ती स्वरूप वाला जीव की स्वप्नादि में वह मानसी दृष्टि सृष्टि हो सकती है, कि जो स्वसंवेद्य है और यहाँ जाग्रत् संसार में जीव की दृष्टि सृष्टि नहीं हो सकती, क्यों कि यह सर्व साधारणी सृष्टि है। प्राणधारी अज्ञ जीव (१) मायी सर्वज्ञ ईश्वर (२) विशुद्धचित् निर्गुण ब्रह्म (३) जीव और ईश्वर का भेद (४) अविद्या = माया (५) और अविद्या चेतन का सम्बन्ध (६) ये छः दृष्टि सृष्टि वाद में भी अनादि हैं, अतः इनसे भिन्न पदार्थों की दृष्टि सृष्टि कही जाती है, जिससे उन भिन्न पदार्थों का भी प्रलय कालादि में भी कारणरूप से सत्त्व सुनिश्चित है ॥४९-५४॥

इत्थं सर्वत्र सत्तत्त्वं कारणं ब्रह्म विद्यते ।
मायया कारणत्वं तत्स्वरूपेण सुनिर्मलम् ॥५५

स्वरूपेण विशुद्धं तज्ज्ञात्वा धूत्वातमो व्रजम् ।
परमानन्दरूपः सञ्जीवन्मुक्तो विराजते ॥५६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईशसृष्टावविद्यातः सत्त्वं यद् भाषते मृषा ।
जीव सृष्टिरनर्थाय तां त्यक्त्वा मोदते भृशम् ।।५७।।
अन्तःकरणतत्त्वस्य नेत्रज्योतिष[1] एव च ।
ध्रुवावधिः प्रभाकारैः परिणामो निरन्तरः ।।५८।।
जायते तद्धि भित्वैवमुपनेत्रं च गच्छति ।
वज्रोपमं हि तेजस्त्वात्सांशञ्चैवांशुमत्त्वतः ।।५९।।

इस प्रकार सर्वत्र सद्वस्तुरूप कारण ब्रह्म ही है और वह कारणत्व माया से है। अतः स्वरूप से सद्ब्रह्म सुनिर्मल = कारणत्वादि रहित है। स्वरूप से विशुद्ध उस ब्रह्म को जान कर और अविद्या कमादिरूप तम समूह को नष्ट करके, परमानन्द स्वरूप होता हुआ जीवन्मुक्त ज्ञानी विराजता हैं। मायामय ईश्वर की सृष्टि में अविद्या से जो मिथ्या = स्वतन्त्र सत्त्व जीवों को भासता है वही जीव सृष्टि है, सो जीव के अनर्थ के लिये है। विवेक द्वारा उस सृष्टि को त्याग कर अर्थात् सृष्टि गत सत्त्व को कारण ब्रह्म स्वरूप समझ कर, ज्ञानी अत्यन्त हर्ष को पाता है। अन्तःकरण रूप पदार्थ का और नेत्र रूप ज्योति का भी प्रभारूप से

१—(अप्राप्यकारणीन्द्रियाणि गोलकात्मकानि) इति सौगताः ।। तत्खण्डनं च न्यायदर्शने वर्तते ।। भौतिकानीन्द्रियाणीति केचिदाहुः ।। आहङ्कारिकाणीति सांख्याः ।। तानि च व्यापकानीति योगाः ।। गोलकशक्तिरूपाणीति, मीमांसका जगुः ।। वस्तुतस्तानीन्द्रियाणि महादीपोपमानि, प्राणवर्तियुक्तानि, चित्ततैलयुतानि च प्राप्यकारिस्वरूपाणि स्वात्मज्योतिर्मयानि भवन्ति । (ईश्वरःसर्वं देवाश्च परं ब्रह्म दिवाकरः । सहकारिण एतेषामेतद्विवरणे स्थितम्) ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवादि तक जो निरन्तर परिणाम होता है, सो वज्र तुल्य उपनेत्र = चसमा का भी भेदन करके, तेजस्त्व के कारण गमन करता है और वह अन्तःकरणादि अंशु वाला होने के कारण सांश = अंश सहित रहता है ॥५६-५९॥

तेजसामपि यत्तेजः प्रकाशानां प्रकाशकम् ।
कारणं ब्रह्म शुद्धं च निरंशं विभु चाव्ययम् ॥६०॥

तस्याप्रतिहतत्वे सदानन्दत्वे न संशयः ।
मयया[1] भेदवत्वे सदभिन्नत्वे च का कथा ॥६१॥

इत्यादि युक्तितो भेदान् सत्यान् वारयन्तिते ।
गुरवोऽसत्यभेदेन शिष्याणामस्ति का क्षतिः ॥६२॥

जो कारण रूप और शुद्ध ब्रह्म है, जो तेजों का भी तेज है। प्रकाशों का प्रकाशक है और निरंश विभु अव्यय है। उस ब्रह्म के सर्वथा अप्रतिहत स्वरूपता में तथा सत्यानन्द स्वरूपता में संशय नहीं है। और माया से मिथ्या भेद वाला होते भी, सत्य-स्वरूप की अभिन्नता में कोई कथा वक्तव्य नहीं है। इत्यादि युक्तियों से वे ज्ञानी गुरु सत्य भेदों का वारण करते हैं और असत्य भेदों

१—यद्यपि = आश्रयमव्यामोहयन्ती कर्तुरिच्छामनुसरन्ती माया, तद्विपरीता त्वविद्या, तथापि-अनिर्वचनीयत्वे सति तत्त्वावभासप्रतिबन्ध विपर्ययाभासहेतुत्वमुभयोरविशिष्टम् । न च मायाया आश्रयाऽव्यामोहकत्वं नियतं, विष्णोः स्वाश्रितमाययैव रामावतारे मोहितत्वात् । नाप्यविद्याया आश्रयव्यामोहनियतिः, माया तु स्वाभावाद् व्यामोहिकैवेत्यादिविवरण प्रमेय संग्रहे ॥ वस्तु सतो ज्ञाननिवर्त्यत्वाऽसम्भवान्मायात्मकबन्धस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वं श्रुत्यर्थः, इत्यादि तत्त्वदीपने ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से शिष्यों की कोई क्षति नहीं होती है। असत्य भेद के रहते भी शिष्य सत्याद्वैत को समझता है ॥६०-६२॥

(शिष्य लक्षण वर्णन)

श्रुतिस्मृत्यविरोधेन तत्तद्वाक्यानुसारतः ।
सद्गुरो र्लक्षणं प्रोक्तं शिष्यलक्षणमुच्यते ॥६३॥

विवेकादिकमुक्तं[1] यल्लक्षणं स्वधिकारिणः ।
तदेव लक्षणं ज्ञेयं शिष्यस्यामृतकाङ्क्षिणः ॥६४॥

श्रुति स्मृति के साथ अविरोध पूर्वक तत्तद् वाक्यों के अनुसार सद्गुरुका लक्षण कहा गया, शिष्य का लक्षण अब कहा जाता है, कि जो विवेकादि वेदान्त ग्रन्थ के अधिकारी का लक्षण कहा गया है, वही मुमुक्षु शिष्य का लक्षण समझना चाहिये ॥६३-६४॥

"शान्तोऽनसूयुः[2] श्रद्धावान् गुर्वर्थार्थातमवृत्तिकः ।
शुचिः प्रियहितो दान्तः शिष्य उक्तो मनीषिभि" : ॥६५॥

ईशभक्त्यधिकां भक्तिं गुरौ कुर्याद् विचक्षणः ।
आत्मज्ञानं यतो विज्ञै र्लभ्यते न तया विना ॥६६॥

अधीत्यापि हि वेदाब्धिं क्षारं वेत्ति गुरुं विना ।
अमृतादधिकं वेत्ति वारिदाभगुरोमुखात् ॥६७॥

१—नाविरक्ताय संसारान्नानिरस्तैषणाय च । नैवाऽप्ययतये देयं वेदान्तार्थप्रदेशनम् ॥१॥ इति श्रीमधुसूदनाचार्याः श्री सुरेश्वराचार्याश्च ॥

२—नगुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति मन्दगुणानपि । नान्यदोषेषु रमते साऽनसूया प्रकीर्तिता । अत्रिस्मृतिः ३४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार्मणैः कुघटैस्तुल्या भवन्त्यज्ञानिनो जनाः ।
मेघतुल्यास्तु विद्वांसो विज्ञाद्वेदान् पठेत्ततः ।।६८।।

ब्रह्मविद् ब्रह्मभूतः स्यात्तद्वाक्यं वेद एव च ।
भेदभ्रांन्ति विनाश्यात्र तद्ददात्युत्तमं पदम् ।।६९।।

वेदतुल्यं वचो येषां सेवा तेषां विधीयताम् ।
सेविताः स्युः प्रसन्नाश्चेत्ततो बोधोऽत्रलभ्यताम् ।।७०।।

शान्त, असूया = परगुण में दोषारोप रहित, श्रद्धालु, गुरुअर्थक = गुरु के लिये अर्थ = धन और जीविका वाला, पवित्र, प्रिय होता हुआ हित, दान्त पुरुष विद्वानों से शिष्य कहा गया है। चतुर शिष्य ईश्वर भक्ति से अधिक भक्ति = प्रीति गुरु में करें, क्योंकि विज्ञ = चतुर भी उस गुरु भक्ति के विना आत्मज्ञान नहीं पाते हैं। ज्ञानी गुरु के बिना वेद रूप समुद्र (शब्द राशि) को पढ़ कर भी मनुष्य क्षार = सत्य भेदादि को समझता है और मेघ तुल्य गुरु मुख से वढ़ कर अमृत से भी अधिक ब्रह्मानन्द को समझता है। चर्मनिर्मित कुघटादि तुल्य अज्ञानी जन होते हैं। और मेघतुल्य ज्ञानी होते हैं। अतः ज्ञानी से वेदों को पढ़े। (स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। मुण्डक-३।२।९) इत्यादि शास्त्र के अनुसार ज्ञानी ब्रह्मस्वरूप होता है और उसका वचन वेद रूप ही होता है। अतः वह वचन इस संसार में सत्यभेद के भ्रम को विनष्ठ करके उत्ताम पद = मोक्ष देता है। जिन के वचन वेद तुल्य हैं, उनकी सेवा कर्तव्य है, करो। सेवित होने पर यदि वे प्रसन्न हों, तो उनसे यहाँ आत्मज्ञान का लाभ करो, यही मनुष्य के लिये मुख्य कर्तव्य है ।।६४-७०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईशदेवादिसेवा स्यात्सदाऽदृष्टफलप्रदा ।
दृष्टादृष्टफले दत्तो गुरुसेवा ततोऽधिका ।।७१।।
सम्प्राप्ते सद्गुरौ कुर्याद् दण्डवत् प्रणिपाततः ।
प्रणामं संस्पृशेन्मूर्ध्ना पादयोश्च रजोऽमलम् ।७२।।
ज्ञायते प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
श्रद्धया तत्परत्वेन ब्रह्मेन्द्रियजयाज्ञनैः ।।७३।।
अतस्तीव्राऽतिजिज्ञासा स्यात्तदा गुरुसन्निधौ ।
वसेत्तनुधनादीनामर्पणं च समाचरेत् ।।७४।।
सेवां कुर्याच्छरीरेण, तदज्ञां प्रतिपालयेत् ।
तच्छरीरार्पणं विद्यात्सर्वसिद्धिप्रदं हि तत् ।।७५।।
यथैवेशे गुरौ तद्वद् भक्ति संस्थापयेद्धृदि ।
प्रसन्नोऽस्तु गुरु र्मह्यमितीच्छेच्च सदा सुधीः ।।७६।।
कदाचिद्दोषदृष्टिं नो गुरौ कुर्याच्च सत्तमः ।
हरिं हरं विधिं गङ्गां रविं विद्याच्च सद्गुरुम् ।७७।।

ईश्वर देवादि की सेवा सदा अदृष्ट=पुण्य द्वारा परोक्ष फल देने वाली होती है और गुरु की सेवा दृष्ट=प्रत्यक्ष और अदृष्ट दोनों फल देती है, अतः यह अन्य सेवा से अधिक=श्रेष्ठ कही जाती है ।. सद्गुरु के सम्प्राप्त होने पर दण्डतुल्य प्रपतन पूर्वक प्रणाम करे और चरणों के निर्मल रज का शिर से स्पर्श करे। गीता में कहा गया है कि प्रणिपात, परितः=उचित प्रश्न, सेवा श्रद्धा और तत्परता के द्वारा और इन्द्रियों के विजय से मनुष्य ब्रह्म

१—चेष्टेन्द्रियाश्रयः शरीरम् । न्यायद० १ ।१।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को समझ पाते हैं। अतः उत्कट अत्यन्त ज्ञानेच्छा हो, तो गुरु के पास में बसे तनु धनादि का गुरु के प्रति अर्पण करे। शरीर से गुरु की सेवा करे और उस गुरु की आज्ञा का पालन करे। और इसी-को शरीर का अर्पण समझे, वही शरीरार्पण सर्व सिद्धिप्रद है। जैसी ईश्वर विषयक भक्ति को धारण करे वैसी ही गुरु विषयक प्रेम भक्ति को हृदय में धारण करे और मेरे लिये गुरु प्रसन्न हों, ऐसी इच्छा बुद्धिमान् शिष्य सदा करे। श्रेष्ठ शिष्य गुरु विषयक दोषदृष्टि कभी नहीं करे, किन्तु सद्गुरु को हरि हरादि स्वरूप समर्थ असंग पावन पापनाशक स्वयंप्रकाश समझे ॥७१-७७॥

हृदये सद्गुरोर्मूर्तेर्ध्यानं कुर्यात् समाहितः।
मुमुक्षुस्तत्त्वजिज्ञासुरभिमानं त्यजेत्तथा ॥७८॥
एतन्मनोऽर्पणं विद्याद् धनानामर्पणं विदुः।
सद्गुरोर्लब्धये त्यागो धनानां क्रियते हि यः ॥७९॥
अतो मनोऽर्पणं कृत्वा धनं सर्वं त्यजेत् सुधीः।
पत्नीपुत्रगृहादिश्च धनशब्देन कथ्यते ॥८०॥
तथैवोचितभूम्यादि दानं चापि समर्पणम्।
विद्यात्तद्धि गृहस्थे तु गुरौ कुर्यात्समाहितः ॥८१॥
याज्ञवल्क्यादितुल्यत्वे गुरौ दानं विधीयते।
धनं दत्त्वा तु वचसः कुर्यात्तस्मै समर्पणम् ॥८२॥
शुद्धं गुणगणं ब्रूयाद् दोषं नैव कदाचन।
अर्पणं वचसश्चैतद् विद्यात्सद्गुरवे सुधीः ॥८३॥

मुमुक्षु सद्ब्रह्मात्मा के जिज्ञासु शिष्य सावधान होकर प्रथम गुरुमूर्ति का हृदय में ध्यान धरे और अभिमानों को त्यागे और इसी गुरु भक्ति श्रद्धा ध्यानादि को गुरु के प्रति मन का अर्पण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझे। और सद्गुरु की प्राप्ति के लिये जो धनों का त्याग किया जाता है उसी को विरक्त सद्गुरु के प्रति धन का अर्पण विवेकी समझते हैं। अतः उक्त रीति से मनका अर्पण करके सुन्दर बुद्धि युक्त जिज्ञासु सब धन को त्यागे, तहाँ स्त्री पुत्र गृह पशु क्षेत्र वित्तादि धन शब्द से कहे जाते हैं। उन धनों का त्याग जैसे समर्पण कहा गया है, इसी प्रकार उचित=विहित भूमि आदि के दान को भी समर्पण समझना चाहिये और समाहित होकर, वह दान रूप समर्पण गृहस्थ गुरु के रहते करे। क्योंकि ज्ञानी गुरु में याज्ञवल्क्यादि के तुल्यत्व (शिष्यपोषकत्व = उदारत्व = समदृष्टित्व) आदि के रहते उस गुरु के प्रति दान का विधान किया गया है। और उक्त रीति से यथा योग्य धन का अर्पण करके उस गुरु के प्रति वचन का भी अर्पण करे उसकी यह रीति है कि गुरु के शुद्ध गुण गण (शमादि) को प्रसङ्ग पड़ने पर कहे परन्तु दोष का कथन नहीं करे और इसी को सद्गुरु के प्रति वचन के अर्पण रूप विवेकी समझे ॥७८-८३

इत्थं तनुधनादीनामर्पणं सुविधाय तु।
निरन्तरं गुरोः स्थाने वसेत्कल्याणकाङ्क्षया ॥८४॥

भैक्षेण जीवनं कुर्याच्छिष्यो यो न गृही भवेत्।
ज्ञानाऽभ्यासे रतो नित्यं संग्रहं संपरित्यजेत् ॥८५॥

भैक्षमपि तु भिक्षित्वा गुरवे तत्समर्पयेत्।
भुञ्जीत गुरुदत्तं च सर्वथा गुरुमाश्रयेत् ॥८६॥

भिक्षावृत्ति सदा कुर्यान्निर्वेदं सर्वदाश्रयेत्।
शुश्रूषां सर्वदा कुर्यात्कल्याणेच्छु र्हि यो भवेत्। ८७॥

इत्थं व्यवहरन्नित्यं ज्ञात्वा स्ववसरं सुधीः।
प्रसन्नं गुरुमालोक्य प्रश्नं कुर्यात्समाहितः ॥८८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेवाधनर्पणादीनामभावेऽपि गुरु यदि ।
विद्यामुपदिशेद् विद्यात्तदा स्वं प्राक्तनं शुभम् ॥८९॥

इस उक्त रीति से तनु धनादि का सद्गुरु के प्रति अर्पण करके कल्याण की इच्छा से निरन्तर=सदा गुरु के स्थान में निवास करे। जो शिष्य गृहस्थ नहीं हो, सो भिक्षा द्वारा लब्ध=प्राप्त अन्नादि से जीवन करे और ज्ञानाभ्यास में नित्य रत (सदा तत्पर) शिष्य संग्रह को सर्वथा त्यागे। भिक्षा समूह को भी माँग कर प्राप्त करके उसे गुरु के प्रति समर्पण करे, फिर गुरु का दिया हुआ भोजन करे, इस प्रकार सर्वथा गुरु का आश्रण करे सदा भिक्षावृत्ति करे, सर्वदा निर्वेद=वैराग्य का आश्रयण करे सदा शुश्रूषा=सेवा करे, जो कल्याणेच्छुक हो। इस प्रकार सदा व्यवहार करता हुआ विवेकी जिज्ञासु सुन्दर समय को जान कर और गुरु को प्रसन्न देख कर, समाहित=एकाग्र होता हुआ गुरु से पूछे। सेवा धनार्पणादि के अभाव रहते भी यदि सद्गुरु आत्मविद्या का उपदेश दें, तो अपने पूर्वजन्मों के शुभ कर्मादि को सहायक समझना चाहिये। शुभ कर्मादि के विना सफल ज्ञानोपदेश की प्राप्ति नहीं होती है ॥८४-८९

जन्मान्तरकृतात्पुण्याच्छुद्धचित्तस्य सन्मतेः ।
प्रसन्नात्सत्गुरोः सर्वे सिद्धयन्त्येव मनोरथाः ॥९०॥

अर्पणेन धनादीनां सेव्या ये गुरवः सदा ।
तदात्मा सद्गुरुश्चैको वेत्ति सर्वं कृताकृतम् ॥९१॥

जगतीं सर्वतो व्याप्य यस्य कीर्तिं र्गतोर्ध्वतः ।
भित्वाऽण्डं तमहं वन्दे कबीरं गुरुमव्ययम् ॥९२॥

अशेषज्ञानदातारं पातारं सर्वसंकटात् ।
प्रकटं परमानन्दं कबीरं गुरुमाश्रये ॥९३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापपुञ्जप्रदग्धारं योगज्ञानाग्निदानतः ।
भवभीत्यपहर्तारं भर्तारं जगतां भजे ॥९४॥

जन्मान्तर में कृत पुण्य से शुद्धचित्त और सत मति वाले के प्रसन्न सद्गुरु से सब मनोरथों की सिद्धि होती है। धनादि के अर्पण द्वारा जो सद्गुरु सदा सेव्य हैं, तत्स्वरूप एक सद्गुरु स्वरूप ईश्वर सब कृत अकृत को जानने वाले हैं। संसार= भूमि में सर्वत्र व्याप्त होकर=सब भूमि को व्याप्त=आच्छादित करके जिस सद्गुरु की कीर्ति ब्रह्माण्ड को भेदन करके ऊपर गई है. उस अव्यय=अविनाशी कबीर=ईश्वर स्वरूप गुरु की मैं वन्दना करता हूँ। सब ज्ञान को देने वाले, सब संकट से रक्षक, प्रकट परमानन्द स्वरूप कबीर गुरु का आश्रयण करता हूँ। योग और ज्ञान रूप अग्नि के दान द्वारा पाप पुञ्ज को दग्ध करने वाले, संसार भय को नष्ट करने वाले जगत् के भर्ता=पोषक स्वामी को हम भजते हैं ॥९०-९४॥

अपुनर्भवदातारं पुनर्भावविवर्जितम् ।
अजन्मानं जगज्ज्योतिः स्वरूपं सद्गुरुं भजे ॥९५॥

इति हनुमदीय तत्वार्थमणिमञ्जूषायास्तृतीयः खण्डः॥३॥

पुनर्भव=बार बार जन्मादि रूप संसार के अभाव रूप अपुनर्भव=मोक्ष को देने वाले और स्वयं पुनर्भाव=अन्यथा भाव से रहित=सदा एक रस अत एव जन्म रहित, सब जगत् का प्रकाशक स्वरूप=स्वयंप्रकाश सद्गुरु को भजते हैं ॥९५॥

सन्त सतो गुरु राम भजो जन, निर्गुण राम तोआप मिलेगें।
पाप पहाड़ से राम छिपे तहँ, भक्ति किये अघ दूर भगेगें॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति भवानि जबै मिलि हैं,
शिव को तब आनि मिलाइ हिं सोई ।
एक अखण्ड असंग सदा शिव,
ताहि मिले रह पाप न कोई ॥
सर्वज्ञ महेश्वर है शिव ही,
सोइ अन्तर्यामि सुस्वामि निदानू ।
भक्ति हि ते प्रकटी हृदये सोइ,
मोह महातम नाशत भानू ॥
सत्य कहैं हनूमान सुनो जन,
सन्त गुरु शिव एकहि जानू ।
सर्वातम राम निहारि सदा,
सब त्याग करु चित मान गुमानू ॥१॥

मान तजे मन में तनुता शुभ, आवत है अति वेगि हि धाई ।
आवत ही मन में तनुता अति, वेगि हि मानक बीज नशाई ॥
ज्ञानक साधन है तनुता युत, ध्यानहु का मन मोह विहीना ।
सत्त्व स्वरूपहि पाय सदा, पुनि, होवत है कबहू नहिं दीना ॥
सत्य कहै हनूमान सुनो जन, राम भजो तुम नित्य अदीना ।
एकलब्रह्मनिरन्तर रामहि जोइ भजै सोइ होय न क्षीणा ।।२॥

तनुमानसा स्वरूप यह, खण्ड सर्वसुखदानि ।
सद्गुरुसेवा ज्ञान लहि, नाशिय मोह गलानि ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ राम

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषायाश्चतुर्थः खण्डः ॥४॥

तुर्याखण्डसमारम्भः कथया क्रियतेऽधुना ।
गुरूणां ज्ञाततत्त्वानां महत् स्मृत्वाऽनुशासनम् ॥१॥

गुरुशिष्यसुसम्बादो गाथात्मा नूतनोऽमलः ।
कथ्यते यं निरीक्ष्य स्याज्जिज्ञासुः कुशलो मतौ ॥२॥

सोदरा वै शुभाः पुत्रास्त्रय आसन् पिता तु यः ।
शुभसन्ततिनामा तं नमन्ति त्रयलौकिकाः ॥३॥

अब कथा द्वारा चतुर्थ खण्ड का आरम्भ किया जाता है, सो गुरुओं और तत्त्वज्ञों के महान् अनुशासन = उपदेश को स्मरण करके किया जाता है। गाथात्मा (कथास्वरूप) नूतन निर्मल, गुरु शिष्य का सुन्दर सम्बाद कहा जाता है, कि जिस सम्वाद को देख कर (समझकर) जिज्ञासु जन, मति = मनन = विचार में कुशल होगें। सोदर = समान = एक उदर से जन्य तीन शुभ पुत्र थे और शुभसन्तति नामवाला उनका जो पिता था, उस को तीनों लोक के निवासी नमस्कार करते थे। अर्थात् शुभसन्तति राजा देवताओं का प्रणम्य था, क्योंकि जो शुभसन्तति वाला होता है, वह सब संसार का प्रणम्य होता है और मनुष्य शुभ सन्तति वाला कब होता है कि जब स्त्री राज्यादि भोग के साधनों के प्राप्त होने पर इन को भोग के साधन नहीं समझ कर इन्हे धर्म और कर्म योग का साधन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझता है। प्रायः माता पिता के अपराध से ही कुसन्तति होती है। जैसे कि माता के अपराध (अविहित समय में पति संग) से रावण महा क्रूर था। ऐसी ही कुछ दशा (मातृ अपराध जन्यता) परशुराम जी की थी, कि जिससे एक के अपराध से विश्वसंहार में प्रवृत्त रहे। भगवान् विष्णु के अवतार होते भी शान्ति की मात्रा उन में अति न्यून रही। अतः गृही को शान्ति आदि युक्त शुभ-सन्तति के लिये बड़ी सावधानी चाहिये, इत्यादि ॥१-३॥

चक्रवर्तिसुतेष्वाद्यस्तत्वदृष्टिसुनामकः ।
अदृष्टिस्तु द्वितीयोऽभूत्तर्कदृष्टिस्तृतीयकः ॥४॥

बाल्यं क्रीडनकै र्नीतं यौवनं कामकौतुकैः ।
वृत्वा नारीं गृहे भोगान् प्राप्तवान् सुरसम्मतान् ॥५॥

राजा स्वर्गादिलोकानां भुञ्जानो विषयान् समान् ।
स्वप्रभावजितामित्रः कृतवान् राज्यमुत्तमम् ॥६॥

लब्ध्वा स्ववसरं त्वेकं विचारेणानुभूतवान् ।
अजं सुखात्मकं स्वच्छ तद्भिन्नमनृतं जगत् ॥७॥

अतः स्वर्गादिलोकानां पुत्रान् कृत्वा नराधिपान् ।
राज्यं त्यक्त्वा निजात्मानं जानीयां स्वगुरो मुखात् ॥८॥

चक्रवर्ती राजा के उन तीन पुत्रों में आद्य=बड़ा पुत्र तत्त्वदृष्टि नाम वाला था, अर्थात् सत्यवस्तु विषयक पूर्ण विवेक वाला था और दुसरा पुत्र अदृष्टि नाम वाला (अल्प विवेक वाला) था। अर्थात् बड़े भाई से कुछ न्यून विवेक युक्त था, विवेक रहित नहीं था। तीसरा पुत्र तर्कदृष्टि नामक था। अर्थात् कुतर्क से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आच्छादित विवेक वाला था। परन्तु तीनों श्रद्धा भक्ति आदि युक्त थे। राजा ने बाल्यावस्था को क्रीडाओं द्वारा बिताया। काम कौतुकों से युवा अवस्था को बिताया और गृह में स्त्री का वरण = स्वीकार करके देवसम्मत = दिव्य भोगों को प्राप्त किया। और स्वर्गादि सब लोकों के सब विषयों को भोगता हुआ राजा ने अपने प्रभाव = तेज बल से शत्रुओं को जीत कर उत्तम राज्य = राजा का कर्म = प्रजापालनादि किया। परन्तु फिर एक सुन्दर अवसर को पाकर विचार से अज सुखस्वरूप आत्मा का, उस आत्मा से भिन्न मिथ्या जगत् का अनुभव किया। अर्थात् पूर्वजन्म के शुभ संस्करादि वश आत्म अनात्म के विवेक को प्राप्त किया, जो विवेक मोक्षात्मक सौध का एक प्रकार से प्रथम सोपानरूप है। अतः इस विवेक से ही राजा ने विचार किया (निश्चय किया) कि स्वर्गादि लोकों के राजा पुत्रों को बनाकर और स्वयं राज्य को त्याग कर अपने गुरु के मुख से सुनकर निजात्मा को शुकदेवादि के समान समझूं संशयादि रहित अपरोक्ष अनुभव करूं, इत्यादि ॥४-८॥

इत्थं कृत्वा विचारं स मन्त्रिणं सर्वपुत्रकान्।
निरीक्ष्याऽऽहूय चैकान्ते स्वसमीपे नराधिपः ॥९॥

स्वविरागस्य वाक्यं ताञ्छ्रावयित्वा जगाद च।
राज्यरक्षां कुरुध्वं भोः पुत्रका धर्ममास्थिताः ॥१०॥

एकः पातालमेकस्त्वं स्वर्गं गच्छ निरामयम्।
अन्यो वसतु काश्यां च शिवो वसति यत्र हि ॥११॥

यत्र चान्ते सुखेनैव शिवलोकं प्रपद्यते।
म्रियमाणस्य कर्णान्ते शिवस्यैवोपदेशतः ॥१२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्गभूता तु काश्याः सा गङ्गाकीर्तिप्रकाशिका ।
उदक्प्रवाहिणी यत्र तया काशी सुशोभते ।।१३।।

इत्थं पृथक् पृथग् राज्यं रक्षन्तु मम पुत्रकाः ।
त्रिभागेन विना क्लेशा भवेयु र्भूमिकारणात् ।।१४।।

इस पूर्व वर्णित रीति से विचार करके और मन्त्री तथा सब पुत्रों को देख कर योग्य समझ कर और एकान्त देश में अपने समीप में उन्हें बुलाकर, अपने विराग की बातों को उन्हें सुनाकर राजा ने कहा कि हे पुत्रों धर्मनिष्ठ होकर तुम सब राज्य की रक्षा करो। तुम एक पाताल में जाओ, एक निरामय स्वर्ग में जाओ, दो से अन्य एक काशी में बसो कि जहाँ विश्वनाथ शिव सदा बसते हैं और जहाँ अन्त (मरण) काल में मरते हुए के कर्णान्त = कर्ण निकट में शिव जी के ही उपदेश से सुख पूर्वक अनायास ही मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करते हैं। काशी के अङ्ग = अवयव = निकटवर्ती वह गङ्गा काशी की कीर्तियश को प्रकाशने वाली है और गङ्गा जहाँ उत्तर तरफ प्रवाह वाली है। उससे काशी अत्यन्त शोभती है। हे मेरे पुत्रों इस प्रकार पृथक् पृथक् तुम सब राज्य की रक्षा करो। और विभाग पूर्वक रक्षा के लिये इससे कहा जाता है कि विभाग के विना भूमि (राज्य = देश) के कारण क्लेश होगें, पस्पर राग द्वेषादि होगें ।।९-१४।।

अहं तु राज्यभोगादीनैश्वर्यं भोगसाधनम् ।
सर्वं दुःखं विदित्वैव हास्यामि गतवासनः ।।१५।।

अन्ये सर्वे जनाः स्वस्वदुःखेनैव सुदुःखिताः ।
अहं तु सर्वलोकानां दुःखं महदवाप्तवान् ।।१६।।

ऐश्वर्यवत्सु ये मुख्या भवन्त्यज्ञानिनो जनाः ।
ते सर्वे दीनतुल्याश्च दुःखिनोऽत्रभवन्ति हि ।।१७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐश्वर्यं जगतां तस्माद् विचाराय निजात्मनः ।
त्यक्त्वा ज्ञास्ये निजात्मानं सुखं सत्यं चिदव्ययम् ॥१८॥
इत्थं वाक्यान्यनेकानि पित्रा प्रोक्तानि सर्वशः ।
श्रुत्वा ते भ्रातरो बुद्धिमन्तश्चक्रुर्विचारणाम् ॥१९॥
एकान्ते सुविचारं ते मिथः कृत्वा सुनिश्चयम् ।
विदधुर्यत् पिताऽस्मभ्यं दुःखमूलं सुपुष्कलम् ॥२०॥
राज्यं दत्त्वा स्वयं मुक्तो ब्रह्मतुल्यत्वमिच्छति ।
नागरः स तु सद्बुद्धेः सागरश्चैव मानवः ।२१॥
यः सदाऽऽगामिकं दुःखं त्यजेदत्र विचारतः ।
शास्त्रे दृष्टमिदं वाक्यं हेयं दुःखमनागतम् ॥२२॥

मैं तो राज्य भोगादि को और भोग के साधन सब ऐश्वर्य को दुःख ही जान कर इनकी वासनाओं से रहित होकर इन्हे त्यागूंगा क्योंकि अन्य सब जन तो अपने अपने दुःखों से अत्यन्त दुःखित हैं और मैंने तो सब लोकों के महान् दुःख को पाया है। जो अज्ञानी जन ऐश्वर्य वालों में प्रधान होते हैं, वे सब दीन = दरिद्रों के समान इस संसार में दुःखी हो होते हैं। अतः आत्मा ज्ञातव्य है। उक्त कारण से आत्मा के विचार के लिये सब संसार के ऐश्वर्य को त्याग कर, सुख स्वरूप सत्य चेतन निर्विकार निजात्मा को विचारादि से समझूंगा। इस प्रकार पिता से कहे गये अनेक सब वाक्यों को सुन कर, बुद्धि वाले वे तीनों भाई विचार किए और वे लोग एकान्त में परस्पर सुन्दर विचार करके निश्चय किये कि जो राज्य सुपुष्कल = बहुत बड़ा दुःखों का मूल है, पिता जी वह राज्य हम लोगों को देकर और आप स्वयं मुक्त होकर ब्रह्म तुल्यता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की इच्छा करते हैं तहाँ वही मनुष्य नागर=चतुर और बुद्धि=ज्ञान का समुद्र है कि जो आगामी दुःख को सदा यहाँ विचार से त्यागता है। अनागत दुःख हेय=त्याज्य है, यह वाक्य शास्त्र में भी देखा गया है ॥१५-२२॥

दुःखमूलं ततस्त्यक्त्वा राज्यसङ्घमिमं समम् ।
स्वकार्यं साधयामश्च कृत्वेत्थं ते विचारणाम् ॥२३॥
निर्जग्मु गृंहतः सर्वे भ्रातरो मोक्षकांक्षिणः ।
अतस्तेऽन्वेषयन्तश्च सद्‌गुरुं संविचक्रमुः ॥२४॥
शुभसन्ततिनाम्नश्च पितु र्नामापि सार्थकम् ।
चक्रु स्तेऽन्वेषयन्तश्च गङ्गातीरे सुनिर्मले ॥२५॥
एकान्ते पल्लवै र्युक्ते शाखाभिश्च सुशोभिते ।
सघने सद्वने तत्र वटवृक्षसमीपगम् ॥२६॥
भद्रया मुद्रया युक्तं शान्तैः शिष्यैः समन्वितम् ।
शान्तं स्थितं गुणाँस्त्यक्त्वा जीवात्मपरमात्मनोः ॥
अभेदं निर्दिशन्तं तं गुरुं दृष्ट्वाऽपरानपि ।
शिष्यसङ्घाँश्च निर्दोषानेकाग्रमनसः स्थितान् ॥२८॥
गुरो र्लब्धोपदेशानां विचारं कुर्वतो हृदि ।
दृष्टवन्तश्च ते सर्वे पावनान् परमाद्‌भुतान् ॥२९॥

अतः दुःखों के मूलरूप सब राज्य सहित संघ को त्याग कर के ही हम अपने कर्तव्य को सिद्ध करें, वे लोग ऐसा विचार करके मोक्ष की इच्छा वाले सब भाई गृह से निकले। अतः वे लोग सद्‌गुरु का अन्वेषण (खोज) करते हुए, सम्यक् विचरने लगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और वे लोग शुभसन्तति नामक पिता के नाम को सार्थक किए अन्वेषण करते हुए एकान्त अत्यन्त निर्मल, गङ्गा के तीर (तट) में पत्तों से युक्त, शाखाओं से सुशोभित, सघन, उस तीरवर्ती सद्वन (श्रेष्ठ वन) में बटवृक्ष के समीपवर्ती, भद्रा = कल्याण-रूपा, मुद्रा आकार से युक्त, शान्त शिष्यों से समन्वित, शान्त, स्थित, गुणों को त्याग कर जीवात्मा परमात्मा के अभेद को निर्देश = उपदेश करते हुए, उस गुरु को देख कर तथा निर्दोष एकाग्र मनवाले, स्थिर अन्य लोगों को भी देख कर गुरु से प्राप्त उपदेशों को मन में विचारते हुए पावन परम अद्भुत शिष्यों को उन लोगों ने देखा ॥२३-२९॥

दृष्ट्वा सपरिवारांस्तान् मेनिरे सनकादिकान् ।
संदिशन्तं च कैलासे शंकरं शुभदर्शनम् ॥३०॥

दृष्ट्वा तं दण्डवत् कृत्वा प्रणामं ते त्रयस्तदा ।
षण्मासं तत्र वासं वै चक्रुः शिष्यगुणै र्युताः ।३१॥

उत्तमां गुरुसेवां च चक्रुर्मोक्षैककाङ्क्षिणः ।
ततस्तेषां गुरुः प्रीतः शङ्करेण समः सुधीः ॥३२॥

पृष्टवान् मृदुवाक्येन के यूयं कस्य वै सुताः ।
किं प्रयोजनमिच्छन्तो वसथाऽत्र त्रयो जना ॥३३॥

ज्ञात्वा स्वानुजयोर्भावं तत्त्वदृष्टिस्तदासुधीः ।
अञ्जलिं प्रविधायैव स्वाभिप्रायमुवाच ह ॥३४।

वयं स्मः सोदरा देव! सुताश्च शुभसन्ततेः ।
जिज्ञासवः परं ब्रह्म रहस्यं दीनबालकाः ॥३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज्ञा भगवतश्चेत्स्यात्तदा पृष्ट्वा सुबुद्धयः ।
भविष्यामो वयं यस्माद् भवान् सद्बुद्धिसागरः ॥३६॥

परिवार सहित उन शिष्यों को देख कर उन लोगों ने उन्हे सनकादिक ही माना (समझा) और उपदेश देते हुए गुरु को कैलास में उपदेशक शुभदर्शन शङ्कर स्वरूप समझा। उस गुरु को देख कर, गुरु को दण्ड तुल्य प्रणिपात पूर्वक प्रणाम करके, शिष्य के सेवा आदि गुणों से युक्त होकर, उन तीनों ने वहाँ छः मास निवास किया और मोक्षेच्छुक उन लीगों ने गुरु की उत्तम सेवा की, तब सुधी=ज्ञानी शङ्करतुल्य उनके प्रति प्रीत=प्रसन्न गुरु ने मृदु वाक्य से पूछा कि आप सब कौन हो, किसके पुत्र हो और आप तोनों जन किस फल की इच्छा से यहाँ वसते हो। फिर उस समय सुधी=विवेकी तत्त्वदृष्टि ने अपने छोटे भाइयों के अभिप्राय को समझ कर और अञ्जली करके (कर जोर कर) इस वक्ष्यमाण रीति से अपने अभिप्राय को कहा, कि हे देव! हम सहोदर भाई हैं और शुभ सन्तति राजा के पुत्र हैं। और परब्रह्म के रहस्य के जिज्ञासु दीन बालक हैं। यदि आप की आज्ञा हो तो हम पूछ कर सुबुद्धिवाले होगें, यतः आप सुबुद्धि का सागर हैं ॥३०-३६॥

दयाब्धिश्च भवान् देव! वयं सर्वेऽति दुःखिनः ।
त्वत्कृपालेशमात्रेण तरामो दुःखसागरम्[१] ॥३७॥

---

१ दुःखात्मक एव संसारबन्धस्तन्निवृत्तिरेवमुख्यो मोक्ष इति शिष्यस्य भावः। अतएव सांख्ये=

आद्यो हि मोक्षो ज्ञानेन द्वितीयो रागसंक्षयात् ।
कृच्छ्रक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम् ॥१॥

ज्ञानोद्रेकादुपरते धर्माधर्मक्षयो भवेत् ।
धर्माधर्मक्षयाच्चाथ कैवल्यमिति गीयते ॥२॥

दुःख हेतुधर्माधर्मनाशाद् दुःखाभावात्कैवल्यमित्यादि वर्णयन्ति ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्याधिकारिणं शिष्यं ज्ञात्वा सद्गुरुरुक्तवान् ।
मद्वाक्यं शृणु शिष्य! त्वं पृष्टं सर्वं त्वया न्वहम् ॥
कथयिष्यामि तेन त्वं कुशली स्या असंशयः ।
अपृष्टः सद्गुरु र्वक्ति हितं पृष्टस्तु किं पुनः ॥३९॥
दयालुत्वं गुरोर्ज्ञात्वा हृद्यानन्दो व्यजायत ।
शिष्यः स्वकार्यसिद्धिश्च ज्ञात्वा वचनमुक्तवान् ॥४०॥
भगवन् त्वं कृपासिन्धुः सर्वज्ञः शिवसन्निभः ।
अहमज्ञोऽमतिश्चातो मन्ये जन्मादिजं भयम् ॥४१॥
सुकर्मोपासने भीते निवृत्त्यै कृतवानपि ।
ततो भूयो जगत्पाशः प्रापतन् मयि दारुणः ॥४२॥

हे गुरुदेव ! आप दया के समुद्र हैं, हम सब अति दुःखी हैं, आप की कृपा के लेश मात्र से हम दुःख सागर को तर जायगें । उक्त वचन से शिष्य को सत्यात्म वस्तु का अधिकारी समझ कर गुरुजी बोले कि हे शिष्य ! तूं मेरे वाक्य को सुनो, तुम से पूछे गये सब तत्त्व को मैं कहूँगा, तिससे तुम कुशल के भागी होगे, संशय रहित होगे । क्योंकि सद्गुरु तो अपृष्ट (विनु पूछे) हित कहते हैं, पूछने पर कहें तो इसमें क्या कहना है । गुरु के दयालुत्व को जान कर शिष्य के हृदय में विशेष आनन्द हुआ और अपने कार्य की सिद्धि को जानकर वचन बोला । कि हे भगवन् ! आप कृपा सिन्धु हो, शिव जी के समान सर्वज्ञ हो और हम अज्ञ मति रहित हैं, अतः जन्मादिजन्य भय को सत्य समझते हैं उस भय की निवृत्ति के लिये मैंने कर्म और उपासना भी की परन्तु उनसे मुझ में दारुण = भयानक जगत् का पाश = बन्धन ही भूयः = बहुत = अधिक प्राप्त हुआ ॥३७-४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यत् पाशनिवृत्त्यर्थं साधनं कथ्यतां प्रभो ! ।
भवदुःखस्य नाशोऽत्र स्यादवश्यं यतो गुरो ! ॥४३॥
परमानन्दमिच्छामि साधनं तस्य कथ्यताम् ।
स्वतन्त्रं यदनुष्ठानात्कुशली स्याञ्च चिन्मयः ॥४४
शिष्यं ज्ञात्वा मुमुक्षुं तं ज्ञानं तत्साधनं दृढम् ।
वेदोक्तं ब्रह्मजीवानामभेदविषयं शुभम् ॥४५॥
भेदानां वाधकं वक्तुं समारेभे गुरुस्तदा ।
परमानन्दरूपत्वं यतोऽत्र प्रकटी भवेत् ॥४६॥
परानन्दस्य संप्राप्तिं जन्मादिभयनाशनम् ।
यदिच्छसि महाबुद्धे ! भ्रान्तिजन्यमवेहि तत् ॥४७॥
परानन्दस्वरूपस्त्वं दुःखलेशो न विद्यते ।
स्वरूपे तव संशुद्धे ब्रह्मरूपेऽविनाशिनि ॥४८॥
अविनाशि त्वजं ब्रह्म तत्त्वमेव त्वमेव तत् ।
इत्येवं हृदि निश्चित्य न दुःखं मन्यतां चितौ ॥४९॥

हे प्रभो ! गुरो ! जगत् बन्धन की निवृत्ति के लिये कर्म और उपासना से अन्य साधन कहो, कि जिस साधन से संसार दुःख का नाश यहां अवश्य ही हो और मैं परम आनन्द को भी चाहता हूँ, अतः उसका भी स्वतंत्र साधन=उपाय कहा जाय कि जिस के अनुष्ठान से कुशल का भागी चिन्मय हो जाऊँ। उक्त प्रश्न से उस शिष्य को मुमुक्षु जान कर, उस मोक्ष के साधनरूप वेद में वर्णित जीव ब्रह्म के अभेद विषयक और भेदों के बाधक दृढ़ शुभ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान को गुरु उस समय कहना आरम्भ किए, कि जिस ज्ञान से परमानन्द रूपता यहाँ जीवन काल में प्रकट होता है। गुरु जी बोले कि हे महा बुद्धे ! उत्तमानन्द की सम्यक् प्राप्ति और जन्मादि भय का नाश जो चाहते हो, उस चाह को भ्रान्ति जन्य समझो। क्योंकि तुम आनन्द स्वरूप हो, तेरे सत्य पारमार्थिक स्वरूप से अन्य परमानन्द नहीं है। और ब्रह्म स्वरूप विभु अविनाशी तेरे स्वरूप में दुःख का लेश भी नहीं है। क्योंकि अविनाशी अजन्मा ब्रह्म ही तुम हो, तेरा स्वरूप ब्रह्म है। इस प्रकार हृदय में निश्चय करके नित्य चित्स्वरूप में दुःख नहीं समझो ॥४३-४९॥

यद्यानन्दस्वरूपोऽहं विषयाऽऽसङ्गतस्तदा ।
कथं भाति सदाऽऽनन्दः समाधानं विधीयताम् ॥५०॥

स्वात्मनो विमुखीभूता येषां बुद्धि र्हि वर्तते ।
विषयाँस्तेऽभिवाञ्छन्ति ततो बुद्धिस्तु चञ्चला ॥५१॥

चञ्चलायां तु तद्बुद्धौ सुखाऽऽभासो विलीयते ।
इष्टे वस्तुनि संप्राप्ते चञ्चलत्वं विनश्यति ॥५२॥

चञ्चलत्वे क्षणं नष्टे स्वानन्दप्रतिविम्बनम् ।
जायते च पुनर्बुद्धौ स्वभावात्कामकौतुकम् ॥५३॥

चञ्चलत्वे ततो जाते प्रतिविम्बो विनश्यति ।
इत्थं विषयसङ्गादौ निजानन्दः प्रभासते ॥५४॥

तं तथा न विजानन्ति केऽपि सद्गुरुमन्तरा ।
सेवन्ते विषयाँश्चात आत्मानं न भजन्ति हि ॥५५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयैः सङ्गतश्चापि स्वात्मानन्दः प्रकाशते ।
सिद्धान्तोऽनुपमश्चायं मयाऽश्रावि तवाऽनघ ! ॥५६॥

शिष्य की शंका हैं कि यदि मैं आनन्दस्वरूप हूँ (जीवात्मा आनन्द स्वरूप है) तो विषयो के आसङ्ग = प्राप्ति आदि से सदा आनन्द कैसे भासता है, इसका समाधान किया जाय। समाधान है कि जिनकी बुद्धि सदा निजात्मा से विमुख स्वरूप ही रहती है, वे लोग विषयों की इच्छा करते हैं, उससे बुद्धि चञ्चल रहती है और उस चञ्चल बुद्धि में निजात्म सुख का आभास विलीन होता है और इच्छा के विषय वस्तु की संप्राप्ति से बुधि की चञ्चलता नष्ट होती है, क्षणमात्र चञ्चलता के नष्ट होने पर बुद्धि में आत्मानन्द का ही प्रतिविम्बन = आभास होता है, फिर बुद्धि में स्वभाव से अन्य कामरूप कौतुक उत्पन्न होता है। उस काम से फिर चञ्चलता के होने से आनन्द प्रतिविम्ब विनष्ट हो जाता है। इस प्रकार विषयों के आसङ्गादि में निजानन्द ही प्रभासता = प्रकाशता है। विषयों में अनन्द नहीं रहता है। सद्गुरु के विना विषय की प्राप्ति द्वारा प्रकाशित निजानन्द को उक्त रीति से कोई नहीं जानते हैं। अतः विषयों का सेवन करते है, आत्माराम को नहीं भजते हैं। हे अनघ ! पाप रहित शिष्य ! विषयों के साथ सङ्ग से आत्मानन्द ही प्रकाशता है, यह उपमा रहित सिद्धान्त मैंने तुझे सुनाया है ॥५०-५६॥

कथ्यतामत्र या शंका सा न बुद्धौ निगूह्यताम् ।
उत्तरं कथयिष्यामि यतो निःसंशयो भवेः ॥५७॥

दयालु भंगवँस्त्वं हि नाशिताः संशयास्त्वया ।
क्षणाद् य संशयः कश्चित्कथ्यतेऽमायया‌ऽत्र सः ।५८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानिजनबुद्धि र्हि जायते विमुखाऽऽत्मनः ।
तस्यानन्दप्रतीतेश्च प्रकारं प्रोक्तवान् भवान् ॥५९॥
ज्ञानिनां विषयानन्दो भासते वा न भासते ।
विचारः कथ्यतामत्र त्वत्समो नापरः सुधीः ॥६०॥
मनसा सावधानेन शृणु सद्वचनं मम ।
ज्ञाऽज्ञौ द्वौ भवतो लोके स्वात्मनो विमुखौ ध्रुवम् ॥६१॥
कदाचिद् व्यवहारेषु ज्ञानी स्वविमुखो भवेत् ।
अज्ञानी तु सदा स्वात्मविमुखत्वेन तिष्ठति ॥६२॥
विमुखत्वेऽपि विज्ञस्तु व्यक्तं स्वात्मसुखं हृदि ।
स्वतोभिन्नं न जानाति भिन्नमज्ञः प्रपश्यति ॥६३॥

जो इस उक्त अर्थ में शंका हो सो कहो, बुद्धि में छिपा कर नहीं धरो क्योंकि कहने पर मैं उत्तर = समाधान कहूँगा, कि जिससे संशय रहित होगे। शिष्य कहता है कि हे भगवन्! आप दयालु हो। आप ने क्षणमात्र में बहुत संशय को नष्ट किया है, जो कुछ यहाँ संशय है, सो माया = कपट के विना मुझसे कहा जाता है, कि आत्मा से विमुख अज्ञानी जन की बुद्धि होती है और उस अज्ञानी की आनन्द प्रतीति के प्रकार (रीति) को आप ने कहा है। ज्ञानियों को विषयानन्द प्रतीत होता है अथवा नहीं, इस विषयक विचार को आप कहें, क्योंकि आपके समान वक्ता विद्वान् यहाँ अन्य नहीं है, कि जिनसे पूछा जाय। गुरु कहते हैं कि मेरे सत्य वचन को सावधान मन से सुनो, लोक (व्यवहार) में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों निजात्मा से अवश्य विमुख होते हैं। परन्तु व्यवहारों में कभी आत्मविमुख ज्ञानी होते हैं और अज्ञानी सदा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मविमुख स्वरूप से ही स्थिर रहता है। और व्यवहार में आत्मविमुख होने पर भी ज्ञानी पुरुष पिषय द्वारा अभिव्यक्त सुख को हृदय में निजात्म सुखस्वरूप ही समझता है, उस सुख को अपने स्वरूप से भिन्न नहीं समझता है और अज्ञानी भिन्न समझता है ॥५९-६३॥

परानन्दस्वरूपं मां सद्गुरो ! यत्त्वमुक्तवान् ।
तत्स्वरूपं मया ज्ञातं संशयो नात्र विद्यते ॥६४॥

पुनर्यच्च त्वया प्रोक्तं भवलेशो न विद्यते ।
स्वरूपे तत्र शंकातो वाक्यं नो हृदि रोचते ॥६५॥

मत्स्वरूपे न चेद् बन्धो विद्यते कुत्र स प्रभो ! ।
कथ्यतामाश्रयस्त्वन्यो निराधारो न सम्भवेत् ॥६६॥

मद्वाक्यं शृणु शिष्य ! त्वं ततः शंका विनङ्क्ष्यति ।
जगतो न क्वचिद् भावः सत्यं नास्ति जगत् क्वचित् ॥६७॥

यदि सत्यंजगन्नास्ति क्वापि जन्मादिकं प्रभो ! ॥
प्रत्यक्षं भासते कस्मात्तत्र कारणमुच्यताम् ॥६८॥

स्वस्वरूपाप्रबोधेन मिथ्या भाति जगत् सदा ।
नभःस्थनीलतास्वप्नरज्जुसर्पादिसन्निभम् ॥६९॥

शिष्य कहता है कि हे सद्गुरो ! आपने जो आत्मा को परमानन्दस्वरूप कहा, सो स्वरूप मैंने समझा, इसमें मुझे संशय नहीं है। परन्तु आप ने और भी जो कहा कि आत्मा में दुःखरूप संसार का लेश भी नहीं है। तहाँ शंका से यह वचन हृदय में नहीं रुचता है। क्योंकि हे प्रभो ! यदि निज स्वरूप में जन्मादिरूप बन्ध नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, तो वह कहाँ है, सो आत्मा से अन्य बन्ध का आश्रय कहिये, क्योंकि निराधार बन्ध का सम्भव नहीं है। गुरु कहते हैं कि हे शिष्य ! मेरी बात सुनो तो शंका विनष्ट होगी। मेरी बात यह है कि जगत् का कहीं भी भाव = सत्त्व नहीं है, अर्थात् सत्य जगत् कहीं नहीं है, मिथ्या जगत् भासता है। शिष्य कहता है कि हे प्रभो ! जन्मादिरूप जगत् यदि कहीं नहीं है, तो प्रत्यक्ष क्यों प्रतीत होता है, इसमें कारण कहिये। गुरु का कथन है कि अपने अजन्मा सत्यस्वरूप के अज्ञान से मिथ्या जगत् सदा भासता है, सो आकाश की नीलता, स्वप्न और रज्जु सर्पादि के तुल्य भासता है ॥६४-६९॥

रज्जौ सर्पसमं सर्वं स्वात्मन्येवावभासते ।
इत्युक्तौ जायते शङ्का रज्जौ भाति कथं त्वहिः ॥७०॥

शिष्य का कथन है कि रज्जु में सर्प के समान निजात्मा में ही सब जगत् मिथ्या भासता है। इस प्रकार कहने पर शंका होती है कि रज्जु में सर्प कैसे भासता है ॥७०॥

असतोऽहेस्तु या ख्यातिः सैवासत्ख्यातिरुच्यते ।
सर्पत्वेनात्मनो भानमात्मख्यातिरिति स्मृता ॥७१॥
अन्यथाभानमन्यस्य स्थितस्यान्यत्र वाऽन्यथा ।
अन्यथाख्यातिरित्युक्ता द्विविधा न्यायकोविदैः ॥७२॥
विज्ञातवस्तुनोश्चैवं ज्ञानयो वैं विभिन्नयोः ।
विवेकाऽख्यातिरेवात्राऽख्यातिरित्युच्यतेबुधैः ॥७३॥
सर्वत्रै व सतः ख्यातिः सत्ख्यातिश्चापि कथ्यते ।
काऽत्र युक्ततया ज्ञेया वक्तव्या गुरुभि र्हि सा ॥७४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिर्वाच्यस्य या ख्यातिः प्रोच्यतेऽद्वैतवादिभिः ।
सैव युक्ता तदन्यास्तु भ्रमस्थाने समा मता ॥७५॥
नाऽसत्त्वं ज्ञायमानत्वात्सत्त्वं बाधान्न विद्यते ।
नाशादपि न सत्त्वं स्यादवस्थान्तरतस्तथा ॥७६॥
मायाऽविद्ये अनिर्वाच्ये तद्विकारोऽखिलं जगत् ।
अनिर्वाच्यं ततो रज्जुसर्पादि सकलं मृषा ॥७७॥

क्योंकि शून्यवाद में जो असत् सर्प की ख्याति = प्रतीति और व्यवहार होता है, सोई असत ख्याति कही जाती है और विज्ञान वाद में क्षणिक विज्ञान (बुद्धि) रूप आत्मा का जो सर्प रूप से भान = ज्ञान होता है, सो आत्म ख्याति कही गई है। अन्य वस्तु रज्जु आदि का अन्यथा सर्पादिरूप से या अन्यत्र स्थित का अन्यथा समीप में भान रूप दो प्रकार की अन्यथा ख्याति न्याय-शास्त्र के पण्डितों से कही गई है। स्मरण और प्रत्यक्षादि से ज्ञात दो वस्तु के तथा विभिन्न स्मरण प्रत्यक्षादि रूप दो ज्ञान के विवेक = भेद की अख्याति = अप्रतीति ही इस भ्रम स्थान में अख्याति बुद्ध जनों से कही जाती है। वैष्णव मत में भ्रमादि सब स्थान में सत की ही प्रतीति रूप सत् ख्याति कही जाती है। क्योंकि पञ्चीकरण से सर्वत्र सब वस्तु की वर्तमानता मानी जाती है।यहाँ कौन ख्याति युक्त समझना चाहिये सो गुरु से वक्तव्य है। गुरु कहते हैं कि अद्वैत वादियों से जो अनिर्वचनीय = सदसद् विलक्षण की ख्याति कही जाती है, सोई युक्त है और भ्रम के स्थान में उस अनिर्वचनीय ख्याति से अन्य सब ख्याति सम = तुल्य = अयुक्त है। क्योंकि ज्ञान के विषय होने से सर्वथा असत्ता रज्जुसर्पादि में नहीं हो सकती है और बाध होने से सर्वथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्त्व भी नहीं हो सकता, नाश से भी घटादि में सत्त्व नहीं हो सकता, परिणामी में अवस्थान्तर से सत्त्व नही रहता है और माया अविद्या अनिर्वचनीय वस्तु है और उसका विकार रूप सब जगत् अनिर्वचनीय हैं अतः रज्जु सर्पादि सब मिथ्या = अनिर्वचनीय हैं ॥७१–७७॥

"स्वप्नजागरितस्थाने एकमाहुर्मनीषिणः ।
भेदानां हि समत्वेन प्रसिद्धेनैव हेतुना ॥७८॥
आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपितत्तथा ।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः ॥७९॥"
सद्रूपत्वेन निर्वाच्यमद्वैतं ब्रह्म केवलम् ।
तद्भिन्नं सकलं ज्ञेयमनिर्वाच्यं न संशयः ॥८०॥
"प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं न यत् ।
गाहते तदनिर्वाच्यमाहु र्वेदान्तवेदिनः ॥८१॥
सत्तास्फूर्तिविहीनस्य नासतो भानसम्भवः ।
नात्मनः क्षणिकस्यैव भानं प्रत्यभिमर्शतः ॥८२॥
असम्बद्धस्य चाभानान्नान्यथाख्यातिसम्भवः ।
सम्बद्धस्य भवेत्क्वापि त्वन्यथाख्यातिरित्यपि ॥८३॥
एकज्ञानान्नचाऽख्यातिः सम्मुखे प्रतिभानतः ।
शिष्यतेऽतो ह्यनिर्वाच्यख्यातिरेव न संशयः ॥८४॥

भेदों की समता रूप प्रसिद्ध हेतु से ही स्वप्न और जागरित स्थान को विद्वान् लोग एक = तुल्य = अनिर्वचनीय कहते हैं और जो वस्तु आदि में नहीं रहती है, सो वर्तमान काल में भी नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहती है। अतः वितथ=असत् के सदृश होती हुई भी अवितथ =सत्य के सदृश लक्षित=ज्ञात होती है। सर्वथा सत्स्वरूप से निर्वचन योग्य केवल सर्वात्म अद्वैत ब्रह्म है और उस से भीन्न सब ज्ञेय (ज्ञान के विषय) वस्तु अनिर्वचनीय हैं, इस में संशय नहीं, जो पदार्थ प्रत्येक सत्त्व या असत्व रूप से तथा मिलित सत्त्वासत्त्वरूप से विचार मार्ग को नहीं सह सकता, वेदान्त वेत्ता उस पदार्थ को अनिर्वाच्य कहते हैं। क्योंकि सर्वथा सत्ता और स्फूर्ति=स्फुरण रहित असत्=शून्य के भान=ज्ञान का असम्भव है। और प्रत्यभिमर्श=प्रत्यभिज्ञा से क्षणिक विज्ञानात्मा ही का बाह्य रूप से भान नहीं होता है, असम्बध=सम्बन्ध रहित का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकने से अन्यथा ख्याति=दूरस्थित की ख्याति या अन्य वस्तुरूप से अन्य की ख्याति का सम्भव नहीं है, परन्तु जहाँ स्फटिक रक्त पुष्प साथ हों, तहाँ कहीं सम्बद्ध रक्तता की श्वेत स्फटिक में यह अन्यथा ख्याति भी हो सकती है भ्रमात्मक एक ज्ञान के होने से दो ज्ञान के अविवेक रूप अख्याति नहीं हो सकती और सर्पादि की सामने प्रतीति से स्मरण नहीं कहा जा सकता है। अतः भ्रान्ति स्थान में अनिर्वाच्य की ख्याति ही शेष रहती (सिद्ध होती) है ॥७८-८४॥

रज्जौ सत्याहिभाने तु तस्य बाधो न बोधतः ।
मिथ्या सर्पस्य भाने च बाधस्तस्योपपद्यते ॥८५॥

अनृताहेरधिष्ठानं यथारज्जुयुता चितिः ।
इदं वृत्तियुता सा स्यादध्यासे कारणं यथा ।८६॥

तथाऽत्र जगतोऽध्यासेऽधिष्ठानं किं भवेद् गुरो ! ।
यत्राधारे जगन्मिथ्या भासते पारवर्जितम् ॥८७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधारेण विना क्वापि नाध्यासो जायते मृषा ।
स वक्तव्यस्त्वया देवाधिष्ठानं तत्र यद् भवेत्॥८८॥

आत्मन्यज्ञानतो भाति मिथ्यैव निखिलं जगत् ।
तस्मादात्मैव सर्वस्याऽऽधारोऽधिष्ठानमुच्यते ॥८९॥

अधिष्ठानं तथाऽऽधारोऽप्यात्मा चेदत्र वर्तते ।
द्रष्टाऽस्य जगतः कोऽस्ति भगवन् सम्यगुच्यताम् ॥९०॥

रज्जु में यदि सत्य सर्प का ज्ञान हो, तो रज्जु के ज्ञान से उस सर्प का बाध नहीं हो सकता और मिथ्या सर्प के भान होने पर तो उस का ज्ञान से बाघ युक्त होता है। शिप्य का प्रश्न है कि मिथ्या सर्प का अधिष्ठान जैसे रज्जु युक्त रज्जु देशवर्ती चेतन होता है और रज्जु के इदं अंश की सामान्य वृत्ति से युक्त वह चेतन क्षुब्ध अविद्या द्वारा जैसे सर्प के अध्यास (भ्रम) का कारण होता है, तैसे ही यहाँ जगत् के अध्यास में हे गुरो ! अधिष्ठान कौन पदार्थ होगा कि जिस आधार में यह अपार मिथ्या जगत् भासता है क्योंकि सत्य आधार के विना मिथ्या अध्यास कहीं नहीं उत्पन्न होता है अतः हे देव ! वह आधार आप से वक्तव्य है, कि जो उस अध्यास में अधिष्ठान हो। गुरु कहते हैं कि अज्ञान से आत्मा में मिथ्या ही सब जगत् सत्य भासता है, अतः आत्मा ही सब का आधार और अधिष्ठान कहा जाता है। अध्यस्त वस्तु के साथ मिल कर जो सत्य वस्तुका सामान्य स्वरूप अध्यास काल में भी भासता है सो सामान्य स्वरूप अध्यास का आधार कहा जाता है और जिस विशेष स्वरूप के ज्ञान से अध्यास की निवृत्ति होती है उस को अधिष्ठान कहते हैं। शिष्य का प्रश्न है कि इस संसार के अध्यास में अधिष्ठान और अधार भी यदि आत्मा ही है, तो इस जगत का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रष्टा कौन है। हे भगवन् ! समझाइये, सम्यक् कहिये। क्योंकि लोक में अधिष्ठान आधार से भिन्न द्रष्टा भासता है ॥८५-९०॥

आरोपितस्याधिष्ठानमाधारश्च यदुच्यते ।
तदेव चेतनं द्रष्टा स्वात्मा सर्वत्र कथ्यते ॥९१॥

स्वप्नस्य कल्पितस्याऽयं यथाऽधिष्ठानमुच्यते ।
चेतनो निश्चितं द्रष्टा जगद् द्रष्टा तथैव तत् ॥९२॥

स्वप्नवच्च जगद्दुःखं मिथ्यैव त्वयि भासते ।
भ्रमेणैव निवृत्तेस्तु तस्य वाच्छा न युज्यते ॥९३॥

नटेनैव कृतं शत्रुं हन्तुं नेच्छति कश्चन ।
न वा नभःस्थनीलत्वं प्रमार्ष्टुं कश्चिदर्हति ॥९४॥

जगन्मिथ्या न सन्देहस्तद्विनाशं तथाप्यहम् ।
कर्तुमिच्छामि भीतत्वात् स्वप्ननाशं यथा जनः ॥९५॥

जगन्मिथ्याऽस्ति दृश्यत्वाज्जडत्वादविभुत्वतः ।
सत्त्वासत्त्वगिरा वक्तुमशक्यं तत्खवर्णवत् ॥९६॥

गुरु का उत्तर है कि आरोपित = मिथ्या वस्तु का जो चेतन अधिष्ठान और आधार कहा जाता है, वही निजात्मा चेतन सर्वत्र द्रष्टा कहा जाता है। यह चेतन द्रष्टा आत्मा कल्पित स्वप्न का जैसे निश्चित अधिष्ठान कहा जाता है, तैसे ही जगत् का द्रष्टा आत्मा ही वह जगत् का अधिष्ठान है। और स्वप्न के समान मिथ्या ही जन्मादि जगत् रूप दुःख तुझ में भ्रम से ही भासता है। अतः उसकी निवृत्ति की इच्छा भी युक्त नहीं है। क्योंकि नट से ही रचित मिथ्या शत्रु को मारने की इच्छा कोई नहीं करता है। अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकाशवृत्ति मिथ्या नीलता का प्रमार्जन भी कोई नहीं कर सकता है। शिष्य का कथन है कि जगत् मिथ्या है, इस में संशय नहीं है, तो भी उस से भीत (भययुक्त) होने के कारण मैं उस का विनाश करना चाहता हूँ। जैसे भयानक मिथ्या स्वप्न का नाश भी मनुष्य चाहता है। और जगत् तो दृश्य होने से, जड़ होने से और परिच्छिन्न (एकदेशी = सावयव) होने से स्वप्न तुल्य अवश्य मिथ्या है। और सत्त्व तथा असत्त्व वाणी (वचन) से कहने में अशक्य वह जगत् आकाश के वर्ण तुल्य मिथ्या है ॥९१-९६॥

शब्दादजन्यधीवृत्तिविषयो दृश्यमिष्यते ।
चैतन्यविषयत्वं वा चित्सम्बन्धित्वरूपधृक् ॥९७॥
अस्तु वाऽस्वप्रकाशत्वं दृश्यत्वं ब्रह्मगं न तत् ।
ब्रह्मणः स्वप्रकाशत्वं यत्तत्साक्षादिति श्रुतेः ॥९८॥
मिथ्यात्वेनापि जानानः स्वप्नं दुःखप्रदं यथा ।
साधनैः सन्निहन्त्येवं जगद्दुःखं निहन्यताम् ॥९९॥
शक्यते गुरुणा हन्तुं जगत् दुःखं तु सर्वथा ।
कथयातः कृपासिन्धो ! साधनं भवबाधने ॥१००॥
साधनं प्रोक्तवानस्मि यत्पृच्छसि भयापहम् ।
हृदये तद्विनिश्चित्य स्थितो दुःखं न लप्स्यसे ॥१०१॥
निजात्माज्ञानतः सर्वं जगद् दुःखं प्रभासते ।
नश्यतिस्वात्मबोधेन तद् वेदा मुनयो जगुः ॥१०२॥

यद्यपि शब्द प्रमाण द्वारा ब्रह्म भी ज्ञानी को दृश्य (प्रत्यक्ष) होता है, तथापि शब्द से अजन्य बुद्धिवृत्ति के विषय को दृश्य माना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है। अथवा चेतन के सन्बन्धिता (चिदाभासविषयत्व) रूप को धारण करने वाला, चेतन के विषयत्व = चित्प्रकाश्यत्व दृश्यत्व माना जाता है। अथवा अस्वप्रकाशत्व दृश्यत्व है, सो ब्रह्म में नहीं है क्योंकि ब्रह्म को जो स्वप्रकाशत्व है, सो (यत्साक्षादपरोक्षात्) इत्यादि श्रुति से सिद्ध होता है। जैसे दुःख प्रद स्वप्न को मिथ्यारूप से जानने वाला भी साधनों = उपायों से उसका सम्यक् नाश करता है। तैसे दृश्यत्वादि से मिथ्यात्व रूप से ज्ञात जगदुःख को नष्ट किया जाय। क्योंकि गुरु से ही जगद्दुःख का सर्वथा नाश किया जा सकता है। अतः हे कृपासिन्धो ! जन्मादि भवनाश विषयक साधन कहिये। गुरु कहते हैं कि जिस भयनाशक साधन को पूछते हो, सो साधन मैं कह चुका हूँ, उसी को हृदय में विशेष निश्चय करके स्थिर होता हुआ तुम फिर दुःख नहीं पावोगे। क्योंकि निजात्मा के अज्ञान से ही सब जगद्दुःख प्रतीत होता है और वह आत्मज्ञान से नष्ट होता है, सो वेद और मुनि लोग कह गये हैं ॥९७-१०२

नैवात्मनि जगत् सत्यमात्मा ब्रह्मैव केवलः ।
अहं ब्रह्मेति च ज्ञानं प्रोक्तवान् तव मोक्षदम् ॥१०३॥
चिदानन्दस्वरूपं सद् ब्रह्मैवाहं न चान्यथा ।
इत्येवं निश्चयो ज्ञानमुपायो दुखबाधने ॥१०४॥
यदज्ञानाच्च यज्जातं तज्ज्ञानात्तद्विनश्यति ।
अतो नान्य उपायोऽस्ति स्वाज्ञानस्य विनाशकः ॥१०५॥
जगन्मूलं निजाज्ञानं तमःशब्देन कथ्यते ।
तमसो न निवृत्तिः स्यात्कर्मोपासनतः क्वचित् ॥१०६॥
अज्ञाने ज्ञानतो नष्टे तन्मूलमखिलं जगत् ।
विनश्येन्नान्यथा क्वापि ज्ञानं तस्मादुपार्जयेत् ॥१०७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति । १०८ ।"

जगद्दुःखविनाशस्य हेतुः सत्योपदेशजम् ।
ज्ञानं तद्धृदये धृत्वा संशयो यः स उच्यताम् ॥१०९॥

आत्मा में सत्य जगत् नहीं है, केवल=शुद्ध आत्मा ब्रह्म ही है। अहं=मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा ज्ञान मोक्षप्रद है, सो तुझे कह चुका हूँ। मैं चेतन आनन्द स्वरूप सत्य ब्रह्म ही हूँ। अन्य प्रकार वाला नहीं हूँ, इस प्रकार का निश्चयरूप जो ज्ञान है, सो दुःख के नाश में उपाय=साधन है। और जिसके अज्ञान से जो उत्पन्न हुआ है, उसके ज्ञान से ही वह विनष्ट होता है। और अतः=हेतोः इस आत्मज्ञान से अन्य आत्मा के अज्ञान का विनाशक उपाय कोई नहीं है। क्योंकि जन्मादि जगत् का मूल कारण जो निज अज्ञान, सो तम शब्द से कहा जाता है और तम की निवृत्ति कहीं भी कर्म या उपासना से नहीं हो सकती है। अतः प्रकाशरूप ज्ञान से अज्ञान के नष्ट होने पर अज्ञान मूलक सब जगत् विनष्ट होगा और कहीं भी अन्यथा=ज्ञान के विना नहीं नष्ट हो सकता है, इस लिये ज्ञान का उपार्जन कर्तव्य है। (श्वेता० ६।२०) श्रुति कहती है कि जब मनुष्य चर्म के समान आकश का वेष्टन करेगें, तब सर्वात्म-देव को जाने विना दुःख का नाश होगा। अर्थात् आकाश के वेष्टन के समान ज्ञान के विना दुःखाभाव का असम्भव है। जगत् दुःख के विनाश का हेतु सत्य उपदेशजन्य ज्ञान है, उसको हृदय में धारण करके जो संशय हो सो कहो ॥१०३-१०४॥

भगवन् यत्त्वया प्रोक्तं सत्यं तद्धृदये धृतम् ।
निदानं जगतोऽज्ञानं ज्ञानं तस्य विनाशकम् ॥११०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथितं तन्मया ज्ञातं ज्ञानाकारं च बुद्धवान् ।
अहं ब्रह्मास्मि संशुद्धं सच्चिदानन्दकेवलम् ॥१११॥
जगन्मिथ्या[1] ततो जीवो नित्यमुक्तोऽपि कथ्यते ।
ब्रह्माभिन्नश्च सैवेत्थं निश्चयो ज्ञानसंज्ञितः ॥१११॥
जगतस्तत्र मिथ्यात्वमात्मनः मुखरूपता ।
भाति नास्त्यत्र संदेहः किन्त्वभेदे स विद्यते ॥११३॥
अज्ञानी कर्मकर्ताऽहं फलभोक्ता च कर्मणः ।
जीवोऽस्मि विपरीतं च ब्रह्मसद्भिर्निरुच्यते ॥११४॥
तयोरैक्यं कथं विद्यां, परमार्थस्वरूपतः ?
नास्मि यद्यपि संसारी तथापि भ्रमतः सदा ॥११५॥
संसारो भासते जीवे नैव ब्रह्मणि भासते ।
कथं तत्रैकतां विद्यां विरुद्धत्वात्स्वरूपतः ॥११६॥

शिष्य बोला कि हे भगवन् जो आपने कहा उस सत्य को मैंने हृदय में धारण किया और जगत् के आदि कारण रूप अज्ञान को तथा उसके विनाशक ज्ञान को आपने कहा, उसको मैंने समझा और ज्ञान के आकार को समझा, कि अत्यन्त शुद्ध सच्चिदानन्द केवल ब्रह्म मैं हूँ। और संसार मिथ्या है, अतः जीव नित्य मुक्त भी कहा जाता है और वह मुक्त जीव ही ब्रह्म से

१—सर्वेषामेव भावानामाश्रयत्वेन सम्मते । प्रतियोगित्त्वमत्यन्ताभावं प्रति मृषात्मता ॥१॥ वस्तुतोऽसत्यस्यैव यावद्बाधं देहात्मवल्लौकिक-वैदिकव्यवहाराङ्गता, इत्यादि तत्त्वदीपिकायाम् । विषयस्य तात्त्विकत्वाभाव-बोधन द्वारा पूर्वज्ञानस्याप्रमाण्यबोधनमेव बाधः । इति ब्रह्मविद्याभरणे ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिन्न है, ऐसा निश्चय ज्ञान नाम वाला है। तहाँ जगत् का मिथ्यात्व और आत्मा का सुख स्वरूपत्व मुझे भासता है। अतः उन दो अर्थों विषयक संशय नहीं है। किन्तु जीव ब्रह्म के अभेद विषयक सो संशय है। क्योंकि मैं अज्ञानी जीव कर्म कर्ता हूँ और कर्म फल का भोक्ता हूँ। और इससे विपरीत ब्रह्म सत्पुरुषों से कहा जाता है, तो उनकी एकता को कैसे समझ सकता हूँ। यद्यपि मैं जीव भी पारमार्थिक स्वरूप से संसारी=कर्ता भोक्ता नहीं भी हूँ, तथापि भ्रम से जीव में सदा संसार भासता है और ब्रह्म में कभी भी भ्रम से संसार नहीं भासता है, तो भ्रान्त अभ्रान्त स्वरूप से विरुद्धता के रहते, वहाँ एकता कैसे समझूं ॥११०-११६॥

प्रमेयसंशयः प्रोक्तः प्रमाणसंशयोऽपरः ।
जीवस्य ब्रह्मणाऽभेदबुद्धिं नाशयति प्रभो ! ॥११७॥
बुद्धिवृक्षे[1] समौ द्वौ स्तः खगौ जीवपरेश्वरौ ।
तयोरेकः फलं भुङ्क्ते नापरस्तु प्रकाशते ॥११८॥
एवं वेदे च सच्छास्त्रे भोक्त्रभोक्त्रादिभेदतः ।
जीवेश्वरौ निगदितौ तेन भेदः प्रतीयते ॥११९॥
कर्मोपासनयोश्चापि विधानं विद्यते श्रुतौ ।
तत्संगच्छेत नाभेदे ह्यभावादधिकारिणः ॥१२०॥
उपास्यस्य तथाऽभावान्नैवोपासनसम्भवः ।
एवं तद्बोधको वेदो नैव मानत्वमाप्नुयात् ॥१२१॥

१—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति । श्वेता० ॥४।६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मान्नैवैकता चित्ते मम भाति महाप्रभो ! ।
यथा भायात्तथा देव कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥१२२॥

प्रमेय = ब्रह्मात्मविषयक संशय मैं ने कहा और दूसरा प्रमाण विषयक संशय है। हे प्रभो ! वह संशय जीव के ब्रह्म के साथ अभेद बुद्धि को नष्ट करता है। बुद्धि रूप वृक्ष में जीव और परमात्मा रूप दो सम खग (पक्षी) हैं। उनमें एक जीव कर्म फल को भोगता है दूसरा नहीं भोगता है, किन्तु प्रकाशता है। इस प्रकार वेद में और सत् शास्त्र में भोक्ता अभोक्ता आदि भेद पूर्वक जीव और ईश्वर कहे गये हैं। अतः भेद प्रतीत होता है। और श्रुति में कर्म तथा उपासनाओं का भी विधान है। जीव और ईश्वर के अभेद रहने पर कर्मोपासना के अधिकारी के अभाव से वह विधान सङ्गत = युक्त नहीं होगा। इसी प्रकार उपास्य देव ईश्वर के अभाव से उपासना का भी सम्भव नहीं होगा, और ऐसा होने पर उस उपासना के बोधक वेद प्रमाणता को नहीं प्राप्त होगा। हे महा प्रभो ! उक्त हेतुओं से मेरे चित्तमें एकता नहीं भासती है। हे देव ! जिस प्रकार से एकता भासे = प्रतीत हो, उस प्रकार की कृपा = उपदेश करने के लिये आप समर्थ हो। ॥११७-१२२॥

शृणु शिष्य ! विचारं ते कथयिष्यामि निर्मलम् ।
कथनाद् यस्य शंकाख्यपङ्कः सद्यो निवर्त्स्यति ॥१२३॥

घटाकाशो जलाकाशो मेघाकाशश्च कथ्यते ।
महाकाशश्चतुर्धाऽयमाकाशो भिद्यते यथा ॥१२४॥

कूटस्थो जीव ईशश्च ब्रह्म च प्रोच्यते चितिः ।
चतुर्धा भिद्यतेऽप्येकश्चेतनात्मा न संशयः ॥१२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एषां स्वरूपं विज्ञाय विवेकेनानुभूतितः ।
सर्वां शंकां स्वयं छित्त्वा ज्ञानान्मोक्षमवाप्स्यसि ।।१२६।।
जलपूर्णघटस्य स्यादवकाशप्रदं नभः ।
पण्डितैर्युक्तिकुशलै र्घटाकाशः स उच्यते ।।१२७।।
जलपूर्णे घटे यच्च नभसः प्रतिबिम्बकम् ।
घटाकाशेन युक्तः स जलाकाशोऽभिधीयते ।।१२८।।

हे शिष्य ! सुनो अत्यन्त निर्मल विचार की बात मैं तुझे कहता हूँ (कहूँगा) कि जिसके सुनने से शंकानामक पङ्क=दोष शीघ्र निवृत्त होगा। यह एक आकाश, घटाऽकाश, जलाकाश, मेघाकाश और महाकाश इस प्रकार चार प्रकार कहा जाता है। और जैसे भेद को प्राप्त होता है. तैसे ही चिति=चेतनात्मा भी एक होता हुआ कूटस्थ, जीव, ईश्वर और ब्रह्म कहा जाता है। और वह एक चेतनात्मा चार प्रकार के भेद को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। इनके स्वरूप को जानकर और विवेक द्वारा स्वयं अनुभव से सब शंकाओं को नष्ट कर के ज्ञान से मोक्ष पावोगे। जल से पूर्ण घट को अवकाश देनेवाला जो आकाश होता है, युक्ति में निपुण पण्डितों से वह आकाश का प्रदेश (भाग) घटाकाश कहा जाता है और जल से पूर्ण घट में जो आकाश का प्रतिविम्ब होता है, घटाकाश से युक्त उस प्रतिविम्ब को जलाकाश कहा जाता है ।।१२३-१२८।।

स्वल्पे जलेऽपि गाम्भीर्यं नभसः प्रतिविन्बनात् ।
भाति कल्पितरूपेण नीरूपप्रतिविम्बनम् ।।१२९।।
किञ्च रूपविहीनस्य रूपस्य प्रतिविम्बवत् ।
आकाशप्रतिबिम्बश्च विना रूपं प्रसिद्ध्यति ।।१३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेघानामवकाशं यत्प्रददाति स्वयं नभः ।
आभासो[1] नभसो मेघे मेघाकाशो द्वयं स्मृतः ।।१३१।।

मेघे तोयस्य सत्त्वं तु वर्षणादनुमीयते ।
तत्राप्याभासविज्ञानं जायते सर्वसम्मतम् ।१३२।।

ब्रह्माण्डादे र्बहिस्तद्वदन्तरे यद्धि वर्तते ।
नभोरूपं महाकाशं तं वदन्ति विचक्षणाः ।।१३३।।

चतुर्विधस्य शून्यस्य लक्षणं कथितं मया ।
श्रूयतां चेतनस्यापि यतो ज्ञानं प्रजायते ।।१३४।।

मते र्व्यष्टेरबोधस्य वाधिष्ठानं हि चेतनम् ।
घटाकाशेन तुल्योऽसौ कूटस्थो नैव जायते ।।१३५।।

आकाश के प्रतिविम्ब पड़ने से अत्यल्प जल में भी गम्भीरता प्रतीत होती है। तहाँ तद्यपि आकाश रूप रहित रहता है तथापि तेज़ आदि गत रूप आकाश में कल्पित होता है। तथा दूरता से नील रूप कल्पित होता है और कल्पित रूप द्वारा नीरूप आकाश का प्रतिविम्ब होता है और रूप रहित रूपके प्रतिविम्ब समान नीरूप आकाश का रूप के बिना प्रतिविम्ब हो सकता है। और जो मेघों को स्वयं अकाश अवकाश देता है और मेघ में आकाश का अभास होता है सो दोनों मेघाकाश कहा जाता है। मेघ से जल की वर्षा होती है। इससे मेघ में तोय = जल का अनुमान होता है, और उस जल में सर्व सम्मत अभास का विज्ञान मी होता है

१—ईषद् भासनमाभासः प्रतिविम्बस्तथाविधः। विम्बलक्षणहीनः सन् विम्बवद् भासते स हि ।। पञ्चदशी प्र० ८।३२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥१३२॥ ब्रह्माण्ड आदि से बाहर और तैसे ही अन्तर = मध्य में भी जो आकाश का स्वरूप रहता है। उस को चतुर लोग महाकाश कहते हैं। ।१३३ मैंने चार प्रकार के शून्य = आकाश का लक्षण कहा अब चेतन के लक्षणों को सुनो, कि जिससे ज्ञान होता है ॥१३४ व्यष्टि = अंशरूप पृथक् बुद्धि वा अबोध = अज्ञान का अधिष्ठान रूप जो चेतन सो घटाकाश के तुल्य कूटस्थ = निर्विकार हैं। अतः वह उत्पन्न नहीं होता है ॥१३५॥

'अधिष्ठानतया देहद्वयावच्छिन्नचेतनः।
कूटवन्निर्विकारेण स्थितः कूटस्थ उच्यते ॥१३६॥

देहेन्द्रियादियुक्तस्य जीवाभासभ्रमस्य वा।
अधिष्ठानचितिः सैषा कूटस्थाऽत्र विवक्षिता ॥१३७।

कामकर्मादियुक्तायां बुद्धौ चित्प्रतिबिम्बनम्[1]।
कूटस्थेन युतं जीवं जलाकाशसमं विदुः ॥१३८॥

कूटस्थे कल्पिता बुद्धिस्तत्र चित्प्रतिबिम्बकः।
प्राणानां धारणाज्जीवः संसारेण स युज्यते ॥१३९॥

कूटस्थो ब्रह्मणाऽभिन्नः सैवाभासस्य साधकः।
स्फटिके रक्ततां यद्वद्रक्तपुष्पं प्रसाधयेत ॥१४०॥

"अविद्याकृतदेहादिसङ्घाते प्रतिबिम्बिता।
चिच्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिञ्जीव इत्यभिधीयते" ॥१४१॥

१—अन्तःकरणैक्याध्यासापन्नस्य तद्धर्मानुविधायित्वमेव तत्र प्रतिबिम्बितत्वम्। इति ब्रह्मविद्याभरणे ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधिष्ठाना च साभासा बुद्धिवृ त्तिसमन्विता ।
जीवशब्दस्य वाच्यार्थो लक्ष्यः कूटस्थ उच्यते ॥१४२॥

स्थूल सूक्ष्म दोनों देहों से अवच्छिन्न=परिमित कूट तुल्य निर्विकार रूप से तथा अधिष्ठान रूप से स्थिर चेतन कूटस्थ कहा जाता है। अथवा देहेन्द्रियादि से युक्त जीवाभास जीवत्व की प्रतीति रूप भ्रम का अधिष्ठानरूप जो चिति आत्मा, सो यह चिति यहाँ कूटस्थ विवक्षित है। काम और कर्म=वासना अदृष्टादियुक्त बुद्धि में कूटस्थ सहित चेतन के प्रतिविम्ब को जलाकाश तुल्य जीव जानते हैं। कूटस्थ में बुद्धि कल्पित=सिद्ध होती है और बुद्धि में चेतन का प्रतिविम्ब होता है। वही प्राणों के धारण से जीव होकर जन्मादिरूप संसार से युक्त होता है। कूटस्थ ब्रह्म के साथ अभिन्न रहता है और वह कूटस्थ ही बुद्धि में आभास को सिद्ध करता है, जैसे स्फटिक में लाली को लाल पुष्प सिद्ध करता है। अतः अविद्या से रचित देहादि के संघात में प्रतिविम्ब वाला चेतनात्मा जीव लोक में जीव इस शब्द से कहा जाता है और अधिष्ठान तथा आभास सहित निजवृत्तियों से संयुक्त बुद्धि जीव शब्द का वाच्य अर्थ होता है और कूटस्थ मात्र लक्ष्य अर्थ कहा जाता है ॥१३६-१४२॥

सुषुप्तावपि बुद्धिः सा वर्तते बीजरूपतः ।
प्राज्ञनामा ततो जीवस्तत्राप्यस्तित्वमश्नुते ॥१४३॥
व्यष्ट्यज्ञानेऽथवाऽऽभासः स्वाधिष्ठानेन संयुतः ।
जीवशब्दाभिधेयः स्याल्लक्ष्य आत्मा निरामयः ॥१४४॥
भोक्तृजीवस्वरूपे च व्यष्ट्यज्ञानं तथा चितिम् ।
वासनाबुद्धिचित्तादीन् सर्वमन्तर्गतं विदुः ॥१४५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चितिरूपे न भोगादिरितरत्रैव वर्तते ।
गमनागमनाद्याश्च क्रियास्तत्र न चात्मनि ॥१४६॥
मायायां चेतनाभासो निजाधिष्ठानसंयुतः ।
ईशशब्दस्य वाच्यार्थोऽन्तर्यामी मेघखं यथा ॥१४७॥

मायायां[1] तु य आभास स ईश इति कथ्यते ।
मेघाकाशसमो मुक्तोऽप्यन्तर्यामी स एव हि ॥१४८॥

सुषुप्ति काल में भी वह बुद्धि बीज=कारणरूप से रहती है, अतः प्राज्ञ नाम वाला जीव उस अवस्था में भी सत्ता को प्राप्त करता है (रहता है) अथवा सदा वर्तमान रहनेवाला व्यष्टि अज्ञान में अपने अधिष्ठान के सहित आभास जीव शब्द का अभिधेय=वाच्यार्थ है और निरामय=शुद्ध आत्मा लक्ष्य है भोक्ता जीव के स्वरूप में व्यष्टि अज्ञान, चेतनात्मा, वासना, बुद्धि और चित्त आदि इन सब को ज्ञानी अन्तर्गत जानते हैं। किन्तु चेतन स्वरूप में कर्मफल भोगादि विकार नहीं होते हैं, चेतन स्वरूप से अन्य में ही भोगादि होते हैं। इसी प्रकार गमनागमनादि रूप क्रिया भी आत्मासे अन्य में ही होती है, आत्मा में नहीं, अपने अधिष्ठान के सहित माया में चेतन ब्रह्म का आभास ईश्वर शब्द का वाचयार्थ होता है, सो मेघाकाश के समान है और वही अन्तर्यामी है। सो (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् श्वेता०४-१०) इत्यादि श्रुति में प्रसिद्ध है वस्तुतः माया में जो

१—कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः। कार्यंकारतांहित्वा पूर्णंवोधोऽवशिष्यते। शुकरहस्योप २।१-१२। इत्यादि वचन से भी मायी में ईश्वरत्व और अन्तः कारणादि युक्त में जीवत्व सिद्ध होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आभास होता है, सो ईश्वर शब्द से कहा जाता है और वह मेघाकाश के समान है और नित्यमुक्त होता हुआ भी वही अन्तर्यामी है (जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वमेव भवति। नृसिंहोत्तरता० ।६) प्रकृति स्वयम् माया और अविद्या स्वरूप होती है और आभास द्वारा जीवेश्वरभाव को सिद्ध करती है ॥१४३-१४८॥

"अस्य द्वैतेन्द्रजालस्य यदुपादानकारणम् ।
अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्मकारणमुच्यते ॥१४९॥

अपास्ताज्ञान ईशोऽसावस्थूलाद्युक्तिगोचरः ।
साभासाज्ञानयुक्तः सन् साक्ष्यन्तर्यामितां व्रजेत्" ॥१५०॥

बहिरन्तश्च सर्वत्र समं पूर्णं हि चेतनम् ।
महाकाशेन तुल्यं तद् ब्रह्म भेदै विवर्जितम् ॥१५१॥

न तद्दूरेऽन्तिके नापि नैव ते नापि मे भवेत् ।
तद् दृष्ट्या सर्वथैकत्वं भेदो मायामयो यतः ॥१५२॥

चतुर्धा चेतनं प्रोक्तमौपाधिकविभेदतः ।
जीवः कर्मफलं भुङ्क्ते कूटस्थः केवलोऽव्ययः ॥१५३॥

कर्मापि कुरुते जीवश्चिदाभासो मतो हि यः ।
फलदाता भवेदीशो नित्यमाभासलक्षणः ॥१५४॥

असङ्गश्चेतनात्मात्र सर्वथा भेदवर्जितः ।
तत्र भेदं प्रपश्यन्ति ये ते मोहवशीकृताः ॥१५४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस द्वैत=संसाररूप इन्द्रजाल का उपादान कारण जो अज्ञान=माया है, उसका आश्रयण करके ब्रह्म कारण कहा जाता है। अज्ञानादि रहित वह ईश्वर (अस्थूल) इत्यादि श्रुति का विषय है। आभास और अज्ञानरूप उपाधि से युक्ति होता हुआ साक्षी अन्तर्यामिता को प्राप्त होता है। सब के बाहर और भीतर सम तुल्यरूप से पूर्ण व्यापक महाकाश तुल्य जो चेतन सो भेदों से रहित ब्रह्म है। वह किसी से दूर वा समीप नहीं है, न होता है, न उसमें तेरा मेरा भेद है। अतः उस ब्रह्म दृष्टि से सर्वथा एकत्व=अभेद है, यत. भेद मायामय=मिथ्या है। औपाधिक=उपाधिकल्पित विभेद से चार प्रकार के चेतन कहे गये हैं। तहाँ जीव कर्मफल को भोगता है और कूटस्थात्मा केवलशुद्ध अव्यय=निर्विकार नित्य है। जो जीव चिदाभास रूप माना गया है, वह कर्म भी करता है और नित्य=सदा आभास स्वरूप ईश्वर फलदाता भी होता है और इस जीवेश्वरादि में सर्वत्र असङ्ग चेतन आत्मा सर्वथा भेद रहित है, तहाँ जो भेद को सत्य समझते हैं सो मोह के बश में किये गये हैं ॥१४९-१५५॥

व्यावहारिकभेदेन सर्वा व्यवहृतिः स्थिता ।
पारमार्थिकमद्वैतं तेनाभेदं श्रुतिर्जगौ ॥१५६॥
'मायामयत्वसिद्धौ च प्रपञ्चस्य प्रमाणतः ।
प्रत्यक्षादिप्रमाणानां प्रामाण्यं व्यावहारिकम् ॥१५७॥
अद्वैतागमवाक्यं तु तत्त्वावेदनलक्षणम् ।
प्रमाणभावं भजते बाधवैधुर्यहेतुतः ॥१५८॥,,
''तत्परत्वात्परत्वाच्च निर्दोषत्वाच्च वैदिकम् ।
पूर्वस्य वाधकं नायं सर्प इत्यादि वाक्यवत् ॥१५९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्थं ते शिष्य ! प्रश्नस्य समाधानं मया कृतम् ।
वृक्षस्थपक्षितुल्यौ तौ जीवेशौ कथितौ श्रुतौ ।।१६० ।
एकस्यफलभोक्तृत्वमन्यस्य फलदातृता ।
नभश्छाये यथा भिन्नौ स्वरूपेऽभिन्नरूपिणौ ।।१६१।।

क्योंकि व्यावहारिक = मिथ्या भेद से सब व्यवहार = कर्मोपासनादि स्थिर होता है और पारमार्थिक = सत्य अद्वैत है, अतः श्रुति ने जीव ब्रह्मादि का अभेद कहा है। न्याय मकरन्द में कहा गया है कि श्रुति स्मृति आदिरूप प्रमाण से प्रपञ्च = संसार के माया-मयत्व = मिथ्यात्व सिद्ध होने पर प्रपञ्च = संसार = भेद विषयक प्रत्यक्षादि प्रमाणों की प्रमाणता व्यवहारिक सिद्ध होती है,। अद्वैतात्म बोधक वेद वाक्य तो सत्य वस्तु की बोधकता स्वरूप प्रमाणता को प्राप्त करता है, क्योंकि बाध का वैधूर्य = आभाव ही वेद वाक्य की प्रमाणता में हेतु है। अद्वैतागमादि से भेदादि विषयक प्रत्यक्षादि की प्रमाणता बाधित हाती है और अद्वैतागम की प्रमाणता का बाधक कोई नहीं है। अतः अद्वैत सिद्धि सिद्धान्त सार में कहा गया है कि प्रत्यक्षादि द्वैत की सत्यता परक नहीं किन्तु व्यवहार परक है। अद्वैतागम तत् = अद्वैत परक है, तथा प्रत्यक्षादि से उत्तम = पश्चात् भावी और निर्दोष = सर्वज्ञ रचित है। अतः पूर्वगत प्रत्यक्षादि का वैदिक वाक्य बाधक है, जैसे कि पूर्वकालिक सर्प भ्रान्ति का उत्तरकालिक यह सर्प नहीं ऐसा आप्त वचन बाधक होता है। स्मृति का वचन भी है कि (प्राबल्यमागमस्यैव जात्या तेषु त्रिषु स्मृतम्) हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तेरे प्रश्न का समाधान किया और वृक्ष में स्थिर पक्षि तुल्य सुने गये जीव और ईश्वर को कहा। उनमें एक को कर्म फल भोक्तृत्व है, अन्य को फल दातृत्व है और दोनों दो आकाश की छाया के समान भिन्न हैं, सत्य स्वरूप में अभिन्न स्वरूप वाले हैं ।।१५६-१६१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहं ब्रह्मास्मि तस्मात्त्वं जानीयाः सद्विवेकतः ।
अहं शब्दस्य लक्ष्यार्थं कूटस्थं विद्धि निर्मलम् ॥१६२॥

ब्रह्म शब्दस्य लक्ष्यार्थो महाकाशसमो विभुः ।
तेन चास्ति तवैकत्वं सत्कूटस्थस्वरूपिणः ॥१६३॥

असद् भेदं समालोक्य नाहं ब्रह्मेतिमन्यसे ।
यावत्तावद् भयं दैन्यं दुःखं च तव सम्भवेत् ॥१६४॥

अहं ब्रह्मेति विज्ञानं कस्य संजायते प्रभो ! ।
कूटस्थस्याथवाऽन्यस्य दोषः सर्वत्र भाति मे ॥१६५॥

कूटस्थे निर्विकारे नो तस्य ज्ञानस्य सम्भवः ।
आभासे सम्भवज्ज्ञानं मिथ्याज्ञानं हि तद् भवेत् ॥

अवस्था सप्त कथ्यन्ते चिदाभासस्य ताः शृणु ।
तत्रैव जायते ज्ञानं कूटस्थे चेतने न हि ॥१६७॥

अज्ञानमावृत्ति भ्रान्ति ज्ञानं च द्विविधं तथा ।
शोकनाशोऽतिहर्षश्चेत्यवस्था सप्तकं विदुः ।१६८।

अतः सत् कूटस्थ स्वरूप के विवेक द्वारा तुम (अहं ब्रह्मास्मि) मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप हूँ ऐसा जानो और निर्मल = शुद्ध कूटस्थ को अहं शब्द के लक्ष्यार्थ स्वरूप समझो और ब्रह्म शब्द के लक्ष्यार्थ जो महाकाश तुल्य विभु है, उस के साथ सत्य कूटस्थ स्वरूप वाले तुमको एकता = अभेद है। असत् भेद को सत् समझ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर जब तक तुम "मैं ब्रह्म नहीं हूँ" ऐसा मानोगे, तब तक तुमको भय दीनता और दुःख होगें शिष्य का प्रश्न है कि हे प्रभो! "मैं ब्रह्म हूँ" यह विज्ञान = अनुभव कूटस्थ को अथवा अन्य (आभास) को किसको होता है। मुझे सर्वत्र = दोनों पक्ष में दोष प्रतीत होता है। क्योंकि निर्विकार कूटस्थ में उस (अहं ब्रह्मास्मि) ज्ञान का सम्भव नहीं है और आभास में होता हुआ वह ज्ञान मिथ्या भ्रम रूप ही ज्ञान होगा, क्योंकि आभास ब्रह्मस्वरूप नहीं है। गुरु जी बोले कि चिदाभास = व्यावहारिक जीव की सात अवस्था कही जाती है, उन्हे सुनो। उन अवस्थाओं में ज्ञान के होने से चिदाभास (जीव) में ही ज्ञान होता है, कूटस्थ (निर्विकार) चेतन में नहीं, अज्ञान (भावस्वरूप अविद्या) आवृत्ति (अज्ञान कृत आवरण) भ्रान्ति = भ्रम, परोक्ष और अपरोक्ष दो प्रकार के ज्ञान, शोक का नाश और अत्यन्त हर्ष = आनन्द ये सात अवस्था विद्वान् जानते हैं। अर्थात् व्यावहारिक जीव के ये दशा विशेष ज्ञानी समझते हैं ॥१६२-१६८॥

नाहं ब्रह्म विजानामि सदेत्थं कथ्यते जनैः।
तदज्ञानकृतं तेन द्विधाऽऽवरणसम्भवः ॥१६९॥

ब्रह्म नास्ति न भातीति व्यवहारस्य कारणम्।
असत्त्वापादकञ्चैकमभानापादकं परम् ॥१७०॥

जन्मादेः सुखदुःखादेः कामादेः पुण्यपापयोः।
स्वस्वरूपे प्रतीतिर्या सा भ्रान्ति र्वेदसम्मता ॥१७१॥

धर्मयुक्तशरीराणामात्मनि प्रतिभासनम्।
आत्मनो वा शरीरेषु भ्रान्तिः शोकस्य कारणम् ॥१७२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परोक्षमपरोक्षं[1] च ज्ञानं वै द्विविधं भवेत् ।
अस्ति ब्रह्म परोक्षं तदहं ब्रह्मापरोक्षकम् ॥१७३॥
अस्ति ब्रह्मेति विज्ञानादसत्त्वाऽऽपादिकाऽऽवृत्तिः ॥
नश्यत्येवं द्वितीयेन मोहजालं विनश्यति ॥१७४॥

मनुष्य सदा इस प्रकार कहते हैं कि "मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूँ" सो कथन अज्ञान कृत (जन्य) होता है और उस अज्ञान से दो प्रकार के आवरण होते हैं। तहाँ ब्रह्म नहीं है इस व्यवहार का कारण असत्त्वापादक=असत्त्व का साधक एक आवरण होता है और ब्रह्म नहीं भासता है इस व्यवहार का कारण दूसरा अभानापादक आवरण होता है। जन्म मरणादि, सुख दुःखादि कामादि और पुण्य पाप की जो अपने सत्यस्वरूप में प्रतीति होती है, सो वेद सम्मत भ्रान्ति कही जाती है। और जन्मादि धर्म युक्त शरीरों की आत्मा में प्रतीति, या आत्मा की शरीरों में अभेदादि रूप से प्रतीति जो होती है, सो भ्रान्ति शोक का कारण होती है, अतः उस को शोक भी कहते हैं। परोक्ष और अपरोक्ष दो प्रकार का ब्रह्मज्ञान होता है, तहाँ ब्रह्म है ऐसा परोक्ष ज्ञान होता है मैं ब्रह्म हूँ ऐसा वह अपरोक्षज्ञान होता है और ब्रह्म है ऐसे परोक्ष ज्ञान से असत्त्वापादक आवरण नष्ट होता है और दूसरे अपरोक्ष ज्ञान से मोह का विस्तार रूप संसार बन्धन नष्ट होता है ॥१६९-१७४॥

१—अभिव्यक्तचैतन्याभिन्नतया भासमानत्वमर्थापरोक्षत्वम् । स्वाविषयकज्ञानाजन्यज्ञानत्वं ज्ञानेऽपरोक्षत्वम् । विशेषणज्ञानजन्यविशिष्ट-ज्ञानेऽव्याप्तिवारणाय, स्वाविषयविषयकेति । विशेषणस्यापि विशिष्टज्ञान-विषयत्वान्नाव्याप्तिः । तादृशज्ञानजन्यव्यवहारविषयत्वयोग्यत्वं चार्थस्या-परोक्षत्वम्, तद्भिन्नं परोक्षत्वमित्यादि (विद्याभरणे)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्मादिका न मे सन्ति न क्लेशा नैव संसृतिः ।
अजन्माऽहं च कूटस्थो भ्रान्तिनाशोऽयमुत्तमः ॥१७५॥

अद्वयात्मस्वरूपस्य विज्ञानाज्ञायते सुखम् ।
अपूर्वं संशयैः शून्यमतिहर्षं तु विद्धि तत् ॥१७६॥

अवस्था उक्तवानस्मि चिदाभासस्य नात्मनः ।
जायते तत्र विज्ञानं प्रष्टव्यं पृच्छ्यतां पुनः ॥१७७॥

आभासे जायते ज्ञानमहं ब्रह्मेति संश्रुतम् ।
ब्रह्मभिन्नः स आभासो भगवन्नुक्तवानसि ॥१७८॥

स कथं स्वयमात्मानं ब्रह्मविद्यादसन्मयः ।
विद्याच्चेद् भ्रान्तिरेव स्यान्न ततः कुशली भवेत् ॥१७९॥

इति मे संशयो देव जायते तं विनाशय ।
कूटस्थरूपताऽऽभासे स्यात्तदा ब्रह्म सम्भवेत् ॥१८०॥

आभासे यद्यपि ज्ञानं जायते स तथापि हि ।
कूटस्थस्याहमर्थत्वं गृहीत्वा ब्रह्म वेत्ति च ॥१८१॥

जन्मादिरूप विकार मेरे नहीं होते हैं, न मुझे अविद्या अस्मिता रागादि रूप क्लेश हैं, न मुझमें संसृति -- जन्मादि का प्रवाह है। क्योंकि मैं जन्मादि रहित कूटस्थ हूँ, ऐसा निश्चय ही उत्तम भ्रान्ति नाश है। और अद्वैत आत्मस्वरूप के विज्ञान से अपूर्व संशय रहित सुख होता है, उस सुख को अति हर्ष समझो। आभास की अवस्थाओं को कह चुका हूँ, आत्मा की नहीं। उन अवस्थाओं में अर्थात् आभास में ही विज्ञान होता है। यहाँ पूछने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य हो सो फिर पूछो। शिष्य बोला हे भगवन्! "अहं ब्रह्मास्मि" यह ज्ञान आभास में होता है, यह मैंने खूब सुना, परन्तु वह आभास ब्रह्म से भिन्न है, इस प्रकार आप प्रथम कह चुके हैं। वह ब्रह्म से भिन्न असत् स्वरूप आभास अपने स्वरूप को स्वयं सत् ब्रह्म स्वरूप कैसे समझेगा। यदि ब्रह्म स्वरूप अपने को कथञ्चित समझेगा, तो वह उसका ज्ञान भ्रान्ति स्वरूप ही होगा और उस भ्रान्ति से वह कुशल का भागी नहीं होगा। हे देव! यह संशय मुझे होता है, उसको विनष्ट करो। यदि आभास में कूटस्थ रूपता हो, तो वह ब्रह्म हो सकता है, अन्यथा नहीं। गुरु बोले कि यद्यपि "अहं ब्रह्मास्मि" यह ज्ञान अभास में होता है, तो भी वह आभास कूटस्थ के भी अहं शब्दार्थत्व को ग्रहण (ज्ञान) करके अहमर्थ को ब्रह्म स्वरूप समझता है!।१७४-१८१।।

अहमर्थतया भाति कूटस्थः साक्षिरूपतः ।
आभासः साक्ष्यरूपेण चान्तःकरण वृत्तितः ।।१८२।।

ब्रह्मणा[1] मुख्यसामानाऽधिकरण्येन भासते ।
कूटस्थो बाधसामानाऽधिकरण्येन भाति सः ।।१८३।।

अहं ब्रह्मेति विज्ञानाद् बाधितं बुध्यते जगत् ।
आभासोऽपि जगत्तस्माद् बाधितो भवति ध्रुवम् ।।१८४।।

१—भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तानां शव्दानामेकस्मिन्नर्थे प्रवृत्तिः सामानाधिकरण्यम् ।। सामानाधिकरण्यं च विशेषणविशेष्यता। लक्ष्यलक्षणभावश्च पदार्थप्रत्यगात्मनाम् ।।१।। इत्यादि तत्त्वानुसंधाने ।। प्रवृत्तिनिमित्तत्वं च, वाच्यत्वे सति वाच्यवृत्तित्वे सति वाच्यप्रकारकोपस्थितिजनकत्वम्। यथा घटत्वादौ। प्रकारोनाम-अपृथक्सिद्धो धर्मः ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्यार्थसुमतिं कृत्वा त्वहं ब्रह्मेति जानतः ।
आभासस्य हि यज्ज्ञानं मिथ्याज्ञानं न तद् भवेत् ॥१८५॥

कूटस्थस्य सदाऽभेदो ब्रह्मणासह वर्तते ।
बाधकाले भवत्येवाऽऽभासस्य तत्स्वरूपता ॥१८६॥

अहं शब्द के अर्थ रूप से भासता हुआ कूटस्थ तो साक्षी स्वरूप से भासता है और अन्तःकरण की वृत्ति द्वारा साक्ष्य = विषयरूप से आभास भासता है और ब्रह्म के साथ मुख्य सामानाधिकरण्य = वास्तविक अभिन्न स्वरूप से कूटथ "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञान काल में भासता है। और बाध सामानाधिकरण्य = स्वविलय द्वारा अभिन्न स्वरूप से वह आभास भासता है। और (अहं ब्रह्म) इस विज्ञान से आभास जगत् को बाधित (मिथ्या) सकझता है। अर्थात् (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) इत्यादि श्रुति जन्य अनुभव से सब जगत् को बाधित समझता है। और आभास भी जगत् है, अतः अवश्य बाधित होता है। और अहं शब्द के लक्ष्य अर्थ विषयक सुबुद्धि = विवेक को प्राप्त करके "अहं ब्रह्म" ऐसा जानने वाले आभास को जो ज्ञान होता है। वह मिथ्या = भ्रमरूप ज्ञान नहीं होता है। क्योंकि अहं शब्द के लक्ष्यार्थ कूटस्थ को सदा ब्रह्म के साथ अभेद रहता है और बाधकाल में तो आभास को भी ब्रह्म स्वरूपता होती है ॥१८२-१८६॥

"ब्रह्माऽज्ञानाज्जगज्जन्म ब्रह्मणोऽकारणत्वतः ।
अधिष्ठानत्वमात्रेण कारणं ब्रह्म गीयते ॥१८७॥

साक्षात्कृते त्वधिष्ठाने समनन्तरनिश्चितिः ।
अध्यस्यमानं नास्तीति बाध इत्युच्यते बुधैः" ॥१८८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहंवृत्तौ क्रमेणैव कूटस्थाऽऽभासयो र्गुरो ! ।
जायते युगपद् यद्वा प्रकाशस्तत्त्वयोच्यताम् ॥१८९॥

शृणु त्वं सावधानेन मनसा कथ्यते शुभः ।
सारो यच्छ्रवणात्साधो ! बोधसूर्यं उदेष्यति ॥१९०॥

युगपद् भासते साक्षि तदाभासोऽप्यहंमतौ ।
आभासः साक्षितो भाति चितिः स्वेन प्रकाशते ॥१९१॥

अन्तःकरणसंयुक्त आभासो जीव शब्दभाक् ।
प्रमाता कथ्यते सैव साक्षिभास्यः स भोगभुक् ॥१९२॥

प्रत्यक्षादिप्रमाणैश्च स प्रमेयप्रतीतिमान् ।
सर्वत्र जायते साक्षी त्रिपुटीद्योतकः सदा ॥ ९३॥

ब्रह्म के अकारणत्व = कारणत्व रहित होने से ब्रह्म के अज्ञान = मायारूप साभास शक्ति से जगत् का जन्म होता है, परन्तु माया आदि के अधिष्ठानता मात्र से ब्रह्म भी कारण कहा जाता है और अधिष्ठान के साक्षात् (प्रत्यक्ष) कर लेने पर, जो अव्यवहित उत्तर काल में निश्चय होता है कि अध्यस्यमान = आरोपित वस्तु सत्य नहीं है। त्रिद्वानों से यह निश्चय बाध कहा जाता है। शिष्य बोला कि हे गुरो ! "अहं ब्रह्म" इस अहं वृत्ति (ज्ञान) में कूटस्थ आभास दोनों का क्रम से ही प्रकाश होता है, या युगपद् = एक काल में प्रकाश होता है, सो आप कहें। गुरु जी बोले कि सावधान मन से सुनो शुभ सार सत्यार्थ कहा जाता है। हे साधो ! जिस सार के श्रवण से ज्ञानात्मक सूर्य उदित होगा। अहं मति = वृत्ति = ज्ञान में साक्षी और आभास दोनों युगपद् = एकदा भासते हैं। तहाँ आभास तो साक्षी से प्रकाशता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और चेतनात्मा कूटस्थ अपने स्वरूप से स्वयं प्रकाशता है। अन्तः-करण सहित आभास जीव शब्द का भागी होता है, प्रमाता कहा जाता है और वही साक्षी से भास्य=प्रकाशित होता हुआ भोगों को भोगता है और प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा सर्वत्र प्रमेय की प्रतीति वाला वह प्रमाता होता है और साक्षी सदा त्रिपुटी=प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय के समूह को प्रकाशता है ॥१८९-१९२॥

प्रत्यक्षादि प्रमाणैः स बाह्यं वेत्ति तथान्तरम् ।
शब्दादि सुखदुःखादि भूतभौतिकमेव च ॥१९४॥
अन्तःकरणवैशिष्ट्ये[1] प्रमाता कथ्यते चितिः ।
सा चैवोपाधिरूपत्वे साक्षि शब्देन कथ्यते ॥१९५॥
वस्तुरूपे[2] प्रविष्टः सन् मतो व्यावर्तको हि यः ।
स विशेषणशब्देन कथ्यते गुणशब्दतः ॥१९६॥
वस्तुरूपप्रवेशेन विना व्यावर्तको हि यः ।
उपाधिः कथ्यते सैव घटादि र्नभसो यथा ॥१९७॥
अन्तःकरण युक्तस्य प्रमातृत्वं प्रसिद्ध्यति ।
तेन चोपहितस्यैव साक्षित्वं नान्यथात्मनः ॥१९८॥

१—अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहङ्कारसमन्वितो यः। बुद्धे गुंणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यवरोपि दृष्टः ॥ श्वेता० ५।८॥ बुद्धे गुंणेन अङ्गुष्ठमात्रः संकल्पाहंकारसमन्वित आराग्रमात्र आत्मा भाति। आत्मगुणेन रवितुल्यरूपो नास्ति वरो यस्मात् तथा दृष्टो भवति ॥

२—जीवो नामान्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यम्, तत्साक्षि तु-अन्तःकरणो-पहितं चैतन्यम्। अन्तःकरणस्य विशेषणोपाधित्वाभ्यामनयो र्भेदः। विशेषणं च कार्यान्वयि व्यावर्तकम्। उपाधिश्च कार्यानन्वयी व्यावर्तको वर्तमानश्च इत्यादि वेदान्त परिभाषायाम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साक्षाद्[1] द्रष्टरि संज्ञायामिति सूत्रबलादपि ।
अविद्योपाधिके वृत्त्या द्रष्टृत्वमपि सिद्धयति॥१९९॥

वह प्रमाता प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा वाहर के शब्दादि के तथा अन्तर के सुख दुःखादि को और भूत भौतिक पदार्थों को जानता हैं और अन्तःकरण से विशिष्ट=मिलित होने पर चेतनात्मा प्रमाता कहा जाता है और अन्तःकरण के उपाधि रहने पर वह चेतनात्मा साक्षी शब्द से कहा जाता हैं। व्यावर्त्य वस्तु के स्वरूप में प्रवृष्ट=कार्यान्वयी होता हुआ जो व्यावर्तक=भेदक माना गया है वह विशेषण शब्द से और गुण शब्द से कहा जाता है और जो वस्तु के स्वरूप में प्रवेश=कार्यन्वय के बिना व्यावर्तक होता है, सोई उपाधि कहा जाता है जैसे घटादि आकाश के उपाधि होते हैं। अन्तःकरण से युक्त चेतन को प्रमातृता प्रसिद्ध होती है और उससे उपहित चेतन को ही साक्षिता होती है, अन्यथा नहीं (साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्) इस व्याकरण सूत्र बल से साक्षात् द्रष्टा अर्थं में संज्ञा (नाम) रहते साक्षी शब्द सिद्ध होता है और साक्षी द्रष्टा नहीं है, ऐसी शंका होने पर कहा जाता है कि सूत्र बल से भी अविद्या रूप उपाधि वाले में, अविद्या की वृत्ति द्वारा द्रष्टृत्व= साक्षित्व भी सिद्ध होता है। अर्थात् वृत्ति द्वारा प्रकाशक होने से आत्मा का भी साक्षी नाम होता है, स्वतः नहीं ॥१९४–१९९॥

साक्षी चेतेति वेदे तु केवलस्यागुणस्य च ।
साक्षित्वं श्रूयते तस्माश्चिन्मात्रं साक्षि कथ्यते ॥२००॥

१—साक्षी स्वविषयेऽज्ञानविरोधी न भवेद् यदि । तद् वेद्ये सुखदुःखादावज्ञानं केन वार्यते ॥१॥ इत्यादि वचनात् साक्षी सुखादि प्रकाशको ज्ञेयः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यक्षेण प्रमाणेन प्रत्यक्षा प्रमितिस्तथा ।
प्रमाणेनानुमानेनाऽनुमितिश्चैव जायते ॥२०१॥

शब्देन[1] प्रमितिः शाब्दी जायते स्वात्मनोऽपि हि ।
मनसा जायते ज्ञानं तथा श्रुत्याऽवगम्यते ॥२०२॥

प्रमितिस्थचिदाभासाद् घटादि र्भासते जडः ।
अन्तःकरणयुक्ता च चेतोवृत्तिः प्रभासते ॥२०३॥

अबाधितार्थविज्ञानं प्रमितिश्च तथा स्मृतिः ।
अन्तःकरणवृत्तिः सा प्रमातयैव सम्मता ॥२०४॥

अज्ञानपरिणामात्मा भ्रमसंशयरूपिणी ।
वृत्तिः साक्ष्याश्रिता ज्ञेया साऽप्रमा[2]च निगद्यते ॥२०५॥

प्रमामूला स्मृति र्ज्ञेया प्रमा मूलप्रभावतः
अप्रमामूलिका ज्ञेया त्वप्रमा मूलदोषतः ॥२०६॥

(साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च) इत्यादि "श्वेताश्वतर" उपनिषद् में केवल निर्गुण अन्तरात्मा को भी साक्षी सुना जाता है, अतः चेतन मात्र साक्षी कहा जाता है। प्रत्यक्ष इन्द्रियरूप प्रमाण से रूपादि की प्रत्यक्ष प्रमिति = सत्यानुभूति होती है। तथा अनुमान

१—वेदान्त परिभाषा, भाट्टचिन्तामणि आदि में उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि प्रमाणों का विस्तार से वर्णन है और वृत्तिप्रभाकर में द्रष्टव्य है।

२—अप्रामाण्यं त्रिधाभिन्नं मिथ्यात्वाऽज्ञानसंशयैः । प्रामाण्यं च स्वतो ज्ञाने ज्ञानसाधनतो भवेत् ॥ इत्यादि तत्त्वदीपने ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाण से अनुमिति ही होती है। शब्द प्रमाण से शाब्दी प्रमिति = प्रमा आत्मा की भी होती है और मन से भी आत्मा का प्रमा ज्ञान होता है, क्योंकि श्रुति से इसी प्रकार अवगम = ज्ञान होता है, कि आत्मा शब्द और मन दोनों से समझा जाता है। अन्तःकरण की वृत्तिरूप प्रमिति में वर्तमान चिदाभास से जड़ घटादि प्रभासित होते हैं और अन्तःकरण सहित चित्तवृत्ति प्रभासित होती है। जो अबाधित = सत्य अर्थ के विज्ञान रूप प्रमिति और स्मृति होती है, सो अन्तःकरण की वृत्तिरूप और प्रमाता में रहनेवाली मानी गई है। अज्ञान के परिणाम स्वरूप भ्रम संशय रूप वाली वृत्ति साक्षी के आश्रित ज्ञातव्य है। और वही अप्रमा कही जाती है। प्रमा मूलक स्मृति मूल के प्रभाव से प्रमा ज्ञातव्य है और अप्रमा-मूलक स्मृति मूल के दोष से अप्रमा ज्ञातव्य है ॥२००-२०६॥

मूलाधीनप्रमात्वेन व्यवहारस्तथा न हि ।
क्रियते नापि तत्रास्ति प्रमाणान्तरयोग्यता ॥२०७॥

यद्यपि प्रमितिः सर्वा चेतनात्मस्वरूपिणी ।
तस्याः करणजन्यत्वं सम्भवेन्न कदाचन ॥२०८॥

अतश्चितौ प्रमात्वाख्यव्यवहारस्य कारणम् ।
अन्तःकरणवृत्ति र्या करणात्सा प्रजायते ॥२०९॥

विषयेण समायुक्ता प्रमेयः प्रोच्यते चितिः ।
अन्तःकरणतः सैव प्रमाता कथ्यते बुधैः ॥२१०॥

अन्तःकरणमारभ्य विषयान्ता तु या भवेत् ।
वृत्तिस्तद्युक्तचैतन्यं प्रमाणमिति गीयते ॥२११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयाकारतां प्राप्ता या वृत्तिस्तद्युता चितिः ।
प्रमाचेतनशब्देन कथ्यते प्रमितिस्तथा ॥२१२॥

वृत्तेः सात्त्विककार्यत्वात्स्वच्छता तत्र वर्तते ।
तथापि जडतायोगादाभासेन प्रकाशते ॥२१३

और प्रमारूप स्मृति में मूल = कारण के अधिन प्रमात्व होने के कारण, उसमें तथा = प्रमात्व रूप से व्यहार नहीं होता है। और उस में प्रमाणान्तर की योग्यता भी नहीं है। अर्थात् स्मृति का जनक स्वतन्त्र कोई प्रमाण नहीं है और विषयों के प्रकाशक होने से सब प्रमिति यद्यपि चेतनात्मस्वरूप वाली होती है, अतःकरण जन्यत्व उसको कभी सम्भव नहीं है। तथापि चेतनात्मा में प्रमात्व के व्यवाहर का कारण जो अन्तःकरण की वृत्ति, सो करण से अवश्य उत्पन्न होती है, अतः प्रमिति करण जन्य कही जाती है। विषय के साथ समायुक्त = मिलित = विषयावच्छिन्न चिति (आत्मा) प्रमेय कही जाती है। आर्थात् घटादि देश में आत्मा ही अज्ञान से आवृत्त रहता है और घटाद्याकारवाली वृत्ति द्वारा अज्ञान की निवृत्ति से घटादि आत्मा से प्रकाशता है और अन्तःकरण से युक्त चेतनात्मा विद्वानों से प्रमाता कहा जाता है अन्तःकरण से विषय पर्यन्त जो अन्तःकरण की वृत्ति होती है, उस से युक्त चेतन को प्रमाण कहते हैं। विषय देश में जाकर जो वृत्ति विषयाकार को प्राप्त होती है, । उस वृत्ति से युक्त चिति प्रमाचेतन शब्द से कही जाती है तथा प्रमिति कही जाती है। यद्यपि वृत्ति के सात्त्विक अन्तःकरण के कार्य होने से उस में स्वच्छता रहती है तथापि जड़ता के भी सम्बन्ध से चिदाभास द्वारा वृत्ति प्रकाशती है, स्वयं नहीं ॥१०७–२१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मप्रकाशतश्चापि सा भाति साश्रया मितिः ।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा भासयन्नखिलं जगत् ॥२१४॥

"स्वप्रकाशोऽपि साक्ष्येव धीवृत्त्या व्याप्यतेऽन्यवत् ।
फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भि र्निवारितम् ॥२१५॥

बुद्धितत्स्थचिदाभासौ द्वावपि व्याप्नुतो घटम् ।
तत्राज्ञानं धिया नश्येदाभासेन घटः स्फुरेत् ॥२१६॥

ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता ।
स्वयं स्फुरणरूपत्वान्नाभास उपयुज्यते ।२१७॥

चक्षु र्दीपावपेक्ष्येते घटादे र्दर्शने यथा ।
न दीपदर्शने किन्तु चक्षुरेकमपेक्ष्यते ॥२१८॥"

तथैव ब्रह्मविज्ञाने वृत्तिमात्रमपेक्ष्यते ।
अज्ञाननाशनायैव नान्यत् किञ्चिदपेक्ष्यते ॥२१९॥

प्रत्यगात्मतयाभाने व्यष्टयज्ञान कृतावृत्तेः ।
भङ्गो ह्यपेक्ष्यते नान्यद् तथैवान्यप्रकाशने ॥२२०॥

और अपने आश्रय = अन्तःकरण सहित वह वृत्ति आत्मप्रकाश से भी भासती है और आत्मा ही सब जगत् को प्रकाशता हुआ स्वयं निरपेक्ष प्रकाशता है। स्वयं प्रकाश भी साक्षी ही बुद्धि वृत्ति से अन्य के समान ही व्याप्त होता है अर्थात् वृत्ति का विषय होता है। केवल फल = चिदाभास के व्याप्यत्व = विषयत्व का साक्षी में शास्त्रकारों ने निषेध किया है बुद्धि और तद्गत चिदाभास दोनों घटादि जड़ वस्तु को व्याप्त = विषय करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, तहाँ बुद्धि वृत्ति से अज्ञान नष्ट होता है और आभास से घट प्रकाशता है। ब्रह्म विषयक अज्ञान के नाश के लिये बुद्धिवृत्ति की व्याप्ति मात्र अपेक्षित होती है और ब्रह्म के स्वयं प्रकाश सर्वात्म स्वरूप होने से उस के प्रकाश के लिये चिदाभास उपयुक्त नहीं होता है। जैसे घटादि के दर्शन =ज्ञान में नेत्र और दीपादि रूप प्रकाश दोनों अपेक्षित होते हैं, दीपादि के दर्शन में दोनों अपेक्षित नहीं होते हैं, किन्तु एक चक्षु मात्र ही अपेक्षित होता है। इसी प्रकार ब्रह्म विज्ञान में अज्ञान नाश के ही लिये वृत्तिमात्र की अपेक्षा होती है, अन्य किसी की अपेक्षा नहीं होती है और प्रत्यग् = अन्तरात्मरूप से ब्रह्म के ज्ञान = प्रकाश में व्यष्टि अज्ञानकृत आवरण का नाश अपेक्षित रहताहै, जैसे अन्य वस्तु के प्रकाशन में अपेक्षित रहता है ॥२१४–२२०॥

आत्माऽऽवरणभङ्गे हि वृत्तिरेवोपयुज्यते ।
नाभासस्योपयोगोऽत्र यस्मादात्मा स्वयंप्रभः ॥२२१॥

तस्यापरोक्षवृत्त्यैव सर्वभेदभ्रमक्षयः ।
इति वेदविदां सम्यक् सिद्धान्तो ह्यभयप्रदः ॥२२२॥

असङ्गसाक्षिरूपस्य स्वप्रकाशस्य सर्वदा ।
ब्रह्मणो नेन्द्रियैः सङ्गः प्रकाशो वापि सम्भवेत् ॥२२३॥

"निःसङ्गस्य ससङ्गेन कूटस्थस्य विनाशिना ।
आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते ॥२२४॥

नैव सङ्गं विना ज्ञानमिन्द्रियैस्तस्य युज्यते ।
रूपादिरहितत्त्वेन योग्यताया असम्भवात् ॥२२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामकृष्णादिमूर्तीनां यद्यपि ब्रह्मतां जगुः ।
शिवविष्ण्वादिमूर्तीनां परमानन्दरूपताम् ॥२२६॥
पुराणज्ञास्तथा भक्तास्तत्र चेन्द्रिययोग्यता ।
वर्तत एव तज्ज्ञानं प्रत्यक्षमपि चेन्द्रियैः ॥२२७॥

आत्मा के आवरण के नाश में वृत्ति ही उपयुक्त=साधन होती है और जिससे आत्मा स्वयं प्रकाश है। अतः इस में आभास का उपयोग (फल) नहीं होता है। और उस आत्मा के अपरोक्ष वृत्तिरूप ज्ञान से ही सब भेद भ्रम का नाश होता है, यह वेद वेत्ताओं का अभयप्रद सिद्धान्त है। परन्तु यहाँ संशय होता है कि असङ्ग साक्षिस्वरूप सदा स्वयं प्रकाश ब्रह्म का इन्दियों के साथ सङ्ग या इन्द्रियों से प्रकाश का सम्भव नहीं है। क्योंकि वार्तिक है कि निःसङ्ग कूटस्थ आत्मा का ससङ्ग विनश्वर अनात्मा के साथ वास्तव योग=सम्बन्ध नहीं हो सकता है। और सङ्ग के विना इन्द्रियों से उस ब्रह्मात्मा का, प्रत्यक्ष ज्ञान होना (मानना) युक्त नहीं है। क्योंकि ब्रह्मात्म के रूपादि रहित होने से इन्द्रियों से ज्ञान की योग्यता का असम्भव है। यद्यपि राम कृष्णादि मूर्तियों की ब्रह्मता को तथा शिव विष्णु आदि मूर्तियों की परमान्दरूपता को महापुरुषों ने कहा है क्योंकि पुराणज्ञ और भक्तलोग अब भी मूर्तियों की ब्रह्मरूपता का कथन करते हैं और मूर्तियों में इन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष ज्ञान विषयत्व की योग्यता रहती है और उनका इन्द्रियों से प्रत्यक्ष ज्ञान भी होता है ॥२२१–२२७॥

तथापि तासु मायात्वं प्रसिद्धं लोकवेदयोः ।
माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ! ॥२२८॥
इतीदं भारते वाक्यं प्रोक्तं भगवता स्वयम् ।
अरूपादिश्रुतेश्चैव मायाभिः पुरुरूपता ॥२२९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनो [1] ब्रह्मेत्युपासीताऽऽदित्यो ब्रह्मेति च श्रुतिः ।
तया मूर्तिषु विज्ञेयं ब्रह्मत्ववचनं समम् ।२३०॥

अन्यप्राणिशरीराणि भौतिकानि भवन्ति हि ।
विभूतियुक्तदेवानां साक्षान्मायामयानि तु ॥२३१॥

क्षणान्मशकतुल्यत्वं क्षणात्पर्वततुल्यता ।
हनूमतो न सम्भाव्यं विनामायामनिन्दिताम् ॥२३२॥

अनिन्दिता भवत्येषा देवानां योगिनामपि ।
राक्षसानां पिशाचानां निन्दिताऽनर्थकारिणी ॥२३३॥

तो भी लोक और वेद में इन्द्रिय योग्य मूर्तियों में मायिकता प्रसिद्ध है । और हे नारद ! जो मुझे देख रहे हो यह मुझ से माया रची गई है। महाभारत में यह वाक्य स्वयं भगवान् ने कहा है। और (अशब्दमस्पर्शमरूपम्) इत्यादि श्रुति से और (मायाभिः पुरुरूपमीयते) इत्यादि माया जन्य बहुरूपता श्रुति से भी मूर्तियों में मायामयत्व सिद्ध होता है । अतः मन को ब्रह्मरूप से उपासना करे और सूर्य ब्रह्म है, इस प्रकार भी श्रुति कहती है। उन श्रुति वचनों के समान ही मूर्तियों में ब्रह्मता बोधक सब वचनों को उपासनार्थक

१—सम्पद्रूपमध्यासरूपं च द्विविधमुपासनं भवति । तत्र सम्पन्नामाल्पेवस्तुन्यालम्बने महावस्तुदर्शनम् । तत्र चालम्बनमविद्यमानसमं कृत्वा सम्पाद्यस्यैव प्राधान्येन चिन्तनम् । अध्यासस्तु—अन्यस्मिन्नन्यदृष्टिः । आलम्बनस्यैव प्रधान्येन चिन्तनम् । इति विवरणप्रमेयसंग्रहादौ ॥ आरोप्यप्रधानासम्पत् । अधिष्ठानप्रधानोऽध्यासः ॥ इत्यादि ब्रह्मविद्याभरणे । एतत्सर्वं प्रतीकोपासनम् । अहं ग्रहोपासनं त्वन्यत् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझना चाहिये और अन्य प्राणियों के शरीर भौतिक=पञ्चभूतों के कार्य होते हैं, परन्तु विभूति युक्त देवताओं के शरीर विशेष साक्षात् मायामय भी होते हैं। अनिन्दित माया के विना हनुमानजी को क्षण में मशकतुल्यता और क्षण में पर्वत तुल्यता सम्भाव्य नहीं थी। सात्त्विक देव और योगी की भी यह माया अनिन्दित होती है। परन्तु अनर्थ करने वाली राक्षस पिशाच प्रेत भूतादि की माया निन्दित होती है ॥२२८-२३३॥

धर्मसाधुहितार्थाय मायायुक्तापि देवता ।
इज्या मान्येशबुद्ध्या च सेव्या सा हितकारिका ॥२३४॥

देवा ब्रह्मशिवाद्याश्च सात्त्विकाः परिकीर्तिताः ।
तथा प्रकटितैश्वर्या अवतारैरनेकधा ॥२३५॥

"आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥२३६॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्" ॥२३७॥

राक्षसास्तामसाः प्रोक्ता हिंसानृतविहारिणः ।
परद्रोहरता नित्यं शौचाचारविवर्जिताः ॥२३८॥

सात्त्विकत्वेऽपि देवानां कार्यशक्तिविभेदतः ।
ऐश्वर्यं भिद्यते तेषां गुणः शक्तौ च भिद्यते ॥२३९॥

यद्यपीशेऽति पूर्णा सा माया शक्तिः सुवर्तते ।
तथापि सैव देवेषु स्वांशतो वर्तते क्वचित् ॥२४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म और साधु के हित के लिये माया युक्त भी देवता, ईश्वर बुद्धि से पूज्य मान्य और सेव्य = उपास्य होती हुई हितकारक होती है। ब्रह्मा शिवादि देव सात्त्विक कहे गये हैं और अनेक प्रकार के अवतारों द्वारा प्रकटित ऐश्वर्य वाले होते हैं। (मनुस्मृति अ० १२-११६-१२०) में कहा गया है कि एक परमात्मा ही सब देवस्वरूप होता है और सब संसार एक परमात्मा में स्थिर है। और इन शरीरियों के कर्म सम्बन्ध को परमात्मा ही सिद्ध करता है। इस परमात्मा को कोई अग्नि कहते हैं, कोई मनु, कोई प्रजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राण = हिरण्यगर्भ, कोई शाश्वत = अनादि ब्रह्म कहते हैं। हिंसा और असत्य द्वारा विहारशील राक्षस तामस कहे गए हैं, सो सदा पर द्रोह में तत्पर और शौच सदाचार से रहित रहते हैं। सब देवों के सात्त्विक होते भी कार्य शक्ति में विभेद से उनके ऐश्वर्य भेद युक्त होते हैं और शक्ति में हेतुरूप गुण भिन्न होते हैं। यद्यपि ईश्वर में वह मायारूप शक्ति सदा अतिपूर्ण सम्यक् रहती है, तथापि वही देवताओं में कहीं निजांश द्वारा रहती है ॥१२३४-२४०॥

मनुष्यादिषु सर्वेषु गुणभेदेन भिन्नता ।
वर्तते च तथैश्वर्यधर्मादिगुणतो भवेत् ॥२४१॥

"कामः क्रोधो लोभदम्भाद्यसूयाऽ-
हङ्कारेर्ष्यामत्सराद्यास्तु घोराः ।
धर्मा एते राजसाः पुंप्रवृत्ति
र्यस्मादेषा जायते बन्धहेतुः ॥२४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानमालस्यजडत्वनिद्रा-
प्रमादमूढत्वमुखास्तमोगुणाः[1] ।
एतैः प्रयुक्तो न हि वेत्ति तत्त्वं,
प्रमादतोऽनर्थविधौ प्रवर्तते[2] ॥२४३॥
सत्त्वं विशुद्धं जलवत्तथापि
ताभ्यां मिलित्वा शरणाय[3] कल्पते[4] ।
यत्रात्मबिम्बः प्रतिबिम्बितः सन्
प्रकाशयत्यर्कमिवाखिलं[5] जगत् ॥२४४॥
मिश्रस्य सत्त्वस्य भवन्तिधर्मा-
स्त्वमानिताद्या नियमा यमाश्च ।
श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षुता च
दैवी च सम्पत्तिरसन्निवृत्तिः ॥२४५॥
विशुद्धसत्त्वस्य गुणाः प्रसादः
स्वात्मानुभूतिः परमोपशान्तिः ।
तृप्तिः प्रहर्षः परमात्मनिष्ठा
यया सदानन्दरसं समृच्छति" ॥२४६॥

सब मनुष्यादि में भी सत्त्वादि गुणों के भेद से भिन्नता रहती है, इसी प्रकार धर्म ऐश्वर्यादि पदार्थ भी गुण भेद से ही भिन्न होते हैं ।

---

१ = तमोंऽशाः, पा० ।२ निमग्नः, पा० ।३ शरणं गृहरक्षित्रो र्वन्धरक्षण-योरपि, इतिमेदिनी कोशे ।।४शक्तम्, पा० ।५ अर्कं इवोदितः खम्, पा० ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म स्वरूप कृत भेद कहीं नहीं होता है। काम, क्रोध, लोभ, दम्भ = कपट, असूया = परगुणों में दोषारोप, अहंकार, ईर्ष्या = परोत्कर्षाऽसहिष्णुता और मत्सर पर शुभ में द्वेष आदि घोर = भयङ्कर ये धर्म राजस होते हैं कि जिससे यह बन्धन का हेतुरूप प्रवृत्ति पुरुषों की होती है। अज्ञान आलस्य, जड़ता, निद्रा, प्रमाद, मूढ़ता आदि तमोगुणरूप होते है, इन गुणों से युक्त = प्रेरित मनुष्यादि सत्य वस्तु को नहीं समझते हैं और प्रमाद से अनर्थ की विधि = विधान में प्रवृत्त होते हैं। यद्यपि विशुद्ध सत्त्वगुण जल के समान शीतल स्वच्छ होता है, तो भी उन रजो गुण तमोगुण के साथ मिल कर शरण = बन्धन के लिये होता है। अर्थात् शरीर रूप गृह का कारण होता है। और जहाँ आत्मस्वरूप विम्ब प्रतिविम्ब होकर, सूर्य तुल्य सब जगत् का प्रकाश करता है। अन्य गुणों से मिश्रित = युक्त सत्त्व गुण के अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा आदि धर्म होते हैं तथा यम, नियम, श्रद्धा, भक्ति, मुमुक्षुता और अभय, सत्त्व संशुद्धि आदि रूप दैवी सम्पत्ति, तथा असत् से निवृत्तिरूप धर्म होते हैं और प्रसाद = प्रसन्नता, स्वात्मानुभव, परम उपशान्ति, तृप्ति = सन्तोष, प्रहर्ष = आनन्द और परमात्म विषयक निष्ठा = प्रीति = स्थिति ये सब विशुद्ध सत्त्वमात्र के धर्म होते हैं। और जिस परमात्मनिष्ठा भक्ति से तो मनुष्य सदा आनन्द स्वरूप रस को ही प्राप्त करता है ॥२४१-२४६॥

"ज्ञानमैश्वर्यवैराग्ये धर्मश्च सत्त्वतो ह्यमी ।
अनैश्वर्यमवैराग्यमधर्मोऽज्ञानमन्यतः ॥२४७॥

ज्ञानेन मोक्षो धर्मेण गतिरूर्ध्वा भवेदिति ।
वैराग्येणाक्षरलय ऐश्वर्येणाहता गतिः ॥२४८॥

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं च पिशाचत्वं राक्षसत्वं च तामसाः ॥२४९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परप्राणधनस्त्रीणां लोलुपा राक्षसा मताः ।
असत्याऽशौचनित्याश्च पिशाचा मांसभोजिनः ॥२५०॥
देवा वेदपरा नित्यं धर्मनिष्ठास्तपस्विनः ।
आत्मज्ञानपराः शुद्धा उपकारपरायणाः ॥२५१॥
तेषां मूर्तिमतां[1] क्वापि ज्ञानमिन्द्रियजं भवेत् ।
ब्रह्मणो नैव कुत्रापि ज्ञानमिन्द्रियजं श्रुतम् ॥२५२॥

सांख्य के अनुसार ज्ञान, ऐश्वर्य = अणिमादि सिद्धि, वैराग्य और धर्म ये चार सत्त्वगुण से होते हैं और अनैश्वर्य, अवैराग्य, अधर्म और अज्ञान ये चार सत्त्व से अन्य गुण से होते हैं। और ज्ञान से मोक्ष होता है, धर्म से ऊर्ध्व गति (स्वर्गादि) होती है। केवल वैराग्य से अक्षर = प्रकृति में लय होता है ऐश्वर्य से अप्रतिहत गति होती है। इसी प्रकार गीता में भी ऊर्ध्वादि गति सत्त्वादि से वर्णित है। और अन्यत्र वर्णित है कि ज्ञान रहित सात्त्विक प्राणी मरने पर देवभाव को प्राप्त होते हैं। राजस फिर मनुष्यता को पाते हैं और तामस प्राणी = मनुष्य तिर्यक् भाव = पशुतादि वा पिशाचता या राक्षसता को प्राप्त होते हैं। तहाँ अन्य के प्राण, धन और स्त्री के लोलुप राक्षस माने गये हैं। सदा असत्य अशौचयुक्त माँस भोजी पिशाच माने गये हैं। सदा वेद

१—ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे, विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तो महासंकटे। रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः। सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥१॥ गरुडपु० पू० आ० खं० अ० ११३।१५। इत्यादि वचनों के अनुसार प्रधानदेव भी स्वकर्म फल भागी सिद्ध होते हैं, वे ही साक्षात् ब्रह्म या ईश्वर नहीं हैं, फिर अन्य की तो कथा ही क्या है, किन्तु ब्रह्मज्ञ भी ब्रह्म होते हैं ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परायण, धर्मनिष्ठ, तपस्वी, आत्मज्ञानपरायण, शुद्ध, और उपकार परायण देव होते हैं। उन मूर्ति वाले देवों का कहीं इन्द्रिय जन्य ज्ञान होता है, परन्तु ब्रह्म का इन्द्रिय जन्य ज्ञान कहीं भी नहीं सुना गया है ॥२४७-२५२॥

शब्दे प्रत्यक्ष बोधाय सामर्थ्यं न हि विद्यते ।
ततो ज्ञानं न शब्देन ब्रह्मरणः क्वापि सम्भवि ॥२५३॥
परोक्षं शब्दजं ज्ञानं सर्वत्रैवोपलभ्यते ।
प्रत्यक्षमिन्द्रियै र्जन्यं शब्दादे र्वाह्यवस्तुनः ॥२५४॥
इन्द्रियेरण विना क्वापि प्रत्यक्षं नैव जायते ।
नास्त्येवं नियमः शिष्य ! मन्यतां कर्हिचित् क्वचित् ॥२५५॥
वाह्येन्द्रियं विनैवाङ्ग ! प्रत्यक्षं मनसैव हि ।
सुखदुःखादिभावानां सर्वस्यैवेह जायते ॥२५६॥
दशमोऽसीति शब्देन प्रमैवं दशमस्यं च ।
प्रत्यक्षा जायते तद्वद् ब्रह्मज्ञानं च शब्दतः ॥२५७॥
धर्मस्त्वयीति शब्देन न धर्मस्यापरोक्षता ।
एवं ब्रह्मापरोक्ष्यं हि शब्दमात्रान्न सम्भवेत् । २५८॥
इत्येवं नैव वक्तव्यं योग्यता विषयस्य हि ।
प्रत्यक्षे हेतुतां याति सन्निकर्षादिकं तथा ॥२५९॥

और शब्द में प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये सामर्थ्य नहीं रहता है, अतः शब्द से ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान कहीं होने वाला नहीं है। शब्द जन्य परोक्ष ही ज्ञान सर्वत्र उपलब्ध होता है और शब्दादि रूप बाह्य वस्तु का इन्द्रिय जन प्रत्यक्ष ज्ञान उपलब्ध होता है, अतः ब्रह्म कां प्रत्यक्ष ज्ञान अयुक्त प्रतीत होता है। ऐसी शंका होने पर गुरु जीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोले कि हे शिष्य ! बाह्य इन्द्रियों से ही प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, इन्द्रियों के विना कहीं प्रत्यक्ष नहीं होता है ऐसा नियम नहीं है। हे अङ्ग=प्यारे ! मानो=समझो कि कभी कहीं बाह्य इन्द्रियों के विना ही मन से ही सुख दुःखादि पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान सब को ही यहाँ होता है और "दशमोऽसि" तुं दशम है, इस शब्द से भी दशम को प्रत्यक्ष प्रमा रूप ही ज्ञान होता है, अतः पत्यक्ष ज्ञान में इन्द्रिय जन्यत्व का भी नियम नहीं होने से दशम ज्ञान के समान शब्द जन्य प्रत्यक्ष ब्रह्मज्ञान होता है । तुम धर्मवान् हो=तेरे स्वरूप में धर्म है, इस शब्द से जैसे धर्म का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है, तैसे ही शब्द मात्र से ब्रह्म के अपरोक्ष ज्ञान का असम्भव है । ऐसा कहना योग्य नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष में विषय की योग्यता और सम्बन्धादि भी हेतु होते हैं ॥२५३-२५६॥

वासनादेरयोग्यत्वान्न शब्देनापरोक्षता ।
दशमादेस्तु योग्यत्वात्स्याच्छब्दादपरोक्षता ॥२६०॥

ब्रह्मणः सर्वसाक्षित्वात्सर्वात्मत्वानुभूतितः ।
प्रत्यक्षयोग्यतैवास्ते सर्वथा सन्निकर्षतः ॥२६१॥

योग्यार्थसङ्गजन्याया वृत्तेः प्रत्यक्षता भवेत् ।
असम्बन्धेऽप्ययोग्यत्वे प्रत्यक्षत्वं न जायते ॥२६२॥

चित्यसङ्गे मनो योगस्तत्रैवाध्यस्तरूपतः ।
ततः शब्दः निमित्तेऽयंमानसी[1] जायते मितिः ॥२६३॥

१—साक्षात्काररूपो हि विपर्यासः (जन्माद्यध्यासः) साक्षात्काररूपेणैव तत्वसाक्षात्कारेणोच्छिद्यते । तस्मात्त्वंपदार्थस्य तत्पदार्थत्वेन साक्षात्कार एषितव्यः । एतावता हि त्वंपदार्थस्य तत्पदार्थस्य दुःखिशोकित्वादिनिवृत्ति र्नान्यथा । न चैष साक्षात्कारो मीमांसासहितस्यापि शब्दस्य प्रमाणस्य फलमपि तु प्रत्यक्षस्य । तस्मान्निर्विचिकित्सवाक्यार्थभावना परिपाकसहितान्तःकरणं त्वंपदार्थस्यापरोक्षस्य तत्तद्रूपोपाध्याकारनिराकरणेन तत्पदार्थतामनुभावयतीति युक्तम् (इति भामती)॥ मनसैवानुद्रष्टव्यम् । वृ० ४।४।१९॥ इत्यादिश्रुतयश्चात्रानुकूलाः सन्तिः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्षुरादीन्द्रियं सर्वं तत्र यद्यपि कल्पितम् ।
तथापि न च तस्यास्ति ब्रह्मग्रहणयोग्यता ।।२६४।।

और धर्म वासनादि के प्रत्यक्ष के अयोग्य होने के कारण शब्द से उनका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है। और दशमादि के योग्य होने से उन का शब्द से अपरोक्ष ज्ञान होता है और ब्रह्म के सर्वसाक्षी होने से, सर्वात्मा होने से सर्वात्मत्व के अनुभव से ब्रह्म में प्रत्यक्ष की योग्यता ही रहती है, क्योंकि ज्ञाता को सर्वथा ब्रह्म के साथ सम्बन्ध है। योग्य अर्थ के साथ सम्बन्ध जन्य वृत्ति (ज्ञान) को प्रत्यक्षता होती है और सम्बन्ध के अभाव रहते तथा सम्बन्ध होते भी विषय के अयोग्य रहते प्रत्यक्षता नहीं होती है। चित्स्वरूप असङ्ग ब्रह्म में मन का योग=सम्बन्ध रहता है क्योंकि उस चेतन में ही अध्यस्त रूप से मन वर्तमान रहता है। अतः शब्द निमित्तक यह ब्रह्मज्ञानरूप मानसी मिति=अनुभूति होती है। यद्यपि मन के समान नेत्रादि रूप बाह्य इन्द्रिय सब भी उस ब्रह्म में ही कल्पित हैं, तथापि रूपादि रहित ब्रह्म के ज्ञान में उन इन्द्रियों की योग्यता =सामर्थ्य नहीं है ।।२६०-२६४।।

वाक्यं तत्त्वमसीत्येवं प्रज्ञानं ब्रह्म चेत्यपि ।
अयमात्मा परं ब्रह्म चेत्यादि वैदिकी श्रुतिः ।।२६५।।
सर्वथा योग्यमानं तत् सद्गुरोरुपदेशनम् ।
योग्य शिष्यस्य बोधाय कारणत्वं प्रपद्यते ।।२६६।।
तत्त्वदृष्टि गुरोर्वाक्याच्छ्रुत्वैतदुपदेशनम् ।
आत्मानो ब्रह्मतां दृष्ट्वा भेदभ्रांतिं जहौ पुरा।।२६७।।
यन्निरावरणं ब्रह्म तदहं यस्य सन्मतौ ।
भासते स हि सर्वादि गुरूणां सद्गुरुर्मतः ।।२६८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"शब्दयुक्तिसमाख्यानैरात्मना च मुमुक्षवः ।
पश्यन्ति मुक्तमात्मानं प्रमाणेन चतुष्पदा" ॥२६९॥
विचारिणो हि शब्देन ध्यायिनो मनसा च यम् ।
सर्वात्मानं प्रपश्यन्ति तं वन्दे परमं गुरुम् ॥२७०॥

इति हनुनदीयतत्त्वार्थं मणिमञ्जूषायां चतुर्थः खण्डः ॥४॥

(तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा परं ब्रह्म और अहं ब्रह्मास्मि) ये महावाक्यरूप वैदिकी श्रुतियां हैं। सो सब सर्मथा योग्य प्रमाण रूप हैं और सो सद्गुरु के उपदेश रूप श्रुति योग्य शिष्य के बोध के लिये कारणत्व को प्राप्त होती हैं। तत्त्वदृष्टि ने गुरुमुख वाक्य से यह उपदेश सुन कर और आत्मा को ब्रह्मरूप समझ कर, प्रथम भेद भ्रम को त्यागा। जो निरावरण=शुद्ध ब्रह्म है, सो मैं हूं (वह मेरा आत्मा है) इस प्रकार जिसको श्रेष्ठ बुद्धि में भासता=अनुभव होता है, वह सब का आदि=ईश्वर है और गुरुओं का भी सद्गुरु माना गया है। शब्द=उपदेश, युक्ति= अनुमान, समाख्यान=प्रसंख्यान=ध्यान और आत्मा=मनन रूप चार पाद वाले प्रमाण=मनोवृत्ति से मुमुक्षु जन नित्य मुक्त स्वरूप आत्मा को प्रत्यक्ष करते हैं। (असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः तथा औपनिषदादि श्रुति के अनुसार निश्चय होता है कि किसी को ज्ञान निश्चय से=विचार युक्त शब्द से आत्मानुभव होता है और विघ्नविशेषादिवश विचारादि से आत्मानुभव नहीं होने पर समाधि परायण को योग से=निदिध्यासन द्वारा मन से आत्मानुभव होता है। और संस्कारादि के अनुसार किसी अधिकारी को योग असाध्य भासता है, किसी को विचार ही असाध्य भासता है। इस प्रकार विचारी शब्द द्वारा और ध्यायी

१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन द्वारा जिस सर्वात्माको समझते हैं उस स्वरूप परम गुरु की वन्दना करता हूँ ॥२६५-२७१॥

कर्मयोग करिय विचारि शुभ याहि विधि,
जाहि ते लहिय सुविवेकि शुभ सन्तती ।
करिय सकल व्यवहार सत्य धर्म युत,
जाहि ते लहिय शुभ धन धान्य सम्पती ॥
पातिव्रत एक तिय धर्म को सँभारि जग,
प्रेम रीति सहित रहिय नित्य दम्पती ।
प्रेम परतीति गुरु देव साधु सङ्ग माहि,
धीरज हुं धारिय अगाध जिमि कम्पती ॥१॥
भोगिय सुभोग जहँ योगहुं सहज होय,
रोग हुं रहै न तन मन में न शोक हूँ ।
शोधिय आहार सुविहार परिमित नित,
करिय सुबुद्धि जाते यश तिहुं लोक हूं ॥
दुष्ट मति दूर करि पालिय धरम निज,
पाइय विराग सब लोक परलोक हूं ॥
कहे हनुमान सुविचार सुलहिय ज्ञान,
कभि न होइहें तुम कहँ अपलोक हूँ ॥२॥

सत्त्वापत्ति स्वरूप यह, खण्ड परम सुख दानि ।
लखत ही सत्त्वस्वरूप को, मिटत मोह मद ग्लानि ॥१॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषायाः पञ्चमः खण्डः ॥५॥

गुरूणां सद्गुरुं वन्दे निरावरणमव्ययम् ।
सर्वादिं सच्चिदानन्दमखण्डं केवलं परम् ॥१॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषाखण्डः पञ्चम उच्यते ।
मननान्मध्यमस्यात्र सज्ज्ञानं विमलं भवेत् ॥२॥

गुरोर्मुखाच्छ्रुतं वेदमहावाक्यं निजात्मनः ।
ब्रह्माभिन्नस्य सज्ज्ञानं प्रत्यक्षं जनयत्यलम् ॥३॥

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं ब्रह्माद्वैतप्रवादिनः ।
अदृष्टे मध्यमशिष्यस्य शंका जाताऽतिशोकदा ॥४॥

वेदानां सद्गुरूणां च मिथ्यात्वे न ततो भवेत् ।
भवदुःखविनाशोऽत्र मृगतोयादतृप्तिवत् ॥५॥

निरावरण, अव्यय = अविनाशी, सर्वादि, सच्चिदानन्द स्वरूप, अखण्ड, केवल = एक, पर = सर्वोत्तम, गुरुओं के सद्गुरु (परमात्मा) की वन्दना करता हूँ। भाव है कि यद्यपि परमात्मा निरावरण ही है, तथापि घनच्छन्न सूर्य के समान अज्ञ को अविद्या से आवृत्त सा भासता है। सो (योगमायासमावृतः। अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्) इत्यादि वचनों से कहा गया है। और सद्गुरु में आवरण का अभाव रहता है, अतः कहा गया है कि (मायामेतां तरन्ति। ज्ञानेन तु तदज्ञानं नाशितम्) इत्यादि। इसी से ज्ञान से नाश योग्य भावस्वरूप अज्ञान सिद्ध होता है कि जो ज्ञान से तरा जाता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उस ज्ञान का साधन सद्गुरु की वन्दना है। तत्त्वार्थमणि-मञ्जूषा का पञ्चमखण्ड कहा जाता है कि जिसके मनन से यहाँ मध्यम जिज्ञासु को भी विमल सत्य ज्ञान होगा। गुरु के मुख से सुना गया जो वेद का महावाक्य, सो ब्रह्माभिन्न निजात्मा के अलं = पूर्ण प्रत्यक्ष सत्य ज्ञान को उत्पन्न करता है। ब्रह्म स्वरूप ही अद्वैत सत्य वस्तु के प्रकथनशील गुरु के उक्त वाक्य को सुन कर अदृष्टि[1] = अल्पदृष्टि = विवेक वाले मध्यम शिष्य को अतिशोकप्रद शंका हुई कि अद्वैत ब्रह्म ही के सत्य होने से वेद और सद्गुरु के मिथ्या होने पर, उनसे संसार दुःख का नाश नहीं होगा, जैसे कि मृग से कल्पित जल से तृप्ति नहीं होती है ॥१-५॥

वेदादीनां तु सत्यत्वे सत्यद्वैतं समापतेत् ।
वेदान्तानां सुसिद्धान्तः सर्वथाऽसारतां व्रजेत् ॥६॥

द्वैतादिवादिनो बुद्धा अतस्त्यक्त्वा मतं त्विदम् ।
कल्पयन्त्यन्यसिद्धान्तान् गुरो ! इत्थं विभाति मे ॥७॥

प्रमाणं त्रिविधं चातः प्रमेयं द्विविधं तथा ।
द्रव्याद्रव्यविभेदेन द्वैविध्यं तच्च सिद्ध्यति ॥८॥

जडाजडविभेदेन द्रव्यं द्विविधतां व्रजेत् ।
प्रकृतिस्तत्प्रभेदाश्च कालश्च जडसंज्ञकम् ॥९॥

जीवेश्वरौ च कथ्येते तथैवाजडशब्दतः ।
एवमन्यप्रभेदांश्च ब्रुवते तेऽन्यवादिनः ॥१०॥

१—अनुदरा कन्या, इत्यादि प्रयोग तुल्य इस शब्द प्रयोग को समझना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संशयो जायते तस्मान्निश्चयो न कदाचन ।
भगवान् नाशहेतुं तं संशयं प्रोक्तवान् गुरो ! ॥११॥
दयालो ! सूत्तरं ब्रूहि शङ्कापङ्कं निवारय ।
गुरुस्तारयते शिष्यं शंकापङ्कमहार्णवात् ॥१२॥

और वेदादि के सत्य होने पर द्वैत की प्राप्ति होगी, कि जिस से वेदान्त के सुन्दर अद्वैत सिद्धान्त सर्वथा असारता को प्राप्त होगा। हे गुरुदेव ! इसी कारण से द्वैत विशिष्टाद्वैत आदि को कहने वाले बुद्ध पण्डित, इस मत = अद्वैत सिद्धान्त को त्याग कर अन्य सिद्धान्तों की कल्पना करते हैं मुझे इस प्रकार प्रतीत होता है। और इस अद्वैत सिद्धान्त के अयुक्तता से ही तीन प्रकार के सत्य प्रमाणों की और दो प्रकार के प्रमेय की कल्पना करते हैं तहाँ द्रव्य और अद्रव्य = गुणादि विभेद से वह प्रमेय का द्वैविध्य (द्विप्रकारता) सिद्ध होता है और जड़ अजड़ के विभेद से द्रव्य द्विरूपता को प्राप्त होता है। तहाँ प्रकृति = माया और उसके प्रभेद महत्तत्त्वादि और काल ये जड़ नाम वाले हैं। इसी प्रकार जीव और ईश्वर को अजड़ शब्द से कहते हैं। इसी प्रकार वे अन्यवादी अन्य प्रभेदों को भी कहते हैं। उस कथन से संशय होता है, कभी अद्वैत का निश्चय नहीं होता है। और हे गुरो ! (संशयात्मा विनश्यति) इस कथन से भगवान् ने उस संशय को नाश का हेतु कहा है। हे दयालो ! सुन्दर उत्तर कहो, शंकारूप दोष का निवारण करो। क्योंकि गुरु ही शंका रूप दोषात्मक महा समुद्र से शिष्य को तारते हैं ॥६-१२॥

श्रुत्वा शिष्यवचः सम्यग् गुरुस्तत्त्वविदुत्तमः ॥
उवाच मधुरं वाक्यं शोकं संशमयन् समम् ॥१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदान्ताद्वैतसिद्धान्तो मान्योऽयं वेदवादिभिः ।
निश्चितो व्यासमन्वादिवचनैश्चापि सर्वथा ॥१४॥

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यो नानेवेह पश्यति ।
अन्योऽसावहमन्यो वै जानाति पशुवन्नरः ॥१५॥

इत्यादिवेदवाक्यैश्च भेदः साक्षाद्विनिन्द्यते ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्चाप्यद्वैतं प्रतिपाद्यते ॥१६॥

द्वैताद् भयं श्रुतिः प्राह प्रत्यक्षं चोपलभ्यते ।
तस्माद् द्वैतश्च तद्वाक्यमपि विस्मर न स्मर ॥१७॥

यावद् द्वैतादिवाक्यानि विद्यन्ते हृदये तव ।
तावन्नाद्वैततत्त्वस्य साक्षात्कारोऽपि संभवेत् ॥१८॥

द्वैतादिवचसां क्वापि श्रवणं जायते यदि ।
प्रत्यक्षं कृतमद्वैतज्ञानं तन्नाशयेद् ध्रुवम् ॥१९॥

उक्त शिष्य के वचन को सम्यक् सुन कर तत्त्व = ब्रह्म वेत्ताओं में उत्तम = श्रेष्ट गुरु शिष्य के सब शोक को निवृत्त करते हुए मधुर वचन बोले । कि यह वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त वेदवादियों से मान्य है तथा व्यास मनु आदि के वचनों से सर्वथा निश्चित है। जो इस आत्मा में नाना (अनेक) के तुल्य भी देखता (दृष्टि करता) है, सो मृत्यु के अनन्तर फिर बार बार मृत्यु को पाता है। वह ईश्वर अन्य है, मैं अन्य हूँ, इस प्रकार पशु तुल्य मनुष्य समझता है। इत्यादि वैदिक वाक्यों से सत्य भेद साक्षाद् विनिन्दित होता है। और (तत्त्वमसि) इत्यादि महावाक्यों से अद्वैतात्मा प्रतिपादित होता है। और द्वैत से श्रुति भय कहती है तथा द्वैत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव से प्रत्यक्ष भय उपलब्ध होता है। अतः द्वैत और द्वैत बोधक वाक्य को भूल जाओ, उनका स्मरण भी नहीं करो। क्योंकि द्वैतादि के बोधक वाक्य जब तक तेरे हृदय में याद हैं, तब तक अद्वैत तत्त्व ब्रह्म का साक्षात्कार भी नहीं होगा। क्योंकि द्वैतादि बोधक वाक्यों का यदि कहीं श्रवण हो जाता है, तो प्रत्यक्ष प्राप्त किये हुए अद्वैतात्मज्ञान को वह अवश्य नष्ट करता है, ज्ञान को उत्पन्न होना तो दूर रहता है॥१३-१६॥

कथयामि कथां त्वत्र श्रुत्वा भेदं न संस्मर।
अद्वैतं वै सदा स्मृत्वा तदात्मत्वं प्रपद्यताम् ॥२०॥

राज्ञः कस्यचिदासीद् वै सुमन्त्री भर्छुनामकः।
मुख्यमन्त्री तदायत्तं राज्यकार्यं च सर्वशः ॥२१॥

अन्ये ये मन्त्रिणश्चासन् कार्यकारिजनास्तथा।
ते सर्वे त्वीर्ष्यया तं हि द्विषन्ति स्म निरन्तरम् ॥

किन्तु राज्ञः प्रियत्वेन तस्यापकरणं प्रति।
असमर्थाः प्रकुर्वन्ति नापकारं कदापि ते ॥२३॥

एकदा तु मिलित्वा ते सर्वे चक्रुः कुमन्त्रणाम्।
नगराल्लुण्ठकान् प्रेष्य लुण्ठनं कारितं स्वयम् ॥२४।

राजा श्रुत्वा तु तद्वृत्तं सभां न्याय्यां समाहितः।
कृतवांश्चैव सर्वांस्तानाहूय स्वनिदेशगान् ॥२५॥

उवाच तत्र गच्छन्तु भवन्तो नाशयन्तु च।
उपद्रवं प्रजानिष्ठं प्रशान्तिं जनयन्तु च ॥२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मृति से प्रत्यक्ष ज्ञान के नाश विषयक एक कथा कहता हूँ, उसे सुन कर भेद का स्मरण नहीं करो और अद्वैत ब्रह्म का सदा स्मरण करके तद्रूपता को प्राप्त करो। किसी राजा का भर्छु नाम वाला प्रधान मन्त्री सुन्दर मन्त्री था और सब राज्य के कार्य उसके अधीन थे। परन्तु अन्य जो अप्रधानमन्त्री तथा कार्य कर्ता जन थे, सो सब ईर्ष्या के कारण उससे सदा द्वेष करते थे। किन्तु राजा के प्रिय धर्मज्ञ सत्य बक्ता होने के कारण उसके अपकार करने में असमर्थ होते हुए वे लोग कभी अपकार नहीं करते थे। एक समय वे मन्त्री आदि सब मिल कर कुमन्त्रण = कुविचार किये और नगर से लुण्ठक = लुटेरे चोरादि को ग्राम में भेज कर स्वयं लुण्ठन = लूटादि करवाये। उस वृत्तान्त को सुनकर राजा ने न्याय युक्त सभा, समाहित होकर किया। और अपने आज्ञाकारी उन सब को बुला कर कहा कि आप सब उन ग्रामों में जायँ और प्रजा में वर्तमान उपद्रव को नष्ट करें तथा श्रेष्ठ शान्ति को उत्पन्न करें ॥२०-२६॥

तेऽथ सर्वे मिलित्वा तु राजानमब्रुवन् वचः ।
देव ! भर्छुं सदा वेत्सि हितं कार्यकरं शुभम् ॥२७॥
मरणायाऽद्य चास्मान् त्वं संयोजयसि सङ्गरे ।
तमेवात्र न किं देव ! समाज्ञापयसे प्रभो ! ॥२८॥
श्रुत्वा तेषां वचो भर्छुरुवाच नृपतिं वचः ।
मामाज्ञापय देव ! त्वं साधयिष्ये शमं शुभम् ॥२९॥
राजा भर्छुमुवाचाथ याहि कार्यं सुसाधय ।
स गत्वा लुण्ठकान् हत्वा चकार सुखिनीः प्रजाः ॥३०॥
तस्य तद्विजयं श्रुत्वा तेऽन्ये मन्त्रिगणास्तदा ।
राजानमब्रुवन् मिथ्यावचनं वञ्चनाय हि ॥३१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भर्छुं र्ममार कार्यं च न सिद्धिमगमत्ततः ।
मुख्यमन्त्रिणमन्यं तु राजा शीघ्रं चकार सः ॥३२॥
मुख्यमन्त्रिपदस्थश्च सर्वेऽन्ये कार्यकारिणः ।
चक्रु विचारणां क्रूरा उपायाँश्चापि तादृशान् ॥३३॥
यतो राजा पुनर्भर्च्छुं नैव स्वप्नेऽपि संस्मरेत ।
शृणुयान्न वचस्तस्य नाऽऽयाच्च स सन्निधौ ॥३३॥

उसके वाद सब मिल कर राजा के प्रति वचन वोले कि हे देव= राजन् ! सदा आप भर्छुं को हित और शुभ कार्य कर्ता समझते हो और आज मरण के लिये हम सब को संगर=युद्ध में संयोजित= नियुक्त करते हो । हे प्रभो ! देव ! इसमें उस भर्छुं को ही क्यों नहीं आज्ञा देते हो । भर्छुं उनके वचन को सुनकर राजा के प्रति वचन बोला कि हे देव ! आप मुझे आज्ञा दो शान्ति और शुभ को मैं सिद्ध करूँगा । फिर राजा ने भर्छुं को कहा कि जावो और कार्य को सुन्दर सिद्ध करो । तब वह भर्छुं जाकर लुटेरों को मार कर प्रजा को सुखी किया । उस भर्छुं के उस विजय को सुन कर वे मन्त्रि गण उस समय वंचना के लिये राजा के प्रति मिथ्या वचन बोले, कि भर्छुं मर गया और उससे कार्य भी नहीं सिद्ध हुआ । तब उस राजा ने शीघ्र ही अन्य मुख्यमन्त्री बनाया । फिर मुख्यमन्त्रि पदाधिकारी और क्रूर अन्य कर्ता सब ने विचार किया और तादृश (ऐसा) उपाय किया कि जिससे राजा फिर भर्छुं को स्वप्न में भी स्मरण नहीं करे, न उसकी बात को सुने और वह भर्छुं भी राजा के पास में नहीं आवे ॥२७-३४॥

श्रुत्वा भर्छुंस्तु तं सर्वं वृत्तान्तं लोकवार्तया ।
विचार्य तापसं रूपं कृतवान् स सुखप्रदम् ॥३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किञ्चालोचितवान् भर्छु नैते मे राजसन्निधौ ।
गन्तुं प्रसङ्गं दास्यन्ति हनिष्यन्ति च सङ्गतौ ।।३६।।
दैहिकै र्मानसै रोगै रहितश्चास्मि साम्प्रतम् ।
भोगान् सुभुक्तवानस्मि स्त्रीपुत्रधनसम्भवान् ।।३७।।
हस्तिहस्तसमो यस्या उरु र्विज्ञै र्निगद्यते ।
सिंहश्रोणिसमा श्रोणिश्चलं नेत्रं तुरङ्गवत ।।३८।।
पद्मवद् वदनं प्राहुः पूर्णचन्द्रसमद्युतिम् ।
तिलपुष्पसमां नासां चम्पकपुष्पभां तनुम् ।।३९।।
अधरं बिम्बवच्चैव दशनं दाडिमांशवत् ।
स्तनं विल्वसमं पीनं मारालीं च गतिं शुभाम् ।।४०।।
कपोतकण्ठतुल्यं च यत्कण्ठं पिकभाषिणीम् ।
मयूरपुच्छकेशां तां त्यक्तवान्न रहस्स्वहम् ।।४१।।

भर्छु ने भी लोग वार्ता के द्वारा उन सब वृत्तान्तों को सुन कर और विचार कर, वह सुखप्रद तपस्वी के स्वरूप का धारण किया और भर्छु नें आलोचन=विचार किया कि ये लोग राजा के पास में जाने के लिये प्रसङ्ग=अवसर मुझे नहीं देंगे और सङ्गम=सम्बन्ध होने पर मारेगें। और मैं अभी तक दैहिक और मानस रोग शोकादि से रहित हूँ। और स्त्री पुत्र धन जन्य भोगों=सुखों को भोग चुका हूं। क्योंकि विज्ञों=कवियों से जिसके उरु हाथी के सूढ़ तुल्य कहा जाता है, सिंह के श्रोणि तुल्य श्रोणि=कटि और अश्व के नेत्र तुल्य चञ्चल नेत्र कहे जाते हैं। पूर्णचन्द्र के तुल्य प्रकाश युक्त जिसके पद्म तुल्य वदन=मुख को कहते हैं। तथा तिलपुष्प तुल्य नासिका को और चम्पा के पुष्प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुल्य गौर शरीर को कहते हैं और अधर=ओष्ठ को बिम्ब=तिलकोर तुल्य कहते हैं तथा दाँत को अनार के दाना तुल्य कहते हैं, पीन स्तन को वेल तुल्य कहते हैं, माराल=हंस की गति तुल्य शुभ गति=गमन को कहते हैं और कपोत के कण्ठ तुल्य जिसके कण्ठ को कहते हैं, उस पिकभाषिणी मोर पुच्छ तुल्य वाल वाली को मैने एकान्त स्थानों में कभी नहीं त्यागा। ॥३५-४१॥

पयोधि र्न यथा गङ्गां त्यजत्येवं स्वभावतः ।
कामी कामरसज्ञो न वामां त्यजति मोहतः ॥४२॥
विधिना रचिता रामा तिलोत्तमेति विश्रुता ।
सुन्दोपसुन्दयो र्हन्त्री सा नारी सुन्दरी न हि ॥४३॥
यावादिरञ्जकै रक्ते यस्याः करपदे सदा ।
तां कान्तां त्यक्तवान्नाहं निमेषमपि मन्दधीः ॥४४॥
अन्यानपि वहून् भोगान् भुक्तवानस्मि साम्प्रतम् ।
निकटे मरणं प्राप्त भोगात् तृप्ति न चाप्तवान् ॥४५॥
अहो न चास्ति मत्तुल्यो मूढोऽन्यो विगतत्रपः ।
योऽद्यावधिकुभोगेषु कामुको ह्यभवं सदा ॥४६॥
मलमूत्रादिसंक्लिन्ने स्रवद्रुधिरपङ्किले ।
स्त्रीकाये सुन्दरं यत् किं तत्रैवासज्जते मनः ॥४७॥
ललनाऽऽलापमाकर्ण्य मुग्धोऽयंकुमनोमृगः ।
बध्यते मलिने काये दृष्ट्वैव कमलेक्षणाम् ॥४८॥

क्योंकि समुद्र जैसे गङ्गा को स्वभाव से ही नहीं त्यागता है, इसी प्रकार कामानन्द को जानने वाला कामी=विषयी मोह से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वामा=स्त्री को नहीं त्यागता है। परन्तु विधि=ब्रह्मा से रचित तिलोत्तमा इस नाम से विख्यात सुन्द उपसुन्द को मारने वाली वह स्त्री सुन्दरी नहीं कही जा सकती है, जिसके कर और पद=चरण सदा याव=अलक्त=महावर आदि रञ्जक वस्तु से रक्त लाल रहते थे। ईश्वरादि में जिसका हृदय नहीं अनुरक्त था, उस कान्ता=स्त्री को मन्द बुद्धिवाला मैं ने भी एक निमेष काल मात्र भी हृदय से नहीं त्यागा। अन्य भी बहुत भोगों को भोगा हूँ, अब इस समय पास में मरण प्राप्त हुआ और भोग से तृप्ति नही पाया। आश्चर्य है कि मेरे तुल्य निर्लज्जमूढ अन्य नहीं है कि जो मैं सदा आज तक कुभोग विषयक ही कामुक=इच्छुक हुआ। मलमूत्रादि से व्याप्त चूता हुआ रुधिर से दूषित स्त्री शरीर में सुन्दर वह कौन वस्तु है कि जिससे मन उसी में आसक्त होता है। ललना=स्त्री के आलाप=गानादि को सुन कर मुग्ध=मोह युक्त यह मन रूप कुत्सित मृग कमल तुल्य नेत्र वाली स्त्री को देख करके ही मोह से ही उसके मलिन शरीर में बन्ध जाता है। सुन्दरासुन्दरादि का विचार नहीं करने पाता है।।४२-५८।।

अहो कामकिरातेन रचितं मोहबन्धनम्।
येन बद्धा नरा नार्यो विन्दन्ते नाशुचिं शुचिम् ।।४९।।

महामालिन्यसंयुक्ते जङ्घे आलोक्य दुर्मतः।
नितम्बे च न जानाति धर्मं स्वं निर्मलं परम् ।५०।।

घृणां त्यक्त्वाऽधरे मत्वा ह्यमृतं काममोहिताः।
लालां पिबन्ति वैमूढा न रूढाः सत्पथे क्वचित् ।।५१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भजन् दृष्टमदां मूढो विवेकं धर्मकर्मणाम् ।
त्यक्त्वा कामान्धतां प्राप्य नार्यङ्गान्येव संशति ॥५२॥

विचारे तु कृते सम्यक् नारीनरकलेवरम् ।
मलिनं नश्वरं तुच्छं भासते कष्टदानृतम् ॥५३॥

काञ्चनं कामिनीं क्रूरां मायामासाद्य मानिनः ।
मोहमत्सरकामाद्यै रौरवं संपतन्ति हि ॥५४॥

"ललनाऽऽलानसंलीना मूढा मानवदन्तिनः ।
प्रबोधं नाधिगच्छन्ति दृढैरपि शमाङ्कुशैः" ॥५५॥

कामरूप किरात ने आश्चर्य स्वरूप मोहात्मक बन्धन रचा है कि जिस से बन्धे हुए नर और नारी शुचि और अशुचि को नहीं विचारते हैं। दुर्मति मनुष्य महामलिनता युक्त जङ्घों को और नितम्बों को देखकर, निर्मल पर निज धर्म योगादि को कुछ नहीं समझता है। अतः काम से मोहित मूढ कहीं सन्मार्ग में नहीं प्राप्त होकर और घृणा जुगुप्सा को त्याग कर और स्त्री के अधर में अमृत मान कर उसके लार को ही पीता है। क्योंकि दृष्टमात्र होने पर उन्माद करने वाली नारी को सेवता हुआ मूढ, धर्मस्वरूप कर्मों के विवेक को त्याग कर और काम से अन्धता को प्राप्त करके स्त्री के अङ्गो की ही प्रसंशा=स्तुति करता है, धर्म, आत्मा, ईश्वरादि की नहीं। परन्तु सम्यक् विचार करने पर तो नारी और नर की देह सब मलिन नश्वर तुच्छ और कष्ट प्रद होते हुए स्वप्न तुल मिथ्या भासते हैं। परन्तु देह स्त्री आदि के अभिमानी लोग, कनक और कामिनी रूप क्रूर माया को प्राप्त कर के मोह मत्सर कामादि द्वारा रौरव (महा नरक) में ही गिरते हैं। क्योंकि मूढ़ मनुष्य रूप हाथी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री रूप आलान (बन्धनस्तम्भ) में बन्धन युक्त आसक्त होकर उपदेशात्मक शमदमादिरूप अङ्कुशों से भी विवेकादि प्रबोध = ज्ञान = जागृति को नहीं प्राप्त करते हैं ।।४९-५५।।

न भोगाज्जायते तृप्ति र्न सुखं न परं पदम् ।
नाशमेति जनो भोगपरः सुन्दोपसुन्दवत् ।।५६।।
अहो मूढतया सोऽहं स्त्रीपुत्रादिकलेवरे ।
अशुचौ स्वशरीरे च मग्न आसं सदा कुधीः ।।५७।।
परमानन्दलाभाय साधनं मानवं शुभम् ।
देहं लब्ध्वा न तं वेत्ति सोऽधमो मानवः स्मृतः ।।५८।।

परमानन्दलाभाय यत्नं यो न करोति सः ।
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य पश्चात्तापेन तप्यते ।।५९।।
अहो अशुचिकोशानां सङ्घे देहे मनो वृथा ।
रमते तेन चेदानीं निर्जने चिति रम्यताम् ।।६०।।
मानवं सुखमारभ्य ब्रह्मान्तं यत् सुख श्रुतम् ।
तत्सर्वं लभते योगी निष्कामो निष्परिग्रही ।।६१।।
एकान्तवासी विज्ञानी काममुक्तो मुनीश्वरः ।
लभते परमानन्दं ब्रह्मानन्दपदोदितम् ।।६२।।

क्योंकि भोग से तृप्ति नहीं होती है, अत एव शास्त्र कहता है कि (न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति) कामियों का काम उपभोग से शान्त नहीं होता है और काम की शान्ति = निवृत्ति रूप तृप्ति के विना सुख परंपद = मोक्ष भी नहीं होता है। क्योंकि भोग परायण मनुष्य सुन्द उपसुन्द के समान परस्पर नष्ट होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुन्द, उपसुन्द दो भाई असुरने तप करके ब्रह्माजी से वर मांगा कि हम मरें तो अपने हि दोनों लड़कर मरें अन्य से नहीं और वर पाने पर परस्पर, प्रेमपूर्वक उपद्रव करने लगा, फिर ब्रह्माजी से भेजी गई तिलोत्तमा के लिये कामवश लड़कर दोनों मर गये। भर्त्तृ शोचने लगा कि वह भोग भोक्ता मैं मूढता से स्त्री पुत्रादि की देहों में और अशुचि अपने देह में मग्न = आसक्त था, सो आश्चर्य है, अतः सदा मैं कुबुद्धि था। क्योंकि परमानन्द = मोक्ष की प्राप्ति के लिये साधन रूप शुभ मानव देह को पाकर, उस परमानन्द स्वरूप आत्मा को नहीं जानता है, सो अधम मनुष्य कहा गया है। और दुर्लभ मनुष्यता को पाकर परमानन्द की प्राप्ति के लिये यत्न नहीं करता है, सो पीछे ताप से तप्त = पीड़ित होता है। आश्चर्य है कि त्वक्, रुधिर, मांसादिरूप अपवित्र केशों के समूह रूप देह में मन व्यर्थ ही रमता है। अब यह मन एकान्त देश में चिदात्मा में रमे। मानव सुख से ब्रह्म पर्यन्त जो सुख श्रुति में सुना गया है निष्काम परिग्रह रहित योगी उस सब सुख को पाता है। एकान्तवासी काम रहित विज्ञानी मुनीश्वर ब्रह्मानन्द नामक परमानन्द को पाता है॥५६-६२॥

एकान्ते हि सुखं नित्यं विजानाति सुयोगवित्।
भोगवित् सङ्गतः सौख्यं मन्यते मोहतः सदा ॥६३॥

स्त्रीपुत्रधनसङ्गैश्च मोहो द्रोहो विवर्द्धते।
द्वन्द्वानि कामकोपाद्याः प्रवर्तन्ते निरन्तरम् ॥६४॥

कुभाषिणीं कुरूपां च लब्ध्वाऽपि युवतिं जनः।
तप्यते शोकमोहाभ्यां नैव जातु प्रसीदति ॥६५॥

सुभाषिणीं सुरूपां चेत्प्राप्नोति युवतिं नरः।
तत्रासक्तः स्वधर्मादि हित्वा याति च दुर्गतिम् ॥६६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नेहपाशेन बद्धानां मति नंश्यति सात्त्विकी ।
ततो बुद्ध्या च तामस्या राजस्या वै प्रमाद्यति ।।६७।।

अतो विविधवेषादि विधाय निजकान्तयोः ।
तस्यां वै रमते मूढः पितरौ पाति न त्वसौ ।।६८।।

स्याद्धर्मपालिनी नारी नरश्च धर्मरक्षकः ।
तौ सदा दुर्लभौ लोके सुलभाः कामिनः सदा ।।६९।।

सुन्दर योग वेत्ता सदा एकान्त में ही सुख समझते हैं और भोग वेत्ता मोह से सदा सङ्ग से सुख मानता है । परन्तु स्त्री पुत्र और धन के सङ्ग से मोह और द्रोह अत्यन्त बढ़ता है और सदा हर्ष शोकादि रूप द्वन्द्व और नरक के हेतु रूप काम क्रोध लोभ मत्सर ईर्ष्यादि प्रवृत्त (उत्पन्न) होते हैं । क्योंकि क्रूरादि वचन बोलने वाली कुरूप युवति को प्राप्त करके मनुष्य शोक मोह से पीड़ित होता है, कभी प्रसन्न सुखी नहीं होता है । यदि मनुष्य सुन्दर बोली वाली सुरूप युवति को प्राप्त करता है तो भी उस में आसक्त होकर और अपने धर्म विचार सत्सङ्गादि को त्याग कर दुर्गति को प्राप्त करता है क्योंकि नारी विषयक स्नेहरूप बन्धन से बन्धे हुए मनुष्यों की धर्म ध्यानादि विषयक सात्त्विक भाविहितकरी बुद्धि नष्ट हो जाती है । अतः वह स्वाभाविक तामसी = क्रूर और राजसी = लुब्ध क्षुब्ध बुद्धि से प्रमाद करता है । अतः उस प्रमाद से अपने अपनी स्त्री के अविहित विविध वेष भोजनासनादि का सम्पादन करके वह मूढ उस कान्ता में रमता है और माता पिता का पालन नहीं करता है । धर्म को पालन करने वाली नारी हो और धर्म रक्षक नर = मनुष्य हो, सो दोनों लोक में सदा दुर्लभ हैं और धर्म रहित कामी सदा सुलभ है ।।६३-६९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या कौसल्या समा साध्वी पुत्रं मोहान्न वारयेत् ।
पित्राज्ञापालनाद्धर्मादन्यस्माद्वा सुकर्मणः ।।७०।।

मदालसासमा या च पुत्रं तत्त्वोपदेशतः ।
मोचयेद् भवबन्धात्सा नारी परमदुर्लभा ।।७१।।

सावित्री सदृशी वा स्यात्पतिरक्षापरायणा ।
धर्मं सत्यं समाश्रित्य सा नारी नरतः परा ।।७२।।

नरा नार्यश्च सर्वेऽपि भक्तिमुक्तिपरायणाः ।
स्वधर्मपालकाः शुद्धाः सङ्गार्हाः पुण्यकाङ्क्षिभिः ।।७३।।

अन्याः सर्वाः स्त्रियस्त्याज्याः पुरुषा अपि कामिनः ।
येषां सङ्गात्पतत्यन्धे तामिस्रे वै विमोहतः ।।७४।।

विरक्तैरात्मसक्तैश्च सङ्गः कार्यो न चेतरैः ।
अथवा साधुभिः सङ्गः कर्तव्यो भवभेषजम् ।।७५।।

अतिसङ्गाद् विवेकादे र्विनाशो जायते ततः ।
स्त्रीपुत्रधनधान्यार्थमन्याय्यं कुरुते जनः ।।७६।।

धर्मं त्यजति पापघ्नं ब्रह्मचर्यं न मन्यते ।
सत्यं त्यक्त्वा गुणै र्हीनो नरकं प्रतिपद्यते ।।७७।।

जो कौसिल्या के तुल्य पतिव्रता स्त्री पुत्र को मोह वश, पिता की आज्ञा पालन रूप धर्म से या अन्य सुकर्म से निवारण नहीं करे। तथा मदालसा के समान तत्त्व = सत्य आत्मोपदेश के द्वारा जो पुत्र को भवबन्धन से मुक्त करे, सो नारी परम दुर्लभ है अथवा सावित्री के समान पति की रक्षा में तत्पर हो, अतः सत्य और धर्म का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आश्रयण करके पति की रक्षा करती हो, सो नारी नर से उत्तम है। इस प्रकार के भक्ति मुक्ति में पत्पर, स्वधर्मपालक अत एव शुद्ध सब नर नारी पुण्येच्छुक के सङ्ग योग्य हैं। इनसे अन्य सब नारी और कामी पुरुष भी पुण्येच्छुक से त्यागने योग्य हैं, कि जिन के सङ्ग से विशेषतः मोह द्वारा मनुष्य अन्धतामिस्र नरक में गिरता है। आत्मा में आसक्ति प्रीति वाले आत्मनिष्ठ विरक्त को अन्य के साथ सङ्ग कर्तव्य नहीं है। अथवा भव भेषज रूप साधुसङ्ग कर्तव्य है, अन्य नहीं। क्योंकि अत्यन्त सङ्ग से विवेकादि का विनाश होता है, तिससे उस विवेक नाश से मनुष्य स्त्री पुत्र धन धान्य के लिये अन्याय्य (अधर्म), करता है। विवेक रहित मनुष्य धर्म को त्यागता है, पाप नाशक ब्रह्मचर्य को नहीं मानता है, फिर सत्य को त्याग कर शम दमादि गुणों से रहित मनुष्य नरक में जाता है ॥७०–७७॥

स्त्रीसङ्गात् कामदोषाच्च नष्टो भवति दुर्मतिः।
तयोस्त्यागं ततः प्राहु र्हिताय देहिनां बुधाः ॥७८।

कामसङ्गादिकं त्यक्त्वा ब्रह्मचर्यपरो नरः।
वीर्यरक्षाप्रभावेण प्राप्नोति परमं बलम्। ७९॥

शोकनाशः प्रसादादि ब्रह्मचर्येण लभ्यते।
तेजः कान्ति धृ'तिः शान्तिः सुयोगश्चाभयं परम् ॥८०॥

जीवात्मा स्त्री पुमान्नैव विद्यते न नपुंसकः।
अज्ञानाद्देहितां प्राप्तो बध्यते निजकर्मतः ॥८१॥

यावद्देहाभिमानश्च स्त्रिया कामेन सङ्गतिः।
पुंसा वा सङ्गतिः कामात्तावद्बन्धान्न मुच्यते ॥८२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परगर्भनिवासस्य हेतुर्भूत्वा स्वयं तथा ।
गर्भे वसति कामात्मा मृत्वा मृत्वा पुनः पुनः ॥८३॥

देह एव ह्यनर्थानां हेतुः कष्टप्रदः सदा ।
तत्सङ्गाभिमिती त्यक्त्वा जगत्त्यजति बुद्धिमान् ॥८४॥

क्योंकि स्त्री के सङ्ग और कामात्मक दोष से दुर्बुद्धि होकर मनुष्य नष्ट = धर्मादि से पतित होता है। अतः विद्वान् लोग देहधारी मनुष्य के हित के लिये उस सङ्ग काम दोष के त्याग का उपदेश करते हैं। क्योंकि कुकाम कुसङ्गादि को त्याग कर ब्रह्मचर्य परायण मनुष्य वीर्यरक्षा के प्रभाव से परम बल को प्राप्त करता है और ब्रह्मचर्य से ही ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा शोक के नाश प्रसन्नता आदि, तेज, कान्ति, सात्त्विक धैर्य, शान्ति, सुन्दर योग और उत्तम अभय प्राप्त होते हैं। यद्यपि व्यावहारिक भी जीवात्मा स्त्री पुमान् = पुरुष या नपुंसकस्वरूप नहीं है, क्योंकि स्त्रीत्वादि स्थूल देहमात्र के कर्मवासनादि जन्य धर्म होते हैं। तथापि वह जीवात्मा कर्मवासनादि से ही देहित्व = शरीरित्व को प्राप्त होकर अपने कर्मादि से देह में बन्धता है (अभिमानादि युक्त होता है) देही को जब तक देह का अभिमान रहता है और काम से स्त्री के साथ सङ्ग रहता है, या काम से पुरुष के साथ सङ्ग रहता है, तब तक बन्धन से मुक्त नहीं होता है, किन्तु अन्यप्राणी के गर्भ निवासादि के हेतु होकर वह स्वयं भी कामातमा (कामी) बार बार मर कर गर्भ में वसता है। अतः बुद्धिमान् = विवेकी समझता है कि देह ही सब अनर्थों का हेतु है और सदा कष्ट प्रद है। अतः वह देह के सङ्ग अभिमान को त्याग कर संसार को त्यागता है ॥७८-८४॥

चर्मनद्धं शरीरं च दृष्ट्वा कामी विमुह्यति ।
सुरूपं सुखदं मत्वा तत्र प्रेम्णा निबध्यते ॥८५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुरूपां कामिनीं दृष्ट्वा घृणां यः कुरुते क्षणम् ।
कामेन विद्धहृदयः स तत्र कुरुते रतिम् ॥८६॥

कामिनीनां वचः श्रुत्वा मधुरं माद्यतिप्रियम् ।
अर्थं धर्मं विनाश्यापि जायते तद्वशंवदः ॥८७॥

नारीसङ्गाद्विवेकादे र्नाशं दृष्ट्वा विवेकिनः ।
साश्चर्यं बहु मायायां मन्मन्यन्ते बलं दृढम् ।८८॥

अतस्तत्सङ्गहानाय ते कुर्वन्ति विधानकम् ।
विरागयोगधर्माणां ज्ञानस्यैवामलात्मनः ॥८९॥

सङ्गी हि बाध्यते लोके निःसङ्गः सुखमश्नुते ।
तस्मात्सङ्गः परित्याज्यः सर्वदा सुखमिच्छता ॥९०॥

यत्सङ्गाज्जायते कामस्तत्सङ्गं सर्वथा त्यजेत् ।
क्रोधसम्मोहमार्गेण कामो नाशयते जनम् ॥९१॥

कामी जीव तो चर्म से बन्धे = लिपटे हुए शरीर को देखकर विमुग्ध हो जाता है और सुरूप सुखद मान कर प्रेम = राग से उसमें बन्ध जाता है। कुरूप कामिनी को देख कर क्षणमात्र उसमें घृणा = ग्लानि करता है, परन्तु काम से विद्ध = व्याप्त हृदय वाला होने पर उसमें भी रति = प्रीति करता है। क्योंकि कामिनियों के मधुर प्रिय वचन को सुन कर अविवेकी मलवाला हो जाता है और अर्थ धर्म को भी नष्ट करके उसके वशवर्ती हो जाता है। इस प्रकार नारी के सङ्ग से साधारण विवेकादि के नाश को देख कर पूर्ण विवेकी लोग आश्चर्य पूर्वक माया के दृढ़ बल को बहुत प्रबल बार बार समझते हैं। अतः उसके सङ्ग की निवृत्ति के लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे लोग विराग, योग, धर्म अमल = निर्गुण आत्मा के ज्ञान का ही विधान करते हैं। कुसङ्ग वाला लोक में बाधित = पीड़ित किया जाता है और निः सङ्ग = विरक्त = आसक्ति रहित पुरुष सुख पाता है, अतः सदा सुखेच्छुक से सङ्ग त्याज्य है। इस लिये जिस कामी कामिनी आदि के सङ्ग संकल्पादि से काम उत्पन्न होता है, उसके सङ्ग संकल्पादि को सुखेच्छुक सर्वथा त्याग करे, क्योंकि काम ही क्रोध और संमोहादि द्वारा जन मनुष्य को नष्ट करता है ॥५८-६२॥

मोहजालस्य योनि र्हि मूढैरेव समागमः ।
अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः ॥६२॥

तस्मात् प्राज्ञैश्च वृद्धैश्च सुस्वभावैस्तपस्विभिः ।
सद्भिः सदैव संसर्गः कार्यः शमपरायणैः ॥६३॥

ब्रह्मचर्यादिभि र्हीनो बुद्धिबलविवर्जितः ।
विद्वानपि च मूर्खोऽसौ रावणान्न विशिष्यते ॥६४॥

अतः कामिजनस्याथ कामिन्याश्चापि सङ्गतिम् ।
दुःखदां संपरित्यज्य पुत्रेच्छां संपरित्यजेत् ॥६५॥

धर्मं धैर्यं सुमर्यादां त्यक्त्वा मूर्खः कुयोगतः ।
पुत्रं वाञ्छन् न सत्पुत्रं लभते काममोहितः ॥६६॥

कुपुत्रान्न सुखं क्वापि दुर्लभा च सुपुत्रता ।
इत्थं विचार्य वै विद्वान् त्यजेत् पुत्रस्य कामनाम् ॥६७॥

यावन्न जायते पुत्रस्तावदेका व्यथा भवेत् ।
पुत्रो न विद्यते मेऽत्र पिण्डदो लोक सम्मतः ॥६८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और मूढ़ो के साथ सम्बन्ध ही मोहजाल = बन्धन समूह का कारण है, तथा साधुओं के साथ सम्बन्ध उनका मिलन प्रति दिन धर्म का कारण है। अतः प्राज्ञ = विद्वान्, धर्म ज्ञानादि वृद्ध, सुन्दर स्वभाव वाले = क्रूरता रहित तपस्वी, शमपरायण, सत्पुरुष के ही साथ सदा ही सङ्ग कर्तव्य है, अन्य का नहीं। क्योंकि जो ब्रह्मचर्य शम दमादि से रहित सात्त्विक बल सुस्वभावादि से रहित तथा विवेक विज्ञानादि रूप बुद्धि से रहित रहता है, वह विद्वान् = शास्त्रज्ञ भी मूर्ख रहता है और रावण से विशिष्ट = भिन्न नहीं होता है, अतः वह सङ्गार्ह नहीं होता है। अतः कामीजन और कामिनी इन दोनों के दुःखप्रद संग को त्याग कर सुखेच्छु पुत्र की इच्छा को भी त्यागे। क्योंकि पुत्रेच्छा = काम भी मोह जनक होता है। अतः पुत्रादि की इच्छा से मोह युक्त मूर्ख मनुष्य धर्म, धैर्य, सुमर्यादा को त्याग कर कुयोग = हीन सम्बन्धादि द्वारा पुत्र की इच्छा करता हुआ भी श्रेष्ट पुत्र नहीं पाता है। और कुपुत्र से कहीं भी सुख नहीं होता है और सुपुत्रता = सुपुत्रवत्त्व दुर्लभ है। इस प्रकार विचार करके ही विद्वान् = विवेकी पुत्र की कामना को त्यागे। क्योंकि जबतक पुत्र नहीं होता है, तब तक अज्ञ को एक व्यथा पीड़ा होती है कि यहाँ पिण्डदाता सब लोक से सम्मत = स्वीकृत पुत्र मुझे नहीं है ॥९२-९८॥

गर्भधारणजं दुःखं स्त्रियाः संजायते ततः ।
गर्भकालेऽपि नारीणां व्यथा भवति सर्वथा ॥९९॥
गर्भपातस्य भीतिश्च जायते चिन्तनं मुहुः ।
पुत्रः स्यादथवा पुत्री चिरायु र्वाल्पजीवनः ॥१००॥
जन्मकाले महाभीति र्जायते ग्रहदोषजा ।
जाते पुत्रेऽपि दम्पत्यो र्मृत्युतो जायते भृशम् ॥१०१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखाय दुःखहानाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः ।
ततोऽनिवृत्तिरप्राप्ति र्दुःखस्य च सुखस्य च ॥१०२॥

कुपुत्रत्वं महद्दुःखं सुपुत्रत्वं सुदुर्लभम् ।
पुत्रस्य चातिरुग्णत्वे महती जायते व्यथा ॥१०३॥

सुपुत्रस्य वियोगे वा मृत्यौ दुःखं किमुच्यताम् ।
तस्मात्पुत्रं न वाञ्छन्ति विरक्ता ये विवेकिनः ॥१०४॥

नापुत्रस्य गतिः साध्वी जायते त्विति मन्यते ।
अविवेकी न वै विज्ञो यतो धर्मो गतिप्रदः ॥१०५॥

स्त्री को गर्भ के नहीं धारण करने से प्रथम दुःख होता है, फिर गर्भ धारण करने पर भी गर्भकाल में स्त्रियों को सर्वथा पीड़ा होती है और गर्भपात का भय होता है और बार-बार चिन्ता होती है, कि न मालूम पुत्र होगा कि पुत्री होगी। पुत्र होने पर चिरजीवी होगा या अल्पायु होगा। और जन्म काल में ग्रह दोष जन्य महाभय होता है, जन्म होने पर भी स्त्री पुरुष को पुत्र की मृत्यु से बार-बार भय होता है कि पुत्र मरे नहीं। यद्यपि स्त्री पुरुष दोनों सुख और दुःख की निवृत्ति के लिये विवाह मैथुनादि क्रिया करते हैं परन्तु उससे दुःख की निवृत्ति नहीं होती है और सुख की प्राप्ति नहीं होती है। क्योंकि विवाहादि से यदि कुपुत्रत्व (कुपुत्र) होता है, तो महा दुःख रूप ही होता है, वह पोषणादि नहीं करके धन धर्मादि को भी नष्ट करता है और सुपुत्रत्व अत्यन्त दुर्लभ है अर्थात् अति कठिनाई से पालन शिक्षण कुसङ्ग कुभक्ष्यादि के वारण से सुपुत्रत्व होता है। और प्रमादादि वश पुत्र के मानस दैहिक रोगों से अतिरुग्ण होने पर महती पीड़ा होती है। सुपुत्र के होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर भी उसके वियोग और मरण होने पर जो दुःख होता है सो तो कहा क्या जाय, वह वचनागोचर होता है। अतः विवेकी विरक्त जन पुत्र की इच्छा नहीं करते हैं। अपुत्र की सुगति नहीं होती इस प्रकार अविवेकी मानते हैं, विज्ञ नहीं। क्योंकि धर्म सुगतिप्रद होता है, पुत्र नहीं ॥९९-१०५॥

एवं धनमनर्थानां कारणं विद्यते सदा।
सन्तोषस्य परित्यागाल्लोभद्रोहसमाश्रयात् ॥१०६॥

त्यक्त्वा स्त्रियं सुपुत्रं ये चोत्तमाश्रमितां गताः।
ते वाञ्छन्तो धनं मूढाः कष्टं केवलमाप्नुयुः ॥१०७॥

अन्यायाच्च गृहस्थोऽपि धनं लब्ध्वा न तुष्यति।
बुद्धौ भवति मालिन्यं धनं न्यायात्तु दुर्लभम् ॥१०८॥

"अर्थसम्पद्विमोहाय विमोहो नरकाय च।
तस्मादर्थमनर्थाख्यं मोक्षार्थी दूरतस्त्यजेत् ॥१०९॥

अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखसाधनम्" ॥११०॥

सञ्चयो नैव कर्तव्यः सर्वदा सुखमिच्छता।
विरक्तेनात्मसक्तेन यावदर्थेन सुख्यसौ ॥१११॥

सञ्चयोऽन्नस्य वस्त्रस्य द्रव्यस्य नयतः सदा।
सद्गृहस्थेन कर्तव्यो वानप्रस्थेन च क्वचित् ॥११२॥

स्त्री पुरुष के समान धन भी सन्तोष के त्याग और लोभ द्रोह के समाश्रयण से सदा अनर्थों का कारण है। क्योंकि उत्तम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आश्रमिता (त्याग आश्रम) को प्राप्त जो लोग स्त्री और सुपुत्र को त्याग कर, मूढ=मोहवश होते हुए वे लोग धन की इच्छा करते हुए केवल कष्ट ही पाते हैं। गृहस्थ भी अन्याय से धन पाकर सन्तुष्ट नहीं होता है और अन्याय लब्ध धन के उपभोगादि से बुद्धि में मलीनता होती है और न्याय से धन दुर्लभ है। और अर्थ=धन की सम्पत्ति=वृद्धि विमोह=अभिमानादि के लिये होता है और अविवेकादि रूप विमोह पाप द्वारा नरक के लिये (नरक का हेतु) होता है, अतः मोक्षार्थी=मुमुक्षु अनर्थ नामक अर्थ को दूर से त्यागे=संग्रह नहीं करे, क्योंकि अर्थों के उपार्जन, अर्जित के रक्षण उसके नाश तथा व्यय=खर्च में दुःख होता है अतः दुःखों के साधन=भाजन अर्थ को धिक्कार है। अतएव सदा सुख चाहने वाले को अर्थ=धन का संचय नहीं करना चाहिये और विरक्त आत्मप्रेमी को संचय नहीं करना चाहिये क्योंकि शरीर यात्रा निर्वाह के लिये जितना अर्थ चाहिये उस यावद्=अर्थ=प्रयोजन =फल से ही वह सदा सुखी रहता है। ऐसा होते भी श्रेष्ठ गृहस्थ को न्याय से अन्न, वस्त्र और द्रव्य का संचय=संग्रह कर्तव्य है। क्योंकि गृहस्थ सब आश्रमी का आश्रय होता है और कहीं वानप्रस्थ को भी संग्रह कर्तव्य है ॥१०६-११२॥

न्यायार्जितोपयोगेन सत्पात्रादौ च यागतः।
लभते परमां सिद्धिमन्यथा दुःखभाग् भवेत् ॥११३॥

परनारीं परद्रव्यं विषवत् संत्यजेत् सदा।
परप्राणाँश्च संरक्षेत् करुणाद्रुतचेतसा ॥११४॥

स्वदुःखसुखतुल्यानि तानि सर्वस्य बुद्धितः।
विज्ञायैव न कस्यापि दुःखाय प्रयतेत च ॥११५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्माविरुद्धकामाँश्च सेवेताऽऽप्ताँश्च धर्मतः ।
परमं धर्ममास्थाय विमुक्त्यै संयतो भवेत् ॥११६॥
एवं कुर्वन् गृहस्थोऽपि गृहेष्वतिथिवद् वसन् ।
ज्ञानान्मोक्षमवाप्नोति नान्यथा जन्मकोटिभिः ॥११७॥

"धर्मादर्थोऽर्थतो भोगो भोगाद्वैराग्य सम्भवः ।
धर्मोपार्जितभोगेन वैराग्यमुपजायते" ॥११८॥
'न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्टोऽतिथिप्रियः ।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥११९॥
न्यायागतधनः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ।
स्वधर्मपालको नित्यं ब्रह्मभूयाय कल्पते" ॥१२०॥

सत्पात्र दीनादि में और यज्ञादि में न्यायार्जित धन के उपयोग सम्बन्ध = अर्पण करने से गृहस्थ परम सिद्धि पाता है, अन्यथा दुःख भागी होता है। अतः गृहस्थ अन्य की स्त्री और द्रव्य को विष तुल्य सदा त्यागे और दया से द्रवित = कोमल चित्त के द्वारा अन्य के प्राणों की सदा रक्षा करे और निज दु ख सुख के तुल्य ही सब के उन दुःख सुखों को बुद्धि से समझ कर के ही बुद्धि पूर्वक किसी के दुःख के लिये प्रयत्न नहीं करे। धर्म से अविरुद्ध धर्म से प्राप्त कामों को सेवे और परम धर्म योग भक्ति ज्ञान का आश्रयण करके अहिंसा व्रत का धारण करके विमुक्ति के लिये संयत (शमादि युक्त) होवे। इस प्रकार के आचरण को करता हुआ गृहस्थ भी गृह में अतिथि के समान मोह सङ्गादि रहित वसता हुआ ज्ञान से मोक्ष पाता है और अन्य प्रकार से करोड़ो जन्म द्वारा भी मोक्ष नहीं पाता है। धर्म से अर्थ उपार्जित हो, धर्माजित अर्थ से भोग हो, तो उस भोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अन्तःकरण की शुद्धि, विवेकादि द्वारा वैराग्य होता है। क्योंकि धर्म उपार्जित वस्तु के भोग = भोजनादि पूर्वक वैराग्य शीघ्र ही होता है, अतः न्याय = धर्म से आगत = प्राप्त धन वाला = तत्त्व = सत्य परमात्मज्ञान में निष्ठा = प्रीति = स्थितिवाला और अतिथि जिसको प्रिय हो ऐसा श्राद्धादि सत् कर्म कर्ता गृहस्थ भी मुक्त होता है। न्यायागत धन वाला शान्त = तृष्णादि रहित ब्रह्मविद्या में तत्पर = उपासक और सदा स्वधर्म का रक्षक गृहस्थ ब्रह्मभाव = मोक्ष के लिये समर्थ होता है ॥११३-१२०॥

अन्यथा कष्टदं सर्वं स्त्रीपुत्रधनधान्यकम् ।
ममतामोहतो नित्यं जन्ममृत्युप्रदं तथा ॥१२१॥
इत्थं भर्त्तुः समालोक्य सर्वं त्यक्त्वैव बन्धनम् ।
ममताभिधमेकान्ते बनं प्रायादनन्यधीः ॥१२२॥
विवेकादुत्तमो धीरः परवैराग्यमुत्तमम् ।
लभते दोषदृष्ट्याद्यै र्मध्यमो मध्यमं तथा ॥१२३॥

एकान्ते चागमद् भर्त्तुस्तपस्वी शान्तमानसः ।
श्रुतवानिति वृत्तान्तं मन्त्रिमुख्यो हि योऽभवत् ॥१२४॥
श्रुत्वा तस्याऽभवच्चिन्ता नृपः श्रोष्यति जीवितम् ।
यद्वा क्वापि स तं पश्येत्तदाऽनृतवचः स्मरेत् ॥१२५॥

मिथ्याप्रभाषिणः सर्वे वयं दण्डप्रभागिनः ।
भवेम तत्प्रयत्नोऽत्र कर्तव्यः सर्वसम्मतः ॥१२६॥
तैः सर्वैः संमिलित्वैव प्रधानश्च परस्परम् ।
विचार्यैव सभायां ते प्रागमन् नृपसन्निधौ ॥१२७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यथा = उक्तरीति से आचरण नहीं करने पर स्त्री पुत्र धन धान्य ये सब ममता और मोह द्वारा सदा वर्तमान काल में दुःखद होते हैं और फिर जन्म मरणादि रूप संसार के हेतु होते हैं। इस प्रकार सम्यक् विचार पूर्वक समझ कर ममता नामक सब बन्धनों को त्याग कर के ही अनन्य बुद्धि = पुत्रादि की चिन्ता से रहित भछुं एकान्त देश में बन को गया। उत्तम धीर पुरुष विवेक से उत्तम वैराग्य को पाता है और मध्यम पुरुष दोष दृष्टि आदि से मध्यम वैराग्य को पाता है। भछुं ने विपत्ति पूर्वक दोष दृष्टि से वैराग्य पाया। तपस्वी शान्त मन वाला भछुं एकान्त बन में गया, इस वृत्तान्त = वार्ता को जो मन्त्रियों में प्रधान हुआ था सो सुना। सुन कर विचारने पर उसको चिन्ता हुई कि राजा यदि भछुं को जीवित सुनेगा या वह कहीं भछुं को देखेगा तो हम लोगों के मिथ्या वचनों का स्मरण करेगा। फिर मिथ्या प्रभाषी हम सब दण्ड भागी होंगे। अतः यहाँ सर्व सम्मत प्रयत्न कर्तव्य है। फिर उन अन्य सब कार्य कर्ताओं के साथ मिल कर के ही वह प्रधान मन्त्री परस्पर विचार किया और विचार करके ही वे सब सभा में राजा के पास गये। ॥१२१-१२७॥

उक्तवन्तश्च सर्वे ते, भछुं मृत्वाऽधमाधमः।
प्रेतो जातः स भस्मादि देह आलिप्य तिष्ठति ॥१२८॥

तं गच्छन्ति हि ये मोहाद् वार्तां कुर्वन्ति तेन ये।
तान् हन्ति ये पलायन्ते दृष्ट्वा जीवन्ति वै जनाः ॥१२९॥

राजा श्रुत्वाऽसतां वाक्यं निश्चयं कृतवाँस्तथा।
कदाचिच्च वनं यातो मृगयार्थं महिपतिः ॥१३०॥

भछुं मन्त्रिवरं दृष्ट्वा तपस्यन्तं तरोरधः।
स्थितं प्रेतं च तं मत्वा पलायत भयाकुलः ॥१३१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भर्छुं मृतोऽभवत्प्रेत इत्यसत्यं वचो हि सः ।
सत्यं मत्वैव दृष्ट्वापि जीवितं न हि बुद्धवान् ॥१३२॥

यथा तथा कथां श्रुत्वा द्वैतस्य हृदि धारयन् ।
साक्षादद्वैतमज्ञो हि पश्यन्नपि न पश्यति ।१३३॥
द्वैतवाक्येऽतिविश्वासादद्वैतं न शृणोति यः ।
सोऽज्ञो न सच्चिदानन्दं ब्रह्म जानाति केवलम् ॥१३४॥

और वे सब बोले कि भर्छुं मर कर अधम से अधम = अतिनीच प्रेत हुआ है और वह देह में भस्म = राख आदि लगा कर रहता है। मोह से जो कोई उसके पास में जाते हैं, उससे मिलते हैं या उसके साथ बात करते हैं उनको वह मारता है, जो उसको देखकर भागते हैं, सो जीवित रहते हैं। राजा असत् पुरुषों के वचन को सुन कर उनके वचनों के अनुसार ही निश्चय कर लिया। फिर कभी शिकार के लिये राजा वन में गया। तो वहाँ वृक्ष के नीचे स्थिर तप करते हुए मर्छुं नामक अपने श्रेष्ट मन्त्री को प्रत्यक्ष देख कर भी उसको प्रेत मान कर भय से व्याकुल होकर वहाँ से भागा भर्छुं मर गया और वह प्रेत हो गया इस असत्य वचन को ही वह राजा सत्य मानकरके ही जीवित मन्त्री को देख कर भी जीवित नहीं समझा। जैसा यह दृष्टान्त है, जैसे राजा नहीं समझा, तैसे ही द्वैत की कथा को सुनकर जो अज्ञ उसको हृदय में धारण करता है, सो साक्षात् = प्रत्यक्ष अद्वैत को देखता हुआ भी नहीं देखता है। क्योंकि द्वैत वाक्य में अत्यन्त विश्वास से जो अद्वैत का श्रवण नहीं करता है, सो अज्ञ प्राणी सच्चिदानन्द स्वरूप केवल ब्रह्म को नहीं जानता है ॥१२८-१३४॥

ब्रह्मज्ञानं विना शान्तिसमतारहितो जनः ।
दुःखमाप्नोति सततं सदा सर्वासु योनिषु ॥१३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्त्यक्त्वा भेदवाक्यं तु सदैवासत्य बुद्धितः ।
संश्रृणोति महावाक्यं तेन ब्रह्मानुभूयते ॥१३६॥
समे ब्रह्मणि शिष्य ! त्वं कृत्वा विश्वासमुत्तमम् ।
श्रुतां द्वैतकथां सर्वां ज्ञात्वा दुःखप्रदां त्यज ॥१३७॥
उपास्तेषु विधौ तद्वत् कर्मणश्च विधौ तथा ।
व्यावहारिकमेवाङ्ग![1] द्वैतं समुपयुज्यते ॥१३८॥
सत्यद्वैतस्य नापेक्षा यथा कर्मादिसिद्धिषु ।
तथा संसारहानौ नो सत्यं वेदाद्यपेक्ष्यते ॥१३९॥
ज्ञानात्पूर्वं तु सत्यत्वं गुरौ वेदेषु सर्वथा ।
लक्ष्यते शिष्यतस्तस्मान्नास्ति कापि कदर्थना ॥१४०॥

और ब्रह्म ज्ञान के विना शान्ति समता से रहित जन निरन्तर सदा सब योनियों में दुःख पाता है और जो कोई भेद बोधक वाक्य को सदा ही असत्य बुद्धि से (असत्यार्थं बोधक जान कर) त्यागता है और उसे त्याग कर महावाक्य का श्रवण करता है, वह ब्रह्म का अनुभव करता है। हे शिष्य ! सम = एकरस ब्रह्म में उत्तम विश्वास करके और सुनी हुई सब द्वैत को दुःखप्रद जान कर तुम उसे त्यागो और उपासना की विधि में तथा उसी प्रकार

१—त्रिकालाऽवाध्यत्वं सत्यत्वं = पारमार्थिकत्वम् । अविद्याऽतिरिक्त दोषाऽजन्यत्वं व्यावहारिकत्वं । अविद्याऽतिरिक्तदोषजन्यत्वं प्रातिभासिकत्वं अनावृत्तचैतन्यविषयतानियतस्वरूपात्मक प्रातिभासिकत्वं तु अविद्यादावपि वर्तते । तादृशविषयतया कदाचित् सम्बद्धत्वं व्यावहारिकत्वमिति मतान्तरम्, इत्यादि (ब्रह्म विद्याभरणे-अद्वैत मञ्जूयाम्) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म की विधि में भी हे अङ्ग ! प्यारे ! व्यावहारिक = मिथ्या ही द्वैत सम्यक् उपयोगी होता है, सत्य द्वैत की अपेक्षा नहीं होती है। इसी प्रकार कर्मादि की सिद्धियों में और जन्मादिरूप संसार की हानि = निवृत्ति में भी सत्य वेदादि की अपेक्षा नहीं होती है और दूसरी बात है कि ज्ञान से प्रथम गुरुवेदादि में भी शिष्य को सर्वथा सत्यता लक्षित = ज्ञात होती है, अतः कोई कदर्थना कठिनाई नहीं है ॥१३४-१४०

ज्ञानेऽसत्यत्वभानेऽपि स्वरूपेणैव सत् स्फुरेत् ।
वेदोऽथ गुरुवर्योऽपि नास्ति कापि बिडम्बना ॥१४१॥

मिथ्या वेदाद् गुरोश्चैव कथं दुःखं विनङ्क्ष्यति ।
अत्रैकमुत्तरं प्रोक्तमन्यच्चाप्युत्तरं शृणु ॥१४२॥

निवर्ततेऽत्र मिथ्यैव तादृशोऽतो निवर्तकः ।
न हि सत्याद्धि सत्यस्य निवृत्तिः क्वापि सम्भवेत् ॥१४३॥

यदि सत्यो भवेद् वेदो गुरुश्चापि चिदात्मवत् ।
ततो न दुखःहानिः स्याद् ब्रह्मणो न हि दृश्यते ॥१४४॥

मिथ्या दुखं यथा मिथ्या गुरोर्वेदाद्विनश्यति ।
तथैकं तेऽत्र दृष्टान्तं वच्मि तच्छृणु तत्त्वतः ॥१४५॥

स्वर्गे शक्रसमः कश्चिद् राजाऽत्रासीत् प्रतापवान् ।
भीमतुल्यास्तु योद्धारो वीरा आसन् सुरक्षकाः ॥१४६॥

द्वारपालाः सदा तस्य द्वारि तिष्ठन्ति सायुधाः ॥
यतः पक्षिप्रवेशोऽपि यत्रासीन्नैव सम्भवी ॥१४७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अद्वैतात्म ज्ञान होने पर गुरु वेदादि में असत्यता के भान = ज्ञान होने पर भी पारमार्थिक स्वरूप से गुरु वेदादि सत्य स्फुरते = भासते हैं, अतः कोई विडम्बना = विरोध नहीं है। मिथ्या वेद और गुरु से ही दुःख कैसे विनष्ट होगा, इस प्रश्न का एक उत्तर कहा गया, अन्य उत्तर भी सुनो। इस संसार में मिथ्या ही निवृत्त = नष्ट होता है, अतः तादृश = मिथ्या ही निवर्तक = नाशक होता है, क्योंकि सत्य से सत्य की ही निवृत्ति कहीं हो नहीं सकती है। यदि चेतनात्मा के समान वेद और गुरु भी पारमार्थिक सत्य हों, तो उनसे दुःख की निवृत्ति नहीं हो सकती। जैसे कि सत्य ब्रह्म से दुःख की निवृत्ति नहीं देखी जाती है। और मिथ्या दुःख जिस प्रकार मिथ्या गुरु और वेद से निवृत्त होता है, तिस प्रकार का दृष्टान्त मैं यहाँ तुमको कहता हूँ। यथार्थ रूप से उस दृष्टान्त को सुनो। स्वर्ग में इन्द्र के समान इस भूमि में प्रतापी कोई राजा था, जिसके भीम के समान योद्धा सुन्दर रक्षक थे और उसके द्वार पर आयुद्ध = अस्त्र, शस्त्र सहित द्वारपाल सदा वर्तमान रहते थे कि जिससे जहाँ पक्षी का प्रवेश भी असम्भव था ॥१४१-१४७॥

उच्चैः सौधे स्थितो राजा शेते पर्यङ्कमाश्रितः।
रक्षकाःसर्वतो वीरा रक्षन्ति स्म निरन्तरम् ।१४८॥
तत्र राजा शिवां दुष्टामपश्यत्स्वप्नमाश्रितः।
सा चास्य पादनाडीं च संजग्राहातिवेगतः ॥१४९॥
पादप्रमोचनार्थं तु नानोपायान् व्यधत्त सः।
शिवा तत्याज पादं नो तदाऽऽकारितवाञ्जनान् ॥१५०॥
आयाहि जहि भो दुष्टां कोप्यत्र यदि विद्यते।
न कोऽपि हतवाँस्तां तु जघानातः स दण्डतः ॥१५१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्याः शिरसि संहत्य तां निपात्य स्वपादतः ।
तस्या दन्तान् विनिष्कास्य व्रणदुःखेन दुःखितः ॥१५२॥
गृहीत्वादण्डमेवाथ चिकित्सकगृहं गतः ।
गत्वा चोवाच मे देहि स्वौषधं व्रणपूरकम् ॥१५३॥
स चोवाच न मे सिद्धमौषधं विद्यते प्रभो ! ।
पणो मे दीयतामेकः साधयामि तवौषधम् ॥१५४॥

वहाँ ऊँचे महल में पलँग पर राजा सोता था और रक्षक वीर सब तरफ निरन्तर = सदा रक्षा करते थे। वहाँ स्वप्न में राजा ने दुष्ट शिवा = गीदरी को देखा और गीदरी ने अति वेग से = अति शीघ्र उस राजा के पैर की नाड़ी को पकड़ लिया। फिर उस राजा ने गीदरी से पैर को छोड़ाने के लिये प्रथम नाना उपाय किया, परन्तु गीदरी पैर को नहीं छोड़ी, तब राजा ने स्वप्न में ही रक्षक जनों को पुकारा, छुड़ाने के लिये बुलाया, कि हे भाई! यदि कोई यहाँ हो, तो आओ और इस दुष्टा गीदरी को मारो, परन्तु उसको किसी ने नहीं मारा, अतः वह राजा स्वयं दण्ड से उसे मार दिया। उसके शिर में मार कर, उसे गिराकर, अपने पैर में से उसके दाँतों को निकाल कर भी घाव के दुःख से दुःखी वह राजा, फिर दण्ड ही पकड़ कर व्रणचिकित्सक वैद्य के घर गया और वहाँ जाकर कहा कि घाव को भरने वाला सुन्दर औषध मुझे दो। फिर उसने राजा से कहा कि हे प्रभो! मेरे पास में सिद्ध = तैयार औषध नहीं है, यदि आप मुझे एक पण = पैसा दो, तो औषध साध दूँ, आपके लिये औषध बना दूँ ॥१४८-१५४॥

द्रव्याऽभावतो राजा न्यवर्तत यथागतम् ।
व्यचिन्तयदहो को मां दरिद्रं परिपृच्छति ॥१५५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग्यशीलो धनी चेत्स्यां तदाऽयं सुचिकित्सकः ।
गृहमागत्य मे सर्वं दद्यादेव शुभौषधम् ॥१५६॥
दरिद्रं मां तु विज्ञाय गृहाद्रोगसमं निजात् ।
न्यवारयदयं यस्माल्लोके स्वार्थपरो जनः ॥१५७॥
स्वार्थं विना न कस्यापि प्रियः कोऽप्यत्र विद्यते ।
अपि माता पिता बन्धुः सर्वे स्वार्थपरायणाः ॥१५८॥
सांसर्गिकमहारोगैः कुरोगैः परिपीडितम् ।
दारिद्र्येण परिग्रस्तं स्वजनाः संत्यजन्ति हि ॥१५९॥
नारी पूत्रस्तथाऽन्येऽपि सर्वे स्वार्थपरा जनाः ।
स्वार्थं विना हिता ये तु ते च रामस्वरूपिणः ॥१६०॥
सन्तः स्वार्थविहीना ये परार्थघटकाः सदा ।
तेषां दर्शनतश्चापि रोगौघः प्रविनश्यति ॥१६१॥

फिर राजा द्रव्य के अभाव से उसको एक पैसा नहीं दे सका। अतः जैसे ही आया था, तैसे ही कष्ट युक्त लौटा और विशेष = अधिक चिन्ता करने लगा कि आश्चर्य है, मुझ दरिद्र को इस समय पूछता भी कौन है। भाग्यशील = पुण्यात्मा धनी यदि मैं होता, तो यह सुन्दर चिकित्सा करने वाला मेरे घर में आकर सब शुभ औषध देता ही। यह तो मुझे दरिद्र समझ कर, अपने घर से रोग के समान हटाया है, जिससे लोक में स्वार्थ परक जन हैं। स्वार्थ के विना यहाँ कोई किसी का प्रिय नहीं है। माता पिता बन्धु ये सब भी स्वार्थ परायण होते हैं। सांसर्गिक कुष्टादि महारोगों से या कुरोगों से परिपीड़ित को और दरिद्रता से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रस्त को स्वजन भी अत्यन्त त्याग कर देते हैं। स्त्री पुत्र तथा अन्य भी सब जन स्वार्थ परायण होते हैं। स्वार्थ के विना जो हित होते हैं, वे तो राम स्वरूप ही होते हैं और सदा परार्थ के साधक=परोपकारी, स्वार्थ रहित जों सन्त होते हैं उनके दर्शन से भी रोग समूह प्रविनष्ट होता है ॥१५५-१६१॥

तत्प्रयत्नात्तथासङ्गादुपदेशाद्दयालवात् ।
संसारदुःखनाशः स्यात्कथमन्यस्य संस्थितिः ॥१६२॥
सत्सङ्गः परमो लाभो नैव लभ्योऽकृतात्मभिः ।
हन्ताऽहमकृतात्माऽतो लभ्यते नौषधं मुनिः ॥१६३॥
इत्थं चिन्तयतस्तस्य मुनिरेकः समागमत् ।
मूलौषधं च दत्त्वा स सर्वं दुःखं व्यनाशयत् ॥१६४॥
दुःखस्य नाशकाले स राजा निद्राविवर्जितः ।
जजागार सुखापन्न औषधं च मुनिं स्मरन् । १६५॥
मिथ्या दुःखं यथा मिथ्या साधनात् संन्यवर्तत ।
सत्यं तु साधनं तत्र नोपयुज्यत किञ्चन ।१६६॥
तथा मिथ्या जगद्दुखं मिथ्यासाधनतः किल ।
निवर्तते न सन्देह इति निश्चीयतां त्वया ॥१६७।
यत्सत्यासत्यो र्मध्ये वर्तते चित् खपुष्पयोः ।
तन्मिथ्या कथ्यते सद्भि र्व्यवहारस्ततोऽखिलः ॥१६८॥

उन सन्तों के प्रयत्न, सङ्ग उपदेश और दया के लव से संसार रूप दुःख का नाश होता है, फिर अन्य दुःख की संस्थिति तो कैसे हो सकती है। सत्सङ्ग परम लाभ रूप है, परन्तु अकृतात्मा=

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुद्धात्मा को सत्सङ्ग नहीं मिलता है। हन्त = खेद है कि मैं अकृतात्मा = अपुण्यात्मा हूँ। अतः औषध और मुनि = सन्त न मिलते हैं। इस प्रकार उस राजा के चिन्ता करते ही समय में एक मुनि आ गये और मूलात्मक = जड़ी रूप औषध देकर सो मुनि सब दुःख को विनष्ट कर दिये। दुःख के नाश काल में ही वह राजा निद्रा रहित सुख युक्त होकर, औषध और मुनि को स्मरण करता हुआ जागा। राजा का मिथ्या दुःख मिथ्या औषध और मुनिरूप साधन से जैसे निवृत्त हुआ और सत्य कोई साधन वहां कुछ भी उपयुक्त = सफल नहीं हुआ। इसी प्रकार मिथ्या जगत् सम्बन्धी जगत् स्वरूप दुःख भी मिथ्या गुरु वेदादि साधन से ही निवृत्त होता है. इस में संशय नहीं है, इस प्रकार निश्चय तुम करो। सत्य चेतनात्मा और असत्य खपुष्प शशश्रृङ्गादि के मध्यवर्ती जो वस्तु हैं, अर्थात् सत्यासत्य से जो विलक्षण हैं, उन्हें सत्पुरुषों से मिथ्या कहा जाता है, तथा अनिर्वचननीय कहा जाना है और उन से ही अनिर्वाच्य स्वरूप ही सब व्यवहार होता है, सत्य से सत्य व्यवहार नहीं होता है ॥१६२–१६८॥

तत्रैव साध्यता तद्वत्साधनत्वं च सम्भवि ।
सत्ये न साध्यता नापि साधनत्वं समिष्यते ॥१६९॥
मोक्षो न साध्यतामेति किन्तु ज्ञानात्तमः क्षयः ।
जायते तेन सत्यात्मा नित्यमुक्तः प्रकाशते ॥१७०॥
साध्यसाधनता यत्र तत्रापि नियमस्त्वयम् ।
समसत्ताकसत्त्वे सा विद्यते विषमे नहि ॥१७१॥
मृगतोये पिपासायां समसत्ता न विद्यते ।
मृगतोयात्ततो लोके पिपासा न निवर्तते ॥१७२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यावहारिकवेदानां गुरूणां भवदुःखतः ।
समसत्ताकतैवातस्तभ्यस्तद्विनिवर्तते ॥१७३॥

क्योंकि उस मिथ्या में ही साध्यता = कार्यता और साधनता = कारणता होने योग्य है, अतः सत्य में साध्यता और साधनता भी सम्यक् स्वरूप से नहीं मानी जाती है, किन्तु सत्य में साधनत्वादि कल्पित होते हैं। यद्यपि ज्ञान से मोक्ष होता है तथापि मोक्ष साध्यता = कार्यता को नहीं प्राप्त होता है किन्तु ज्ञान से अज्ञानरूप तम का नाश होता है कि जिससे नित्य मुक्तस्वरूप आत्मा प्रकाशता = व्यक्त होता है। तम या अज्ञान ज्ञानाभाव रूप नहीं माना जाता है, किन्तु (अनादित्वे सति त्रिगुणात्मकं सदसद्भ्यामनिर्वाच्यं भावरूपं ज्ञाननिवर्त्यम्। सद्विलक्षणत्वमात्रं वा लक्षणमज्ञानस्य। सद्विलक्षणमनादि ज्ञाननिवर्त्यम्। अनाद्यु-पादानं ज्ञाननिवर्त्यम् (इति) इत्यादि अद्वैत कौस्तुभ में अज्ञान का लक्षण कहा गया है। और जहाँ साध्यता और साधनता रहती है, तहाँ भी यह नियम है कि सम = तुल्य सत्ता वाली वस्तु (द्रव्यादि) में ही वह साध्यता और साधनता रहती है, विषम सत्ता वाली वस्तु में नहीं। और मृग से कल्पित जल तथा पिपासा में सम सत्ता नहीं रहती है। क्योंकि मृग कल्पित जल प्रातिभासिक रहता है। पिपासा व्यावहारिक रहती है, अतः लोक में मृग तोय से पिपासा नहीं निवृत्त होती है। व्यावहारिक वेद और गुरु की भव दुःख के साथ तुल्य व्यावहारिक ही सत्ता रहती है अतः उन वेद और गुरु जनों से वह भव दुःख निवृत्त होता है ॥१६९-१७३

अधिष्ठानत्वरूपं यत्कारणत्वं सुकल्पितम् ।
विद्यते तद्धि सत्येऽपि सत्यतुल्यं न विद्यते ॥१७४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यावहारिकसत्त्वे तु कारणत्वं तथा विधम् ।
प्रातिभासिकसत्त्वे च कारणत्वं तथैव हि ॥१७५॥

ब्रह्मज्ञानं विना बाध्यं प्रातिभासिकमुच्यते ।
ब्रह्मज्ञानेन बाध्यं च वस्तु स्याद् व्यावहारिकम् ॥१७६॥

प्रतीतिकालिकी सत्ता यस्य वा प्रतिभासते ।
तत्प्रातिभासकं ज्ञेयं तदन्यच्च चिदन्यथा ॥१७७॥

व्यवहारे सदा यस्य प्रतीति र्जायते दृढा ।
वाधो न विद्यते लोके व्यावहारिकवस्तु तत् ॥१७८॥

ब्रह्म भिन्नस्य मिथ्यात्वमुक्तवानसि सद्गुरो !
भिन्ने भेदं पुनः कस्माद् भाषसेऽत्रद्विधाऽनृते ॥१७९॥

अधिष्ठानत्व रूप जो अत्यन्त कल्पित=मिथ्या कारणत्व है, सो ब्रह्म में भी है परन्तु वह कारणत्व सत्य ब्रह्म में ब्रह्म तुल्य सत्य नहीं है। व्यावहारिक वस्तु में व्यावहारिक सत्त्व के रहने पर तो उसमें कारणता भी वैसी ही व्यावहारिक ही रहती है और प्रातिभासिक सत्त्व के रहने पर प्रातिभासिक कारणता, ही रहती है और ब्रह्मज्ञान के विना रज्जु आदि के ज्ञान से बाधित होने वाले रज्जुसर्पादि प्रातिभासिक कहे जाते हैं और ब्रह्मज्ञान से ही बाध के योग्य वस्तु संसार दुःखादि व्यावहारिक होते हैं। अथवा जिसकी प्रतीति कालिक ही सत्ता भासती है, उसको प्रातिभासिक समझना चाहिये और उस प्रातिभासिक से अन्य हो तथा चेतनात्मा से अन्य प्रकार हो, व्यवहार में सदा जिसकी दृढ़ प्रतीति हो, लोक में बाध नहीं हो, वह व्यावहारिक वस्तु है यद्यपि (सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् । योग द० ४ । १७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादि शास्त्र और अनुभव के अनुसार, घटादि की ज्ञात अज्ञात सत्ता होते भी घटादि विषयक चित्तवृत्ति रूप ज्ञान और साक्षिभास्य सुख दुःखादि की सत्ता ज्ञान काल में ही रहती है। तथापि उनका सत्त्वरूप से प्रतिभास = ज्ञान पीछे भी होता है। उनका व्यवहार काल में बाध नहीं होता है और रज्जु सर्पादि का बाध होता है, इत्यादि भेद है। शिष्य का प्रश्न है कि हे सद्गुरो ! प्रथम आपने ब्रह्म से भिन्न सबको मिथ्या कहा है, फिर ब्रह्मभिन्न इस अनृत = मिथ्या में प्रातिभासिक और व्यावहारिक ये दो प्रकार के भेद क्यों कहते हैं ॥१४७-१७९॥

मायाऽविद्याकृतं सर्वं मिथ्यैव सचराचरम् ।
ब्रह्मभिन्नं न सत् किञ्चिद् विद्यते नाप्यनामयम् ॥१८०॥
तथापि यदबोधेन यस्योत्पत्तिश्च सत्यता ।
तद्बोधेन हि तद्बाधोजायते नान्यथा क्वचित् ॥१८१॥
ब्रह्माज्ञानाज्जगज्जातं दुःखं जन्मादि लक्षणम् ।
बाध्यते ब्रह्मविज्ञानान्नान्यसाधनकोटिभिः ॥१८२॥
रज्ज्वज्ञानजसर्पस्तु रज्जुज्ञानेन नश्यति ।
मिथ्यात्वेऽपि त्वयं भेदो वर्ततेऽनात्मवस्तुषु ॥१८३॥
मायाऽऽख्याद् ब्रह्मणोऽज्ञानाज्जायते यज्जगद् गुरो ! ।
केन क्रमेण तं ब्रूहि सर्वथा निश्चितं सदा ॥१८४॥
यथा क्रमै विना स्वप्नः सर्वदा जायते तथा ।
क्रमैर्विनैव जायन्ते भ्रमाद् भूतानि भौतिकम् ॥१८५॥
मिथ्या सृष्टौ क्रमं सत्यं वेत्तुमिच्छति यो जनः ।
मरुस्थलजले सोऽत्र वस्त्रं क्षालितुमिच्छति ॥१८६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गुरु जी बोले कि माया और अविद्या से रचित चराचर सहित व्यावहारिक प्रातिभासिक सब संसार मिथ्या ही है, ब्रह्म से भिन्न कुछ भी न सत्य है न अनामय = निरुपद्रव है। तो भी जिसके अज्ञान से जो उत्पन्न होता है और सत्य भासता है उसके ज्ञान से ही अज्ञान सहित उस उत्पन्न का बाध होता है वह मिथ्या प्रतीत होता है। अन्य प्रकार से कहीं मिथ्या का भी बाध नहीं होता है। जन्मादि स्वरूप दुःखात्मक जगत् ब्रह्म के अज्ञान से उत्पन्न हुआ है (आत्मा में सत्य रूप से भासता है) अतः ब्रह्म के ही ज्ञान से बाधित होता है, नित्यमुक्त ब्रह्मात्मा के ज्ञान से ब्रह्मात्मा में सत्य बन्ध नहीं भासता है। ब्रह्म ज्ञान के विना अन्य करोड़ो साधनों से भी बाधित नहीं होता है। और रज्जु के अज्ञान से जन्य सर्प रज्जु के ज्ञान से नष्ट = बाधित होता है, संसार और रज्जु सर्प के मिथ्यात्व तुल्य होते भी अनात्म वस्तुओं में यह भेद तो रहता है कि कोई ब्रह्म ज्ञान से बाधित होता है और कोई अन्यथा बाधित होता है। शिष्य बोला कि हे गुरो! माया नामक ब्रह्म के अज्ञान से जो भूत भौतिक जगत् उत्पन्न होता है, सो किस क्रम से होता है, सदा सर्वथा निश्चित उस क्रम को आप कहो, श्रुति से निश्चय नहीं होता है। श्री गुरु जी बोले कि जैसे क्रम के विना सदा स्वप्न होता है, परन्तु क्रम की प्रतीति होती है, तैसे ही क्रमों के विना ही भ्रम अज्ञान से भूत भौतिक पदार्थ होते हैं। जो मनुष्य मिथ्या संसार में सत्य क्रम को जानने की इच्छा करता है, सो तो मानो यहाँ मरुस्थल के मृगजल में वस्त्र धोने की इच्छा करता है ॥१८०॥

वेदान्तेषु समुत्पत्ति र्भूतानां वहुधोच्यते ।
ब्रह्मभिन्नस्य मिथ्यात्वेऽभिप्रायस्तेन लक्ष्यते ॥१८७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मतस्तेजसः क्वापि नभसस्तु जनिः क्वचित् ।
अन्यत्र युगपच्चैव सर्वस्य जनिरुच्यते ॥१८८॥

भूतोत्पत्तौ न वेदानामभिप्रायोऽत्र विद्यते ।
किन्तु कारणरूपेण ब्रह्मबोधे स वर्तते ॥१८९॥

कारणाद् भिन्नसत्तायाः कार्येषु बाधितत्वतः ।
अद्वैतं केवलं ब्रह्म बुध्यते सृष्टिवाक्यतः ॥१९०॥

वस्तुतः सूत्रकारेण भाष्यकारादिभिस्तथा ।
आकाशादिक्रमेणैव सृष्टिः समवधीयते ॥१९१॥

उत्पत्तिक्रमतोऽन्येन विपरीतक्रमेण तु ।
लयस्य श्रवणं तस्मात्कारणं ब्रह्म बुध्यते ॥१९२॥

बुद्ध्वैवं कारणं ब्रह्म मनसस्तत्र धारणात् ।
जायते ब्रह्मणो ध्यानं ज्ञानञ्चापि सुदुर्लभम् ॥१९३॥

वेदान्तों में भूतों की उत्पत्ति बहुत प्रकार से कही जाती है, उससे ब्रह्म से भिन्न के मिथ्यात्व में वेदान्त का तात्पर्य लक्षित = ज्ञात होता है। कहीं ब्रह्म से तेज की कहीं आकाश की उत्पत्ति कही जाती है और कहीं अन्यत्र सब की युगपत् = साथ एक काल में उत्पत्ति कही जाती है। अतः इन भूतों की उत्पत्ति के प्रकरणों में वेदान्तों का तात्पर्य भूतों की उत्पत्ति में नहीं है, किन्तु कारण रूप से ब्रह्म के ज्ञान में वह वेदान्त का तात्पर्य है। कार्यों में उपादान कारण से भिन्न सत्ता के बाधित = अभाव होने के कारण सृष्टि वाक्यों के द्वारा सब का कारण स्वरूप केवल = एक अद्वैत ब्रह्म समझा जाता है। ब्रह्मसूत्र कार और भष्य-कारादि से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकाशादि क्रम से ही तैत्तिरीय श्रुति के अनुसार सम्यक् सृष्टि कही जाती है। और उत्पत्ति क्रम से अन्य विपरीत क्रम से लय का श्रवण होता है, उससे कारण स्वरूप ब्रह्म समझा जाता है इस प्रकार उत्पत्ति और प्रलय के बोधक श्रुतियों के द्वारा कारण स्वरूप ब्रह्म को समझ कर उसमें मन की धारणा से ब्रह्म का प्रथम ध्यान होता है, फिर अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मज्ञान भी होता है ॥१८७-१९३॥

विशुद्धानन्दचिद्रूपाद् ब्रह्मणो न जगज्जनिः ।
किन्तु माया युतादस्य सर्वज्ञाद्वै महेश्वरात् ॥१९४॥
परिणामो हि मायाया विवर्तो निर्गुणस्य च ।
भवतीदं जगत्सर्वं सत्यासत्यविलक्षणम् ॥१९५॥
विशुद्धं निर्गुणं ब्रह्म मायायाः संप्रकाशकम् ।
सत्ताप्रदं भवत्येव नाशकं न कदाचन ॥१९६॥
अनादिसान्तरूपा सा मायाऽविद्यापि कथ्यते ।
वृत्तीद्धचित्स्वरूपं हि तस्या नाशकमिष्यते ॥१९७॥
जीवेशभेद हीनं यद् ब्रह्म सच्चित्सुखात्मकम् ।
साभासमायया युक्तमीशत्वं तत्प्रपद्यते ॥१९८॥
मायाधीनान्न वै जीवादीश्वरान्मायिनो न हि ।
निर्विकारान्न वै शुद्धादज्ञानं जायते क्वचित् ॥१९९॥
तस्मादज्ञानरूपा सा मायाऽनादिरिति स्थितिः ।
तथापि साऽऽत्मनोज्ञानाद् विनश्यति न संशयः ॥२००॥

यद्यपि विशुद्ध आनन्द चिद् रूप ब्रह्म से जगत् की जनि = उत्पत्ति नहीं होती है, किन्तु माया युक्त सर्वज्ञ विभु अव्यक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईश्वर से इसकी उत्पत्तिहोती है (मायिनं तु महेश्वरम्) इत्यादि श्रुति से (आनन्दाद्ध्येव) इत्यादि श्रुति का भी यही तत्पर्य है। उक्त रीति से सृष्टि द्वारा शुद्ध ब्रह्म का ज्ञान यद्यपि नहीं हो सकता है, तथापि सत्य असत्य से विलक्षण यह सब जगत् माया का परिणाम होता है, और निर्गुण ब्रह्म का विवर्त होता है, अतः सृष्टि रूप विवर्त द्वारा ब्रह्म समझा जाता हैं। और शुद्ध निर्गुण ब्रह्म ही माया का सम्यक् प्रकाशक होता है और सबको सत्ता प्रद भी होता ही है। और कभी किसी का नाशक नहीं होता है। अतः साध्य साधन से भिन्न सर्व प्रकाशक ब्रह्म समझा जाता है। अनादि और सान्त = विनाशी स्वरूप वह माया ही अवस्था विशेष से अविद्या भी कही जाती हैं और अन्तःकरण की वृत्ति में इद्ध = दीप्त चित्स्वरूप उस अविद्या का नाशक माना जाता है। जीवादि भेद से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप जो ब्रह्म सोई आभास सहित माया से युक्त होकर ईश्वरता को प्राप्त होता हैं तहाँ माया के अधीनवर्ती जीव, मायी ईश्वर या निर्विकार शुद्ध ब्रह्म से कहीं भी अज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। तहाँ जीवादि से अज्ञान की अनुत्पत्ति के कारण अज्ञान स्वरूप माया अनादि है यह निश्चय है, तो भी आत्मा के ज्ञान से वह माया रूप अज्ञान नष्ट होता है, इसमें संशय नहीं है ॥१९४-२००॥

आभिमानिक आधारो मायाया जीव उच्यते ।
आधारो विषयश्चापि ब्रह्मैवास्या न चापरः ॥२०१॥

तूलाऽज्ञानमनन्तं तत् क्रमाज्ज्ञानेन नश्यति !
अनन्तत्वान्न विश्वस्य विच्छेदोऽद्यापि दृश्यते ॥२०२॥

मायी सदीश एवास्य चिदंशेन निमित्ततताम् ।
भजते मायया सैव चोपादानत्वमद्‌भुतम् ॥२०३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतो मायी महेशो वै कारणद्वितयात्मकः ।
जीवकर्मानुसारेण सृष्टिकर्ता निगद्यते ॥२०४॥
चैतन्यं यदधिष्ठानं लिङ्गदेहश्च यः पुनः ।
चिच्छाया लिङ्ग देहस्था तत्सङ्घो जीव उच्यते ॥२०५॥
सत्त्वेन मलिनेनाप्तेऽज्ञाने चित्प्रतिविम्बकम् ।
अधिष्ठानयुतं जीवः कर्मकृल्लभते फलम् ॥२०६॥
पूर्वकर्मानुसरेण ह्यनादौ संसृतौ किल ।
ईश्वराज्जायते सर्वं जन्मायुर्भोगसङ्गति ॥२०७॥

अभिमान द्वारा माया का आधार जीव कहा जाता है, परन्तु इस माया का आधार और विषय ब्रह्म ही है, अन्य नहीं। तूला= अंशरूप वह अज्ञान=अविद्या अनन्त है, जो जीवों के उपाधि= जीवत्व का हेतु है, वह ज्ञान द्वारा क्रम से नष्ट होता है, परन्तु उस के अनन्त होने से अभि तक संसार का विच्छेद नहीं दीखता है (एक अज्ञानवाद समष्टि मूलाज्ञान दृष्टि से समझना चाहिये) तथा एक जीव बाद भी उसी दृष्टि से समझना चाहिये। मायी एक सत्य ईश्वर ही चिदंश द्वारा इस जगत् के निमित्त कारणता को धारण करता है वही ईश्वर माया द्वारा अद्भुत उपादानत्व को धारण करता है। अतः वह मायी महेश्वर निमित्त और उपादान द्विविध कारण स्वरूप है और जीवों के कर्मानुसार सृष्टि कर्ता कहा जाता है। सर्वाधिष्ठान चेतन और लिङ्ग=सूक्ष्म देह तथा लिङ्ग देह गत चेतन की छाया=आभास, इन सबका जो सङ्घ= समूह, सो जीव कहा जाता है। मलिन सत्त्वगुण से आप्त=व्याप्त अज्ञान में अधिष्ठान युक्त चेतन का प्रतिविम्ब=आभास रूप जीव कर्म करता है और कर्मफल को भोगता है। अनादि संसार में ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्व पूर्व कर्मों के अनुसार से जीवों के जन्म, आयु और भोग की सङ्गति =प्राप्ति यह सब का समूह ईश्वर से होता है ॥२०१-२०७॥

अविद्यया विशिष्टश्च जीव एको हि विद्यते ।
अन्तःकरण संयुक्ताः प्रमातारो ह्यसंख्यकाः ॥२०८॥
सुखदुःखादिभोक्तारः स्वकर्माद्यनुसारतः ।
इत्येवं स्वानुसंधानं केषाञ्चिदिह विद्यते ॥२०९॥
अतो नैवेश्वरे शंक्ये वैषम्याघृणते क्वचित् ।
कर्मानुसारतो यस्मादिच्छा तस्य प्रजायते ॥२१०॥
जीवानां भोगसिद्ध्यर्थं कुर्यामहमिदं जगत् ।
इत्थं कृत्वा स संकल्पं खं वायुं तेज एव च ॥२११॥
पानीयं च तथा भूमिं कृतवान् गुणसंयुतम् ।
उत्तरोत्तरतः सर्वे त्वभवन् गुणतोऽधिकाः ॥२१२॥
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
आकाशादिषु भूतेषु गुणाः प्रोक्ता यथा क्रमम् ॥२१३॥
पूर्वभूतगुणः सर्वश्चोत्तरेष्वनुगच्छति ।
एकद्वित्रिचतुष्पञ्चगुणवन्ति भवन्त्यतः ॥२१४॥

एक अविद्या से विशिष्ट=युक्त जीव एक ही है, परन्तु उसमें कल्पित अन्तःकरण विशिष्ट प्रमाता ही असंख्य=अनन्त है और प्रमाता ही अपने कर्मों के अनुसार सुख दुःखादि को भोगने वाले हैं, इस प्रकार का अनुसंधान=विचरा यहाँ किसी का है। अतः इस प्रकार ही संसार सुख दुःखादि के होने से ईश्वर मैं विषमता और अघृणता=निर्दयता शंका के योग्य कहीं नहीं है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि जीवों के कर्मानुसार ही उस ईश्वर की इच्छा सृष्टि आदि के लिये होती है, कि मैं जीवों के भोगों की सिद्धि के लिये इस जगत् को रचुं। और ऐसा संकल्प करके ही उस ईश्वर ने आकाश वायु और तेज को क्रम से रचा और गुण सहित आकाशादि को तथा जल और भूमि को रचा और आकाशादि भूमि पर्यन्त में उत्तर उत्तर = आगे आगे वाले सब पदार्थ पूर्व पूर्व की अपेक्षा अधिक गुण वाले हुए। शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध = पञ्चम ये गुण आकाशादि भूतों में क्रम से कहे गये हैं। तहाँ पूर्व पूर्व भूतों के गुण उत्तर उत्तर भूतों में अनुगत = प्राप्त होते हैं। अतः क्रम से एक, दो, तीन, चार और पांच गुण वाले भूत होते हैं ॥२०८–२१४॥

भूतपञ्चकसत्त्वांशादन्तःकरणसंज्ञकाः ।
जायन्ते मिलितात्प्राणा रजोंशेभ्यो न चान्यथा ॥२१५॥
एकैकभूतसत्वांशाज्ज्ञानेन्द्रियसमुद्भवः ।
भवत्येवं रजोंशात्तु कर्मेन्द्रियसमुद्भवः ॥२१६॥
कर्मणामुपभोगार्थं सम्प्रवृत्तेरभावतः ।
प्रलयो जायते तद्वत् प्रवृत्तौ सृष्टिरुच्यते ॥२१७
प्रलये सर्वकार्याणां संस्कारो न निवर्तते ।
प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिचित्ताहङ्कृतयस्तथा ॥२१८॥
वर्तन्ते प्रलयेऽप्येता निजकारणरूपतः ।
यतोऽस्ति सर्वजीवानामनादित्वं सुसम्मतम् ॥२१९॥
अपञ्चीकृतभूतानि प्राणाद्यास्तत्कृतास्तथा ।
सूक्ष्मसृष्टिरिति ख्याता कारणैः सा युता सदा ॥२२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियागोचरत्वञ्च सूक्ष्मसर्गेऽस्ति सर्वथा ।
तच्छास्त्रैरनुमानैश्च सूक्ष्मसर्गो विबुध्यते ॥२२१॥

और पांचों भूतों के मिलित सत्त्वगुण अंश से अन्तःकरण नाम वाले मन बुद्धि चित्त अहंकार उत्पन्न (व्यक्त) होते हैं। तथा उसी प्रकार सब भूत के मिलित रजोगुण अंश से प्राण उत्पन्न होते हैं। और एक एक भूतों के सत्त्वांश से श्रोत्रादिरूप ज्ञानेन्द्रियों का समुद्भव = जन्म होता है और इसी प्रकार एक एक भूत के रजोगुण अंश से वाक् आदि कर्मेन्द्रियों का समुद्भव होता है। जीवों के भोग के लिये कर्मों की सम्प्रवृत्ति = उद्बोध = प्राकट्य के अभाव से प्रलय होता है। इसी प्रकार कर्मों की सम्प्रवृत्ति से सृष्टि कही जाती है। प्रलय में भी सब कार्यों के संस्कार निवृत्त नहीं होते है और प्राण, इन्द्रिय मन, बुद्धि, चित्त तथा अहङ्कृति = अहङ्कार ये सब भी प्रलय में अपने अपने कारणरूप से रहते हैं। क्योंकि इन से विशिष्ट सब जीवों की अनादिता अत्यन्त सम्मत = स्वीकृत है। तो भी अपञ्चीकृत भूत और उन से कृत = जन्य प्राणादि, सूक्ष्म सृष्टि इस शब्द से ख्यात = प्रसिद्ध है और वह सूक्ष्म सृष्टि सदा अविद्या आदि रूप कारणों से युक्त रहती है। कारण रूप उपादान के विना किसी कार्य की स्थिति नहीं रहती है। और सूक्ष्म सृष्टि में सर्वथा इन्द्रियों की अविषयता रहती है। अतः शास्त्र और अनुमान से सूक्ष्म सृष्टि समझी जाती है।

(सुख-दुःखानुकूलसाक्षात्कारप्रमितिक्रियाऽन्यतरकरमतीन्द्रियमिन्द्रियम् । अतिन्द्रियत्वं संयोगादिप्रत्यासत्तिजन्यसाक्षात्काराविषयत्वम् । इति तत्त्वानुसंधाने ॥२१४–१८१॥)

पञ्चीकृतानि भूतानि तेषां कार्याणि सर्वशः ।
स्थूलसृष्टिरिति ख्याता तत्रास्तीन्द्रियगम्यता ॥२२२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मायाऽविद्याकृते चात्र सर्गे भूतेऽथ भौतिके ।
कारणादिशरीराणि कोशाश्चान्तर्गतानि वै ॥२२३॥

सद्विवेकं विधायाऽत्र स्वात्मानमचलं पृथक् ।
मुञ्जादिषीकया तुल्यं कृत्वा धीरो न शोचति ॥२२४॥

''मन्तव्य एक एवात्मा जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तिषु ।
स्थानत्रयाद् व्यतीतस्य पुनर्जन्म न विद्यते । २२५॥

त्रिषु धामसु यद् भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद् भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदा शिवः ॥२२६॥

स्थूलं स्वप्ने न भात्यात्मा तत्रापि प्रतिभासते ।
सुप्तौ सूक्ष्मं न भात्यात्मा तत्र नित्यं प्रकाशते ॥२२७॥

सुखमस्वाप्समित्येवं सुखं यद् भासते तदा ।
आत्मना हि स्वरूपं तद् भासते विषयै विना ॥२२८॥

पञ्चीकृत पांच भूत और उनके कार्य सब स्थूल सृष्टि इस शब्द से विख्यात है, उनमें इन्द्रिय गम्यता=विषयता है। माया और अविद्या से कृत (माया अविद्या युक्त) इस संसार में=भूत भौतिक पदार्थ में कारणादि तीन शरीर और पाँच कोश अन्तर्गत हैं। यहाँ सद् वस्तु का विवेक करके मुञ्ज से इषीका के समान, देह कोश से पृथक् अचल निजात्मा को करके (समझ कर) धीर=ज्ञानी शोक रहित होता है। क्योंकि जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति में अचल अखण्ड एक ही आत्मा मन्तव्य=मननादि योग्य है और मननादि द्वारा जाग्रतादि तीनों से व्यतीत=विविक्त आत्म रूपता को प्राप्त ज्ञानी का फिर जन्म नहीं होता है। ज्ञानी का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभव होता है कि तीनों धाम—अवस्थाओं में जो भोग्य (विषयानन्द) भोक्ता (विश्व तैजस प्राज्ञात्मा) और विषयादि का अनुभव रूप भोग होते हैं। उन सब से विलक्षण (स्थानादि से भिन्न) जो चेतन मात्र साक्षी सदा शिव परमानन्द है, सो मैं हूँ। सबसे विलक्षण आत्मा को अन्वय व्यतिरेक से समझा जाता है कि स्वप्न में स्थूल देहादि नहीं भासते हैं और आत्मा वहाँ भी भासता है तथा सुषुप्ति में सूक्ष्म नहीं भासता है और आत्मा वहाँ सदा प्रकाशता है। सुखपूर्वक मैं सोया, इस प्रकार के स्मरणका विषयरूप सुषुप्ति में सत्य सुख भासता है सो, सुख आत्म स्वरूप ही है और विषयों के विना भासता है, अतः विषयानन्द नहीं है ॥२२ -२२८॥

समाधौ भासते चात्मा निरावरण रूपतः ।
अज्ञानं कारणं तत्र भासते नैव कस्य चित् ॥२२९॥
इत्थं देहत्रयात्मानः पञ्चकोशा अनात्मकाः ।
व्यभिचारित्वतो मिथ्या सत्य आत्मा चिदन्वयात् ॥२३०॥
सदान्वितश्चिदात्मैव नित्यो नाशविवर्जितः ।
सत्यानन्दस्वरूपश्च निर्गुणः केवलोऽव्ययः ॥२३१॥
अतः कोशाख्यदेहेभ्यो विविक्तं केवलं निजम् ।
ज्ञात्वाऽऽत्मानं च तं विद्धि निर्गुणं ब्रह्म शाश्वतम् ॥२३२॥
ततो भिन्नं च यद् दृष्टं श्रुतं वाऽनुमितं जगत ।
तन् मिथ्या विद्धि तेनात्मा विकारं भजते नहि ॥२३३॥
अतः सत्ताप्रकाशाभ्यां मायाऽविद्याबलेन च ।
सर्वं कुर्वन् तवात्मैव नैव किञ्चित्करोति सः ॥२३४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न वा स लिप्यते कार्यैर्मरुतोयैर्मरुर्यथा ।
अतःकर्ताऽप्यकर्ता ते स्वरूपोऽस्त्यद्भुतोऽनघ!।।२३५।।

और समाधिकाल में अज्ञानकृत आवरण रहित आत्मा निरावरणरूप से भासता है, क्योंकि आवरणादि का कारणरूप अज्ञान समाधि काल में किसी समाधिस्थ को नहीं भासता है। इस प्रकार तीन देह स्वरूप पाँच कोश अनात्मा हैं और व्यभिचारी = अन्वय रहित होने से मिथ्या हैं। सर्वावस्था में अन्वित = व्यापक होने से आत्मा ही सत्य है और सदा सब में अन्वित चेतनात्मा ही नित्य, नाश रहित, सत्य, आनन्द स्वरूप, निर्गुण, केवल और अव्यय = निर्विकार है। अतः कोशनामक तीन देहों से विविक्त = भिन्न केवल निजात्मा को जानकर, फिर उसे शाश्वत = अनादि नित्य निर्गुण ब्रह्म = विभु = त्रिविध भेद रहित जानो। उस ब्रह्मात्मा से भिन्न जो दृष्ट = प्रत्यक्ष श्रुत या अनुमित = परोक्ष जगत् है, उसको मिथ्या जानो, उससे तेरा आत्मा विकार को नहीं प्राप्त होता है। अतः अपनी सत्ता और प्रकाश द्वारा तथा माया और अविद्या रूप शक्ति द्वारा तेरा आत्मा ही सब कार्यों को करता हुआ भी वस्तुतः वह कुछ नहीं करता है और जैसे मरुभूमि के मिथ्या जल से वह भूमि लिप्त (गीली) नहीं होती, तैसे ही वह आत्मा कार्यों से लिप्त नहीं होता है, अतः हे अनघ ! तेरा स्वरूप सब कार्यों का कर्ता होता हुआ भी अकर्ता और अत्यन्त अद्भुत स्वरूप है ।।२२९-२३५।।

व्यावहारिकरूपे ते दुःखं जन्मादि लक्षणम् ।
दृश्यते सत् स्वरूपे तु जगत् खलु खपुष्पवत् ।।२३६।।
जगतश्चैव मिथ्यात्वे कर्ता तस्यात्र को भवेत् ।
ईश्वरः कथ्यते योऽस्य साक्ष्याभावे न साक्षिता ।।२३७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृश्याऽभावे न वै द्रष्टा बन्धाभावे न मुक्तता ।
अज्ञानाभावतश्चैव ज्ञाननाश्यं न विद्यते ॥२३८॥
इति निश्चित्य कर्तव्यं त्यजन् सर्वं निजात्मनि ।
स्थितो जीवन् विमुक्तश्च जीवन् ब्रह्मत्वमश्नुते ॥२३९॥
सर्वा हि कार्यता बुद्धिरज्ञानस्यैव लक्षणम् ।
कर्तव्यतामतेस्त्यागं ज्ञानिनां लक्षणं विदुः ॥२४०॥
कर्तव्यं विद्यते नैव यत्र नित्ये निजात्मनि ।
तदखण्डं परं ब्रह्म नामरूपविवर्जितम् ।२४१॥
असङ्गमजमेकञ्चादृश्यमज्ञानवर्जितम् ।
मूलाज्ञानं यतो नास्ति स्थूलं सूक्ष्मं न विद्यते ।२४२॥

यद्यपि तेरे व्यावहारिक स्वरूप में जन्ममरणादि स्वरूप दुःख दीखता है, तथापि सत्य पारमार्थिक स्वरूप में खपुष्प तुल्य जन्मादिक सर्वथा असत्य हैं। और जगत् के ही मिथ्या होने पर, यहाँ उस जगत् का सत्य कर्ता कौन होगा, कि जो कर्ता इस जगत् का ईश्वर कहा जाता है। इसी प्रकार साक्ष्य = प्रकाशार्ह वस्तु के अभाव रहते साक्षिता = प्रकाशकता नहीं हो सकती है। दृश्य के अभाव रहते द्रष्टा नहीं होता है, बन्ध के अभाव रहते मुक्तता नहीं होती और सत्य अज्ञान के अभाव से ज्ञान द्वारा विनाशनीय नहीं है। इस प्रकार निश्चय करके सब कर्तव्य बुद्धि को त्यागता हुआ निजात्मा में स्थिर, जीवन्मुक्त पुरुष जीवन्न काल में ही ब्रह्मस्वरूपता को प्राप्त होता है। क्योंकि आत्मा में सभी कार्यता की बुद्धि (ज्ञान) अज्ञान का ही लक्षण (स्वरूप) है। और कर्तव्यता बुद्धि के त्याग को ज्ञानी के लक्षण विवेकी समझते हैं। जिस नित्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निजात्मा में कोई कर्तव्य नहीं है. वह आत्मा नाम रूप रहित अखण्ड परब्रह्म है। और वह असङ्ग, अज, एक, अदृश्य और अज्ञान रहित ब्रह्म है, तहाँ जिससे मूल अज्ञान नहीं है, अतः कार्य स्वरूप स्थूल और सूक्ष्म भी नहीं है ॥२३६-२४२॥

न समष्टि र्न वा व्यष्टि र्नेशः सूत्रं विराट् तथा ।
प्राज्ञ तैजस विश्वात्मस्वरूपत्वं न सम्भवि ॥२४३॥
न भोगो नापि योगश्च बन्धमोक्षौ न तत्रहि ।
सत्यं विद्यते किञ्चित् सर्वं तत्रैव कल्पितम् ॥२४४॥
जाग्रत् काले च यद्विश्वं भासते स्वप्नसन्निभम् ।
भोग्यभोगादि भेदेन नानात्वं तन्मृषाऽखिलम् ॥२४५॥
बुद्ध्यैव कल्पितं सर्वं तेन सुप्तिसमागमे ।
बुद्धेः प्रलीनतायां च भेदो नैव हि दृश्यते ॥२४६॥
बुद्धेः प्रपञ्चरूपं च जगद् दृश्यं निजात्मना ।
मिथ्या तेन जगत् सर्वं निजात्मा चाचलः सदा ॥२४७॥
अचलस्यात्मनो ज्ञानमुदेति हृदि यत् स्थिरम् ।
तीव्राज्ञानतमस्तेन शीघ्रमेव विनश्यति ॥२४८॥
अज्ञानस्य विनाशे तु ब्रह्मात्माऽसङ्गकेवलः ।
स्वयं प्रकाशते नान्यत् किञ्चित् सत्यं प्रतीयते ॥२४९॥

न समष्टि वा व्यष्टि सत्य है, न ईश्वर, सूत्र=हिरण्यगर्भ और विराट हैं, प्राज्ञ, तैजस और विश्व में सत्यात्म स्वरूपता का सम्भव नहीं है। न भोग, योग, बन्ध और मोक्ष भी उस आत्मा में है, इस प्रकार आत्मा में सत्य कोई अनात्म वस्तु नहीं है, परन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब उसी में कल्पित = मिथ्या सिद्ध होता है। जाग्रत् काल में जो स्वप्न तुल्य संसार भासता है, उसमें भोग्य भोग, भोक्ता आदि भेद से जो नानात्व है सो सब मिथ्या है। और सब नानात्व = भेद बुद्धि से ही कल्पित होता है, अतः सुषुप्ति के आने पर और बुद्धि के प्रलीन होने पर भेद नहीं दीखता है। और बुद्धि का प्रपञ्च = विस्तार रूप जगत् निजात्मा से दृश्य = प्रकाशार्ह है। अतः सब जगत् मिथ्या है और सर्वप्रकाशक निजात्मा सदा अचल = अविनाशी निष्क्रिय रहता है। अचल आत्मा का जो हृदय में स्थिर = दृढ़ निश्चयात्मक ज्ञान उदित होता है उससे तीव्र = प्रबल अज्ञान-रूप तम शीघ्र ही विनष्ट होता है। और अज्ञान के विनष्ट होने पर असङ्ग, केवल, शुद्ध स्वरूप, ब्रह्म स्वरूप आत्मा स्वयं प्रकाशता है, अनुभूत होता है। फिर ज्ञानी को आत्मा से अन्य कोई वस्तु सत्य नहीं प्रतीत होता है ॥२४५-२४६॥

चिद्रूपत्वादकर्मत्वात्स्वयंज्योतिरिति श्रुतेः ।
आत्मनः स्वप्रकाशत्वं को निवारयितुं क्षमः ॥२५०॥

सत्यं न जायते क्वापि जातं सत्यं न विद्यते ।
न भविष्यति वै जातं मनोमायामयं यतः ॥२५१॥

जातं नेच्छति विज्ञोऽयं न वा तस्य निवर्तनम् ।
उदासीनो निराशश्च विज्ञ आत्मनि तिष्ठति ॥२५२॥

आत्मा पश्यति सर्वं स न च पश्यति किञ्चन ।
मिथ्यात्वात्सर्ववस्तूनामसङ्गत्वान्निजात्मनः ॥२५३॥

एवं शृणोति सर्वं स न शृणोति च किञ्चन ।
रसं गृह्णाति सर्वं स स्वादं गृह्णाति नैव च ॥२५४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंधं गृह्णन्न गृह्णाति स्पृशंन् स्पृशति नैव सः ।
गृह्णन्नपि न चादत्ते वदन्नपि न वक्ति च ।।२५५।।

अचलोऽपि चलत्यात्मा देहोपाधिसमाश्रयात् ।
मलं त्यजति नैवाऽयं त्यजन्निव च लक्ष्यते ।।२५६।।

मायाऽऽख्यां युवतीं सैव सदा भुङ्क्तेऽमलोऽपि सन् ।
औदासीन्येन चैवायं नैव भुङ्क्ते कदाचन ।।२५७।।

आत्मा के चिद्रूप = ज्ञान स्वरूप और अकर्म = क्रिया के अविषय होने से, तथा वेद में स्वयंज्योतिः स्वरूपता के श्रवण से आत्मा के स्वयं प्रकाशत्व के निवारण में कोई समर्थ हेतु आदि नहीं हैं, अतः आत्मा स्वयं प्रकाश ही है। और सत्य कहीं उत्पन्न नहीं होता है, न उत्पन्न रज्जुसर्पादि कहीं सत्य है और सत्य वस्तु आगे भी कहीं नहीं उत्पन्न होगा, क्योंकि जो उत्पन्न हुआ होता है और होगा सो सब मनोमय और माया मय (मिथ्या) है। अतः यह आत्मज्ञानी उत्पन्न वस्तु की इच्छा नहीं करता है, न उसका निवर्तन (नाश) चाहता है, किन्तु सबसे उदासीन, सब की आशा से रहित होकर ज्ञानी आत्मनिष्ठ रहता है। और आत्मा सब वस्तु को देखता = प्रकाशता है और वस्तुतः सब वस्तु के मिथ्या होने से वह आत्मा कुछ नहीं देखता है, तथा निजात्मा के असङ्ग होने से भी वह नहीं देखता है। इसी प्रकार वह सब शब्द को सुनता है और कुछ नहीं सुनता है, सब रस का ग्रहण = प्रकाश करता है और स्वाद का ग्रहण नहीं करता है। और वह गन्ध का ग्रहण करता हुआ ग्रहण = ज्ञान नहीं करता है। स्पर्श करता हुआ नहीं करता है, वस्तु को हाथों में ग्रहण करता हुआ आदान = ग्रहण नहीं करता है। बोलता हुआ नहीं बोलता है। अचल =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अक्रिय भी आत्मा देह रूप उपाधि के समाश्रयण =ग्रहण से चलता है, यह निर्मल आत्मा मल को नहीं त्यागता है, परन्तु त्यागते हुए के समान प्रतीत होता है। और अमल होता हुआ वही आत्मा माया नामक युवती को सदा भोगता = प्रकाशता है और उदासीनता असङ्गता के कारण यह कभी भोग नहीं करता है ॥२५०-२५७॥

मायातत्कार्यसाक्षित्वादात्मा भोक्तेव लक्ष्यते ।
असङ्गत्वान्न भोक्ताऽसौ निर्विकारतया तथा ॥२५८॥
"प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैं गुणैः ।
अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥२५९॥
सर्वात्मत्वेन चैवायं सर्वं कुर्वन्न किञ्चन ।
करोति निष्क्रियत्वेन निर्गुणत्वेन सर्वथा ॥२६०॥
व्यावहारिकजीवानां क्रियाः सर्वा निजात्मनः ।
सिद्धयन्ति न तथाप्यात्मा कर्तृत्वं भजते क्वचित् ॥२६१॥
श्रोत्रस्य श्रोत्रं चात्माऽयं वाचो वाक् च मनोमनः ।
इत्यादि श्रुतितश्चात्मा सर्वशक्तिः प्रसिद्ध्यति ॥२६२॥
अकर्ताऽपि च कर्तेव तेन भाति चिदव्ययः ।
अपाणिश्चापदश्चापि ग्रहीता जवनः श्रुतः ॥२६३॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा युक्तो योगी च पश्यति ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्ते तेन किं मम ॥२६४॥

क्योंकि माया और उस के कार्यों का साक्षी होने के कारण आत्मा भोक्ता के समान प्रतीत होता है। परन्तु असङ्गता और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्विकारता से वह भोक्ता नहीं है। भागवत में कहा गया है कि जल में प्रतीत होने वाले अर्क = सूर्य के समान बुद्धि आदिरूप प्रकृति में स्थिर भी पुरुष जीवात्मा प्रकृति के गुणों से अक्त = लिप्त नहीं होता है, क्योंकि वह निर्विकार, अकर्ता और निर्गुण है अतः सर्वात्मा होने ही से यह सब क्रिया को सत्ता मात्र से करता हुआ भी निष्क्रियता और सर्वथा निर्गुणता से कुछ नहीं करता है। यद्यपि व्यावहारिक जीवों की सब क्रिया निजात्म से ही सिद्ध होती है, तथापि शुद्धात्मा कहीं भी कर्तृता को नहीं भजता है, कर्तृत्वधर्म वाला नहीं होता है,। यह आत्मा श्रोत्र का श्रोत्र, वाक् का वाक्, मन का मन है, इत्यादि श्रुतियों के कथन से सर्वशक्ति वाला आत्मा प्रसिद्ध होता है। उक्त श्रुति वचन से ही चित्स्वरूप अव्यय = निर्विकार आत्मा अकर्ता होते भी कर्ता के समान भासता (ज्ञात होता) है और पाणिपादं रहित भी ग्रहण कर्ता जवन = वेगवाला सुना गया है। अतः सब प्राणी के आत्मस्वरूप आत्मा वाला (उस आत्म के अनुभव वाला) ज्ञान योग युक्त योगी समझता है कि इन्द्रियार्थों विषयों में इन्द्रियां प्रवृत्त होती हैं, उससे मुझे = आत्मा को हानि लाभादि क्या है, कुछ नहीं ।।२५८-२६४।।

सङ्गो नास्ति यतो नाहमिन्द्रियं नेन्द्रियाणि मे ।
किन्तु[1] साक्ष्यस्मि कूटस्थः सदाऽलिप्तोऽहमव्ययः ।।२६५।।
इन्द्रियाणि त्यजन्त्वद्धा भुञ्जतां वाऽत्रगोचरान्।
असङ्गे मत्स्वरूपे तु लेपः कश्चिन्न विद्यते ।।२६६।।

१—बाह्यार्थान् करणगणेन तं च बुद्धया, बुद्धिं यः पश्यति सततं स्वभासा।

आत्माऽसांवनधिगतः परागभिरेभिर्विज्ञेयस्तनुभवनान्तरप्रदीपः ।। स्वराज्य सिद्धौ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"रूपं दृश्यं लोचनं दृग् दृग् दृश्यं द्रष्टृ मानसम्।
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते" ॥२६७॥
ज्ञानिनो निश्चयश्चायमनात्मानं ततो ह्ययम्।
कर्तारमीक्षते ज्ञानी स्वयं कर्ता न सो भवेत् ॥२६८॥
शिष्य ! त्वयाऽऽत्मसम्बादोऽद्भुतोऽयमभवन् मम।
यथाऽर्जुनेन कृष्णस्य सम्बादः संबभूव ह ॥२६९॥
'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२७०॥

जिससे मेरा किसी के साथ सङ्ग (सम्बन्ध) नहीं है, अतः इन्द्रियों की प्रवृत्ति से मुझे हानि नहीं है और मैं इन्द्रिय नहीं हूँ न मुझे इन्द्रियाँ हैं। किन्तु सदा अलिप्त = असङ्ग निर्विकार अविनाशी साक्षी स्वरूप मैं हूँ। चाहे इन्द्रियाँ गोचरों = विषयों को यहाँ त्यागे या भोगें, असङ्ग मेरे स्वरूप में तो कोई लेप नहीं होता है। रूप दृश्य = द्रष्टव्य विषय होता है। तहाँ दृक् = द्रष्टा लोचन नेत्र होता है और दृक् = नेत्र दृश्य होता है, तो मन द्रष्टा होता है और धीवृत्ति = मन, चित्त, इच्छा आदि के दृश्य = विषय होने पर साक्षीस्वरूप आत्मा केवल द्रष्टा प्रकाशक रहता है, वह किसी से देखा नहीं जाता है (प्रकाशित नहीं होता है) ज्ञानियों का यह उक्त निश्चय है, अतः यह ज्ञानी अनात्मा को कर्ता समझता है स्वयं ज्ञानी कर्ता नहीं होता है। हे शिष्य तेरे साथ मेरा यह आत्म सम्बन्धी सम्बाद अद्भुत हुआ है, कि जैसे अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण जी का सम्बाद हुआ था। कि वह ब्रह्म सर्वात्मा होने के कारण सर्वत्र हाथ पैर वाला है। तथा सर्वत्र नेत्र शिर मुख वाला और सर्वत्र श्रोत्र वाला है और लोक में सब को आवृत्त करके सर्व साक्षी स्वरूप से सर्वत्र वर्तमान रहता है। २६५-२७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥२७१॥
योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥२७२॥
नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्छृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्छ्वसन् ॥२७३
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥२७४॥
निजाश्रमानुसारेण कुर्वन् कर्माणि तत्त्ववित् ।
क्लेशाभिमानसंशून्यो लिप्यते न फलैः क्वचित् ॥२७५॥
पूर्वजन्मकृताभ्यासो योगभ्रष्टो मुनिः क्वचित् ।
गृहेऽपि ज्ञानसम्पन्नो वसिष्ठजनकादिवत् ॥२७६॥
याज्ञवल्क्यादिवद् वापि कुर्वन् कर्म गृहे वसन् ।
संन्यासी हृदयेनासौ मुक्तो भवति सर्वथा ॥२७७॥

और सब इन्द्रियों के गुण = निश्चयादि रूप से ब्रह्म भासता है, परन्तु वस्तुतः सब इन्द्रियों से रहित है और असक्त = असङ्ग होते भी स्वसत्ता मात्र से सबका धारण = पोषण करता है। निर्गुण होते भी गुणों का प्रकाशक है। और योगों से युक्त विशुद्ध मन वाला, विजित मन वाला, जितेन्द्रिय ज्ञानी सब प्राणी के आत्मस्वरूप निजान्तरात्मा वाला होकर, कर्म कर्ता हुआ भी कर्मों से लिप्त नहीं होता है। क्योंकि योग युक्त तत्त्वज्ञानी, इन्द्रियार्थों = विषयों में इन्द्रियाँ वर्तती = प्रवृत होती हैं, ऐसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धारणा = निश्चय करता हुआ मैं कुछ नहीं करता हूँ ऐसा मानता है। अतएव दर्शन, श्रवण, स्पर्शन, जिघ्रण आदि रूप ज्ञानेन्द्रिय के व्यापारों को करता हुआ और भोजन करता हुआ तथा गमनादि रूप पादादि का, शयन रूप बुद्धि का, श्वासरूप प्राण का प्रलाप रूप वाक् का जो व्यापार उस को करता हुआ, त्याग ग्रहण, उन्मेष निमेष करता हुआ भी कुछ नहीं करता हूँ, ऐसा मानता है। अविद्यादिरूप क्लेश और अभिमान से सर्वथा रहित तत्त्वज्ञ = ज्ञानी अपने आश्रम के अनुसार कर्म करता हुआ भी कर्मफलों से कहीं भी लिप्त नहीं होता है। और पूर्व जन्म में जिसने ज्ञान योगादि का अभ्यास किया है, ऐसा योग भ्रष्ट मुनि कहीं गृह में भी श्री वसिष्ठ जनकादि के समान ज्ञान सम्पन्न होता है। अथवा याज्ञवल्क्यादि के समान गृह में वसता हुआ भी वह हृदय से संन्यासी रहता है और सर्वथा मुक्त होता है २७१-२७७॥

इत्थमत्यन्तसंगोप्यमुपदेश महाद्भुतम् ।
कृत्वाप्यहृष्टमालोक्य शिष्यं गुरुरुवाच ह ॥२७८॥
मृत्कार्यस्य यथा बाह्ये चान्तरे मृतिकैव हि ।
जलकार्यस्य सर्वत्र जलमेव प्रदृश्यते ॥२७९॥
इत्थं यस्यास्ति[1] यत्कार्यं स्वर्णादेः कटकादिकम् ।
तत्कार्यं कारणाभिन्नं सर्वं जानीहि भद्र ! हे ॥२८०॥

१—गुणादिकं गुण्यादिना भिन्नाऽभिन्नं, समानाधिकृतत्वात् अभेद-संसर्गकधीविषयतायोग्यत्वात्, यन्नैवं तन्नैवम्, इत्यादि अद्वैतसिद्धौ ॥ गुणगुणिनोस्तादात्म्यं वर्तते, तच्च तद्भिन्नत्वे सति तदभिन्नत्वम् इत्यादि वेदान्ततत्त्वविवेके ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवमेव हि सर्वस्य जगतः कारणं प्रभुः ।
सर्वरूपस्ततः सोऽत्रविद्यते विद्धि तं प्रभुम् ॥२८१॥
"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्" ॥२८२॥
शक्तिर्माया स्वरूपा साऽनन्ततां याति या गुणैः ।
चिदंशो ब्रह्म सङ्गं वा विकारं भजते न हि ॥२८३॥
पञ्चीकृतानि भूतानि स्थूलानि प्रभवन्ति हि ।
तेषां कार्यमिदं विश्वं भौतिकं परिचक्षते ॥२८४॥

इस उक्त रीति से अत्यन्त संगोपनीय अद्भुत उपदेश करके भी शिष्य को अहृष्ट = अप्रसन्न देख कर गुरुजी बोले कि मृतिका के कार्य घटादि के बाहर और भीतर में जैसे मृतिका ही दीखती है और जल के कार्य फेन बुद् बुदादि के बाहर भीतर में जल ही दीखता है। इसी प्रकार जो कटकादि जिस सुवर्णादि के कार्य हैं सो सब कार्य अपने कारणों से अभिन्न हैं; हे भद्र ! ऐसा जानो। इसी प्रकार सब जगत् का कारण प्रभु ईश्वर है, अतः वह यहाँ सर्व संसार स्वरूप है, उस प्रभु को समझो। वहाँ माया को प्रकृति = उपादान कारण समझो और मायी = माया वाले को महान् ईश्वर समझो। और उस ईश्वर के अवयव तुल्य जीवों से सब जगत् व्याप्त है। और ईश्वर की शक्ति वह माया स्वरूप है, जो अपने सत्त्वादिगुणों द्वारा अनन्तता = अनन्त स्वरूपता को प्राप्त होती है। चिदंश ब्रह्म है सो संग वा विकार का भागी नहीं होता है। पञ्चीकृत पांचोभूत स्थूलस्वरूप से प्रकट होते हैं, उनका कार्यस्वरूप यह संसार भौतिक कहा जाता है (इसको भौतिक कहते हैं) ॥२७८-२८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहभोग्यपदार्था ये भौतिकाः स्थूलरूपिणः ।
स्थूलभूतात्मकास्तेषां पृथक् सत्ता न विद्यते ।।२८५।।

पृथिव्याः कार्यरूपा ये ते सर्वे तत्स्वरूपिणः ।
एवं जलादिरूपाणि जलादिप्रभवाणि तु ।।२८६।।

अपञ्चीकृतरूपाणि सर्वपञ्चीकृतानि च ।
प्राणाश्च मन आदीनि दशकं चक्षुरादिकम् ।।२८७।।

प्राणा रजोंशरूपा वै सर्वेषामेव तत्त्वतः ।
मन आदि चतुष्कं तु सर्वसत्त्वांशरूपकम् ।।२८८।।

तत्तद्भूतस्य सत्त्वांशरूपाणि धीन्द्रियाणि च ।
कर्मेन्द्रियाणि भूतानां रजोरूपाणि वै पृथक् ।।२८९।।

भूतसूक्ष्माणि सर्वाणि प्रलये क्रमतः खलु ।
प्रकृतौ विलयं यान्ति प्रकृति र्ब्रह्मरूपिणी ।।२९०।।

तद् ब्रह्माहमिति ध्यायन् ज्ञात्वा ब्रह्म विमुच्यते ।
लयचिन्तनयुक्तं तद् ध्यानं कुरु ततः सदा ।।२९१।।

स्थूल स्वरूप वाले शरीर और शरीर द्वारा भोग योग्य जो पदार्थ हैं, सो भौतिक = भूतों के कार्य हैं, अतः स्थूल भूत स्वरूप हैं, स्थूल भूतों से उनकी पृथक् सत्ता नहीं है। तहाँ जो पृथिवी के कार्य स्वरूप हैं, सो सब उस पृथिवी स्वरूप हैं, इसी प्रकार जलादि से होने वाले वर्फ ओले आदि जलादि स्वरूप रहते हैं। और अपञ्चीकृत = सूक्ष्मभूत के कार्य सब पञ्चीकृत = स्थूल भूत अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूत स्वरूप हैं। और सब प्राण तथा मन बुद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्त अहङ्कार रूप चार अन्तः करण और नेत्रादि दश इन्द्रियाँ भी अपञ्चीकृत भूतों के कार्य होने से अपञ्चीकृत भूतस्वरूप हैं। तहाँ प्राण अपञ्चीकृत सब भूतों के रजोगुण अंश रूप तत्त्वतः = भूत स्वरूप से हैं, और मन आदि चार अन्तः करण सब भूतों के सत्त्वांशरूप तत्त्वतः हैं। आकाशादि तत्तद् भूतों के पृथक् पृथक् सत्त्वांश स्वरूप श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय हैं, क्योंकि पृथक् पृथक् सत्त्वांश से जन्य हैं। इसी प्रकार कर्मेन्द्रिय भूतों के पृथक् पृथक् रजोगुणांश स्वरूप हैं। भूतों के सूक्ष्म स्वरूप सब महाप्रलय काल में उत्पत्ति क्रम की अपेक्षा विपरीत क्रम से अपने-अपने कारणों में प्रलय पूर्वक मूल प्रकृति रूप माया में लीन होते हैं और वह प्रकृति = माया ब्रह्म की शक्ति स्वरूप है। और वह ब्रह्म मैं हूँ, मेरा सत्य स्वरूप ब्रह्म है, इस प्रकार सर्व लयाधार रूप से ब्रह्म का ध्यान करता हुआ ध्यानी उस ब्रह्म को निजात्मरूप से जान कर मुक्त होता है। अतः लय चिन्तन सहित उस ब्रह्म का ध्यान सदा करो, यह गुरु का उपदेश है ॥२८५-२९१॥

प्रणवाख्यं परं ब्रह्म तद्ध्यानमथवा कुरु ।
पादयुक्तं परं ब्रह्म स्वात्मानं प्रविचारय ॥२९२॥

प्रणवस्याक्षरस्यापि पादाञ् ज्ञात्वा प्रयत्नतः ।
ध्यात्वाऽभेदं पुनर्ज्ञात्वा स्वरूपं प्रतिपद्यते ॥२९३॥

"बोधोपास्त्यो विशेषः क इति चेदुच्यते शृणु ।
वस्तुतन्त्रो भवेद् बोधः कर्तृतन्त्रमुपासनम्' ॥२९४॥

विध्यधीनं भवेद् ध्यानं श्रद्धादावाश्रितं सदा ।
वस्त्वधीनं तु विज्ञानं भेदभ्रमविनाशकम् ॥२९५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्गुणब्रह्मरूपेण ध्यात्वा ज्ञात्वा तदात्मताम् ।
मुक्तिं प्राप्नोति भद्र! त्वं तस्माद् ध्यानं समाचर ॥२९६॥
चत्वारश्चात्मनः पादा विश्वतैजससंज्ञकौ ।
प्राज्ञः साक्षिस्वरूपश्च कथ्यन्ते त्वंपदेन ते ॥२९७॥
विराड्हिरण्यगर्भेशाः शुद्धं तत्पदलक्ष्यकम् ।
ब्रह्मणः पादरूपेण कथ्यन्ते विमलात्मकाः ॥२९८॥

अथवा प्रणव नामक ॐकार नामक, पर ब्रह्म का ध्यान करो और विराट्, सूत्र, ईश, तत्पदादि लक्ष्यरूप पाद युक्त पर ब्रह्म को तथा विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय पाद युक्त स्वात्मा को विचारो और प्रणव स्वरूप अक्षर के भी अ, उ, म् आदि रूप पादों =भागों को प्रयत्न से जानकर और ध्यान कर के, फिर अक्षर, आत्मा और ब्रह्म के पादों के अभेद को जान कर अपने स्वरूप को साक्षात् प्राप्त करोगे=समझोगे। यदि कहो कि बोध=ज्ञान और उपास्ति=उपासना=ध्यान में विशेष=भेद क्या है, तो विशेष कहा जाता है सुनो, वस्तु के अधीन बोध होता है और कर्ता के अधीन उपासना होती है और विधि के अधीन ध्यान होता है सो सदा श्रद्धा प्रेमादि के आश्रित रहता है और भेद भ्रम का विनाशक विज्ञान तो वस्तु के अधीन प्रमाण जन्य होता है। निर्गुण ब्रह्मरूप से निजात्माके ध्यान विचारादि कर के और अपनी उस निर्गुण ब्रह्मस्वरूपता का अनुभव करके ध्याता मुक्ति पाता है, हे भद्र! इस कारण से तुम सम्यक् ध्यान करो। आत्मा के विश्व, तैजस, प्राज्ञ और साक्षिस्वरूप ये चार पाद=भाग हैं सो त्वं पद से (महावाक्य रूप) श्रुति में कहे जाते हैं। विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर और शुद्ध तत् पद का लक्ष्य विमल स्वरूप ये चार ब्रह्म के पाद रूप से कहे जाते हैं यद्यपि देही विराट् और हिरण्यगर्भ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव भी होते हैं तथापि स्थूल समष्टि का प्रेरक विराट् और सूक्ष्म शरीर का प्रेरक हिरण्यगर्भ ईश्वर की ही अवस्था विशेष स्वरूप रहते हैं ॥२९२२९८॥

अकारोकारवर्णौ द्वौ मकारश्च तृतीयकः ।
अमात्रनामकश्चापि सुपादाः प्रणवस्य ते ॥२९९॥
विश्वो विराडकारश्च त्रयमेकत्वमश्नुते ।
हिरण्यगर्भसंयुक्ततैजसोकारकास्त्रयः ।३००॥
एकत्वं प्राप्नुवन्त्येवं प्राज्ञेश्वरमकारकाः ।
नामी सर्वो हि नामभ्यः क्वचिद् भिन्नो न विद्यते । ३०१॥
नामभ्यो जायते नामी सति नाम्नि विनश्यति ।
नामानि तानि सर्वाणि सन्त्योङ्कारात्मकानि तु ॥३०२॥
"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः । ३०३॥
सत्यश्च प्रणवोऽमात्रस्तत्रमात्रालयात् खलु ।
अमात्रः स च सर्वात्मा सर्वभेदविवर्जितः ॥३०४॥
स एवाऽहमिति ध्यात्वा निर्गुणं ब्रह्म केवलम् ।
ज्ञात्वा तं च निजात्मानं न पुन र्जायते यतिः ॥३०५॥

अकार उकार रूप दो वर्ण और तृतीय मकार और अमात्र नामक चतुर्थ ये चार प्रणव के सुन्दर पाद हैं। तहाँ प्रथमता के कारण विश्व विराट और अकार ये तीनों एकता = अभिन्नता को प्राप्त होते हैं और द्वितीयता से हिरण्यगर्भ सहित तैजस और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उकार ये तीनों एकत्व को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार तृतीयता से प्राज्ञ ईश्वर और मकार ये तीनों एकत्व को पाते हैं और नामो सब कहीं भी नामों से भिन्न नहीं है। क्योंकि नाम से नामी उत्पन्न होता है और नाम के रहते नामी नष्ट हो जाता है और सो सब नाम=शब्द ओंकार स्वरूप है। वाक्यपदीय का कथन है कि जो शब्द तत्त्वस्वरूप अक्षर है, सो उत्पत्ति नाश रहित ब्रह्म है। वही अर्थ रूप से विर्वातित=जन्य होता है कि जिससे जगत् की प्रक्रिया (व्यवहृति) होती है (विशेष व्याख्यान अन्यत्र द्रष्टव्य है) अमात्र स्वरूप प्रणव सत्य है, उस में मात्राओं के लय होने के कारण उसको अमात्र कहते है और वह अमात्र सब भेदों से रहित सर्वात्मस्वरूप शब्दाऽवाच्य है। और वह अमात्र सर्वात्म स्वरूप मैं हूँ, देह इन्द्रियादि विश्वतैजसादि मैं नहीं हूँ, इस प्रकार निर्गुण केवल ब्रह्म का स्वात्मस्वरूप से ध्यान करके, उस अमात्र ब्रह्म को फिर निजात्मा जानकर, यति=यत्नशील ध्याता फिर नहीं जन्म पाता है ॥२९९-३०५॥

अज्ञानाज्जायते जन्तुर्जन्मादिदुःखभाजनम् ।
विद्यया तु विमुक्तः सन् सद्यो ब्रह्मत्वमश्नुते ।३०६॥

देहाद् देहान्तरप्राप्तिः पुनर्जन्म निगद्यते ।
तन्नात्मनो भवेत् किन्तु सूक्ष्मदेहस्य विद्यते ॥३०७॥

"जन्ममृत्यू भजेद्देहोऽवश्यमेव जगत्त्रये ।
नानाभावजुषोनात्मा निर्विकारो निराकृतिः ॥३०८॥

कामः क्रोधस्तथा मोहो भयं लोभस्तथैव च ।
व्योमजानि भवन्त्यत्र देहे सर्वस्य देहिनः ॥३०९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कटिश्च हृदयं कण्ठ उदरं च शिरस्तथा ।
नभः प्रकृतिकान्यत्र जायन्ते कस्यचिन्मते ॥३१०॥

चलनं वलनं चैव प्रसारणमथापरे ।
गमनाऽऽकुञ्चने पञ्च वायुजानि भवन्ति हि ॥३११॥

क्षुधा तृषा तथाऽऽलस्यं निद्रा कान्तिस्तथैव च ।
भवन्ति वह्निजान्यत्र देहे सर्वस्य सर्वदा ॥३१२॥

क्योंकि अज्ञान से जन्मादि दुःख का भाजन = पात्र = आश्रय जीव होता है और विद्या = आत्मज्ञान से तो जन्मादि से विमुक्त हो कर शीघ्र ही ब्रह्मरूपता को प्राप्त होता है। और एक देह से देहान्तर की प्राप्ति को पुनर्जन्म कहा जाता है, सो आत्मा को नहीं होता है किन्तु अध्यास अहङ्कारादि युक्त सूक्ष्म देह (व्यावहारिक जीव) को होता है और ज्ञानी के देहाहङ्कारादि (व्यावहारिक जीवभाव) निवृत्त हो जाते हैं। और अज्ञानकाल में, नाना स्वभाव को प्राप्त करने वाला सूक्ष्म देह (व्यावहारिक जीव) अवश्य ही तीनों लोक में जन्म मरण को प्राप्त करता है निर्विकार निराकार आत्मा कभी भी जन्मादि नहीं पाता है। जन्मादि वाले सब देही के इस देह में काम, क्रोध मोह, भय, और लोभ आकाश जन्य होते हैं, क्योंकि देह भौतिक (भूतों के कार्य) होते हैं। किसी के मत में इस देह में कटि, हृदय, कण्ठ, उदर और शिर आकाश रूप प्रकृति = कारण, से होते हैं। और चलना = कम्पन करना, बल करना, पसारना, गमन करना और आकुञ्चन = हाथ पैर आदि को समेटना, ये पांच क्रिया देहमें वायु जन्य होती है। क्षुधा = बुभुक्षा, तृषा = पिपासा, आलस्य निद्रा और कान्ति = शोभा = तेज = सौन्दर्यादि, ये पांच सब के देहो में अग्नि = तेज जन्य होते हैं ॥३.०६-३१२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"तेजश्चाग्निस्तथा क्रोधश्चक्षुरुष्मा तथैव च ।
अग्नि र्जरयते यश्च पञ्चाग्नेयाः शरीरिणः" ॥३१३॥

वीर्यं च रुधिरं लाला मूत्रं स्वेदस्तथैव च ।
जलजान्यस्थिमांसं त्वङ् नाडी रोम च भूमितः ॥३१४॥

"श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च ।
इत्यापः पञ्चधा देहे जायन्ते प्राणिनां सदा" ॥३१५॥

त्वक् च मांसं तथाऽस्थीनि मज्जास्नायुश्च पञ्चकम् ।
इत्येतदिह सङ्घातं शरीरे पृथिवीमयम्[1] ॥३१६॥

भीति र्हि भूमितो व्योम्नि मोहश्च जलतो भवेत् ।
क्रोधश्चाग्निभवः कामो वायुजो लोभकः स्वतः ॥३१७॥

वायौ प्रसारणं व्योम्नो विज्ञेयं चैव वह्निजम् ।
बलनं जलजं ज्ञेयं गमनं भूमिसम्भवम् ॥३१८॥

आकुञ्चनं हि विज्ञेयं चलनं निजतो भवेत् ।
वह्नौ वायुभवा तृड् वै निद्रा व्योमभवा तथा ॥३१९॥

१—पार्थिवाप्यतैजसवायव्यानि भूम्यन्तरिक्षस्वर्गब्रह्मलोकेषु शरीराणीति नैयायिकाः (पार्थिवगुणान्तरोपलब्धेः) इति न्याय सूत्रम् । शरीरे गन्ध-विशेषोपलब्धेरिति तदर्थः । क्लेदादिकं भूतान्तरसंयोगमात्रादिति वदन्ति । प्रत्यक्षाप्रत्यक्षवृत्तिसंयोगादेरप्रत्यक्षत्वाच्छरीरं न पाञ्चभौतिकम् तस्मात्पार्थिवं तदिति वैशेषिका वर्णयन्ति । तथापि जलादीनामप्युपचयापचयाभ्यां शरीरस्योपचयादि दर्शनात्पाञ्चभौतिकं शरीरं ततस्तेषां प्रकृतयः (स्वभावाः) शरीरे वर्तन्त इति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेज = कान्ति अग्निरूप है और क्रोध, नेत्र, शरीर की उष्मा = गर्मी और जो अग्नि अन्नादि को जीर्ण करती = पचाती है, ये पाँचो देही के आग्नेय = अग्निजन्य होते हैं। वीर्य, रुधिर, लार, मूत्र और स्वेद ये जल जन्य होते हैं और हाड़, मांस, त्वक्, नाड़ी और रोम भूमि से होते हैं। कफ, पित्त, स्वेद, वसा, रुधिर ये पांच, प्रकार के प्राणियों के देह में सदा जल से होते हैं। त्वक्, माँस अस्थि = हाड़, मज्जा, स्नायु इन पाँच का समूह इस स्थूल देह में भूमिमय = भूमि का विकार = कार्यं स्वरूप होता है। पञ्चीकृत आकाश के कार्यों में भय भूमि से, मोह जल से, क्रोध अग्नि से, काम वायु से, लोभ आकाश के स्वरूप से होता है। वायु के कार्यों में प्रसारण आकाश से, बलन अग्नि से, गमन जल से, आकुञ्चन भूमि से होता है और चलन को वायु के स्वरूप से जन्य समझना चाहिये और वह्नि = अग्नि कार्यों में वायु जन्य तृष्णा = पिपासा होती है और निद्रा आकाश जन्य होती है ॥३१३-३१९॥

जलजाकान्तिरालस्यं भूमितश्च क्षुधा स्वतः ।
जले वह्निभवं मूत्रं पित्तं तज्जनितं तथा ॥३२०॥
वातजश्च भवेत् स्वेदो लाला व्योमभवा सदा ।
रुधिरं भूमिजं ज्ञेयं वीर्यं स्वांशः प्रकीर्तितः ॥३२१॥
भूमौ वारिभवं मांसं नाडी वह्निभवा तथा ।
त्वक् च वायुभवा रोम व्योमात्मैव स्वतोऽस्थि हि ॥३२२॥
भूतसत्त्वांशजं सर्वं बुद्धीन्द्रियमनोमुखम् ।
प्राणः कर्मेन्द्रियाण्येवं रजोगुणभवानि हि ॥३२३॥
तमस्तयोश्च साहाय्यं करोति गुणयोः सदा ।
कार्ये साक्षी भवत्यात्मा निःसङ्गो दोषवर्जितः ॥३२४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहे प्रकृतयः सर्वाः स्वभावा गुणजातयः ।
आत्मा निर्गुण एवाच्छः सर्वस्य सर्वथाऽचलः ॥३२५॥

तस्योक्तरीतितो ध्यानं ब्रह्मणैकत्वलक्षणम् ।
कथ्यते निर्गुणं तच्च पावनात्पावनं परम् ॥३२६॥

निर्गुणब्रह्मणो ध्यानं कर्तुं चेच्छक्नुयान्नहि ।
सगुणब्रह्मणो ध्यानं तदा कुर्यादतन्द्रितः ॥३२७॥

जलजन्य कान्ति, भूमिजन्य आलस्य अग्नि में होते हैं, क्षुधा स्वरूप से होती है। जल में अग्निजन्य मूत्र तथा पित्त होते हैं, वायुजन्य स्वेद, व्योम जन्य लार, भूमिजन्य रुधिर होते हैं और वीर्य निज अंश कहा गया है। भूमि में जल जन्य मांस, अग्निजन्य नाड़ी वायु जन्य त्वक्, व्योम जन्य रोम और स्वस्वरूप से हाड़ कहा गया है। भूतों के सत्त्वांश से ज्ञान इन्द्रिय और मन आदि रूप अन्तः-करण उत्पन्न होते हैं और प्राण तथा कर्मेन्द्रिय रजोगुण से होते हैं। और तमो गुण कार्योत्पादन में उन दोनों गुणों की सहायता-मात्र करता है, स्वतः कार्य की उत्पत्ति नहीं करता है और असङ्ग दोष गुणादि रहित आत्मा कार्य में साक्षी होता है और स्वयं कर्ता संहर्ता आदि नहीं होते भी अन्तःकरण रूप उपाधि वाले साक्षी-रूप से साक्षीभास्य सुख दुःखादि विषयक अज्ञान का नाशक आत्मा ही होता है। अतः साक्षिभास्य वस्तु ज्ञात ही होती है, अज्ञात नहीं। देह में सब २५ पचीस भूतों के प्रकृति = स्वभाव, गुण और जाति रहते हैं। सब देही का आत्मा निर्गुण स्वच्छ और सर्वथा अचल = निष्क्रिय है। उस आत्मा का पूर्वोक्त रीति से ब्रह्म के साथ एकत्वरूप ध्यान निर्गुण ध्यान कहा जाता है, सो ध्यान पावन से भी परम पावन है। वह निर्गुण ब्रह्म का निर्गुण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान यदि नहीं किया जा सके, तो सावधान होकर सगुण ब्रह्म (ईश्वर) का ध्यान करना चाहिये ।।३२०-३२७।।

सगुणब्रह्मणो ध्यानं कर्तुं चेन्नहि शक्नुयात् ।
तदा निष्कामकर्माणि कुर्याद् रामं भजेत च ।।३२८।।

यदि निष्कामकर्मापि कर्तुं नैव तु शक्यते ।
तदा सकामकर्माणि शुभान्येव समाचरेत् ।।३२९।।

यदा सकामकर्मापि कर्तुं सम्पार्यते नहि ।
तदा दुष्टानि कर्माणि त्यजेत् सर्वाणि यत्नतः ।।३३०।।

ईशनामानि सत्सङ्गमाश्रित्य प्रयतः श्रयेत् ।
दुष्टसङ्गं सदा त्यक्त्वा विज्वरो जायते जनः ।।३३१।।

अथैतदपि कर्तुं च न शक्नोत्यल्पदैवतः ।
स भ्राम्यति महाघोरे भवाब्धौ पापपीडितः ।।३३२।।

लयस्य चिन्तनं कृत्वा पञ्चीकरण[1] पूर्वकम् ।
विचार्य सर्वतत्त्वानि ज्ञात्वा ब्रह्म निरन्तरम् ।।३३३।।

१—यद्यपि (तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि) इस छान्दोग्य श्रुति में पृथिवी जल तेज का त्रिवृत करण ही वर्णित है। तथापि (पृथिवी च पृथिवीमात्राच) इत्यादि स्थूल सूक्ष्म भूत प्रकरण में (वायुश्च वायुमात्राचाऽऽकाशश्चाकाशमात्रा च) इस प्रश्न श्रुति में वायु आकाश के भी स्थूल सूक्ष्म भेद के वर्णन से त्रिवृत करण का वर्णन पञ्चीकरण का उपलक्षणस्वरूप है क्योंकि स्थूलता पञ्चीकरणरूप ही होती है। इसी से भाष्यकार और वार्तिककार ने पञ्चीकरण का वार्णन किया है ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अदृष्टिनामकः शिष्यो विमुक्तोऽभूदसंशयः ।
येऽन्येऽप्येवं विवेक्तारस्तेऽपि मोक्ष्यन्त्यसंशयम् ।।३३४।।

सगुण ब्रह्म का ध्यान भीं यदि नहीं कर सके, तो निष्काम कर्म करे और कर्म द्वारा राम=ईश्वर को भजे, राम नाम का जप करे, राम का स्मरण करे। यदि निष्काम कर्म भी नहीं कर सके तो सकाम शुभ कर्म ही आश्रमादि के अनुसार विधि पूर्वक करे। जब सकाम कर्म भी नहीं कर सके, तब सब दुष्ट=निषिद्ध कर्मों को तन मन वचन से यत्न पूर्वक त्यागे अर्थात् दानादि नहीं कर सके तो चोरी आदि नहीं करे, उपकार दया आदि नहीं कर सके तो अपकार हिंसा आदि को त्यागे। सदा दुष्ट सङ्ग को त्याग कर और सत्सङ्ग का आश्रयण करके संयत मनुष्य ईश्वर के नामों का आश्रयण करके विज्वर=ज्वर=ताप रहित होता है। यदि अल्पदैव=हीन प्रारब्ध से यह भी जो नहीं कर कसता है सो अपने पापों से पीड़ित होकर महाभयानक संसार समुद्र में भ्रमता=वहता है। पूर्वोक्त रीति से लय का चिन्तन करके और पञ्चीकरण पूर्वक सब तत्त्वों=भूतों को विचार कर और सब भूत भौतिक वस्तु में अन्तराय रहित व्यापक निरन्तर ब्रह्मात्मा को जानकर सब संशय भ्रमादि से रहित अदृष्टि नामक शिष्य जोवन्मुक्त विमुक्त हुआ। अन्य भी जो कोई इस प्रकार विवेक विचारादि करने वाले होंगे सो भी अवश्य ही विमुक्त होगें ।।३२८-३३४

"द्विधा विधाय चैककं चतुर्धा प्रथमं पुनः ।
स्वस्वेतरद्वितीयांशै र्योजनात् पञ्च पञ्च ते" ।।३३५।।

पञ्चविंशतिधैकैकं कृत्वा भागान् समानथ ।
एकविंशति भागेषु स्वेतरेस्त्रेव योजनात् ।
पञ्चीकृतानिभूतानि सर्वाण्येवं भवन्ति हि ।।३३६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चीकृतजकार्यैश्च विश्वा भोगान् सुभुञ्जते ।
चतुर्दशत्रिपुटचोऽथ प्राणास्तत्र मुखानि वै ॥३३७॥
आकाशसत्त्वजं श्रोत्रमध्यात्ममधिभूतकम् ।
श्रोतव्यमधिदैवं च दिग् देवी प्रोच्यते बुधैः ॥३३८॥
वायुसत्त्वांशजा प्रोक्ताऽध्यात्मं त्वगधिभूतकम् ।
स्पर्शस्तत्राधिदैवं च वायुरेवाभिधीयते ॥३३९॥
तेजः सत्त्वांशजं नेत्रमध्यात्ममधिभूतकम् ।
द्रष्टव्यमधिदैवं तु सूर्य एवात्र गीयते ॥३४०॥
जलसत्त्वांशजाऽध्यात्मं जिह्वा प्रोक्ताऽधिभूतकम् ।
रस एवाधिदैवं तु वरुणः कथ्यते सदा ॥३४१॥

पृथिवी आदि एक एक सूक्ष्म भूतों को सम स्वरूप से दो दो भाग करके फिर उनके प्रथम=एक एक भाग को समरूप से चतुर्धा=चार चार भाग कर के और अपने अपने अर्ध भागों को छोड़कर अन्य अन्य भूतों के अर्धभागों में उन चतुर्धा कृत भागों को मिलाने से एक एक भूत पञ्च पञ्चात्मक होते हैं। तहाँ अर्द्धांश अपना और अर्द्धांश अन्य का होता है। यह पञ्चदशी की रीति है। अन्य रीति है कि एक एक सूक्ष्म भूत के पच्चीस पच्चीस समभाग करके एक एक भूत के इक्कीस इक्कीस भाग पृथक् किये गए और चार चार भाग पृथक् किये गये। फिर उन चार चार भाग में से एक एक भाग अपने अपने इक्कीस भागों को छोड़ कर अन्य भागों में एक एक भाग मिलाए गए तो सब भूतों में निज निज के इक्कीस अंश भाग हुए और अन्य भूतों के चार चार भाग हुए। इस प्रकार सब भूत पञ्चीकृत होकर स्थूल होते हैं और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चीकृत भूतों से उत्पन्न औषधि आदि कार्यों के द्वारा विश्व नामक स्थूल देहाभिमानी जीव भोगों को भोगते हैं। तहाँ दश इन्द्रिय चार अन्त:करण अपने अपने अधिदेव और विषय सहित चतुर्दश त्रिपुटी और पञ्च प्राण ये उन्नीस भोग के लिये = मुख = साधन होते हैं। त्रिपुटी ये हैं कि आकाश के सत्त्वगुणांश से जन्य श्रोत्रेन्द्रिय अध्यात्म कहा जाता है। श्रोतव्य = शब्द अधिभूत = भूतसम्बन्धी गुण है। और शब्द के श्रवण में श्रोत्र के सहायक अधिदेव विद्वानों से दिशा कही जाती है। इसी प्रकार वायु के सत्त्वांश से जन्य त्वक् अध्यात्म कही गई है, स्पर्श अधिभूत और अधिदेव वायु कहा जाता है, तेज के सत्त्वांश से जन्य नेत्र अध्यात्म द्रष्टव्य रूपादि अधिभूत और सूर्य अधिदेव हैं। जल के सत्त्वांश से जन्य जिह्वा अध्यात्म है, रसमात्र अधिभूत है और वरुण सदा अधिदेव कहाते हैं ॥३३४-३४१॥

भूमि सत्त्वांशजं घ्राणमध्यात्ममधिभूतकम् ।
गन्धस्तत्राधिदैवं तु पृथिवी वाऽश्विनौ खलु ॥३४२॥

वियद्रजोंशजा वाग् वै अध्यात्ममधिभूतकम् ।
वक्तव्यमधिदैवं च तत्राग्नि र्देवतात्मकः ॥३४३॥

पाणि र्वायुरजोंशेन जातश्चाध्यात्ममुच्यते ।
अधिभूतं तु तद्ग्राह्यमिन्द्रः स्यादधिदैवतम् ॥३४४॥

तेजोरजोंशजौ पादावध्यात्ममधिभूतकम् ।
गन्तव्यमधिदैवं च विष्णुदेवोऽभिधीयते ॥३४५॥

अपां रजोंशजातश्च ह्युपस्थोऽध्यात्ममुच्यते ।
तत्रानन्दयितव्यं स्यादधिभूतं सुखात्मकम् ।
अधिदैवं च तत्र स्याद्देव एकः प्रजापतिः ॥३४६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमेः रजोंशजः पायुरध्यात्ममधिभूतकम् ।
विसर्गश्चाधिदैवं हि मृत्युरत्राभिधीयते ॥३४७॥

मनोऽध्यात्मं च मन्तव्यमधिभूतं निरुच्यते ।
अधिदैवं तु चन्द्रोऽत्र कथ्यते वेदवादिभिः ।३४८॥

भूमि के सत्त्वांश से जन्य घ्राण अध्यात्म है, वहां गन्ध अधिभूत है और पृथिवी अधिदेव है अथवा अश्विनीकुमार अधिदेव हैं। आकाश के रजोगुणांश से जन्य वाक् अध्यात्म है, वक्तव्य वस्तु अधिभूत है और वहाँ अग्निदेव अधिदेव हैं। पाणि=हाथ वायु के रजोगुणांश से उत्पन्न हुआ है, सो अध्यात्म कहा जाता है, उस से ग्रहण योग्य वस्तु अधिभूत होता है, इन्द्र अधिदेवत हैं। तेज के रजोगुणांश जन्य पाद है, सो अध्यात्म है, गन्तव्य देश अधिभूत है और विष्णुदेव पाद के अधिदेव कहे जाते हैं। जल के रजोगुणांश से जन्य उपस्थ अध्यात्म है, तहाँ आन्दयितव्य=उपभोग्य सुखात्मक वस्तु अधिभूत है और एक प्रजापति देव वहाँ अधिदेव हैं। भूमि के रजोंश से जन्य पायु=गुदा अध्यात्म है मलत्याग अधिभूत है, यहाँ मृत्यु अधिदेव कहा जाता है (अपां रजोंशजातश्च पायुरध्यात्ममुच्यते । अधिभूतं विसर्गोऽत्राऽधिदैवं मृत्युरुच्यते ॥१॥ भूमेरजोंशतो जात उपस्थोऽध्यात्ममुच्यते । तत्राधिभूतमानन्दमधिदैवं प्रजापतिः ॥२॥) यह मतान्तर है। मन अध्यात्म है, मन्तव्य अनात्म वस्तु अधिभूत कहा जाता है और वहाँ वेद वादियों से चन्द्रमा अधिदेव कहा जाता है ॥३४२-३४८॥

बुद्धिरध्यात्ममित्युक्तं बोधव्यमधिभूतकम् ।
ब्रह्मा वृहस्पति र्वाऽत्राधिदैवं प्रणिगद्यते ॥३४९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहङ्कृतिरथाध्यात्मं तद्ग्राह्यमधिभूतकम् ।
रुद्रस्तत्राधिदैवं स्यादिति वेदविदां मतम् ॥३५०॥

चित्तमध्यात्ममित्युक्तं चेत्यं स्यादधिभूतकम् ।
क्षेत्रज्ञोऽत्राधिदैवं स्यात्साक्षी सैव निगद्यते ॥३५१॥

"दिग् वातार्क प्रचेतोऽश्वि वह्नीन्द्रोपेन्द्र मृत्युकाः ।
चन्द्रो विष्णुश्चतुर्वक्त्रः शम्भुश्च करणाधिपाः" ॥३५२॥

एतेऽधिदैवनामानो विषयाश्चाधिभूतकाः ।
अध्यात्माऽऽख्यानि जायन्ते सर्वाणि करणानि तु ॥३५३॥

अधिदेवै विना क्वापि भोगः सिद्ध्यति नो यतः ।
ततस्तेऽपि च भोगेषु साधनानि भवन्ति हि ॥३५४॥

"हृदि प्राणो गुदेऽपानःसमानो नाभिमण्डले ।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः ॥३५५॥

बुद्धि अध्यात्म कही गई है, तहाँ बोधव्य = बुद्धि का विषय बाह्य वस्तु अधिभूत कहा जाता है और ब्रह्मा या बृहस्पति अधिदेव कहे जाते हैं और अहङ्कार अहङ्कृति अध्यात्म है उससे ग्रहण योग्य विषय अधिभूत हैं और वहाँ रुद्र अधिदेव होते हैं, यह वेदज्ञों का मत है। चित्त अध्यात्म कहा गया है, चेत्य = चित्त का विषय अधिभूत होता है और क्षेत्रज्ञ यहां अधिदेव होता है, वह साक्षी भी कहा जाता है। दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता = वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, उपेन्द्र, मृत्यु, चन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा और शम्भु = शिव ये करणों के स्वामी हैं। ये दिशा आदि अधिदेव नाम वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं और करणों = इन्द्रियान्तः करणों के विषय अधिभूत नामक हैं। और सब करण = ज्ञान कर्म के साधन अध्यात्मनाम वाले होते हैं। और अधिदेवों के विना जिससे कहीं जीवों के भोग नहीं सिद्ध होते हैं, अतः वे भी भोगों के साधन होते हैं। और हृदय में प्राण नामक वायु विशेष रहता है। गुदा में अपान, नाभि स्थान में समान, कण्ठ देश में उदान और सर्व सरीर गत व्यान नामक प्राण रहता है ॥३४९-३५५॥

"प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥३५६॥

उद्गारक्रियो नागः कूर्मोऽक्षादिनिमीलनः ।
कृकरः क्षुतयोः कर्ता दत्तो निद्रादिकर्मकृत् ।
मृतगात्रस्यशोथादे धंनञ्जय उदाहृतः ॥३५७॥

एतैः प्राणैस्तु करणै विश्वा भोगान् हि भुञ्जते ।
स्थूलान् वै तैजसाः सूक्ष्मान् मानसानेव सर्वथा ॥३५८॥

प्राज्ञश्चानन्दभुक् प्रोक्तस्तुर्यः संसारवर्जितः ।
निरुपाधि परं तत्त्वं जगदाकारभाङ् नहि ॥३५९॥

महावाक्यस्य योऽर्थो वै सैवोंकारस्य विद्यते ।
अत ओंकारलक्ष्यार्थं विज्ञायापि विमुच्यते ॥३६०।

ब्रह्मलोकगतानां तु शुद्धसत्त्वप्रभावतः ।
गुरुशास्त्रै विना ज्ञानं जायतेऽकामिनां तदा ॥३६१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धसत्त्वबलादेवं पूर्वचिन्ताबलादपि ।
लक्ष्यं प्रणवतः पूर्णं विविक्तं ब्रह्म गम्यते । ३६२॥

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ये पाँच और नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय नाम वाले पाँच मिला कर दश प्रकार के प्राण (त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद्) आदि में वर्णित हैं। तहाँ उद्गार क्रिया वाला नाग होता है, आँख आदि के निमीलन क्रिया वाला कूर्म, मुख नासिका द्वारा क्षुत कर्ता कृकर, निद्रादि कर्मकर्ता देवदत्त होता है और मृतक शरीर के शोथादि का हेतु धनञ्जय होता है और धनञ्जय पोषक होता है, यह वेदान्त सार का मत है। इन प्राणों और करणों द्वारा विश्वनामक जीव स्थूल भोगों को ही भोगते हैं। और तैजस जीव सूक्ष्म मानस भोगों को ही सर्वथा भोगते हैं। प्राज्ञ नामक जीव आनन्द का भोक्ता कहा गया है। तुर्या= तीन अवस्था से पर साक्षी संसार (भोगादि) रहित रहता है। क्योंकि उपाधि रहित पर तत्त्व जगत् के आकार को नहीं धारण करता है। जो महावाक्य का अर्थ है, सोई ओंकार का अर्थ भी है। अतः ओंकार के लक्ष्यार्थ को जान कर भी ज्ञानी मुक्त होता है। उपासना आदि बल से ब्रह्म लोक में प्राप्त निष्काम जीवों को तो शुद्ध अन्तःकरण के बल से (प्रभाव से) वहाँ गुरु और शास्त्र के बिना भी ज्ञान होता है। क्योंकि शुद्ध सत्त्व के बल से और प्रथम की चिन्ता ध्यानादि के बल से भी प्रणव द्वारा पूर्ण विविक्त=शुद्ध लक्ष्य ब्रह्म समझा जाता है ॥३५६-३६२॥

"अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते ।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥३६३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अकारो नयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम् ।
मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गति'': ।।३६४।

यथाऽदृष्टिः शुभं बुद्ध्वा प्रणवार्थं व्यमुच्यत ।
तथान्योऽपि च तद् ध्यात्वा ज्ञात्वाऽवश्यं विमोक्ष्यति ।।३६५।।

''अमात्रोऽनंतमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ।
ओंकारो विदितो येन स मुनि र्नेतरो जनः'' ।।३६६।

मुनिर्भूत्वा यथाऽदृष्टि र्मुक्तोऽभूत् सद्गुरोर्बलात् ।
तथैतं खण्डमध्येतुः सुदृष्टि र्दीयतां गुरो ! ।।३६७।।

शुद्धे ब्रह्मणि मयाख्या कल्पिता शक्तिरद्भुता ।
तत्र व्योमादिकं सर्वं कल्पितं ह्यखिलं जगत् ।।३६८।।

ब्रह्मसत्तैव सर्वत्र कल्पितेष्वत्र वर्तते ।
इति दृष्टिः सुदृष्टिः स्यात्ततो वै मुच्यते जनः ।।३६९।।

सुदृष्टेः संविधातारं पातारं सर्वसंकटात् ।
अद्वयं परमानन्दं सद्गुरुं संभजाम्यहम् ।।३७०।।

इति हनुमदीयतत्त्वार्थं मणिमञ्जूषायां पञ्चमः खण्डः ।।५।।

अनादि भ्रम अज्ञान रूप माया से सोया हुआ=मोह युक्त जीव जब सद्गुरु से प्रबोधित होने पर प्रबुद्ध होता है (मोहनिन्द से जागता है) तब जन्मादि विकार रहित, अविद्यारूप निद्रा और भ्रम रूप स्वप्न रहित अद्वैत तुरीय तत्त्व को समझता है। अकार प्रधान ओंकार के ध्यान द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्व विराट् रूप से चिन्तित अकार उस चिन्तक को निश्वाभिन्न विराट् रूपता को प्राप्त करता है और तैजस हिंरण्यगर्भ रूप से चिन्तित उकार तैजसाऽभिन्न हिरण्यगर्भरूपता को प्राप्त कराता है और मकार प्रधान ओंकार के चिन्तन से चिन्तित ओंकार प्राज्ञाभिन्न अव्यक्त को प्राप्त कराता है। तीनों मात्राओं के विलय पूर्वक सर्वात्मा ओंकार के चिन्तन से गमनामन का अभाव स्वरूप मोक्ष होता है। और जैसे अदृष्टि नामक शिष्य शुभ प्रणवार्थ को समझ कर मोक्ष पाया तैसे अन्य भी उस ओंकार के ध्यान और ज्ञान को पाकर अवश्य मुक्ति पावेगा। अमात्र=अकारादि मात्रा=वर्णं से रहित और अनन्त मात्रा=परिमाण वाला=विभु तथा सब द्वैत=भेद का उपशम= अभाव स्वरूप, अत एव शिव=कल्याण स्वरूप ओंकार को जिसने समझा है, वह मनन शील मुनि है, अन्य शास्त्रज्ञ भी मुनि नहीं। सद्गुरु कृपा बल से अदृष्टि=अल्पदृष्टि अज्ञ शिष्य भी जैसे मुनि होकर मुक्त हुआ, हे गुरो ! इस खण्ड के अध्ययनादि करने वाले को वैसी सुदृष्टि=ज्ञान दो। शुद्ध=निर्गुण ब्रह्म में माया नामक अद्भुत शक्ति कल्पित=अनादि सिद्ध है और उस माया युक्त में आकाशादि सब जगत् माया से कल्पित सिद्ध होता है। जीवत्व, ईशत्व, बद्धत्व, मुक्तत्वादि भी कल्पित ही होते हैं। और इन सब कल्पितों में ब्रह्म की सत्ता ही रहती है। ब्रह्म सत्ता से ही सब सत्य भासते हैं, स्वतः सत्ता से नहीं। इस प्रकार की दृष्टि=ज्ञान सुदृष्टि होती है कि जिससे प्राणी मुक्त होता है। भाव है कि उत्कट मधुर गन्ध युक्त पुष्प में गन्ध रस, रूप स्पर्श शब्द ये पाँचो विशेष गुण रहते हैं, सो पाँच भूतों के गुण रहते हैं। क्योंकि पञ्चीकरण होने के कारण पुष्पादि में तथा सब शरीरों में पाँचों भूत वर्तमान रहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। उस पुष्प में कोई प्रदेश गन्धादि से रहित नहीं रहता है, अतः सब गुण समदेश वृत्ति रहते हैं। तहाँ कोई किसी के स्थान का निरोधकर्ता नहीं होता है। अत एव सब मिल कर एक पुष्पात्मक रहते हैं। पुष्प से भिन्न गन्धादि की सत्ता नहीं रहती है, न उन सबसे भिन्न पुष्प की सत्ता रहती है। फिर गुण सहित पुष्प पाँच भूत से भिन्न सत्ता रहित रहता है, अतः सब शरीर और भौतिक पुष्पादि पदार्थ भूतात्मक ही रहते हैं। यद्यपि हम देख नहीं सकते, तथापि ब्रह्माण्ड के भीतर कोई आकाश का प्रदेश अदृश्य = सूक्ष्म भूमि, जल, तेज और वायु से रहित नहीं है। ब्रह्माण्ड से बाहर की कथा नहीं कही जा सकती। सब भूत की सर्वत्र सूक्ष्म सत्ता से ही क्षण में भेघ द्वारा जल और प्रबल पार्थिव तैजस वज्र को शून्य आकाश में माया शक्ति से = वायु तेज से ईश्वर सदा प्रकट करता है। इन सब तत्त्वों की समदेशवृत्तिता = स्थानानिरोधिता से ये सब वेदान्त में मिथ्या कहे जाते हैं। अर्थात् एक रज्जु में दश मनुष्य को जहाँ सर्प, दण्ड, माला, भूमि के दरार, शर, नडादि भासते हैं, तहाँ वे सर्पादि स्थान का निरोध नहीं करते हैं, अतः मिथ्या कहे जाते हैं। उनकी अपेक्षा रज्जु सत्य कहा जाता है। तैसे ही कार्यों की अपेक्षा भूत सत्य हैं, भूतों के गन्धादि गुण ब्रह्माण्ड में सर्वत्र वर्तमान रहते हैं। जिनको गीता में कहा गया है कि (रसोऽहमप्सु। पुण्यो गन्धः पृथिव्याञ्च) इत्यादि। और इन गुणों का ही ज्ञान (विषयवती प्रवृत्ति) से योगियों को नासिकाआदि में धारणाओं द्वारा होता है। स्थूल गन्ध और रसों में संसर्गज दुर्गन्धता कटुता आदि होते हैं। परन्तु गन्ध और रस वस्तुतः सुगन्ध और मधुर ही होते हैं। सुगन्धादि सहित सब भूत त्रिगुण (माया) से उत्पन्न होते हैं, अतः त्रिगुणात्मक है और वे त्रिगुण उपाधि युक्त व्यष्टि स्वरूप वाले ब्रह्मा विष्णु महेश भूतों की अपेक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन गुण सत्य हैं और गुणों की अपेक्षा भूत सब मिथ्या हैं। और तीन व्यष्टि गुणों की अपेक्षा समष्टि गुणोपाधिवाला ईश्वर वस्तुतः सत्यादि पद का वाच्य है और लक्ष्य पर ब्रह्म सर्व साक्षी शुद्ध अद्वैत आनन्द स्वरूप है, उसी को ओंकारादि द्वारा स्वात्मस्वरूप समझ कर जीवमुक्त होता है। सुदृष्टि को सम्यक् सिद्ध करने वाले और सब संकटों आपत्तियों से रक्षा करने वाले अद्वैत परमानन्द स्वरूप सद्गुरु को मैं सम्यक् भजता हूँ ॥३६३-३७०॥

सत ब्रह्म हि एक अखण्ड विभू,
प्रतिविम्ब समान भयो विधि नाना।
लघु दीरघ तुच्छ महान् हरी,
विधि शम्भु गणेश सुजान अजाना ॥

वह बद्ध भयो शुभ मुक्त भयो,
न भयो कभि बद्ध न मुक्त सुजाना।
प्रतिविम्बन के सब धर्मन को,
प्रतिविम्बहि ब्रह्महुं में पहिचाना ॥१॥

सत ब्रह्महि सो सुख रूप सदा,
शिव चेतन एक अखण्ड सदा ही।
अविनाशि निरन्तर देव तुही,
विभु आतम सत्य प्रकाश अथाही ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहि देह न प्राण मनो मुख हो,
तुम ये सब मायिक भेद मृषा ही।
इमि भाषत हैं गुरु देव सदा,
शिष ह्वे गुरु रूप न आवहि जाहीं ॥२॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ राम

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषायाः षष्ठः खण्डः ॥६॥

तर्कजालं तरेद्यस्य कृपालेशाज्जनः सुधीः ।
तं वन्दे परमानन्दं कबीरं गुरुमादरात् ॥१॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषाषष्ठखण्डोऽथकथ्यते ।
यद्विचाराज्जगद्धित्वा ब्रह्मैव प्रतिपद्यते ॥२॥

मध्यमोत्तमशिष्यार्थमुपदेशोऽभवत् पुरा ।
उपदेशः कनिष्ठार्थोऽधुनाऽयं संप्रवर्तते ॥३॥

सच्छास्त्रेभ्यः श्रुतेऽप्यर्थे कुतर्को यस्य जायते ।
स मेधाव्यपि सन् विद्वान् कनिष्ठः कथ्यते बुधैः ॥४।

युक्त्या बोधितस्तत्त्वं कनिष्ठोऽप्यवबुध्यते ।
ततो युक्तिप्रधानोऽयं खण्डः सम्यक् प्रवर्तते ॥५॥

भिन्नं यच्चेतनात्किञ्चित्तन्मिथ्या स्वप्नसन्निभम् ।
जगत् सर्वमिदं चेत्थमित्येवमुक्तवान् गुरुः ॥६॥

तच्छ्रुत्वा तर्कदृष्टिः स तृतीयः शिष्य उक्तवान् ।
अनुभूतपदार्थानां स्मृतिः स्वप्ने प्रजायते ॥७॥

जिनकी कृपा के लेश मात्र से सुबुद्धि वाला तर्क समूह को तरता है (तर्क का अविषय स्वरूप ब्रह्मात्मा को जानता है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस परमानन्द स्वरूप कबीर गुरु की आदर से वन्दना करता हूँ। तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा का यह षष्ठ खण्ड अब कहा जाता है कि जिसके विचार से जगत् में सत्यता बुद्धि को त्याग कर सद्ब्रह्म को ही मनुष्य प्राप्त कर सकता है। उत्तम और मध्यम शिष्यों के लिये प्रथम दो खण्डों में उपदेश हुआ है, अब इस खण्ड में कनिष्ठ के लिये उपदेश संप्रवृत्त (प्रारब्ध) होता है। सत्शास्त्रों द्वारा सुने हुए अर्थ में जिसको कुतर्क होता है वह बुद्धिमान् और शास्त्रज्ञ विद्वान् होते भी पण्डितों से कनिष्ठ छोटा शिष्य कहा जाता है। युक्ति द्वारा समझाने से वह भी सत्य वस्तु को समझता है, अतः सम्यक् युक्ति प्रधान यह खण्ड प्रवृत्त होता है। चेतन से भिन्न जो कुछ है सो सब स्वप्नतुल्य मिथ्या है और यह सब जगत् ऐसा स्वप्न तुल्य है, इस प्रकार प्रथम गुरु ने कहा है। उक्त गुरु के वचन को सुन कर वह तर्कदृष्टि तृतीय शिष्य बोला कि प्रथम ज्ञात पदार्थों की स्वप्न में स्मृति होती है ।।१-७।।

जाग्रत्कालेष्वविज्ञातं स्वप्ने कश्चिन्न पश्यति ।
तस्मात्स्वप्नेन तुल्यत्वाज्जगन्मिथ्या न सिद्ध्यति ।।८।

अथवा स्थूलदेहं स्वं त्यक्त्वा लिङ्गेन संयुतः ।
जीवो गत्वा बहिर्देशं गिरिनद्यादि पश्यति ।।९।।

सत्यस्य स्मरणाच्चैवं दर्शनाच्च बहिः प्रभो ! ।
तन्मिथ्यात्वं कथं सिद्ध्येत् कथ्यतां सद्गुरो ! मम ।।१०।।

स्वप्नेहस्त्यादि दृश्यं तत् प्रत्यक्षं भासतेऽग्रतः ।
शब्दादेः श्रावणत्वादि प्रत्यक्षं जायते तथा ।।११।।

कल्पितैरिन्द्रियाद्यैश्च साक्षिणा तद्धि जायते ।
स्मरणं नेदृशं क्वापि वर्तते बुद्धसम्मतम् ।।१२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ननु संस्कारजन्यत्वात्स्मरणं तन्न चोच्यताम् ।
प्रत्यक्षं प्रत्यभिज्ञाख्यं संस्कारादपि जायते ॥१३॥

उद्बुद्धादेव संस्कारात्केवलाज्जायते स्मृतिः ।
निद्राख्यदोषयुक्तात्तु संस्कारात्स्वप्नसम्भवः ॥१४॥

क्योंकि जाग्रत कालों में अज्ञात वस्तु को स्वप्न में कोई नहीं देखता है, अतः स्वप्न की तुल्यता से जगत् मिथ्या नहीं सिद्ध हो सकता है। अथवा स्वप्नकाल में स्थूल देह को त्याग कर सूक्ष्म देह सहित जीव बाहर देश में जाकर सत्य = वर्तमान ही पर्वत नदी आदि को देखता है। हे प्रभो ! इस प्रकार सत्य के स्मरण या दर्शन स्वप्न में होने पर, उस स्वप्न को मिथ्यात्व कैसे सिद्ध होगा, हे सद्गुरो ! सो मुझे कहो। गुरु जी बोले कि स्वप्न में वह हस्ती आदि नेत्र से दृश्य पदार्थ आगे सामने प्रत्यक्ष भासता है, इसी प्रकार शब्दादि के श्रावणत्वादि (श्रवणादिजन्य प्रत्यक्ष विषयत्वादि) प्रत्यक्ष होता (भासता) है तहाँ कल्पित इन्द्रियादि और साक्षी से वह प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार का स्मरण विद्वानों को कहीं सम्मत स्वीकृत नहीं है। शंका होती है कि संस्कार जन्य होने से वह स्वप्न का ज्ञान स्मरण रूप होता है, तहाँ गुरु का उत्तर है कि संस्कार जन्य स्मरण ही होता है ऐसा कहना उचित नहीं है। क्योंकि (सोऽयम्) इत्यादि प्रत्यभिज्ञा नामक प्रत्यक्ष भी संस्कार जन्य होता है, और केवल उद्बुद्ध संस्कार से स्मरण होता है, निद्रानामक दोष सहित संस्कार से स्वप्न होता है ॥८-१४॥

तस्मात्स प्रत्यभिज्ञावन्नैव स्मरणतां व्रजेत् ।
किञ्च स्वप्नो मया दृष्ट इत्येवं भाषते जनः ॥१५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मात्स्वप्नानुभूति वैं जायते स्मरणं नहि ।
विषयैः सहिता सा च मिथ्या जाग्रति बाधतः ॥१६॥

स्वशिरश्छेदनादेश्च स्वप्ने संदर्शनादपि ।
स्मृतित्वं नैव शक्यं स्यात्कल्पनीयं कदाचन ॥१७॥

जन्मान्तरीयसंस्कारात्स्मृति बालस्य जायते ।
तथापीत्थं शिरश्छेदे न सम्भवितुमर्हति ॥१८॥

स्वप्ने देहाद् बहि गंत्वा गिरिनद्यादिदर्शने ।
मृत्युमापन्नवद्देहो विनश्येदिति निश्चिनु ॥१९॥

प्राणो तिष्ठति देहेऽत्र द्रष्टा गत्वा न पश्यति ।
प्राणैं विना यतो द्रष्टु र्गतेः क्वापि न सम्भवः ॥२०॥

गतौ प्राणस्य हेतुत्वं प्राधान्यं च श्रुतौ श्रुतम् ।
न प्राणेन विना चातो मन आदे र्गति र्भवेत् ॥२१॥

अतः प्रत्यभिज्ञा के समान केवल संस्कार जन्य नहीं होने से स्वप्न भी स्मरण स्वरूप नहीं हो सकता है। और मैं ने स्वप्न में हाथी देखा था, इस प्रकार जागने पर मनुष्य कहता है, याद= स्मरण किया था ऐसा नहीं कहता है। इससे स्वप्न में पदार्थों का अनुभव सिद्ध होता है, स्मरण नहीं और जाग्रत काल में उस अनुभव का बाध होता है, अतः विषयों के सहित वह स्वप्न अनुभव मिथ्या ही रहता है। और अपने शिर के छेदनादि के भी स्वप्न में दर्शन से भी कभी स्वप्न में स्मृतित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है यद्यपि कहीं कभी जन्मान्तर के संस्कार से भी स्मृति होती है, जैसे कि बालक की संस्कार जन्य स्मृति से दुग्ध पानादि में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवृत्ति होती है, तथापि स्वशिरश्छेदन में, इस प्रकार = जन्मान्तरीय संस्कार जन्य भी स्मृति नहीं हो सकती, क्योंकि स्वशिरश्छेदन को जाग्रत में कभी नहीं देख सकता है और स्वप्न काल में देह से बाहर जाकर पर्वत नदी आदि के देखने पर तो मृत्यु प्राप्त के समान देह नष्ट विकृत हो जायगी, ऐसा समझो। और यदि कहो कि प्राण इस देह में रहता है और द्रष्टा जीव बाहर जाकर पर्वतादि को देखता है, तो सो कहना ठीक नहीं, क्योंकि प्राण के विना द्रष्टा की कहीं गति का सम्भव नहीं है, क्योंकि गति = गमनादि में प्राण का हेतुत्व और प्राण का प्रधानत्व श्रुति में सुना गया हैं, अतः प्राण के विना मन आदि की गति = क्रिया नहीं हो सकती है ॥१५-२१॥

प्राणेनैवावरं रक्षन्नित्यादिषु श्रुतिष्वपि ।
देहविस्मरणं देहाद् गतिशब्देन कथ्यते ॥२२॥
बहिर्गत्वैव सन्दृष्टौ रात्रौ सूर्यस्य दर्शनम् ।
न स्यात् क्वापि च सम्वादो भवेन्मिलितवानहम् ॥२३॥
तस्मात्कण्ठस्थ नाडीषु जायते त्रिपुटी जगत् ।
रथान् सृजत इत्यादि वेद इत्थं प्रभाषते ॥२४॥

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा, स ईयतेऽमृतो यत्र कामं हिरण्मयः पुरुष एक हंसः। बृ० अ० ४।३।१२।) अवर = हीन कुलाय = पृथिवी में लय शील शरीर की प्राण द्वारा रक्षा करता हुआ और असङ्गता के कारण शरीर से बाहर के तुल्य होकर, भी यह अमृतात्मा = अविनाशी जीव इस प्रकार विचर कर वह अमृत हिरण्मय = प्रकाशमय एक हंस = गन्ता पुरुष जहाँ जाने की इच्छा होती है, वहाँ स्वप्न काल में जाता है, इत्यादि श्रुति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से यदि स्वप्न काल में देह से द्रष्टा के बाहरनिर्गं मन को माना जाय तो, सो ठीक नहीं क्योंकि स्वप्न काल में इस देह के विस्मरण को देह से गति शब्द के द्वारा कहा जाता है। अतएव भाष्यकार ने (बहिरिव कुलायाद्) इत्यादि कहा है। और यदि स्वप्न काल में बाहर जा करके ही सम्यक् यथार्थ दर्शन = वस्तु का ज्ञान हो, तो रात्रि के समय स्वप्न दर्शन काल में सूर्य का दर्शन भारतवर्ष में कहीं नहीं होना चाहिये। और स्वप्न में किसी मित्रादि के साथ मिलने पर जागृति काल में भी सम्बाद (परस्पर ज्ञान पूर्वक कथन) होना चाहिये कि मैं आज स्वप्न काल में आप से मिला था इत्यादि और सम्बाद नहीं होता है। बाहर की गति की सिद्धि नहीं हो सकने से कण्ठ देश की नाड़ियों में ही द्रष्टा, दर्शन और दृश्यादि रूप त्रिपुटी = तीन का समूह रूप जगत् स्वप्न में तात्कालिक उत्पन्न होता है सो (न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते। वृ० अ० ४।३।१०। उस स्वप्न में व्यावहारिक रथ, रथ में जुटने वाले अश्व और मार्ग नहीं रहते हैं, किन्तु मानस = प्रातिभासिक रथ, अश्वादि रचे जाते हैं, इत्यादि वेद वचन इस प्रकार से कहते हैं ।।२२-२४।।

व्यावहारिकतत्त्वानां रथादीनां यथा नहि।
विद्यते सम्भवः स्वप्ने कर्त्रादीनां तथैव हि ।।२५।।

तस्मात्तत्र प्रजायन्ते कर्त्राद्याः प्रातिभासिकाः।
मिथ्याऽनिर्वाच्यरूपास्ते तथा जाग्रति ते स्थिताः ।।२६।।

स्नप्ने प्रमातुस्तज्ज्ञेयप्रमेयस्य च वस्तुनः।
प्रमाणवस्तुनश्चैव दृष्टान्तेन जगद् यदि ।।२७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्या संसाध्यते तर्हि जन्यत्वेन जगत् समः ।
स्वप्नोऽपि सत्यतां यायात् तस्मात् स्वप्नो न जन्यते ।।२८।।
इत्थं शङ्कासमुत्थाने गुरुरुत्तरमब्रवीत् ।
जन्यत्वात् सत्यता नैव भवति क्वापि वस्तुनः ।।२९।।
किन्तु साधनसामग्रीं विना यदिह जायते ।
तन्मिथ्या नात्र सन्देहस्तथा स्वप्नो न चान्यथा ।।३०।।

अतः जैसे स्वप्न में व्यावहारिक पदार्थ रूप रथादि का सम्भव नहीं है, तैसे ही कर्ता करणादि का सम्भव नहीं है। अतः स्वप्न में कर्ता करण देश कालादि भी प्रातिभासिक उत्पन्न होते हैं, सो मिथ्या अनिर्वचनीय स्वरूप होते हैं और उसी प्रकार के कर्ता आदि अनिर्वचनीय स्वरूप जाग्रत में व्यावहारिक स्थिर हैं, अतः सब स्वप्न तुल्य मिथ्या हैं। इस उक्तार्थ में शिष्य की शंका है कि यदि स्वप्न में प्रातिभासिक प्रमाता=द्रष्टा और उससे ज्ञेय=ज्ञातव्य रथादि वस्तु तथा नेत्रादि रूप प्रमाणात्मक वस्तु मिथ्या उत्पन्न होते हैं, ऐसा मान कर और उनके दृष्टान्त द्वारा ही जगत् को मिथ्या सिद्ध किया जाता है, तो जन्यता रूप से बाह्य जगत् के सम=तुल्य जगत् रूप स्वप्न भी सत्यता को प्राप्त होगा अर्थात् बाहर जगत् के समान भीतर का जगत स्वप्न भी सत्य ही उत्पन्न होता है, ऐसा प्राप्त होगा, अतः स्वप्न को स्मरणमात्र मानना उचित है, स्वप्न उत्पन्न नहीं होता है। ऐसी शंका के समुत्थान=उत्पन्न होने पर गुरु जी ने उत्तर कहा कि जन्यता=कार्यता से वस्तु की कहीं सत्यता नहीं होती है, किन्तु साधन की सामग्री=समूह के विना जो यहाँ रज्जु आदि में प्रातिभासिक सर्पादि होते हैं, सो मिथ्या ही होते हैं, इसमें संशय नहीं हैं। तैसा ही स्वप्न होता है, सत्य नहीं ।।२५-३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"वैतथ्यं सर्वभावानां स्वप्न आहु र्मनीषिणः ।
अन्तः स्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना" ॥३१॥

अदीर्घत्वाच्च कालस्य गत्वादेशान्न पश्यति ।
प्रतिबुद्धश्च वै सर्वस्तस्मिन् देशे न विद्यते ॥३२॥

विषयासम्भवे नैवापरोक्षज्ञानसम्भवः ।
स्वप्नेऽतो जायते वस्तु प्रातिभासिकसंज्ञकम् ॥३३॥

उचितं देशकालादि साधनं समुपेक्ष्य यत् ।
जायते तेन मिथ्यात्वं सर्वथा तस्य सिद्ध्यति ॥३४॥

निद्रादोषयुताऽविद्या मनश्च स्वप्नकारणम् ।
मायात्मिका च साऽविद्या कारणं जगतः खलु ॥३५॥

मनोनिमित्तकः स्वप्न ईश्वराज्जनितं जगत् ।
इत्थं कारणभेदेन सत्त्वं द्विविधमुच्यते ।३६॥

विद्वान् लोग स्वप्न कालिक सब पदार्थों के मिथ्यात्व का वर्णन करते हैं। उसमें यह कारण है कि सब महान् पदार्थ शरीर के भीतर प्रतीत होते हैं और वह स्थान संवृत = संकुचित = आवृत है, अतः पदार्थ मिथ्या ही भासते हैं और काल की अदीर्घता = अल्पता से दूर देशों में जाकर द्रष्टा सत्य वस्तु को देखता नहीं है। तथा स्वप्न में मानो दूर की वस्तु को देखता ही हुआ शीघ्र जागने पर सब मनुष्य उस दूर देश में नहीं जागता है। यदि जाकर सत्य को ही देखता तो वहाँ ही जागता। और स्वप्न में यदि ज्ञेय विषय का सम्भव (उत्पत्ति) नहीं हो, तो विषय के नहीं रहने पर अपरोक्ष ज्ञान नहीं हो सकता है। अतः प्रातिभासिक नाम वाली वस्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वप्न में उत्पन्न होती है। परन्तु जिससे उचित देश कालादि रूप साधनों की सम्यक् उपेक्षा=अनादर करके साधनों के विना ही उत्पन्न होती है, अतः उसको सर्वथा मिथ्यात्व सिद्ध होता है। निद्रारूप दोष सहित=अविद्या=अज्ञान और वासनादि युक्त मन स्वप्न का कारण है। शुद्ध सत्त्व वाली माया रूप वह अविद्या जगत् का निश्चित कारण है, माया ही तमः प्रधान होकर जड़ संसार का हेतु होती है। और वासनादि युक्त मनो निमित्तक स्वप्न होता है। कर्म सापेक्ष ईश्वर जन्य जगत् होता है, इस प्रकार कारण के भेद से स्वप्न और जगत् में दो प्रकार के सत्त्व (सत्ता) कहा जाता है ॥३१-३६॥

व्यावहाकि सत्त्वं वै जाग्रद् वस्तुषु कथ्यते ।
प्रातिभासिकसत्त्वं च स्वप्नवस्तुषु चानृते ॥३७॥

इत्थं सत्त्वे प्रभेदेऽपिमिथ्यात्वं न प्रभिद्यते ।
अनिर्वाच्यस्वरूपं तच्चोभयत्र समं यतः ॥३८॥

यत्किञ्चद्देशकालादि स्वप्नसृष्टौ भवेदपि ।
जाग्रत् सृष्टौ तु देशस्य कालादेः सम्भवो नहि ॥३९॥

देशकालादिशून्ये च जगद् ब्रह्मणि जायते ।
तस्मात्स्वप्नसमं मिथ्या जायते नात्र संशयः !।४०॥

ब्रह्मणो जगदुत्पत्तौ कालादि र्न ह्यपेक्ष्यते ।
ब्रह्माभिन्नस्य कालादेरभावादश्रुतत्वतः ॥४१॥

कालकालादिवचनाद् मिथ्यात्वं कालदेशयोः ।
मायिकत्वं विभात्येवं कारणत्वं विभाति च ॥४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहाँ जाग्रत् की वस्तुओं में व्यावहारिक सत्त्व कहा जाता है। और स्वप्न की वस्तुओं में तथा अनृत (व्यवहार काल में भी मिथ्या) रज्जु सर्पादि में प्रातिभासिक सत्त्व कहा जाता है। इस प्रकार जाग्रत स्वप्न की वस्तुओं में सत्त्व के भेद होते भी मिथ्यात्व प्रभिन्न = अत्यन्त भिन्न नहीं होता है, क्योंकि अनिर्वाच्यत्वरूप जो मिथ्यात्व है, सो दोनों में तुल्य ही रहता है। और स्वप्न की सृष्टि में तो यत् किञ्चित् देश कालादि साधन हो भी सकते हैं, परन्तु जाग्रत् संसार की सृष्टि में देश और कालादि का सर्वथा असम्भव है। क्योंकि देश कालादि से रहित ब्रह्म में जगत् उत्पन्न होता है, अतः स्वप्न के समान मिथ्या ही उत्पन्न होता है इसमें संशय नहीं है। क्योंकि ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति में कालादि की अपेक्षा नहीं होती है, जिससे ब्रह्म से भिन्न कालादि का सृष्टि काल में अभाव रहता है, अतः उसकी अपेक्षा हो भी नहीं सकती है और श्रुतियों में कालादि के अश्रवण से उसका अभाव सिद्ध होता है। और ब्रह्म को कालों का काल के कथन से देश कालादि का सत्यस्वरूप ब्रह्म सिद्ध होता है और देश कालादि में मिथ्यात्व मायिकत्व भासता है और इसी प्रकार देश काल में मिथ्या ही कारणत्व भासता है ॥३७-४२॥

यथा रक्तस्य पुष्पस्य रक्तत्वं भासतेऽमले ।
स्फटिके भासके तद्वत् कालादौ भासते हि यत् ॥४३॥

कारणत्वं तदस्त्येव ब्रह्मनिष्ठं स्वभावतः ।
अन्यथाख्यातितो भाति कालादौ न स्वरूपतः ॥४४॥

वस्तुतोऽसङ्गचिद्रूपे कारणत्वं न विद्यते ।
ब्रह्मणो कारणत्वं नो तस्मादन्यत्र विद्यते ॥४५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु देशादिकं यद्वन्मायाजन्यं विभाव्यते ।
कारणत्वं तथा तत्र मायया जन्यतेऽनृतम् ॥४६॥
इत्थं स्वप्नेन तुल्यं वै कार्यकारणसंयुतम् ।
जगत् सर्वं न सन्देहः स्थिरतादियुतं तथा ॥४७॥
तुल्यं स्वप्नेन न स्वप्नस्तस्मात् सत्ताविभिन्नता ।
विद्यते स्थानयोः स्वप्नजागरेतिसमाख्ययोः ॥४८॥
स्वाप्नं गतं न चाऽऽयाति नूतनं दृश्यते सदा ।
जाग्रत्यपि तथा यातं न चाऽऽयाति कदाचन ॥४९॥

जैसे रक्त पुष्प की लाली शुद्ध भासक स्फटिक में भासता है, तैसे ही जो कालादि में कारणत्व भासता है, सो ब्रह्म में मायारूप स्वभाव से है, परन्तु कालादि में अन्यथाख्यातिरूप भ्रम से कारणत्व भासता है। कालादि में स्वरूप से कारणत्व नहीं है, न भासता है वस्तुतः असङ्ग चित्स्वरूप ब्रह्म में कारणत्व नहीं है, अतः ब्रह्म के कारणत्व अन्यथाख्याति से अन्यत्र = देश कालादि में नहीं रहता है, नहीं भासता है। किन्तु मिथ्या देश कालादिक जैसे मायाजन्य विभासित = प्रतीत होते हैं, तैसे ही उनमें कारणत्व भी माया से मिथ्या ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार कार्य भूत भौतिक वस्तु और कारण देश कालादि सहित और स्थिरतादि सहित यह सब जगत् स्वप्न तुल्य है, इसमें संशय नहीं है। और जगत् स्वप्न के तुल्य है, स्वप्न ही नहीं है, इस से जाग्रत और स्वप्न नामक स्थानों की सत्ता का भेद रहता है। जैसे स्वप्न की जो दृश्य वस्तु चली जाती है, सो फिर नहीं आती है, किन्तु सदा नवीन वस्तु स्वप्न में दीखती है, प्राचीनता का कभी भ्रम होता है, तैसे ही जाग्रत में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी गई वस्तु कभी नहीं आती है, अतः स्वप्न तुल्यता जाग्रत को है ।।४३-४९

गतः क्षणो दिनादिश्च मासश्चाब्दादिकस्तथा ।
नैवाऽऽयाति कदाप्यत्र मृषा भ्रान्तिस्तु जायते ।।५०।।
सर्वे भावाः क्षणे प्राप्ते परिणामं भजन्ति हि ।
लक्ष्यते न परीणामस्ततो भान्ति स्थिरा इव ।।५१।।
अनादितत्त्वभिन्नेऽस्मिन् संसारे परिणामिता ।
विद्यते जन्यता चापि न ह्यनादौ तु जन्यता ।।५२।
मायाऽविद्या च जीवेशौ विद्यन्तेऽनादयः खलु ।
अनादि निर्गुणं ब्रह्म सदैवैकरसं स्थितम् ।।५३।।
"अज्ञातनटवद् ब्रह्म कारणं शङ्करोऽब्रवीत् ।
जीवाऽज्ञानं जगद्बीजं जगौ वाचस्पतिस्तथा" ।।५४।।
जीवाऽज्ञानं च मायैव स्वांशतो वर्तते ततः ।
अज्ञानस्य हि यत्कार्यं मायाकार्यं तदुच्यते ।।५५।।
नटोऽपि मायया यद्वत् कारणत्वं प्रपद्यते ।
माययैव तथा ब्रह्म करणं न तदन्यथा ।।५६।।

गये हुए क्षण और मास वर्षादि रूप काल यहाँ फिर कभी नहीं आते हैं, किन्तु मिथ्या भ्रान्ति होती है कि वही गुरु वार आज है, इत्यादि। और एक क्षण के वाद दूसरे क्षण के प्राप्त होने पर, सब भाव पदार्थ उस क्षण विशिष्ट रूप से परिणाम को = अन्यस्वरूपता को प्राप्त होते हैं, परन्तु सूक्ष्मक्षण काल युक्त परिमाण लक्षित = प्रत्यक्ष नहीं होता है, अतः सब पदार्थ स्थिर के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भासते हैं। और अनादि तत्त्व (वस्तु) से भिन्न इस संसार में परिणामिता और जन्यता दोनों धर्म रहते हैं। अनादि तत्त्व में जन्यता नहीं रहती है। माया, अविद्या, जीव और ईश्वर ये अनादि हैं और अनादि निर्गुण सर्वात्मा ब्रह्म है, सो सदा ही एक रस स्थिर रहता है। शंकराचार्य जी ने अज्ञात नट तुल्य उस ब्रह्म को जगत् का कारण कहा है और वाचस्पति मिश्र ने जीव के अज्ञान को जगत् का बीज रूप कहा है, तहाँ माया ही अपने अंशों द्वारा जीवों के अज्ञान रूप होती है, अतः अज्ञान का जो कार्य है सो माया का ही कार्य कहा जाता है। और नट भी जैसे अपनी माया द्वारा मिथ्या वस्तु के कारणत्वको प्राप्त करता है, तैसे ही ब्रह्म भी माया द्वारा ही कारणत्व को प्राप्त करता है, उस से अन्यथा = उसके विना नहीं। अतः (जन्मादिकारणत्वं मायाविशिष्टस्य ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणम् ॥ शुद्धस्य तु तटस्थलक्षणम्, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, इत्यादि शुद्धस्य स्वरूपलक्षणम्) इति विवरण प्रमेय संग्रहः संगच्छते ॥५०-५६॥

अन्ये त्ववस्थया सर्वेऽनादयो यान्ति विक्रियाम् ।
मायी सदीश्वरः प्रोक्तो माया विक्रियतेऽत्र हि ॥५७॥

एवमीशविकारे हि विकारेऽन्यस्य का कथा ।
विकारी कथ्यते मिथ्या ततो भातीश्वरो मृषा ॥५८॥

सतो न जन्मनायोगोऽसतोऽसत्त्वान्न विद्यते ।
जन्यत्वमेव जन्यानां मिथ्यात्वस्य समर्पकम् ॥५९॥

गुरो र्ज्ञानं ततः प्राप्य ज्ञानी सत्यं न पश्यति ।
सकारणं जगत् सर्वं ब्रह्म सत्यं प्रपश्यति ॥६०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वप्नतुल्येऽपि संसारे व्यावहारिकसत्त्वतः ।
सिद्ध्यति व्यवहारोऽत्र दुःस्थं किञ्चिन्न विद्यते ॥६१॥

निर्गुण ब्रह्मसे भिन्न सब अनादि पदार्थ भी अवस्था द्वारा विकार को प्राप्त होते हैं, जो मायी सत्य ईश्वर कहा गया है, उसमें माया विकृत होती है। इस प्रकार ईश्वर के संसार रूप विकार होने पर अन्य के विकार में कथा क्या कही जाय। और विकारी पदार्थ मिथ्या कहा जाता है, अतः निर्गुण ब्रह्मसे भिन्न ईश्वर मिथ्या भासता है, निर्गुण स्वरूप से ही ईश्वर भी सत्य है। और ईश्वर से उत्पन्न होने वाले पदार्थ यदि सर्वथा सत्य हों, तो उन सत्यरूप से वर्तमान पदार्थों का जन्म क्रिया से योग = सम्बन्ध नहीं हो सकता है, जैसे की सत्यात्मा का जन्म नहीं होता है, क्योंकि विद्यमान की उत्पत्ति नहीं होती है। और शशविषाण तुल्य असत्य का भी असत्त्व से ही जन्म नहीं हो सकता है, अतः जन्य पदार्थ की जन्यता ही उनके मिथ्यात्व = सदसद् से विलक्षणत्व का समर्पक = बोधक = साधक होता है। अतः सद्गुरु से ज्ञान को प्राप्त करके ज्ञानी पुरुष ब्रह्मात्मा से भिन्न को सत्य नहीं समझता है, किन्तु कारण सहित सब जगत् को सत्य नहीं सभझता हुआ मिथ्या समझता है। केवल ब्रह्म को ही सत्य समझता है। और ब्रह्म रूपता की दृष्टि से अन्य को सत्य समझता है, अन्यथा नहीं। अतः स्वप्न तुल्य संसार में भी व्यावहारिक सत्यता के रहने से व्यवहार सिद्ध होता है, इस लोक सिद्ध व्यवहार में कोई दुःस्थं = दुरवस्था = कठिनाई नहीं है ॥ अतः (प्रपञ्चस्य यथा दर्शनमेव भेदेन व्यवस्थितत्वाद, ब्रह्मण एवाद्वितीयत्वान्न सर्वसाङ्कर्यम्। ब्रह्मैवाविद्याप्रतिविम्बितं जीवः, उपाधिपरित्यागेन विम्बभूतब्रह्मताऽवभासिनोऽपि प्रतिविम्बस्यामत्वादिभिरिव जीवसंसारै र्न सम्बन्धो, मिथ्यात्वेन तत्त्वज्ञानप्रतिहतत्वाद) इति विवरणं संगच्छते ॥५७-६१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूपनित्यता नित्यं ब्रह्मण्येव तु विद्यते ।
परिणामिस्वरूपेण नित्यास्तु परिणामिनः ॥६२॥
प्रवाहनित्यता सर्वकार्येषु व्यवहारिषु ।
प्रातिभासिकतत्त्वेषु कापि नास्ति हि नित्यता ॥६३॥
जन्मादिको भवः सर्वः प्रवाहान्नित्य एव हि ।
आत्मनि प्रतिभासो वै ज्ञानान्नश्यति तद् द्वयम् ॥६४॥
अन्यत्रैवं हि मिथ्यात्वे सत्यत्वे ब्रह्मणि स्थिते ।
एकं सद् ब्रह्म विज्ञाय न बिभेति कुतश्चन ॥६५॥
उक्ताभिप्रायमज्ञात्वा शिष्यः प्रपच्छ सद्गुरुम् ।
यतः स्वप्नेन तुल्यत्वं विरुद्धमिव भासते ॥६६॥
अनन्तकालसंसिद्धमादिहीनमिदं जगत् ।
ईश्वरेण कृतं सर्वं साध्यसाधनसंयुतम् ॥६७॥

स्वरूप नित्यता सदा ब्रह्म में ही रहती है अर्थात् ब्रह्म स्वरूपसे सदा एक रस रहता है और परिणाम वाले अनादि जीवेश्वरादि तो परिणामी स्वरूप से नित्य रहते हैं व्यावहारिक सब कार्यों में व्यावहारिक नित्यतारूपप्रवाह नित्यता रहती है, व्यवहार में उनका प्रवाह वर्तमान रहता है और प्रातिभासिक वस्तु में कोई नित्यता नहीं रहती है, स्वप्न में प्रातिभासित वस्तु क्षणमात्र में ही निरन्वय रूपान्तर को प्राप्त होते हैं। जन्म मरणादिरूप सब भव=संसार प्रवाह रूपसे नित्य ही है, तथा आत्मा में जन्मादि का प्रतिभास=भ्रम भी प्रवाह रूप से नित्य है, परन्तु ज्ञान से जन्मादिरूप संसार और संसार का आत्मा में प्रतिभास ये दोनों नष्ट हो जाते हैं और उक्त रीति से ब्रह्म से अन्य में मिथ्यात्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और ब्रह्म में सत्यत्व के सिद्ध स्थित = निश्चित होने पर ज्ञानी पुरुष एक सत्य ब्रह्म को निजात्मस्वरूप जानकर किसी से डरता नहीं है। उक्त अभिप्राय को नहीं समझ कर शिष्य ने सद्गुरु से पूछा, क्योंकि जिससे जगत् में स्वप्न तुल्यत्व विरुद्ध के समान भासता है, अतः पूछा कि हे सद्गुरो! अनन्तकाल से सम्यक् सिद्ध और अनादि यह जगत् है और साध्य = फल तथा साधन युक्त सब संसार ईश्वर से किया गया है ॥६२-६७॥

ज्ञानी विमुच्यते ज्ञानादज्ञश्चात्र निबध्यते ।
स्वप्नतुल्येऽस्य मिथ्यात्वेऽनादित्वं सम्भवेन्न हि ॥६८॥

किञ्चास्य स्वप्नतुल्यत्वे साधनं निष्फलं भवेत् ।
यतः स्वप्नवदेवास्य क्षणिकत्वं समापतेत् ॥६९॥

अथवा घटिकायाममुहूर्ताहः स्थिति र्भवेत् ।
तदा कोऽत्र भवेद् बद्धस्तथा मुक्तश्च को भवेत् ॥७०॥

व्यवहारे भवत्येव बन्धमोक्षव्यवस्थितिः ।
अनादित्वञ्च भात्यत्र ब्रह्मान्येषु च सत्यता ॥७१॥

तथाप्यगृध्र देवस्य स्वप्ने यादृग् भ्रमोऽभवद् ।
तथैव तेप्ययं शिष्य ! बन्धमोक्षभ्रमोऽस्ति हि ॥७२॥

स्वप्नस्थवेदशास्त्रादि कर्माण्येतत्फलादि च ।
मिथ्यैव भासते सत्यं चित्सत्यत्वसमाश्रयात् ॥७३॥

तथैव ब्रह्मसत्त्वेन सत्यं भाति जगत् सदा ।
स्वप्नेन सदृश मिथ्या जगदेतच्चराचरम् ॥७४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और इसमें ज्ञानी ज्ञान से मुक्त होता है, अज्ञ बद्ध रहता है। तहाँ इस जगत् के स्वप्नतुल्य मिथ्या होने पर इसमें अनादिता नहीं हो सकेगी और दूसरी बात है कि इसके स्वप्न तुल्य मिथ्या होने पर योग यज्ञादि साधन निष्फल होगें, क्योंकि इसके स्वप्नतुल्य होने पर स्वप्नतुल्यही क्षणिकता सम्यक् प्राप्त होगी। अथवा एक घड़ी या एक पहर, या एक मुहूर्त, या एक दिन इस स्वप्न तुल्य जगत् कीं स्थिति होगी, तो इसमें कौन बद्ध होगा और कौन मुक्त होगा। गुरुजी बोले कि यद्यपि व्यवहार में बन्ध मोक्ष की व्यवस्था होती है और ब्रह्म से अन्य वस्तु में भी अनादिता और सत्यता भासती है, तो भी स्वप्न में अगृधदेव को जैसा भ्रम हुआ था हे शिष्य! वैसा ही तुझे भी यह बन्ध मोक्ष का भ्रम है। क्योंकि स्वप्न में भासने वाले वेद शास्त्रादि, कर्म तथा इन कर्मों के फल साधनादि मिथ्या होते भी चेतन की सत्यता के सम्यक् आश्रयण से सत्य भासते हैं, उस स्वप्न के समान ही ब्रह्म के सत्त्व से जगत् सदा सत्य भासता है, अतः स्वप्न तुल्य ही यह चराचर युक्त जगत् मिथ्या है ॥६८-७४॥

गुरुवेदादिकं स्वप्ने यथा मिथ्या प्रजायते।
जाग्रत्यपि तथा मिथ्या गुरु वेदादिसम्भवः ॥७५॥
सुप्तावगृधदेवोऽसावनाद्या निद्रया स्वपन्।
अपश्यत् संसृतिं घोरामनादिं पारवर्जिताम् ॥७६॥
क्वचित्स नरकं घोरमशुचिं दुःखसंकटम्।
भयङ्करं वनस्थानं तत्र स्वभ्रमणं तथा ॥७७॥
सुतप्तवालुकायुक्ते मार्गे संभ्रमणं क्वचित्।
बद्धस्य ताडनं क्वापि यमदूतेन चासकृत् ॥७८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाण्डालत्वं क्वचित्पश्यन्नभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
क्वचिद् द्विजत्वं शुद्धत्वं पश्यन् कर्मादिकं शुभम् ॥७९॥
अपश्यत् स्वर्गमत्यच्छं देवान् स्वर्गसुखानि च ।
इच्छया रमणं दिव्यदेहान् द्वन्द्वविवर्जितान् ॥८०॥
त्रिदशानतिसौख्याढ्यान् स्वदेवत्वं क्वचित्तथा ।
देवानुचरसङ्घांश्च देवानामधिपं वरम् ॥८१॥

और जैसे स्वप्न में गुरु वेदादिक मिथ्या होते = भासते हैं, जाग्रत में भी उसी प्रकार मिथ्या गुरु वेदादि का सम्भव होता है उस पूर्व कथित अगृध देव की सुप्ति = स्वप्न में अनादि निद्रा से सोया हुआ वह अगृधदेव, पार रहित अनादि घोर = भयङ्कर संसृति = संसार को देखा । तहाँ वह कहीं तो भयंकर, अपवित्र दुःख संकट = दुःखसंकीर्ण = दुःखों से व्याप्त नरक को देखा तथा भयंकर बन स्थान को और उसमें अपने भ्रमण को देखा । कहीं अत्यन्त तप्त बालु युक्त मार्ग में भ्रमण देखा, कहीं बंधे हुए के यमदूतों से बार बार ताड़न को देखा । कहीं चाण्डालता को, कहीं अभक्ष्य के भक्षण को, कहीं द्विजत्व, शुद्धत्व, और शुभ कर्मादि को देखता हुआ भ्रमण किया । कहीं अत्यन्त उज्वल स्वर्ग, देव और स्वर्ग सुख, सुख के साधनों को देखा और इच्छा के अनुसार रमण को तथा द्वन्द्व रहित दिव्य देहों को देखा और अत्यन्त सुखों के धनी त्रिदशों = देवों को देखा और कहीं अपने देवत्व को तथा देव के अनुचर समूहों को और देवताओं के श्रेष्ठ स्वामी को देखा ॥७५-८१॥

नरके नरकाधीशं स्थितं शुभ्रासने जनः ।
केचित् सौम्यं प्रपश्यन्ति केचित्तं तु भयङ्करम् ॥८२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्तश्चानुचरै देंवः स सर्वाधिपतिः प्रभुः ।
स्व स्व कर्मफलं दत्ते सर्वेभ्यः पृथगव्ययः ॥८३॥
आचार्यः क्वचिदन्येभ्यः शिष्येभ्यो ब्रह्मविद्यया ।
जीवन्मुक्ति ददात्यत्र ततो बन्धाद्विमुच्यते ॥८४॥
एवं स क्षणमात्रेण नरकस्वर्गसंसृतिम् ।
पश्यन्नगृधदेवोऽसावपश्यद् बहुकालताम् ॥८५॥
अहो अत्रानन्तकालात् स्थितोऽस्मि विषमे बने ।
विच्छेदो विद्यते नास्य तस्मादिदमनन्तकम् ॥८६॥
देवोऽस्य जनको यस्तु सैवास्य पालकः सदा ।
नाशकोऽपि स एवास्य काले भवति सर्वदा ॥८७॥
चतुर्भ्यः स मुखेभ्यश्च वेदादीन् बीजसञ्ज्ञकान् ।
आविष्कृत्य वनं कृत्वा कर्मतोयेन सिञ्चति ॥८८॥

नरक में उज्वल आसन पर स्थिर नरक स्वामी को देखा, तहाँ कोई जन उसको अपने कर्मानुसार सौम्य = शान्त मूर्ति देखते हैं और कोई पाप वश भयङ्कर देखते हैं और वह सबका अधिपति स्वामीरूप अविनाशी देव अपने अनुचरों से युक्त होकर सबको अपने अपने कर्मों के अनुसार पृथक् फल देता है और कहीं ज्ञानी गुरु अन्य शिष्यों के प्रति ब्रह्मविद्या के द्वारा यहाँ जीवन्मुक्ति देते हैं, तब वह बन्धन से मुक्त होता है। इस उक्त रीति से वह अगृधदेव क्षणमात्र में स्वर्ग नरकादि में संसृति = गति को देखता हुआ बहु कालता को भी देखा। कि अहो = आश्चर्य है कि मैं इस विषम = कठिन बन में अनन्त काल से स्थिर हूँ और इसका विच्छेद = नाश नहीं होता है, अतः यह अनन्त है और जो देव इसका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनक = उत्पादक है, वही इसका सदा पालक = रक्षक है और वही देव प्रलय काल में इसका सर्वदा नाशक होता है और सृष्टि काल में वह देव अपने चार मुखों से वेदादि को और बीज समूह को प्रकट करके बनरूप संसार की भी रचना करके कर्म रूप जल से बन को सींचता है ॥८२-८८॥

कर्मोपरतिमालोक्य घोरहासेन संयुतः ।
नाशयत्यटवीं सर्वां कालाख्येन मुखाग्निना ॥८९॥
ममोत्पत्ति र्बनेनैव सह सम्पद्यते सदा ।
विनाशश्च विनाशेन सहैवात्र विजायते ।९०॥

विनाशेऽपि बनस्यास्य बीजं तस्य कलेवरे ।
सन्तिष्ठते यतो भूयो वनं सम्पद्यते प्रभोः ॥९१॥
स्वप्ने संश्रवणादेवं ज्ञानं तस्याऽभवद् यदा ।
वनस्यास्य परं पारं गन्तुं चिन्तितवान् तदा ॥९२॥

पुनः पुनश्चिन्तयित्वा ब्रह्मज्ञानप्रदं गुरुम् ।
ज्ञात्वा बन्धहरं शुद्धं संसारबनपारदम् ॥९३॥
स्वप्ने तच्छरणं देवः संप्राप्तोऽभूदमायया ।
संस्कृतेन प्रबन्धेन गुरुस्तमुपदिष्टवान् ॥९४॥

अन्त में कर्मों की उपरति = अप्रवृत्ति को देख कर, भयङ्कर हास से युक्त वह देव काल नामक निज मुख की अग्नि से सब अटवी = वन = संसार को नष्ट करता है और इस वन की उत्पत्ति के साथ मेरी सदा उत्पत्ति होती है और इस के विनाश के साथ ही यहाँ मेरा विनाश भी होता है। और इस बन के विनाश होने पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी इसका बीज उस देव के देह में वर्तमान रहता है कि जिससे, उस प्रभु से वन फिर सिद्ध होता है। इस प्रकार स्वप्न में ही सम्यक् श्रवण=सुनने से जब उस अगृधदेव को वन का ज्ञान हुआ, तब उस ने इस वन के पर पार में जाने के लिये विचार करने लगा। फिर बार बार चिन्तन=विचार करके बन्धनाशक=संसार वन के पार को प्रापक शुद्ध, ज्ञानप्रद गुरु को समझ कर यह अगृध देव स्वप्न में ही उस गुरु के शरण में, माया=कपट रहित शुद्ध हृदय पूर्वक प्राप्त हुआ, तब गुरु ने संस्कृत प्रबन्ध=ग्रन्थ के द्वारा उस को उपदेश दिया ॥८९-९४॥

पापात्मविघ्न नाशाय प्रारम्भे मङ्गलं सदा।
क्रियते साधुभिस्तस्मान्मङ्गलं कृतवान् गुरुः ॥९५॥
वस्तु निर्देशरूपञ्च नमस्कारस्वरूपवत्।
आशीर्वादात्मकं चैव त्रिविधं मङ्गलं स्मृतम् ॥९६॥
विधितः सगुणस्याहो निर्गुणस्य निषेधतः।
स्वरूपकीर्तनं सम्यग् वस्तुनिर्देश उच्यते ॥९७॥
स्वरूपे बन्धनाभ्यासरहितो हीश्वरः सदा।
तन्निर्देशः सदा कार्यो मङ्गलाय मनीषिभिः ॥९८॥
प्रार्थना क्रियते या च वाञ्छितार्थस्य लब्धये।
आशीर्वादात्मकं तद्धि मङ्गलं कथ्यते बुधैः ।९९॥
विभो र्यस्य प्रकाशेन रवि र्नित्यं प्रकाशते।
चन्द्रश्चाग्निस्तदेवाहं बुद्धेः साक्षी सुखामलः ॥१००॥
श्री गणेशस्य नामानि नाशयन्ति समूलतः।
अघं विना न यच्चिन्तां देवकार्यं प्रसिद्ध्यति ॥१०१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थादि के आरम्भ में पापरूप विघ्न की निवृत्ति के लिये सदा साधुओं से मङ्गल किया जाता है, अतः गुरु ने ग्रन्थ के आरम्भ में मङ्गल किया। वस्तु निर्देश=वस्तु का कथन स्वरूप, नमस्कार स्वरूप और आशीर्वादस्वरूप ये तीन प्रकार के मङ्गल कहे गये हैं। तहां सर्वज्ञता आदि गुणों के विधि द्वारा सगुण ईश्वर के स्वरूप के कीर्तन=कथन को, अथवा सब विशेषों के निषेध द्वारा निर्गुण अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्म के स्वरूप के सम्यक् कीर्तन को वस्तु निर्देश रूप मङ्गल कहा जाता है। अपने स्वरूप में बन्धन=संसार के अध्यास=भ्रम प्रतीति से रहित ही सदा ईश्वर रहता है। मङ्गल=शुभ=कल्याण के लिये उस ईश्वर का निर्देश=कीर्तन सदा विद्वानों का कर्तव्य है। अपने या श्रोता आदि के वाञ्छित अर्थ की प्राप्ति के लिये जो ईश्वर देवादि की प्रार्थना=स्तुति की जाति है, विद्वान् उस को आशीर्वाद रूप मङ्गल कहते हैं। जिस विभु ब्रह्म के प्रकाश से सूर्य चन्द्र और अग्नि सदा प्रकाशते=दीप्त होते हैं, वही ब्रह्म बुद्धि के साक्षी सुख अमल=शुद्ध स्वरूप मैं हूँ, यह निर्गुण वस्तु का निर्देश है। श्री गणेश जी का नाम मूल सहित विघ्न सब को नष्ट करता है, जिस गणेश जी के चिन्तन=ध्यान के विना देवों के कार्य भी नहीं सिद्ध होते हैं ॥९५-१०१॥

दैतेयनाशकर्तारौ श्रीविष्णुश्रीमहेश्वरौ ।
ताभ्यां नमोऽस्तु मे नित्यं भजन्तं भजतो हि यौ ॥१०२॥

यस्याः शक्तेः प्रभावेणापीश्वरः कुरुते जगत् ।
सा मे वसतु जिह्वाग्रे ग्रन्थसिद्धि र्यतो भवेत् ॥१०३॥

दयालुः सद्गुरु र्ग्रन्थश्रोतुः पठितुरेव च ।
हरतात् पापजालानि कर्माविद्यामयानि हि ॥१०४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थवादस्वरूपा ये वृक्षा वेदवनं गताः ।
सकामकर्मरूपाश्च कण्टकास्तत्र भान्ति हि ॥१०५॥

भेदवादी गुरु र्वायुस्तान् विक्षिप्य तु कण्टकान् ।
सरलान् शिष्यकञ्जाँस्तैः छिनत्ति भ्रामयत्यथ ॥१०६॥

वने भ्राम्यत इत्थं तान् दृष्टैव भगवान् हरिः ।
पान्थो ज्ञात्वा त्वयुक्तं तद् व्यासरूपं ततो व्यधात् ॥१०७॥

व्यासरूपेण तान् धृत्वोपदेशाङ्के हि शान्तिदे ।
स्थाने पुनश्च भाव्यर्थं सुत्रै र्वेदान् विभक्तवान् ॥१०८॥

श्री विष्णु और श्री महादेव असुरों दैत्यों को नष्ट करने वाले हैं, उन दोनों के प्रति मेरा सदा नमस्कार है, जो कि भजने वाले को स्वयं भी भजते = रक्षा करते हैं। जिस शक्ति = माया के प्रताप से ही ईश्वर जगत् को रचते हैं सो शक्ति सरस्वती स्वरूपता से मेरी जिह्वा के अग्र हृदय में बसो किजिससे ग्रन्थ की सिद्धि हो दयालु सद्गुरु जी, ग्रन्थ के श्रोता वक्ता आदि के पाप समूह को तथा पाप और बन्धनों को नष्ट कर दें, कि जो पापादि कर्म और अविद्यामय हैं। वेद रूप वन में, वर्तमान जो अर्थवाद[1] = कर्मादि की स्तुति आदि रूप वृक्ष हैं, उन में सकाम कर्म रूप कण्टक भासते हैं अर्थात् सकाम कर्मों के ही प्रायः अर्थवाद प्रतीत होते हैं। तहाँ भेदवादी गुरु रूप वायु, उन सकाम कर्मों का ही विक्षेप = विस्तार प्रचार कर के सरल शिष्य रूप कञ्ज = कमल को उन कांटों से छेदन करते हैं। आत्म चिन्तनादि से हटा कर कर्मों में विवेकी

---

१ गुणवाद, अनुवाद भूतार्थवादादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिष्य को भी फँसाते हैं, फिर संसार वन में भ्रमाते हैं। इस प्रकार उन शिष्यों को वन में भ्रमते हुए देख कर और उस भ्रमणादि को अयुक्त जान कर भगवान् हरिरूप पथिक ने उसके वाद अपना व्यास रूप अवतार किया और व्यास रूप से उन शिष्यों को शान्ति प्रद अपने उपदेश रूप अङ्कात्मक (गोद स्वरूप) स्थान में धारण करके, फिर भावी शिष्यों के लिये सूत्रों द्वारा वेद-वन का विभाग किया। अर्थात् जैसे कोई पथिक कण्टक युक्त वन में कमलों के भ्रमण को अयुक्त -- अनुचित जान कर, उन्हें गोद में धर ले और आगे के लिये सूत्र के जाल से वन को विभक्त करे, तैसे व्यासदेव ने वेद को विभक्त किया इत्यादि ।।१०२-१०८।।

कृतं येनेदृशं शुद्धशिष्यार्थं सूत्रजालकम् ।
नमस्करोति तं व्यासं निश्चलो ग्रन्थकृद् गुरुः ।।१०९।।

वने वृक्षविभागेन कण्टकैः कमलं नहि ।
विध्यतेऽत्र तथा व्याससूत्रैः शिष्यो न विध्यते ।।११०।।

कार्यं निष्कामकर्मैव मुमुक्षुभिः सदा शुभम् ।
इत्येवं सर्ववेदानां तात्पर्यं प्रोक्तवान् हरिः ।।१११।।

मङ्गले च समाप्तेऽथाऽगृधदेव उदारधीः ।
जगाम शरणं शिष्यो गुरो र्दीनानुकम्पिनः ।।११२।।

पादपद्मे शिरो धृत्वा बद्ध्वा चैवाञ्जलिं तदा ।
स प्रश्नं कृतवान् युक्तं समाहितमनाः शृणु ।।११३।।

येन न गृध्यते किञ्चिल्लौकिकं वस्तु कर्हिचित् ।
निष्कामो निर्मलः शिष्यः स चात्माऽगृध उच्यते ।।११४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवनत्र देहेऽहं देहप्राणादिसंहतौ ।
कोऽस्मि कर्ताऽथ भोक्ता वा तद्भिन्नो वहुधैकधा ॥११५॥

जिस व्यास देव ने शुद्ध शिष्यों के लिये ऐसा सूत्र जाल किया, उस व्यास देव को निश्चल ग्रन्थ कर्ता गुरु ने नमस्कार किया है। जैसे वन में वृक्षों के विभागसे कण्टकों से कमल वेधित नहीं होता है, तैसे ही यहाँ व्यास सूत्रों द्वारा वेद वन के विभक्त होने से शिष्य वेधित नहीं होता है,। क्योंकि मुमुक्षुओं को शुभ निष्काम कर्म ही सदा कार्य = कर्तव्य है, इस प्रकार सब वेद के तात्पर्य को हरि-स्वरूप व्यास जी ने कहा है। पूर्व रीति से मङ्गल के समाप्त होने पर उदार बुद्धिवाला अगृध देव शिष्य दीनदयालु गुरु के शरण में गया और उस समय गुरु के पदकमल पर शिर धर कर नमस्कार किया, फिर अञ्जलि बान्ध कर वह युक्त प्रश्न किया, शिष्य रीति से पूछा। हे तर्क दृष्टि ! तुम उस प्रश्न को समाहित मन वाला होकर सुनो। जो लौकिक कोई वस्तु को कभी नहीं चाहता है, वह निष्काम निर्मल शिष्य और आत्मा अगृध कहा जाता है। उसने पूछा कि हे भगवन् ! इस देह में तथा देह प्राणादि के समूह में मैं कौन हूँ, केवल कर्ता हूँ, या केवल भोक्ता हूँ, या उभय स्वरूप हूँ, या कर्ता भोक्ता से भिन्न हूँ, बहुत प्रकार का हूँ या एक प्रकार का हूँ ॥१०९-११५॥

कस्माच्च जायते विश्वं जीवादथ महेश्वरात् ।
स विभुर्वाऽविभुर्वाऽस्ति भिन्नोऽभिन्नोऽथ जीवतः॥११६॥

मोक्षहेतु हि विज्ञानं कर्म वोपासनं प्रभो! ।
सकर्मोपासनं यद्वा सज्ञानोपासनादिकम् ॥११७॥

सच्चिदानन्दरूपं यद् ब्रह्म त्वन्न तदन्यथा ।
अजन्मा त्वमसङ्गोऽतः कर्ता भोक्ता न विद्यसे ॥११८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांख्ये बुद्धे हि कर्तृत्वं स्वीकृत्यात्मनि भोक्तृताम् ।
मत्वा चात्मनि भोगेन भेदः स्वीक्रियते हि यः ॥११९॥

स न युक्तो यतः कर्ता यो वै स भोक्तृतां व्रजेत् ।
अविवेकेन भोक्तृत्वे भेदः स्यादविवेकतः ॥१२०॥

उदासीनो मतश्चात्मा कार्यकारण वर्जितः ।
नैवोपाधिं विना सोऽत्र कदाचिद् भेदमर्हति ॥१२१॥

अविवेककृतो भेदस्तथैवौपाधिको मतः ।
मिथ्यैव भासते तस्मादात्मासत्योऽकलोऽद्वयः ॥१२२॥

और यह संसार किससे उत्पन्न होता है, जीव या विभु ईश्वर से होता है, वह ईश्वर विभु या एकदेशी है और जीव से सर्वथा भिन्न या अभिन्न है। और मोक्ष का हेतु विज्ञान या कर्म या उपासना है या कर्म सहित उपासना है या ज्ञान सहित उपासनादिक मोक्षहेतु हैं। गुरुजी बोले कि जो सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म है, सोई तुम हो, उससे अन्यथा नहीं हो, अतः तुम जन्म सङ्गादि से रहित हो, कर्ता भोक्ता भी वस्तुतः नहीं हो। सांख्य में बुद्धि की कर्तृता को मान कर और आत्मा में भोक्तृता (भोग) मानकर जो भोग हेतुक ही आत्मा में भेद माना जाता है सो युक्त नहीं है। क्योंकि जो कर्ता होता है, सोई भोक्ता होता है, बुद्धिके कर्त्री रहते आत्मा भोक्ता नहीं हो सकता है, यदि अविवेक से बुद्धिगत भोग का आत्मा में भानमात्र माना जाय, तो बुद्धि के साथ अविवेक से ही मिथ्या भेद सिद्ध होगा सत्य नहीं। क्योंकि सांख्या में भी उदासीन कार्य कारण करणादि रहित आत्मा माना गया है, सो आत्मा इस व्यवहार दशा में भी उपाधि के विना सत्य भेद के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य नहीं है और अविवेक कृत तथा औपाधिक = उपाधिकृत माना गया भेद भी मिथ्या ही भासता है, अतः आत्मा सत्य निरवयव और अद्वय = एक है। अर्थात् (समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता। सांख्य द० अ० ५।११६। इत्यादि के अनुसार सर्वात्मा ब्रह्म के स्वीकार से सांख्य में सत्य अभेद ही स्वीकार योग्य है ॥११६-१२२॥

कर्तृत्वभोक्तृतायुक्तोऽनेकश्चात्मा भवेद् यदि ।
विभुः सर्वशरीरस्थोऽमूर्तकालदिगादिवत् ॥१२३॥
नैयायिकैरभिमतस्तदा भोगादिसङ्करः ।
प्राप्नुयादेव सर्वस्य सर्वत्र समसम्भवात् ॥१२४॥
सिद्धान्ते व्यापकत्वेऽपि तथैकत्वेऽपि सर्वथा ।
साक्षित्वेऽपि न कर्तृत्वं भोक्तृत्वं चास्य विद्यते ॥१२५॥
साभासस्याहमो भोक्तृ व्यापकत्वं न विद्यते ।
अनेकत्वं च संकोचविकासित्वं च वर्तते ॥१२६॥
ततो न सङ्करो नापि कश्चिद् दोषोऽत्रविद्यते ।
तथात्वे चात्मनस्तस्यान्तःकरणवद् भवेद् ॥१२७।
अनित्यत्वं विनाशित्वं मोक्षासम्बन्धिता तथा ।
अणुत्वे सर्वदेहस्थं सुखादि न प्रकाशयेत ॥१२८॥

कर्तृत्व भोक्तृत्व से युक्त, अनेक, विभु, सब शरीरों में वर्तमान अमूर्त, काल दिशा आदि के समान (स्थानानिरोधक) नैयायिक आदि से अभिमत = स्वीकृत स्वरूप यदि आत्मा हो, तो भोगादि का संकर = अविभाग प्राप्त होगा ही, क्योंकि भोक्ता आदि स्वरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब आत्माओं का सर्वत्र सम = तुल्य सम्भव = सत्त्व सिद्ध होता है। और वेदान्त सिद्धान्त में तो आत्मा के व्यापक तथा सर्वथा एक = अद्वैत और साक्षिस्वरूप होते भी इस मात्मा में कर्तृत्वभोक्तृत्व नहीं रहता है कि जिससे भोगादि का संकरादि हो। और आभास सहित अहंकार = अन्त:करण रूप व्यावहारिक जीव स्वरूप भोक्ता को व्यापकत्व नहीं है और उसको अनेकत्व तथा संकोच विकाशवत्त्व है अत. संकर या अन्य कोई दोष यहाँ नहीं प्राप्त होता है। और अन्त:करण के समान आत्मा के संकोच विकाशादि मानने पर आत्मा को अन्त:करण के समान होना होगा और अन्त:करण के समानता से आत्मा में अनित्यता विनाशिता और मोक्ष में असम्बन्धितारूप दोष प्राप्त होगें। और आत्मा के अत्यन्त अणु सूक्ष्म स्वरूप होने = मानने पर, वह सर्व = सम्पूर्ण देहगत सुखादि को नहीं प्रकाशेगा ॥१२३–१२८॥

आत्मनोऽत्यणुतां मत्वा ज्ञानस्य गुणतां तथा।
शरीरे तद्गुणस्यैव व्याप्तिं मत्वा समन्ततः ॥१२९॥

सुखादेस्तेन च ज्ञानं जायते, न मतं शुभम्।
यतो गुणो न कुत्रापि वर्तते गुणिनं विना ॥१३०॥
श्रुतौ दुर्लक्ष्यता हेतोरणुत्वं कथ्यते क्वचित्।
विततो देवयानो हि यथाणुत्वेन भण्यते ॥१३१॥

ज्ञानं च नात्मनो धर्मो नित्यत्वाच्च विभुत्वतः।
अनित्यत्वे घटाद्यैश्च तुल्यत्वाज्जड़तां व्रजेत् ॥१३२
"जनिमज्ज्ञानविज्ञेयं स्वप्नज्ञानवदिष्यते।
नित्यं निर्विषयं ज्ञानं तस्माद् द्वैतं न विद्यते ॥१३३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित्यत्वेऽपि च बोधस्य वृत्तिभि र्व्यञ्जनं हि यत् ।
अनित्यं जायते तस्य तेनानित्यं विभाव्यते ॥१३४॥

आत्मा को अत्यन्त अणु और ज्ञान को आत्मा का गुण मान कर और शरीर में उस ज्ञान गुण की ही सर्वत्र व्याप्ति मानकर और उस व्याप्त ज्ञान गुण से शरीर में सुखादि का ज्ञन होता है, ऐसा मानना रूप मत शुभ नहीं है, क्योंकि गुणी के विना कहीं भी गुण नहीं रहता है, अतः आत्मा के विना सम्पूर्ण देह में ज्ञान नहीं रह सकता है इस से आत्मा ही ज्ञान स्वरूप विभु है। और श्रुति में दुर्लक्ष्यता = दुर्ज्ञेयता रूप हेतु से कहीं आत्मा के अणुत्व का कथन है, जैसे की वितत = विस्तृत देवयान मार्ग भी अणुत्व रूप से कहा जाता है कि (अणुः पन्था विततः पुराणः । वृ०४।४।८) नित्य और विभु होने से ज्ञान आत्मा का धर्म नहीं है, किन्तु स्वरूप है यदि ज्ञान अनित्य हो, तो घटादि के तुल्य होने से उसमें जड़ता की प्राप्ति होगी। जन्म वाला ज्ञान का विषय रूप ज्ञान स्वप्न ज्ञान तुल्य मिथ्या माना जाता है। वस्तुतः निर्विषय नित्यस्वरूप ज्ञान है, अतः स्वरूप ज्ञान में द्वैत नहीं है। ज्ञान स्वरूप के नित्य होते भी उस ज्ञान स्वरूप का जिस से अन्तःकरण की वृत्तिसे अनित्य व्यञ्जन (प्राकट्य) होता है, इस कारण से ज्ञान अनित्य प्रतीत होता है ॥१२९-१३४॥

नित्यज्ञानस्वरूपेऽपि मिथ्याऽज्ञानं तु विद्यते ।
अज्ञानोपहितेऽत्रान्तःकरणं कल्पितं तथा ॥१३५॥

अन्तःकरणरूपे च चिदुपाधौ सदात्मनि ।
धर्माधर्मादिकं सर्वं कल्पितं भासते सदा ॥१३६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पितै र्नैव हानिः स्यादधिष्ठानस्य काचन ।
तेनात्मा नित्यमुक्तोऽथाऽसङ्गोऽतो निर्मलः सदा ॥१३७॥

असङ्गस्य न नाशश्च तेनाऽऽस्ते सत्यतात्मनि ।
सर्वबाधावधित्वेन तस्य बाधो न विद्यते ॥१३८॥

ज्ञानस्वरूपनाशस्य ज्ञातुरन्यस्य सम्भवः ।
नास्ति तस्मान्न तन्नाशसम्भवोऽस्ति कदाचन ॥१३९॥

और उस नित्य ज्ञान स्वरूप में भी मिथ्याज्ञान = भ्रम अनादि भावस्वरूप अज्ञान रहता है और उस अज्ञानरूप उपाधि वाले इस स्वरूप ज्ञान में अन्तःकरण कल्पित = मिथ्या सिद्ध होता है। क्योंकि नित्यस्वरूप ज्ञान अज्ञानादि का विरोधी नहीं है, किन्तु अज्ञानादि का भी प्रकाशक है और अन्तःकरण रूप चेतन की उपाधि के रहते ही धर्माऽधर्मादिक सब सत्यात्मा में सदा कल्पित भासते हैं, अतः शुद्धात्मका धर्मादि रहित है। और कल्पित धर्मादि से अधिष्ठानरूप आत्मा की कोई हानि नहीं होती है, अतः आत्मा नित्य मुक्त है और असङ्ग है, अत एव सदा निर्मल है। और असङ्ग का नाश नहीं होता है, इस से आत्मा में सत्यता = अविनाशिता है और समाधि आदि काल में शरीर इन्द्रियादि सब अनात्म वस्तु के बाध होने पर भी सब के बाध के अवधिरूप होने से आत्मा का बाध नहीं होता है और ज्ञाता से अन्य ज्ञान स्वरूप के नाश का सम्भव नहीं है, अतः उस के नाश का कभी सम्भव नहीं है। अर्थात् ज्ञाता ज्ञान के नाश का हेतु हो सकता था, परन्तु ज्ञान स्वरूप होने से वह अपने नाश का हेतु नहीं हो सकता है और आत्मा से अन्य ज्ञाता मिथ्या है, सो सत्यात्मा का नाशक नहीं हो सकता है, अतः आत्मा एक अविनाशी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। तथा ज्ञान स्वरूप आत्मा के नाश माने तो उस नाश का ज्ञाता अन्य जड़ वस्तु हो नहीं सकते, अतः नाश के अन्य ज्ञाता का सम्भव नहीं है, अतः उस के नाश का भी सम्भव नहीं है। ॥१३५-१३९॥

वित्तात्पुत्रः प्रियः पुत्रात् पिण्डः पिण्डात्तथेन्द्रियम् ।
इन्द्रियेभ्यः प्रियः प्राण आत्मा प्रियतरस्ततः ॥१४०॥
एवं प्रियतमत्वेनाऽऽत्मन आनन्दरूपता ।
ज्ञायते वेदवाक्यैश्च सच्चिदानन्दरूपता ॥१४१॥
वाञ्छितार्थस्य लाभेन वृत्तिष्वन्तर्मुखासु यत्।
आत्मानन्दोऽसितो व्यक्तस्तेनार्थेष्ववभासते ॥१४२॥
किञ्च विषयजानन्दः सर्वथा यदि संभवेत् ।
सुषुप्तौ विषयाभावे न कथञ्चित् स संस्फुरेत् ॥१४३॥
अखण्डः सच्चिदानन्द आत्मैव ब्रह्म कथ्यते ।
ब्रह्मणः स्वात्मभिन्नत्वेऽनात्मत्वं जड़ता भवेत् ॥१४४॥
अस्ति भाति प्रियं नाम रूपञ्चेत्यंशपञ्चकम् ।
विद्यते सर्वभावेषु तत्र मायात्मकं द्वयम् ॥१४५॥
आत्मनस्तु त्रयं रूपमाद्यं सच्चित्सुखात्मकम् ।
व्यापित्वात्सर्वभावेषु तद्धि ब्रह्मैव केवलम् ॥१४६॥

धन से पुत्र, पुत्र से स्वदेह, देह से इन्द्रिय और इन्द्रियों से प्राण ये उत्तरोत्तर के अधिक प्रिय होते हैं आत्मा के सान्निध्य निमित्तक प्रेम वढता है, अतः आत्मा इन सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अत्यन्त प्रिय है। इस प्रकार अत्यन्त प्रियता से आत्मा की आनन्दस्वरूपता जानी जाती है। और (यदेतत्प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मात् ।बृ०१।८) इत्यादि वेद वाक्यों से सच्चिदानन्द स्वरूपता जानी जाती है । और जिससे वाञ्छितार्थ की प्राप्ति से अन्तर्मुख हुई चित्त वृत्तियों में आत्मानन्द ही अभिव्यक्त होता है, अतः अर्थों = विषयों में आनन्द भासता है, परन्तु विषयों में आनन्द रहता नहीं है। और यदि सर्वथा विषयजन्य आनन्द का सम्भव हो, तो सुषुप्ति में विषयों के अभाव रहते, वह सुषुप्ति कालिक आनन्द कभी किसी प्रकार भी नहीं भासना चाहिये और भासता है, अतः आत्मा ही आनन्द स्वरूप है। अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप सर्वात्मा ही ब्रह्म कहा जाता है, सर्वात्मा से ब्रह्म के भिन्न होने पर वह अनात्मा और जड़ सिद्ध होगा। क्योंकि सत्यता, प्रकाश, प्रियता, नाम और रूप ये पांच अंश सब भाव पदार्थ में रहते हैं, उन में नाम और रूप = आकारादि ये दो अंश मायात्मक मिथ्या रहते हैं और प्रथम के सत्, चित्, सुख स्वरूप तीन अंश आत्मास्वरूप रहते हैं, सो व्यापक होने के कारण सब पदार्थों में केवल ब्रह्मात्मक ही हैं (प्रेयान् यः सदनधनात्मजप्रियादेर्यत्प्रेम्णा प्रियमिति मन्यते पराचः। पारार्थ्यावधिरवधिरितैतरार्थ्यो विज्ञेयः स खलु सुखाब्धिरन्तरात्मा ॥१॥ स्वाराज्यसिद्धि.) जो गृह, धन, पुत्र स्त्री आदि से अत्यन्त प्रिय है और जिस आत्मा के प्रेम से ही प्राणी बाह्य अनात्म वस्तु को प्रिय मानता है, परार्थकता की अवधि = परार्थकता रहित, अत एव इतरार्थकता को सर्वथा अनादर करने वाला स्वतन्त्र सुख समुद्र अन्तरात्मा ज्ञातव्य है, अन्य नहीं ॥१४०-१४६॥

व्यापकत्वादजन्माऽसौ द्वैताऽभावादसङ्गता ।
मायिकत्वाच्च भेदस्य सङ्गो नित्यस्य नास्ति हि॥ १४७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतो जन्मादिभिर्हीनमसङ्गं ब्रह्म निश्चितम् ।
तत् त्वमसि चिदानन्दः साक्षिरूपेण सर्वदा ॥१४८॥
"ईश्वरश्चेदनात्मा स्यान्नासावस्मीति धारयेत् ।
आत्मा चेदीश्वरोऽस्मीति विद्या साऽन्यनिर्वर्तिका" ॥१४९॥
भेदत्रयविहीनस्त्वं देहादिभ्यो विलक्षणः ।
त्वयि सर्वमिदं प्रोतमनृतं तेन किं तव ॥१५०॥
विभोश्चिदात्मनः शक्ति र्माया सदसदन्यथा ।
आभाससहिता सा च स्वाधिष्ठानसमाश्रया ॥१५१॥
तथा युक्तो विभुर्देव ईश्वरः कथ्यते बुधैः ।
उत्पत्तिं पालनं नाशं जगतः स करोति हि ॥१५२॥

और व्यापक होने से वह आत्मा जन्म रहित है, सत्य द्वैत के अभाव से असङ्ग है, क्योंकि भेद के मायिक होने से नित्य सत्यात्मा को उस के साथ सङ्ग नहीं होता है। इन हेतुओं से जन्मादि से रहित असङ्ग ब्रह्म = विभु आत्मा निश्चित होता है। और हे तर्कदृष्टे! चिदानन्द आत्मस्वरूप तुम भी साक्षी स्वरूप से सर्वदा उस ब्रह्मस्वरूप ही हो। अगृध देव को भी गुरु कहते हैं कि तुम वही ब्रह्म हो। और यदि ईश्वर अनात्मा हो तो (वह ईश्वर मैं हूँ) ऐसी धारणा = निश्चय कोई नहीं करे, और यदि आत्मा ही ईश्वर है तो (वह ईश्वर मैं हूँ) यह विद्या (ज्ञान) अन्य अविद्यादि युक्त जन्मादि संसार का निवर्तक होती है। तुम त्रिविध भेद से रहित और देहेन्द्रियादि से विलक्षण हो, तुम में ही यह सब मिथ्या संसार (प्रोत) कल्पित है, उससे तेरी क्या हानि है। विभु चेतनात्मा की माया रूप शक्ति सदसत् से विलक्षण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, वही आभास सहित और अपने अधिष्ठान के समाश्रित रहती है। और उस माया से युक्त विभु देव विद्वानों से ईश्वर कहा जाता है सो ईश्वर जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश करता है (यद्यपि "माया प्रज्ञा वयुनम्" इति निघण्टौ ज्ञानार्थको मायाशब्दः प्रतीयते, तथापि मायापरिणामत्वेन ज्ञाने माया शब्द प्रयोगो द्रष्टव्यः, माया छद्मेति, माया स्यात् शाम्बरी, इत्यादि वचनात्। तथा "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्, इत्यादि श्रुत्या च, अद्भुत स्वरूपा सर्वेश्वर शक्तिरेव प्रायो वैदिक प्रयोगे मायाशब्दार्थं सिद्ध्यतीति (अद्वैत सिद्धौ) ॥१४७-१५२॥

परिच्छिन्नत्वसांशत्वोद्भूतरूपादिभिः सदा।
कार्यत्वं जगतो भाति तेन स्यात् कर्तृजन्यता ॥१५३॥
कार्यं घटादिकं सर्वं कर्तृजन्यं प्रदृश्यते।
तस्मादेतज्जगत्सर्वं कर्तृजन्यं भवेद् ध्रुवम् ॥१५४॥
यश्च स जगतः कर्ता सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान्।
स्वतन्त्रो नान्यतो ह्यस्य रचना जातु सम्भवेत् ॥१५५॥
"प्रभवः सर्वभावनां सतामिति विनिश्चयः।
सर्वं जनयति प्राणश्चेतोंऽशून् पुरुषः पृथक् ॥१५६॥
विभूतिं प्रसवं त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः।
स्वप्नमायास्वरूपेति सृष्टिरन्यै विकल्पिता ॥१५७।
इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरिति सृष्टौ विनिश्चिता।
कालात्प्रसूतिंभूतानां मन्यन्ते: कालचिन्तकाः ॥१५८॥

परिच्छिन्नता = एकदेशिता, सांशता और उद्भूत रूपादि हेतु से जगत् की कार्यता सदा घटादि के समान प्रतीत होती है, उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्यता से इसकी कर्तृजन्यता सिद्ध होती है। क्योंकि घटादि सब कार्य कर्ता से जन्य ही देखा जाता है। अतः यह सब जगत् कर्ता जन्य ही होगा और जो इस का कर्ता है, सो सर्वज्ञ सर्व शक्ति वाला ही और स्वतन्त्र हो सकता है, क्योंकि अन्य = अल्पज्ञादि से इसकी रचना जातु = कभी सम्भव नहीं है और वह कर्ता कारणरूप से सत् = वर्तमान ही सब भाव पदार्थ का प्रभव = उत्पत्तिकारण होता है, यह विनिश्चय है। और कार्यों से पृथक् वर्तमान प्राण = जीवात्मा साक्षीरूप पुरुष सब को उत्पन्न करता है। अर्थात् विश्व तैजसादि की आत्मा से उत्पत्ति = सिद्धि होती है। अतः सूर्य के अंशु = किरणों के समान विश्वादि स्वरूप चिदाभासों को चिदंशुओं को आत्मा ही उत्पन्न करता है, अतः आत्मा सब का कर्ता है। और ईश्वर की विभूति = विस्तार रूप प्रसव = सृष्टि को अन्य सृष्टि चिन्तक मानते हैं, परमार्थ चिन्तक नहीं। कोई स्वप्न माया रूप से भी सृष्टि की कल्पना करते हैं, अर्थात् अन्य के मत में जाग्रत की ही वस्तु स्वप्नमाया काल में दीखती है, अतः स्वप्नादि तुल्य ही जगत् सत्य है। कोई सृष्टि विषयक निश्चय वाले प्रभु की इच्छा मात्र सृष्टि को कहते हैं। काल चिन्तक काल से भूतों की सृष्टि कहते हैं ॥१५३-१५८॥

भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे।
देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा ॥१५९॥

निवृत्तेः सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः।
अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यः प्रभुः स्मृतः ॥१६०॥

कार्यकारणबद्धौ ताविष्येते विश्वतैजसौ।
प्राज्ञः कारणवद्धस्तु द्वौ तौ तुर्ये न सिद्ध्यतः" ॥१६१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्तिर्नित्यसुखव्यक्तिर्दुःखहानिश्च सर्वथा ।
लोकवेदप्रसिद्धा सा तदर्थं ज्ञानमिष्यते ॥१६२॥

अविदितो न भुनक्ति नान्यः पन्था विमुक्तये ।
इत्यादि श्रुतयः साक्षाज्ज्ञानान्मोक्षं वदन्ति हि ॥१६३॥

ज्ञानभानुप्रकाशेनाज्ञानध्वान्ततितिक्षतिः ।
कर्मणोपासनेनैवं न सा सिद्ध्येत् कदाचन ॥१६४॥

"अज्ञानहानमात्रत्वान्मुक्तेः कर्म न साधनम् ।
कर्मापमार्ष्टि नाज्ञानं तमसीवोत्थितं तमः" ।१६५।

अन्य कोई भोग के लिये सृष्टि को कहते हैं, कोई क्रीड़ार्थक कहते हैं, परन्तु यह प्रत्यक्ष जगत् देव के माया नामक स्वभाव स्वरूप है, क्योंकि आप्त=पूर्ण काम देव की इच्छा क्या हो सकती है। सब दुःखों की निवृत्ति का ईश्वर रूप प्रभु अविनाशी और सब पदार्थों का अद्वैत स्वरूप तुर्य देव प्रभु=स्वातन्त्र कहा गया है। क्योंकि विश्व और तैजस=जाग्रत स्वप्न के अभिमानी जीव कार्य रूप भ्रम और कारण रूप अज्ञान दोनों से बद्ध माना जाता है। और प्राज्ञ जीव केवल कारण से सुषुप्ति में बद्ध रहता है। और कार्य कारण रूप दोनों बन्धन तुर्यस्वरूप में नहीं सिद्ध होते हैं, नहीं रहते हैं। तुर्यस्वरूप में बन्धन नहीं होते भी नित्य सुखस्वरूप की अभिव्यक्ति और सर्वथा दुःख की निवृत्तिरूप मुक्ति लोक और वेद में प्रसिद्ध है, उस मुक्ति के लिये ज्ञानको साधन माना जाता है। अविदित=अज्ञात आत्मा पालन नहीं करता=मोक्षप्रद नहीं होता है मुक्ति के लिये ज्ञान से अन्य मार्ग नहीं है, इत्यादि श्रुति साक्षात् ज्ञान से ही मोक्ष कहती है। क्योंकि ज्ञान रूप सूर्य के प्रकाश से ही बन्धन रूप अज्ञानान्धकार के विस्तार की निवृत्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म या उपासना से इस प्रकार वह मुक्ति कभी सिद्ध नहीं हो सकती है। क्योंकि अज्ञान की निवृत्ति मात्र स्वरूप मुक्ति के होने से उस का साधन कर्म नहीं हो सकता है। कर्म से अज्ञान की निवृत्ति नहीं हो सकती है जैसे तम में उत्पन्न तम, पूर्व तम को नहीं निवृत्त करता है, तैसे अज्ञानमय कर्म अज्ञान का विरोधी नहीं है ॥१५९-१६५॥

उत्पाद्यमाप्यं संस्कार्यं विकार्यं कर्मणः फलम् ।
नैवं मुक्ति र्यतस्तस्मात्कर्म तस्या न साधनम् ॥१६६॥

उपासनापि कर्मैव मानसं कथ्यते बुधैः ।
तत्साध्योऽपि न नित्यः स्यात्फलं मोक्षः कदाचन॥१६७॥

नित्यमुक्तात्मके स्वस्मिन् बन्धोऽज्ञानात्प्रतीयते ।
तन्निवृत्तिर्भवेज्ज्ञानान्न केर्मोपासनादितः ॥१६८॥

निष्कामकर्मतस्तद्वद्ध्यानाच्चैव सुभक्तितः ।
चित्तशुद्धिसमाधाने जायेते यद्यपि ध्रुवम् ॥१६९॥

ज्ञानोत्पत्तौ तथाप्येते अपेक्ष्येते न मुक्तये ।
तस्माद् विशुद्धचित्तः सन् ज्ञानसाधनमभ्यसेत्॥१७०॥

शान्तचित्तो विशुद्धात्मा जिज्ञासुर्मोक्षलब्धये ।
सर्वकर्माणि संत्यज्य ज्ञानसाधनमाचरेत ॥१७१॥

ज्ञानस्य साधनाभ्यासाज्ज्ञाने प्राप्ते तु सर्वथा ।
जायते कृतकृत्यत्वं कर्म कार्यं न विद्यते ॥१७२॥

कर्म के उपाद्य=घटादि, प्राप्य=ग्रामादि, संस्कार्य=वस्त्रादि और विकार्य=दधि आदिरूप चार प्रकार के फल होते हैं। और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यतः मुक्ति ऐसी नहीं होती, अतः मुक्ति का साधन कर्म नहीं है। उपासना भी मानस कर्म ही विद्वानों से कही जाती है, अतः उससे साध्य=जन्य मोक्ष रूप फल कभी हो नहीं सकता है। और नित्य-मुक्तस्वरूप नित्यात्मा में अज्ञान से जन्मादि बन्ध=संसार प्रतीत होता है, उसकी निवृत्ति ज्ञान से ही हो सकती है, कर्म या उपासनादि से नहीं। यद्यपि निष्काम कर्म और ध्यान=उपासना तथा सुन्दर भक्ति से चित्त की शुद्धि और समाधान (एकाग्रता शान्ति) अवश्य होती है। तथापि ये कर्मादि चित्तकी शुद्धि आदि के द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति में अपेक्षित होते हैं, अतः चित्त की शुद्धि और समाधान में ज्ञान की उत्पत्ति में अपेक्षित हैं, मुक्ति में नहीं, अतः विशुद्ध शान्त चित्तवाला होकर ज्ञान के साधन श्रवणादि का ही अभ्यास करे। शान्तचित्त विशुद्ध मनवाला जिज्ञासु मोक्ष की प्राप्ति के लिये, बाह्य सब कर्मों को त्याग कर ज्ञान के साधनों का आचारण करे क्योंकि कर्म फल उसको प्राप्त हो चुके हैं ज्ञान के साधन श्रवणादि के अभ्यास से ज्ञान के प्राप्त होने पर तो सर्वथा कृतकृत्यता हो जाती है, अतः कर्म का कार्य=फल बाकी नहीं रहता है ॥१६५-१७२॥

"ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥१७३॥

ज्ञानस्य फलसिद्ध्यर्थं ज्ञानरक्षार्थमेव वा ।
ज्ञानेन सहवृत्तित्वं कर्मणो नोपपद्यते ॥१७४॥

विरुद्धफलहेतुत्वात्तथा कर्तृविरोधतः ।
सहवृत्तेरभावेन सम्भवेन्न समुच्चयः ॥१७५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृढ़ ज्ञानवतः सर्वकर्तव्यस्य विनाशतः ।
कर्मादेः सम्भवो नास्ति कृतकृत्यस्य योगिनः ॥१७६॥
यस्य ज्ञानं दृष्टं न स्यात्कर्तव्यं तस्य विद्यते ।
विवेकादिवता तेन कर्तव्यं श्रवणादिकम् ॥१७७॥

अतः ज्ञानरूप अमृतसे तृप्त कृतकृत्य = जीवन्मुक्त = ज्ञानयोगी को कुछ भी कर्तव्य नहीं है और जिसको कर्तव्य है, वह योगी भी तत्त्वज्ञ नहीं है, क्योंकि ज्ञान के फल की सिद्धि के लिये या ज्ञान की रक्षा के लिये भी ज्ञान के साथ कर्म की स्थिति हो नहीं सकती है। अर्थात् ज्ञानाग्नि से समूल जन्मादि संसार के ध्वंस होने पर (ब्रह्माभिन्न निजात्मज्ञान से बाधित होने पर) ज्ञानी के प्रारब्ध का भोग भी आश्रयास अग्नि के समान भोगोपकरण = साधन इन्द्रिय अन्तःकरण प्राण वासनादि को नष्ट करता हुआ अन्त में स्वयं नष्ट हो जाता है। अतः प्रारब्ध भोग से अतिरिक्त ज्ञानी को कर्तव्य नहीं रहता है। क्योंकि अज्ञानी के प्रारब्ध का भोग भी भोगोपकरण इन्द्रियादि वासनादि को पुष्ट तथा उत्पन्न करता है, इस से वह भोग भी भावी जन्मादि का हेतु होता है। अतः उसकी निवृत्ति आदि के लिये अज्ञानी को कर्तव्य रहता है, ज्ञानी को नहीं, इत्यादि। ज्ञान और कर्म के परस्पर विरुद्ध फलों के हेतु होने से तथा दोनों के कर्ताओं के स्वभावादि के भी विरुद्ध होने से दोनों की साथ वृत्ति = स्थिति = अनुष्ठिति के अभाव से उनका समकालिक समुच्चय = मेल नहीं हो सकता है। अतः दृढ़ = अपरोक्ष अनुभवरूप ज्ञानवाले कृतकृत्य योगी के सब कर्तव्य के विनाश = समाप्त = पूर्ण हो जाने से कर्मादि का सम्भव नहीं हैं। परन्तु जिसका ज्ञान दृढ नहीं हो, संशयादि युक्त ज्ञान जिसको हो, उसको भी संशयादि की निवृति के लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचारादिस्वरूप श्रवणादि कर्तव्य है, कर्मादि नहीं। इस कारण से विवेकादि साधन वाले को श्रवणादि करना चाहिये ॥१७३-१७७॥

यथाप्राप्तं कृतं कर्म तत्र न दुःखकृद् भवेत् ।
अतो ज्ञानेच्छुभिस्तत्त्वज्ञाननिष्ठैर्मनीषिभिः ॥१७८॥
क्रियन्तेऽकामकर्माणि प्रारब्धस्यानुसारतः ।
तदाभासात्मकं कर्म भोगं दत्ते तु साम्प्रतम् ॥१७९॥
अभिमानाद्यभावाच्च नादृष्टं जायते ततः ।
मन्दज्ञानेन युक्तश्चेत्कर्मादिकमथाचरेत् ॥१८०॥
कर्तृत्वाद्यभिमानं च स चेत्कुर्यात्प्रमादतः ।
तदा प्राप्तमपि ज्ञानं नष्टं स्यादत एव हि ॥१८१॥
सर्वकर्तव्यताशून्यमात्मानं यः प्रचिन्तयेत् ।
तेनैव ज्ञानदार्ढ्यं स प्राप्यात्रैव विमुच्यते ॥१८२॥
सर्ववेदस्य ते सारं तत्त्वमुक्तं मयाऽनघ ! ।
एतल्लब्ध्वा त्वनायासादपारं भवमुत्तरेत् ॥१८३॥
अतो ब्रह्म यदुक्तं ते स्वरूपं सच्चिदात्मकम् ।
शुद्धानन्दं हि तं दृष्ट्वा दीनतां दूरतस्त्यज ॥१८४॥

और उस अवस्था में देश कालादि के अनुसार यथा योग्य प्राप्त=शरीर सम्बन्धी किया गया कर्म दुःखद नहीं होता है (शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्) क्योंकि केवल शारीरिक कर्म को करता हुआ पाप को प्राप्त नहीं करता है, अतः ज्ञानेच्छुक जिज्ञासु और तत्त्वज्ञाननिष्ठविद्वानों से भी प्रारब्ध के अनुसार निष्काम स्वाभाविक कर्म किये जाते हैं। और वह आभास स्वरूप कर्म सब वर्तमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल में प्रारब्ध के अनुसार भोग मात्र देता है, वासना आदि को नहीं उत्पन्न करता है। क्योंकि अभिमानादि के अभाव से उस आभास रूप कर्म से अदृष्ट = धर्मादि संस्कार नहीं उत्पन्न होते हैं। और मन्द ज्ञान से युक्त पुरुष यदि फिर कर्मादि का साभिमान आचरण करे और यदि वह प्रमाद से कर्तृत्व भोक्तृत्वादि का अभिमान करे, तो प्राप्त भी उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है, क्योंकि अभिमान मनुष्य को मद्यपान के समान पागल कर देता है, इसी कारण से तो जो मन्दज्ञान वाला सर्व कर्तव्यता से रहित निजात्मा का सदा चिन्तन करे, तो उस चिन्तन से ही वह ज्ञान की दृढ़ता को प्राप्त करता है और दृढ़ ज्ञान की प्राप्ति से इस वर्तमान लोक और देह में ही वह विमुक्त होता है । हे अनघ ! शिष्य ! तुझे मैं यह सब वेदों के साररूपतत्त्व = वस्तु को कहा हूँ, इसका लाभ करके तो जिज्ञासु श्रम के विना ही अपार संसार को तर जाता है। अतः जो तुमको सत् चित् स्वरूप ब्रह्मस्वरूप कहा है, उस शुद्धानन्द स्वरूप आत्मा को जान कर (अपरोक्षानुभव करके) दीनता को दूर से त्यागो ।।१७८-१८४।।

तमदृष्ट्वा त्वमज्ञानाद् विश्वं सृजसि हंसि च ।
स्वयं न जायसे नापि म्रियसेऽजोऽविनाश्यतः ।।१८५।।

मिथ्यैवेदं जगद् दृष्ट्वा दुःखं नो हृदि मन्यताम् ।
देवानां त्वं हि देवोऽसि सर्व सौख्यात्मको महान्।।१८६।।

जीवत्वं जगदीशत्वं प्राप्य त्वं मायया मृषा ।
प्रभाससे यथा रज्जुःसर्पत्वेन प्रभासते ।।१८७।।

विषयासक्तिरागं त्वं दग्ध्वा लोभं तृडात्मकम् ।
द्वेषं हत्वाऽथ कामं च पश्य मायामयं जगत् ।।१८८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्थं नरकमार्गं त्वं हित्वा क्रोधादिकं तमः ।
विवेकादीन् सुसम्पाद्य ज्ञानभानुं समाश्रय ॥१८९॥

तेनाज्ञानतमो हत्वा भागत्यागेन शुद्धयोः ।
जीवेशयोरभेदं त्वं निश्चित्य द्वैतमुत्सृज ॥१९०॥

भेदं छित्त्वा चिदानन्दं जानीहि केवलं शिवम् ।
वेदानां सुविचारेण विद्धि सारं स्वमव्ययम् ॥१९१॥

उस आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्मा को नहीं देख कर अज्ञान से तुम मोह राग द्वेष हर्ष शोक शरीरादि रूप विश्व की सृष्टि करते हो और उस शरीरादि का नाश करते हो, परन्तु स्वयं न जन्मते हो न मरते हो, अतः अज और अविनाशी हो तुम मिथ्या ही इस जगत् को देख कर हृदय में दुःख नहीं मानो पारमार्थिक रूप में तुम देवों का देव हो और सर्व स्वरूप महान् = विभु हो माया से मिथ्या ही जीवत्व जगदीशत्व को प्राप्तकर के, अविद्या से जीव और माया से जगदीश स्वरूप तुम प्रभासित = प्रतीत होते हो, जैसे कि अज्ञान से रज्जु सर्प रूप से भासती है। विषयों में आसक्तिरूप राग को और तृष्णा रूप लोभ को नष्ट कर के तथा द्वेष और काम को नष्ट कर के जगत् को मायामय मिथ्या देखो = अर्थात् आसक्ति आदि के त्याग पूर्वक विवेक विज्ञान से जगत् को मिथ्या समझो । इस प्रकार विवेकादि द्वारा क्रोधादि रूप तम स्वरूप नरक मार्ग को त्याग कर और विवेकादि को सुन्दर सुस्पष्ट सम्पादन कर के ज्ञानरूप भानु का सम्यक् आश्रयण करो और उस ज्ञान भानु से तम मोहादि को नष्ट करके भागत्याग लक्षणा के द्वारा शुद्ध किये (समझे) गये जीव और ईश्वर के अभेद को निश्चय कर के तुम द्वैत को त्यागो (अद्वैत को समझो) (भेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का छेदन (भेद के मिथ्यात्व का निश्चय करके, चिदानन्द केवल शिव स्वरूप को समझो, वेदों के विचार से इस प्रकार निर्विकार सार=सत्य आत्मा को तुम जानों ॥१८५–१९०॥

इत्थं च दासतापाशं त्यक्त्वाऽशामीश्वरस्य च ।
निश्चलो भव नित्यं त्वं निर्विकारोऽसि सर्वदा ॥१९२॥

संसारस्तु चलोऽनित्यो मिथ्या खनीलतादिवत् ।
स्वरूपे तेन ते कोऽपिविशेषो वर्त्तते नहि ॥१९३॥

तथापि दृश्यसंसारे यावज्ज्ञानिनौ नरौ ।
बन्धमोक्षगृहौ तौ च ध्वजौ रागविरागकौ ॥१९४॥

रागिणां हृदये या च विषये सत्यता मतिः ।
तया रागध्वजः सोऽत्र सर्वत्र भ्रमति भ्रमात् ॥१९५॥

ज्ञानिनां विषये या चाऽसत्त्वबुद्धिरवस्थिता ।
तया ध्वजो विरागाख्यः प्रचलत्यत्र सर्वदा ॥१९६॥

विषयेष्वपरोक्षं हि मिथ्यात्वं बुध्यते बुधः ।
तस्मात्तस्य सुवैराग्यं जायतेऽतिदृढं सदा ॥१९७॥

और इस प्रकार से दासता=परतन्त्रतारूप पाश=संसार बन्धन को त्याग कर और ईश्वर की आशा को भी त्याग कर, तुम सदा निश्चल=शान्त होवो, तुम सर्वदा निर्विकार स्वरूप हो। और संसार तो चल=विनश्वर अनित्य और आकाशकी नीलता आदि के समान मिथ्या है, अतः उस संसार से तेरे स्वरूप में कोई विशेष=भेदविकार नहीं होता है, तो भी इस प्रत्यक्ष संसार में जो अज्ञानी और ज्ञानी नर हैं, सो बन्ध और मोक्ष के गृह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं और उनमें जो राग और विराग हैं, सो उन में ध्वजा हैं। और रागियों के हृदय में जो विषयों में सत्यता की बुद्धि (ज्ञान) रहती है, उस बुद्धि रूप वायु से वह राग रूप ध्वजा इस संसार में सदा सर्वत्र भ्रम से घूमता = नाचता है और ज्ञानियों को जो विषयों में असत्त्व बुद्धि स्थिर हो गई है, उस बुद्धि रूप वायु से विराग नामक ध्वजा यहाँ सदा चलते रहता है ज्ञानी विषयों में अपरोक्ष मिथ्यात्व को जानता है अतः उसको अति दृढ़ सुन्दर वैराग्य सदा उन्पन्न होता है भाव है कि (विषयस्य क्षयादिदोषदर्शनात्कामोपशमो हिरण्यगर्भस्यापि, तस्मात्सर्वत्र कामस्य विषयदोषदर्शनमेवोच्छेदकारणं, नित्यवस्तुदर्शनं च। रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते, इति स्मृतेः) इत्यादि पञ्चपादिकादि के अनुसार विषयदोषदर्शन और आत्मज्ञान काम के नाश रूप विराग के कारण हैं, परन्तु ज्ञानजन्य विराग अति दृढ़ होता है अन्य नहीं ।।१९२,-१९७।।

तल्लक्षणं स्याज्ज्ञानस्याऽज्ञानिनो दोषदृष्टिजम्।
विरागं जायते तद्धि भवति क्षणभङ्गुरम् ।।१९८।।
साक्ष्यनाम्नी पुत्तलिका मलिनैकत्र वर्तते।
साक्षिरूपा महाशुद्धा शुभासाऽन्यत्र वर्तते ।।१९९।।
साक्ष्यं दृष्ट्वैव रागान्धो लोभं सम्प्रतिपद्यते।
विरक्ताः साक्षिणं दृष्ट्वा वाञ्छन्ति विरतिं दृढाम् ।।२००।।
इत्थं च चञ्चलं देहं ज्ञात्वाऽऽत्मत्वेन दुर्धियः।
पतन्ति दुःखकूपेऽधः स्मरन्ति न परं पदम् ।।२०१।।
ज्ञानिनस्तु स्वमात्मानं ज्ञात्वा ब्रह्माचलं ध्रुवम्।
नित्यानन्दस्वरूपे स्वे लीना गच्छन्त्यनावृतिम् ।।२०२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भागत्यागेन जीवेशस्वरूपाभिन्नतामतिः ।
जायतेऽत्र यतस्तस्माल्लक्षणा प्रविभज्यते ॥२०३॥

लक्षणा त्रिविधा प्रोक्ता तत्राद्या जहती मता ।
द्वितीयाऽजहती प्रोक्ता तृतीया भागलक्षणा ॥२०४॥

और वह सुन्दर अति दृढ़ वैराग्य ज्ञानी के ज्ञान का लक्षण रूप होता है, और अज्ञानी को विषयादि में दोष दृष्टि से वैराग्य होता है अतः वह क्षणभङ्गुर होता है, दोष दृष्टि के अभाव होने पर वह वैराग्य नष्ट हो जाता है। और एकत्र=अज्ञानी के शरीर में साक्ष्य=विषयनामक पुत्तलिका=चित्र मलिना रहती है, उसी का दर्शन कभी दोषदर्शन जन्य विराग को नष्ट करता है। और अन्यत्र=ज्ञानी के देह में साक्षिस्वरूप महाशुद्ध शुभ वह पुत्तलिका रहती है अतः साक्ष्य=साक्षिभास्य मिथ्या विषयों को देख कर के ही रागान्ध प्राणी लोभ को सम्प्राप्त होता है और विरक्त जन साक्षी को समझकर दृढ़ वैराग्य की इच्छा करते हैं। और इसी प्रकार दुर्बुद्धिवाले अज्ञ चञ्चल देह को आत्मा मान कर, दुःखरूप कूप में नीचे नरकादि में गिरते हैं, परम पद का स्मरण ध्यानादि नहीं करते है। और ज्ञानी तो अपने आत्मा को ध्रुव=अविनाशी अचल ब्रह्म समझ कर, अपने नित्य आनन्द स्वरूप में लीन होकर, पुनरावृत्ति से रहित होते हैं। और भाग त्याग लक्षणा द्वारा, यतः जीव और ईश्वर के स्वरूप की अभिन्नता की मति=बुद्धि होती है, अतः यहाँ लक्षणा प्रविभाग किया जाता है। लक्षणा तीन प्रकार की कही गई है, वहाँ पहली जहती मानी गई है। दूसरी अजहती कही गई है। तृतीया भागत्याग लक्षणा होती है ॥१९८-२०४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आद्ये द्वे न महावाक्ये सम्भाविन्यावतः सदा ।
भागत्यागेन जीवस्य ब्रह्मत्वं प्रतिबुध्यते ॥२०५॥

सामान्यज्ञानपूर्वा हि विशेषे जायते मतिः ।
अतश्च लक्षणायाः सल्लक्षणं कथ्यतां प्रभो ! ॥२०६॥

पुनस्तस्याः प्रभेदाश्च भिन्नानां लक्षणानि च ।
यतो लक्षणमानाभ्यां वस्तु सम्यग् विबुध्यते ॥२०७॥

सावधानेन मनसा लक्षणालक्षणं शृणु ।
भेदान् तस्याः प्रवक्ष्यामि तत्राप्यवहितो भव ॥२०८।

पदानां हि स्वकीयार्थैः सम्बन्धात्मा मता बुधाम् ।
वृत्तिः सा द्विविधा शास्त्रे वर्णिता बहुधाऽस्ति हि ॥२०९॥

तत्रैका शक्तिरूपा सा द्वितीया लक्षणा मता ।
ईशसंकेतरूपा सा शक्ति र्न्यायविदां मते ॥२१०॥

संयोगसमवायादिसम्बन्धे शब्दवाच्ययोः ।
मुखे दाहादिसम्प्राप्ति र्भवेदग्न्यादि शब्दतः ॥२११॥

पहली जहती अजहती दो लक्षणा महावाक्यों में सदा = कभी होने योग्य नहीं है, अतः भाग त्याग के द्वारा जीव के ब्रह्म स्वरूपत्व को समझा जाता है। शिष्य का प्रश्न है कि हे प्रभो ! सामान्य-ज्ञान पूर्वक ही विशेष पदार्थ विषयक मति होती है। अतः सामान्य लक्षणा का सत्य लक्षण प्रथम कहना चाहिये। फिर उसके प्रभेद वक्तव्य हैं। और भीन्नों के लक्षण वक्तव्य हैं, क्योंकि लक्षण और प्रमाण से वस्तु सम्यक् समझे जाते हैं। गुरुजी बोले कि सावधानं मन से लक्षणाओं के सामान्य लक्षण को सुनो और उस लक्षणा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के भेदों को भी कहूँगा, उस के श्रवण में भी सावधान होवो। पदों को अपने अर्थों के साथ सम्बन्ध स्वरूप वृत्ति विद्वानों को सम्मत है। अर्थात् पद वाचक शब्द और उसके अर्थ के सम्बम्ध को विद्वान् वृत्ति=कहते हैं सो दो प्रकार की होती है, और शास्त्र में बहुत प्रकार से वर्णित है उन दोनों में एक शक्ति रूप वृत्ति=सम्बन्ध है और दूसरी लक्षणा है। और वह पद की शक्ति ईश्वर का संकेत रूप न्याय शास्त्रज्ञों के मत में है। शब्द और उसके वाच्य अर्थ को यदि संयोगसमवायादि रूप परस्पर सम्बन्ध हो, तो अग्नि आदि शब्दों के उच्चारण से मुख में दाहादि की प्राप्ति होगी ॥२०४-२११॥

अतश्च योग्यतारूपां शक्तिं व्याकरणे जगुः ।
यथेन्द्रियाणां विषयैः शब्दानां च तथार्थतः ॥२१२॥

पदानां वाचकानां हि स्वार्थैस्तादात्म्यलक्षणम् ।
शक्तिस्वरूपं सम्बन्धं जगु र्भट्टानुयायिनः ॥२१३॥

भेदाभेदं च तं प्राहु र्भेदाद् दाहादिकं नहि ।
अभेदादग्निशब्देन वह्निरेव प्रतीयते ॥२१४॥

जातिक्रियागुणानां च भेदाभेदं वदन्ति ते ।
स्वाश्रयैः सह तद्वच्च कार्यकारणयो र्मिथः ॥२१५॥

तत्र चेश्वरसङ्केतशक्तिरीश्वरवर्तिनी ।
शब्दवृत्ते रभावेन शब्दार्थं न प्रबोधयेत् ॥२१६॥

शक्तिं विना न योग्यत्वं दृश्यते न च सम्भवि ।
तस्माद्योग्यत्वहेतुः सा शक्तिः सिद्ध्यतितन्नहि ॥२१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त हेतुओं से व्याकरण में शब्दगत अर्थ बोधन की योग्यता-रूप शक्ति का वर्णन आचार्यों ने किया है और इन्द्रियों का विषयों के साथ जैसे योग्यतारूप सम्बन्ध रहता है, वैसे ही शब्दों का अर्थों के साथ सम्बन्ध माना गया है। मिमांसक भट्टजी के अनुयायियों से वाचक पदों का अपने अर्थों के साथ तादात्म्य स्वरूप शक्तिस्वरूप सम्बन्ध का कथन किया गया है और उस तादात्म्य सम्बन्ध को भेदाभेद भी कहते हैं, तहाँ अग्नि आदि अर्थों से अग्नि आदि शब्दों का भेद है, अतः अग्नि आदि शब्द से मुख में दाहादि नहीं होते हैं और अभेद है, अतः अग्नि शब्द से अग्नि का ज्ञान होता है, अन्य का नहीं। वे लोग जाति क्रिया और गुणों के भी आश्रयों के साथ भेदाभेद सम्बन्ध कहते हैं और कार्यकारण के परस्पर भेदाभेद को कहते हैं। तहाँ न्याय मत के अनुसार ईश्वर के संकेत रूप (इच्छा विशेषरूप) शक्ति ईश्वर में रहने वाली रहती है, अतः शब्द की वृत्ति = शक्ति के अभाव होने से वह संकेत शब्द से अर्थ के बोध को नहीं सिद्ध करेगा। और व्याकरण में योग्यतारूप शक्ति मानी गई है, परन्तु सामर्थ्य रूप शक्ति के विना योग्यता नहीं देखी जाती है, न सामर्थ्य के विना योग्यता का होना सम्भव है, अतः योग्यता के हेतुरूप वह सामर्थरूप शक्ति सिद्ध होती है, योग्यतारूप शक्ति शब्द में नहीं हो सकती।।२१२-२१६।।

विरोधान्नैव भेदेन ह्यभेदः सह सम्भवेत् ।
तादात्म्यरूपताशक्तेस्तस्मान्न विद्यते क्वचित् ।।२१८।।
भेदाभेदत्वयोः सत्त्वे ह्यभेदादग्निशब्दतः ।
दाहप्राप्ति र्भवेदेव तस्मादग्नेः स्वशक्तिवत् ।।२१९।।
जलादिशक्तिवच्चैव शब्देऽपि बोधशक्तिता ।
उत्तेजकात्प्रणष्टा सा पुनः शक्तिः प्रजायते ।।२२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिबन्धकतः सा च नश्यतीत्यनुमीयते ।
जलादौ चैवमन्यत्र शक्तिः कार्येण बुध्यते ॥२२१॥
स्वाश्रयेण च सम्बन्धः शक्तेस्तादात्म्यलक्षणः ।
एवं गुणक्रियादीनामनिर्वाच्यस्वरूपवान् ॥२२२॥
प्रतिबन्धकसंसर्गादुत्तेजकसमागमात् ।
वह्निकार्यनिरोधाद्यै र्वह्नौ सा चानुमीयते ॥२२३॥
किन्त्वग्निशक्तितुल्या चेच्छब्दे शक्ति र्भवेद्ध्रुवम् ।
तदाऽग्निशक्तिवत् सैषाऽप्यज्ञाता साधयेन्मतिम् ॥२२४॥

और विरोध से भेद के साथ अभेद का होना सम्भव नहीं है, अतः शक्ति को कहीं भी भेदाभेदात्मक तादात्म्यरूपता नहीं है। और दूसरी बात यह है कि अग्नि के भेदत्व और अभेदत्व दोनों के शक्ति में रहने पर अग्नि को अग्नि शब्द के साथ अभेद के भी रहने से अग्नि शब्द से दाह की प्राप्ति अवश्य होगी। अतः अग्नि की अपनी दाहकत्व शक्ति तुल्य शब्दों में वोधकत्व शक्ति है। और जलादि की शक्ति तुल्य भी शब्द में बोधकता शक्ति है। अग्नि में प्रतिबन्धक मणि मन्त्रादि से प्रनष्ट शक्ति भी उत्तेजक सूर्यकान्तादि से फिर उत्पन्न होती है और प्रतिबन्धक से वह शक्ति नष्ट होती है, अतः दाहादि कार्य से शक्ति का अनुमान होता है। इसी प्रकार जलादि में अन्यत्र भी कार्य से कार्यानुकूल शक्ति अनुमित होती है। और अपने आश्रय के साथ शक्ति का तादात्म्य सम्बन्ध रहता है। इसी प्रकार गुण क्रिया आदि का भी आश्रय के साथ अनिर्वाच्य स्वरूप वाला तादात्म्य रहता है। प्रतिबन्धक के सम्बन्ध से अग्नि के कार्य दाहादि का निरोध होता है और उत्तेजक के समागम से फिर दाहादि अग्नि के कार्य होते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः उस अग्निकार्य के निरोधादिरूप हेतुओं से उत्पत्ति नाश वाली वह शक्ति अग्नि में अनुमित होती है, कि जिस के विना अग्नि के रहते भी दाहादि नहीं होते हैं, इत्यादि। किन्तु उस अग्नि की शक्ति तुल्य यदि शब्द में बोध जनक शक्ति ध्रुव= अवश्य हो, तो अग्नि शक्ति के समान ही यह शब्द शक्ति अज्ञात रहते भी शब्दार्थ के ज्ञान को सिद्ध कर दे, कि जिससे श्रोता को शक्ति ज्ञान की आवश्यता नहीं हो परन्तु ऐसा होता नहीं है। अतः यह शब्दगत बोधक शक्ति अग्नि आदि की शक्ति से विलक्षण प्रतीत होती है ॥२१८-२२४॥

तस्मात् संकेतरूपा सा ज्ञाता भवति बोधिका।
सा परम्परया क्वापि ज्ञायते क्वचिदन्यथा ॥२२५॥
ईश्वरस्य व्यापकत्वात् संकेतः शब्दसन्निधौ।
वर्तते विषयत्वाख्यसम्बन्धेनापि वर्तते ॥२२६॥
योग्यताख्याऽथवा शक्तिस्तादात्म्यमथवा भवेद्।
सामर्थ्यरूपा सा यद्वा शक्तिः सङ्केतमूलिका ॥२२७॥
यद्वा संकेत बलतो व्यज्यते सर्वशब्दगा।
अतश्च सर्वशब्दो हि प्रोच्यते सर्ववाचकः ॥२२८॥
सङ्केतः क्वचिदीशस्य, घु, घि, टयादावृषेस्तथा।
देवदत्तादिसंज्ञासु पितुः सङ्केतसम्भवः ॥२२९॥

उक्तरीति से अज्ञात शब्द शक्ति बोध जनक नहीं होती है, अतः वह संकेत रूप है, सो ज्ञात होकर बोध का जनक होती है। सो कहीं तो परम्परा से ज्ञात होती है, कहीं अन्यथा=साक्षात् ज्ञात होती है। और ईश्वर के व्यापक होने से ईश्वर का सङ्केत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द के समीप में रहता है, तथा विषयता नामक सम्बन्ध से भी संकेत शब्द में रहता है। अथवा योग्यता नामक शक्ति या तादात्म्यरूप शक्ति हो सकती है। यद्वा संकेत मूलक सामर्थ्यरूप वह शक्ति हो सकती है अथवा सर्वगत सर्वशक्ति संकेत के बल से अभिव्यक्त होती है, अत एव (सर्वे शब्दाः सर्वार्थवाचकाः) इत्यादि कथनों के अनुसार सब शब्द सब अर्थ के वाचक कहे जाते हैं। कहीं = सर्गकालिक अभिव्यक्ति वाले शब्दो में ईश्वर का संकेत रहता है, पाणिनीय व्याकरण के घु, घि, टी आदि पारिभाषिक शब्दों में व्याकरण कर्ता ऋषि का संकेत रहता है और देवदत्त, यज्ञदत्तादि नामों में पिता आदि कर्ता का संकेत रहता है। तहाँ (व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थाः। न्यायः द० २।२।६६।। संकेतो लक्षणा चार्थे पदवृत्तिः, वृत्त्या पदप्रतिपाद्य एव पदार्थ इत्यभिधीयते, इतिशक्तिवादे। शाब्दबोधौपयिकः सम्बन्धो वृत्तिः। इति टीकायाम्। इदं पदमिममर्थं बोधयतु, इति। अस्मात्पदादयमर्थो बोधव्यः, इति वा, इच्छा संकेतरूपा शक्तिः। तत्राधुनिकसंकेतः परिभाषा, तया चार्थबोधकं पदं पारिभाषिकम् = नदी, बृद्धि आदि पदम्, ईश्वर सङ्केतः शक्तिः। इत्यादि शक्तिवादे। कार्यस्य सूक्ष्मावस्था शक्तिः। इति सांख्ये ।।२२५--२२६।।

यस्मिन्नर्थे पदस्याऽत्र यस्य शक्तिर्हि विद्यते।
सोऽर्थस्तस्य तु शब्दस्य शक्यो वाच्योऽपि कथ्यते।।२३०।।

''मानान्तरोपरोधाच्च मुख्यार्थस्यापरिग्रहे।
मुख्यार्थस्याविनाभूते प्रवृत्ति र्लक्षणोच्यते ।।२३१।।

पदस्य चाथ मुख्यार्थे तात्पर्यानुपपत्तितः।
वक्तु र्वै लक्षणावृत्तिः स्वीकृता स्यान्मनीषिभिः।।२३२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्यस्यान्येन सम्बन्धो यः संयोगादिलक्षणः ।
लक्षणा कथ्यते तेन भातोऽर्थो लक्ष्य उच्यते ॥२३३॥

वाच्यार्थमखिलं त्यक्त्वा लक्ष्यार्थो यत्र बुध्यते ।
जहती लक्षणा तत्र कथ्यते त्यागतो बुधैः ॥२३४॥

वाच्ययुक्तस्य लक्ष्यस्य ज्ञानं यत्र तु जायते ।
लक्षणाऽजहती तत्र वाच्यार्थाऽत्यागतो मता ॥२३५॥

यहाँ जिस अर्थ में जिस पद की शक्ति रहती है, सो अर्थ उस पद का शक्य और वाच्य भी कहा जाता है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों के साथ उपरोध = विरोध से जहाँ शब्द के मुख्यार्थ = शक्यार्थ का ग्रहण नहीं हो सकता हो, तहाँ मुख्यार्थ के अविनाभूत = नियत सम्बन्धी अर्थ में शब्द की प्रवृत्ति को लक्षणा कही जाती हैं। और पद के मुख्यार्थ में वक्ता के तात्पर्य की अनुपपत्ति = असिद्धि से भी लक्षणावृत्ति विद्वानों से स्वीकृत होती है। शक्यार्थ का जो अन्यार्थ के साथ संयोगादि स्वरूप सम्बन्ध रहता है, सो लक्षणा कहा जाता है और उस सम्बन्ध से भासित अर्थ लक्ष्य कहा जाता है। और जहाँ सम्पूर्ण वाच्यार्थ को त्याग कर उससे भिन्न ही लक्ष्यार्थ समझा जाता है, तहाँ वाच्यार्थ के त्याग से विद्वान् उसको जहती लक्षणा कहते हैं (ओहाक् त्यागे) त्यागार्थक 'ओहाक्' हा धातु से जहतीशब्द सिद्ध होता है और सम्पूर्ण वाच्यार्थ सहित वाच्यार्थ से अधिक लक्ष्यार्थ का भी जहाँ ज्ञान होता है, तहाँ वाच्यार्थ के अत्याग = ग्रहण से अजहती लक्षणा मानी गई है ॥२३०-२२५॥

वाच्यार्थैकांश संत्यागात् भागत्यागेतिनामिका ।
जहत्यजहतीनाम्नी लक्षणाऽसौ निगद्यते ॥२३६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च स्वतन्त्रो विभुरीश्वरः ।
परोक्षो द्वन्द्वहीनश्च मायी तत्पदशब्दभाक् ॥२३७॥
उक्तेभ्य ईशधर्मेभ्यो धर्मा यस्य विरोधिनः ।
जीवस्त्वंपदवाच्योऽसौ चेतनो बन्धमोक्षवान् ॥२३८॥
महावाक्येषु जीवेशशब्दवाच्यार्थयो र्द्वयोः ।
एकता भासतेऽयुक्ता ततो विद्ध्यत्र लक्षणाम्॥२३९॥
न चाद्ययो र्लक्षणयो र्महावाक्येषु कुत्र चित् ।
सम्भवोऽस्तस्तु तत्रास्ति भागत्यागाख्यलक्षणा ॥२४०॥
वाच्यार्थे साक्षि बोध्यार्थः प्रविष्टो वर्तते सदा ।
वाच्यत्यागे हि तत्त्यागादन्यार्थः कल्पितो भवेत् ॥२४१॥

और वाच्यार्थ के विरोधी एक अंश के सम्यक् त्याग से भागत्याग इस नामवाली और जहती अजहती उभय मिलित नामवाली वह लक्षणा कही जाती है। और (तत्त्वमसि) इस महावाक्य में, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति वाला, स्वतन्त्र, विभु, परोक्ष, द्वन्द्व रहित, मायी, ईश्वर, तत्पद का अर्थ है, तत्पद से ईश्वर कहा जाता है (अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिँश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः । श्वेता० ४।९) इस वेद रूप शब्द से मायी ईश्वर इस जगत् को रचता है और अन्य = जीव इस जगत् में माया = अविद्या से बद्ध निरुद्ध रहता है, इत्यादि श्रुतियाँ हैं, उक्त ईश्वर के धर्मों से विरोधी अल्पज्ञता आदि धर्म जिस में रहते हैं, वह जीव है। और (तत्त्वमसि) वाक्यगत त्वं पद का वह वाच्यार्थ है और चेतन तथा बन्ध मोक्षवाला है। महावाक्यों में जीव और ईश्वर वाचक शब्दों के दोनों वाच्यार्थों की अयुक्त एकता भासती है, अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ वाचक दोनों पदों में भाग त्याग लक्षणा समझो। क्योंकि पहली दोनों लक्षणाओं का कहीं भी महावाक्यों में सम्भव नहीं है अतः वहाँ भागत्याग लक्षणा ही है। पहली लक्षणाओं के असम्भव में यह कारण है कि जीवेश्वर वाचक शब्दों के वाच्यार्थों में (सोपाधिक जीवेश्वर में) साक्षिस्वरूप वाक्य से बोध्य (बोधार्ह) आत्मा रूप शुद्ध अर्थं सदा प्रविष्ट रहता है। तहाँ जहती लक्षणा मानने पर सम्पूर्ण वाच्यार्थं के त्याग से, उस साक्षी के भी त्याग होने पर, अन्य मिथ्यार्थं कल्पित होगा। जैसे (गङ्गयां घोसः) यहाँ अन्यार्थं तीर कल्पित होता है, इत्यादि ॥२३६-२४१॥

भासते सर्ववाच्यार्थस्त्वजहल्लक्षणाश्रितौ।
वाच्यार्थौं च विरुद्धौस्तस्ततः साऽत्र न युज्यते ॥२४२॥
धर्मान् विरोधिनः सर्वांस्त्यक्त्वाऽसङ्गं हि चेतनम्।
भागलक्षणाया शुद्धं विद्धि साक्षिणमव्ययम् ॥२४३॥
महावाक्येषु चान्येषु सत्यादिषु पदेष्वपि।
लक्षणातो विशुद्धार्थबोधो भवति नान्यथा ॥२४४॥
सत्यादिसर्वशब्दा हि विशिष्टार्थस्य वाचकाः।
भवन्ति लक्षणातस्तु शुद्धार्थं बोधयन्ति ते ॥२४५॥
साधिष्ठानस्तथाऽऽभासयुक्तोऽन्तःकरणादिकः।
अविद्यासहितो व्यूहो जीवशब्देन कथ्यते ॥२४६॥
साधिष्ठानस्तथाऽऽभाससहितः सर्ववित् स्वयम्।
मायी त्वीश्वरतायुक्त ईश्वरः कथ्यते बुधैः ॥२४७॥
तच्छब्दब्रह्मशब्दाभ्यां महावाक्येष्वधीश्वरः।
प्रज्ञानंत्वमहं चात्मशब्दै जीवः प्रकथ्यते ॥२४८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अजहती लक्षणा के आश्रयण करने पर सब वाच्यार्थं और अधिक अर्थं भी भासते हैं और महावाक्यों में वाच्यार्थं परस्पर विरुद्ध हैं, अतः यहाँ वह अजहती लक्षणा युक्त नहीं हो सकती है। अतः भागत्याग लक्षणा के द्वारा, तत् त्वं पदार्थ गत सब विरोधी धर्मों को त्याग कर शुद्ध, असङ्ग, अव्यय साक्षिस्वरूप चेतन को एक समझो। महावाक्यों में और अन्य सत्य ज्ञानादि पदों में भी लक्षणा से ही विशुद्ध अर्थं का बोध होता है, अन्य प्रकार से नहीं। क्योंकि सत्य ज्ञानादि सब माया अन्तःकरण की वृत्तिविशेषादि से युक्त अर्थं के ही वाचक होते हैं। परन्तु लक्षणा से वे सब शुद्धात्मस्वरूप अर्थं के बोधक होते हैं। और अधिष्ठान चेतन सहित तथा आभास युक्त अन्तःकरण और प्राणादिवाला और अविद्या सहित जो व्यूह=समूह सो जीव शब्द से कहा जाता है। अधिष्ठान और आभास सहित मायी=माया युक्त, ईश्वरता=ऐश्वर्यं युक्त, स्वयं ईश्वर विद्वानों से कहा जाता है। प्रसिद्ध चार महावाक्यों में तत् शब्द और ब्रह्म शब्द से सर्वेश्वर कहा जाता है और प्रज्ञानं, त्वं, अहं और आत्मा शब्द से जीव कहा जाता है ।।२४२-२४८।

अविद्याऽऽभासमायादि त्यक्त्वा केवलचेतनम् ।
गृहीत्वा चैकताबोधे विरोधो न हि विद्यते ।।२४९।।
अहं ब्रह्मास्मि प्रज्ञानं ब्रह्मतत्त्वमसीति च ।
अयमात्मा ब्रह्मेत्यादि महावाक्यानि सन्ति हि ।।२५०।।
सत्यं ज्ञानमनन्तश्चेत्याद्यवान्तरसंज्ञकम् ।
भागत्यागेन सर्वत्र तत्त्वार्थः प्रतिबुध्यते ।।२५१।।
अयमात्मेति वाक्ये तु लक्ष्यार्थस्यापरोक्षता ।
अयं पदेन संप्रोक्ता साक्षिणः स्वयमस्ति सा ।।२५२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वत्रैवापरोक्षत्वं बुद्धिसाक्षिणि विद्यते ।
ब्रह्मणस्तु परोक्षत्वं तेनाऽभेदान्निवार्यते ।।२५३।।

अभेदेनैव धीसाक्षी परिच्छिन्नत्वतः स्वयम् ।
वियुज्यते न सन्देहो ब्रह्मत्वं प्रतिपद्यते ।।२५४।।

तहाँ जीव और ब्रह्म (ईश्वर) के स्वरूपगत अविद्या, चिदाभास और माया आदि को त्याग कर और केवल चेतन का ही तत्त्वमादि पदों से ग्रहण = ज्ञान करके एकता के ज्ञान में विरोध नहीं है। अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि और अयमात्मा ब्रह्म ये चार वेद के चार मुख्य महावाक्य हैं और (योऽसौ देवता सोहमस्मि) इत्यादि भी महावाक्य है, और (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) इत्यादि अवान्तर नामक वाक्य कहे जाते हैं। अर्थात् जीव ब्रह्म के अभेद के बोधक वाक्य को महावाक्य कहते हैं और जीव या ब्रह्म = ईश्वर के स्वरूप मात्र के बोधक को अवान्तर वाक्य कहते हैं। और सर्वत्र भागत्याग से तत्त्व = सत्य अर्थ समझा जाता है। और (अयमात्मा ब्रह्म) इस वाक्य में 'अयं, इस पद से लक्ष्यार्थ की अपरोक्षता = प्रत्यक्षता कही गई है, सो साक्षी को स्वयं है (साक्षी स्वयं प्रकाश रूप से अपरोक्ष है)। क्योंकि बुद्धि के साक्षीस्वरूप आत्मा में सर्वत्र अपरोक्षत्व रहता है और ब्रह्म को परोक्षत्व रहता है (ब्रह्म अपरोक्ष रूप से जीव को नहीं भासता हैं) सो परोक्षत्व उस बुद्धिसाक्षी के साथ अभेद के प्रबोधन से निवारित होता है। और ब्रह्म के साथ अभेद से ही बुद्धि साक्षी स्वयं परिच्छिन्नत्व से वियुक्त = रहित सिद्ध = ज्ञात होता है, इसमें संशय नहीं। क्योंकि वह साक्षी ब्रह्मरूपता को प्राप्त होता है। अर्थात् ज्ञानी उसको ब्रह्म विभु समझता है ।।२४९-२५४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च ।
स्वाद्वस्वादू विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥२५५॥
चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु ।
चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ॥२५६॥
परिपूर्णः परात्माऽस्मिन् देहे विद्याधिकारिणि ।
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥२५७॥
स्वतः पूर्णः परात्माऽत्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ।
अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥२५८॥
एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम् ।
सृष्टेः पुराऽधुनाऽप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते ॥२५९॥
श्रोतु र्देहेन्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वं पदेरितम् ।
एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयताम् ॥२६०॥

सो इस प्रकार समझना चाहिये कि जिस वृत्ति उपहित चेतन के द्वारा यह जीवात्मा, इस रूपादि को देखता, सुनता, सूँघता और कहता है तथा स्वादु अस्वादु को जानता है, वही वृत्तिस्थ साक्षी (प्रज्ञानं ब्रह्म) इस श्रुति में प्रज्ञान कहा गया है। और ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवों में और मनुष्य अश्व गौ आदि सब प्राणी और भूत भौतिक वस्तु में व्यापक चेतन ब्रह्म है, अतः वह मुझ में भी जो प्रज्ञान रूप चेतन है, सो ब्रह्म है। और परिपूर्ण = व्यापक परमात्मा ही इस विद्या के अधिकार युक्त देह में बुद्धि के साक्षी रूप से स्थिर होकर प्रकाशता हुआ (अहं ब्रह्मास्मि) इस वाक्य गत अहं शब्द से कहा जाता है। और स्वतः स्वभाव से परिपूर्ण परमात्मा इस वाक्य में ब्रह्म शब्द से कहा जाता है। और 'अस्मि' इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रिया पद से एकता का परामर्श = ज्ञान होता है, अतः मैं ब्रह्म हूँ। और जो अद्वैत, सत् नाम रूप रहित, एक ही ब्रह्म सृष्टि से प्रथम = पहले था, उस ब्रह्म की इस समय भी तादृक्ता = नाम रूप रहितता एकता (तत्त्वमसि) इस वाक्य में तत्पद से कहा जाता है। और इस वाक्य में त्वंपद से श्रोता के देहेन्द्रियादि से रहित लक्ष्य वस्तु कही गई है। और असि इस क्रिया पद से एकता समझाई जाती है, अतः एकता का अनुभव कर्तव्य है ॥२५५-२६०॥

"स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम् ।
अहङ्कारादिदेहान्तात् प्रत्यगात्मेति गीयते ॥२६१॥

दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ।
ब्रह्मशब्देन तद् ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम्" ॥२६२॥

गङ्गायां ग्राम इत्यादौ जहती लक्षणा मता ।
शोणो धावति चेत्यत्राऽजहती लक्षणा तथा ॥२६३॥

सोऽयमित्यादि वाक्येषु भागत्यागात्मिका हि सा ।
जहत्यजहती चैव सैव प्रोक्ता तु लक्षणा ॥२६४॥

तत्त्वमस्यादि वाक्येषु तस्या एवास्ति सम्भवः ।
जहत्या अजहत्याश्च नैव तेष्वस्ति कल्पना ॥२६५॥

ब्रह्म वाच्यं न कस्यापि पदस्यापि हि विद्यते ।
इत्थं वदन्ति वेदास्तु तस्मात् सर्वत्र लक्षणा ॥२६६॥

और (अयमात्मा ब्रह्म) इस वाक्य में 'अयम् इस पद से स्वयं प्रकाशता युक्त अपरोक्षता आत्मा में मानी गई है। और आत्मा इस शब्द से अहंकारादि देह पर्यन्त से प्रत्यग् अन्तरंग साक्षी कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है और (अयमात्मा ब्रह्म) इस वाक्य में ही ब्रह्म शब्द से दृश्यमान् मिथ्या सब जगत् का तत्त्व = अधिष्ठान कहा जाता है और वह ब्रह्म स्वयं प्रकाश सर्वात्मा स्वरूप वाला है। और गंगा में ग्राम है, इत्यादि लौकिक वाक्यों में जहती लक्षणा मानी जाती है, क्योंकि शक्यार्थ प्रवाह को त्याग कर गङ्गातीर का बोध होता है और शोण = लालरंग दौड़ता है, यहाँ लाल रंग युक्त में अजहती लक्षणा होती है, लाल रंग युक्त अश्वादि का लक्षणा से ज्ञान होता है। सोऽयम्, इत्यादि वाक्यों में देश कालादि के त्याग से व्यक्ति मात्र का भागत्याग लक्षणा से बोध होता है। अतः वहाँ वह लक्षणा भागत्यागात्मक होती है। और वही कुछ अंश में जहती कुछ वाच्यांश में अजहती उभय स्वरूप भी कही गई है। (तत्त्वमसि) इत्यादि वैदिक वाक्यों में उस भागत्याग लक्षणा का ही सम्भव है। केवल जहती और अजहती की कल्पना उन महावाक्यों में नहीं होती है। और ब्रह्म किसी भी पद का वाच्य नहीं है, इस प्रकार वेद कहते हैं, अतः ब्रह्म बोधक सब शब्दों में लक्षणा वृत्ति रहती है (न तत्र चक्षु र्गच्छति न वाग् गच्छति। केन० १।३॥ नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा। कठ०।२।६।१२॥ यतो वाचो निवर्तन्ते। तैत्तिरीय० २।४) इत्यादि वेद वचन हैं ॥२६१–२६६॥

मायायामन्यथा सत्ता ब्रह्मणः पारमार्थिकी।
द्वयं सम्मिलार्थस्तु सत्यशब्देन कथ्यते ॥२६७॥
धीवृत्तिः सम्विदा युक्ता ज्ञानशब्देन वर्ण्यते।
धीवृतिसुखसंयुक्त आत्मैवानन्दशब्दभाक् ॥२६८॥
सम्विदात्मपरं शुद्धं लक्ष्यं ज्ञात्वा त्यजान्यकम्।
लक्ष्ययोरेकतां ज्ञात्वा भेदभ्रममपाकुरु ॥२६९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावाक्येषु चैकैकपदानां लक्षणाकृतौ ।
विरोधो विद्यते नैवं वदन्त्येके तु पण्डिताः ॥२७०॥

अतः पदद्वये साऽत्र लक्षणा निष्फला सदा ।
तन्न युक्तं यतस्तत्र प्रथमे वा द्वितीयके ॥२७१॥

लक्षणा नियमो नैवं कर्तुं शक्यः पदे सदा ।
त्रिषु वाक्येषु विद्यन्ते पूर्वं जीवस्य वाचकाः ॥२७२॥

माया, मायिक वस्तु में ब्रह्मात्मा से अन्य प्रकार की सत्ता रहती है और ब्रह्म की पारमार्थिकी = सच्ची सत्ता रहति है। तहाँ दोनों सम्मिलित अर्थरूप होकर सत्य शब्द से कहा जाता है। सम्विद् = ज्ञानस्वरूप से युक्त बुद्धि की वृत्ति ज्ञान शब्द से कही जाती है। तथा बुद्धिवृत्तिरूप सुख से संयुक्त आत्मा ही आनन्द शब्द का भागी = वाच्यार्थ होता है। शुद्ध सम्वित्स्वरूप परब्रह्मरूप लक्ष्य को जान कर, अन्य को त्यागो और वाक्यगत दोनों पदों के दोनों लक्ष्यों की एकता को जान कर, भेद भ्रम का अपाकरण = नाश करो। और कोई पण्डित कहते हैं कि महा-वाक्यों में जीव वा ईश्वर वाचक एक एक पद की ही लक्षणा वृत्ति के स्वीकार करने से विरोध नहीं रहता है। अतः इन महावाक्यों के पद द्वय में वह भागत्याग लक्षणा सदा निष्फल हैं। परन्तु वह पण्डितों का कथन युक्त नहीं है क्योंकि एक पद में लक्षणा मानने पर, विचारना होगा कि वाक्य गत प्रथम या द्वितीय पद में लक्षणा होनी चाहिये। और विचारने पर भी प्रथम या द्वितीयपद में सदा लक्षणा का नियम नहीं किया जा सकता है। क्योंकि (अयं आत्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म) इन तीन वाक्यों में प्रथम जीव के वाचक शब्द हैं और एक महावाक्य में नहीं ॥२६७-२७२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वमसीति वाक्ये तु पूर्वमीश्वरवाचकः ।
अतः पूर्वपदत्वादौ नियमो नैव सम्भवेत् ।।२७३।।
ईशवाचकशब्देषु लक्षणा क्रियते यदि ।
सर्वानर्थाश्रयः स स्याज्ज्ञेयोऽर्थो मुख्यवाक्ष्वपि।।२७४।
जीववाचिपदेष्वेव लक्षणा क्रियते यदि ।
तदा जीवप्रविष्टोऽर्थः साक्षी लक्ष्यत्वमाप्नुयात् ।।२७५।।
तस्यापि हि परोक्षत्वमीशत्वं च विरुध्यते ।
तस्माद् वाक्येपु सर्वेषु पदयुग्मेऽपि लक्षणा ।।२७६।।
कर्तव्याऽस्ति यतः सर्वो विरुद्धांशो निवर्तते ।
अनायासेन चैकत्वं बुद्ध्यते परजीवयोः ।।२७७।।
लक्षणां पदयोः कृत्वा परस्परमथैकताम् ।
विजानीयात् परोक्षत्वपरिच्छिन्नत्वनुत्तये ।।२७८।।
अहं ब्रह्मैव ब्रह्माहमित्येवं चिन्तितं सदा ।
वाक्यं सर्वं परिच्छिन्नपरोक्षत्वं निहन्ति हि ।।२७९।।

क्योंकि 'तत्त्वमसि' इस वाक्य में प्रथम ईश्वर वाचक शब्द है, अतः पूर्णपदत्वादि विषयक नियम नहीं हो सकता है। यदि पूर्व या उत्तर पद विषयक नियम नहीं करके सब वाक्यगत ईश्वर वाचक पदों में ही लक्षणा की जाय (मानी जाय) तो सब अनर्थों का आश्रय वह संसारी जीवरूप ज्ञेय अर्थ मुख्य महावाक्यों में भी होगा। यदि सर्वत्र जीव वाचक पदों में ही लक्षणा की जाय तो जीव स्वरूप में प्रविष्ट साक्षी लक्ष्य होगा (लक्ष्यता को प्राप्त होगा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो साक्षी सर्वथा प्रत्यक्ष है और ईश्वरता रहित है। उसको भी महावाक्यों से उभय पद में लक्षणा के विना परोक्षता और ईश्वरता विरुद्ध ही प्राप्त होगी, अतः अभेद ज्ञान के लिये सब वाक्यों के दोनों पदों में लक्षणा कर्तव्य है, कि जिस से सब विरुद्धांश निवृत्त हो जाता है। और जीव ब्रह्म की एकता अनायास से समझी जाती है। और सर्वत्र दोनों पदों में लक्षणा करके, फिर ईशगत परोक्षत्व और जीवगत परिच्छिन्नत्व की आत्मा में निवृत्ति के लिये परस्पर की ऐकता को समझना चाहिये कि मैं ब्रह्म हूँ ब्रह्म ही मैं हूँ। अर्थात् जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म जीवस्वरूप है। इस प्रकार से सदा चिन्तित = विचारित महावाक्य सब परिच्छिन्नता और परोक्षता को नष्ट करता है वाक्यों द्वारा उक्त-चिन्ता = विचार से शुद्ध पूर्ण जीवेश भेद रहित एक आत्मा का ज्ञान होता है ॥२७३-२७९॥

"यत् परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं स त्वमेव त्वमेव तत् ॥२८०॥"
वेद सुस्मृतिवाक्यानि यत्र जीवेशयोः खलु ।
वदन्ति चैकतां शिष्य ! तत्रैषा लक्षणा मता । २८१॥

श्रुत्वेत्थं गुरुसद्वाक्यमुपदेशं सनातनम् ।
शिष्यो मुक्तोऽभवच्छीघ्रं विचार्येदमतस्तरेत् ॥२८२॥
देवभाषात्मवाक्यै र्यं मिथ्यागुरुरुपादिशत् ।
ग्रन्थः सोऽयं श्रुतो हार्दतमोहानिकरः शुभः ॥२८३॥
शिष्यस्यागृधदेवस्य मुक्त्यर्थमुपदिष्टवान् ।
गुरुः स्वप्ने तथाप्यस्य नानश्यद् दुःखदं वनम् ॥२८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यागुरोरधीत्यापि ग्रन्थं तं सुरवाङ्मयम् ।
दुःखमूलं वनं पश्यन्नुवाच स गुरुं प्रति ॥२८५॥
भगवन् त्वमिमं ग्रन्थं मामध्यापितवानसि ।
दुःखमूलं तथापीदं भासते मे वनं प्रभो ! ॥२८६॥

क्योंकि श्रुति कहती है कि जो सर्वात्मा विश्व = सब संसार का आश्रय है, सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म नित्य महान् परब्रह्म है, सो तुम ही हो, तुम ही ब्रह्म हो । हे शिष्य ! वेद और सुन्दर स्मृति वाक्यों में जहाँ जीवेश्वर की एकता को ऋषि महर्षि कहते हैं, तहाँ यह भागत्याग लक्षणा सम्मत है। इस उक्त रीति से गुरु के सत्य वाक्य रूप सनातन उपदेश को सुन कर, तर्कदृष्टि नाम वाला तीसरा शिष्य ज्ञान पाकर शीघ्र मुक्त हुआ, अतः इस उपदेश को विचार कर अन्य को भी तरना चाहिये और तरे। और देव-भाषात्मक वाक्यों द्वारा मिथ्या गुरु ने जिस ग्रन्थ का उपदेश अगृधदेव को दिया, सुना गया सो यह ग्रन्थ, हृदयगत तम को नष्ट करता है, अतः शुभ है। और अगृधदेव रूप शिष्य की मुक्ति के लिये गुरु ने स्वप्न में उपदेश दिया, तथापि इस अगृधदेव का दुःखद वन नष्ट नहीं हुआ। अतः मिथ्या गुरु से देववाणीमय उस ग्रन्थ को पढ़कर भी दुःखों के कारणरूप वन को देखता हुआ वह अगृध देव गुरु के प्रति बोला, (गुरु से कहा) कि हे भगवन् ! मुझे आप ने यह ग्रन्थ पढ़ाया, तो भी हे प्रभो ! दुःखों का मूल-कारण यह वन मुझे भासता है ॥२८०-२८६॥

भगवन् तमुपायं मे कथयस्वाऽधुनाऽमलम् ।
यो वनं नाशयत्येतद् दुःखमूलं सनातनम् ॥२८७॥
श्रुत्वा शिष्यवचः सत्यमुक्तवान् सद्गुरुश्च तम् ।
ईदृशो नास्त्युपायोऽन्य उक्तवानस्मि यं त्वहम् ॥२८८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभ्यस्तस्त्वयमेवं ते नाशयिष्यति सर्वथा ।
दुःखमूलं ततोऽभ्यासं कुरु नित्यमतन्द्रितः ॥२८६॥
महावाक्यार्थतत्त्वं च विचारय निरन्तरम् ।
तदेवागृधदेवोऽहं न संसारी न दुःखभाक् ॥२६०॥
इत्येवं ब्रूहि चोच्चैस्त्वं दुःखमूलं विनङ्क्ष्यति ।
श्रुत्वेत्थं स गुरो र्वाक्यं विचारं कृतवान् स्वयम् ॥२६१॥
अहमगृधदेवोऽस्मि स चेत्थं प्रोक्तवानपि ।
मोहनिद्रा गता तेन सुदृष्टिश्च प्रकाशिता ॥२६२॥
वनं गुरुस्तथा ग्रन्थस्तदैव व्यनशन् समे ।
अभवत् स सुखी तत्र वनदुःखं च विस्मृतम ॥२६३॥

हे भगवन् ! अब वह अमल=विमल उपाय=साधन मुझे कहो कि जो उपाय, दुःखों का मूल रूप अनादि इस वन को नष्ट करे । शिष्य के सत्य वचन को सुन कर सद्गुरु ने उस शिष्य को कहा कि ऐसा अन्य उपाय नहीं है, कि जो उपाय मैं तुम से कह चुका हूँ । इस उक्त रीति से अभ्यस्त होने पर यही उपाय तेरे समूल दुःख को सर्वथा नष्ट करेगा, अतः तन्द्रा=आलस्य रहित होकर ज्ञानाभ्यास सदा करो और महावाक्यार्थरूपतत्त्व वस्तु का निरन्तर विचार करो कि मैं अगृधदेव उस सत्य ब्रह्मस्वरूप ही हूँ, संसारी और दुःख भागी नहीं हूँ । इस प्रकार तुम ऊँचे स्वर से कहो, तो दुःख का मूल नष्ट होगा, इस प्रकार के गुरु के वाक्यों को सुन कर, उस अगृध देव ने स्वयं विचार किया और मैं अगृध देव हूँ, इस प्रकार उच्च स्वर से बोला भी, उस से मोह रूप निद्रा चली गई=नष्ट हो गई और सुदृष्टि प्रकाशित हुईं। फिर वन गुरु और ग्रन्थ ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब उसी समय नष्ट हो गये और वह अगृधदेव सुखी हो गया और वहाँ वन के दुःख को भूल गया। अर्थात् ज्ञानाभ्यास से सब भेद से रहित आत्मा को निश्चय करके आत्मनिष्ठ हो गया ॥२८६-२९३

प्रापच्च स्वात्मरूपत्वमगृधोऽसौ स्वयत्नतः ।
अभ्यासस्य फलं हीदृक् सर्वत्र परिदृश्यते ॥२९४॥
ज्ञानाभ्यासवशात् पुंसां बुद्धि र्भवति निर्मला ।
तस्मात्सदाऽभ्यसेज्ज्ञानं तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥२९५॥
निद्रयाऽगृधदेवेऽभूद् यथा कुवनदुःखिता ।
आत्मन्यपि तथाऽज्ञानाज्जगद्दुःखं प्रतीयते ॥२९६॥
मिथ्यागुरो र्यथा ग्रन्थान्मिथ्या वनमनश्यत ।
तथा मिथ्यागुरो र्वेदान् मिथ्या नश्यति संसृतिः ॥२९७॥
वाक्यलक्ष्यार्थमालोच्य जिज्ञासु र्मुच्यते भवात् ।
निरावरणलक्ष्यार्थो दयालुः सद्गुरुः सदा ॥२९८॥
स्वसिद्धं स्वशुभस्थानं श्रीविश्वम्भरमव्ययम् ।
सर्वेषां हितमात्मानमात्मदं श्रीगुरुं भजेत् ॥२९९॥

इति हनुमदीयतत्त्वार्थमणिमञ्जूषायां षष्ठः खण्डः ॥६॥

और वह अगृधदेव अपने अभ्यास रूप यत्न से स्वात्मरूपता को पाया (आत्मानुभव किया) क्योंकि अभ्यास का ऐसा फल सदा सर्वत्र देखा जाता है। ज्ञानाभ्यास के बल से पुरुषों की बुद्धि निर्मल होती है, अतः ज्ञान में निष्ठा स्थिति= प्रीति वाला तथा ज्ञान परायण=ज्ञानाश्रित, पत्पर होकर सदा ज्ञानाभ्यास करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिये। निद्रा से अगृघदेव में जैसे कुवन निमित्तक दुःखिता (पीड़ा) हुई। तैसे ही आत्मा में भी अज्ञान से जगत् और दुःख प्रतीत होता है और जैसे मिथ्या गुरु और ग्रन्थ से मिथ्या वन नष्ट हुआ, इसी प्रकार मिथ्या गुरु और वेद से मिथ्या संसार विनष्ट होता है। क्योंकि महावाक्य के लक्ष्यार्थ को जान कर जिज्ञासु संसार से मुक्त होता है। और दयालु सद्गुरु सदा निरावरण लक्ष्यार्थरूप विमुक्त ही रहते हैं, मिथ्या नहीं, सो शिष्य को निज स्वरूप कर लेते हैं, अतः स्वयं सिद्ध अपने शुभ का स्थान, ज्ञानादिरूप श्री द्वारा संसार का पोषक, अविनाशी = निर्विकार, सब का हित आत्मस्वरूप और अत्मोपदेशक श्री सद्गुरु को सदा भजना चाहिये ॥२९९-२९९॥

स्वप्न तुल्य लखि जगत को, सत निज तत्त्व अखण्ड।
भेदभरम सब मोह तजि, होवत विज्ञ अदण्ड ॥१॥

भेद महा दुःख रूप है, राग द्वेष तहँ रोग।
सुनि गुरु वचन सुयोग से, मेटिय कठिन कुभोग ॥२॥

द्वन्द्व रहित सम शान्ति युत, सद्गुरु सन्त सुजान।
निरावरण परकाश हरि, ताहि नमत हनुमान ॥३॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषायाः सप्तमः खण्डः ॥७॥

भक्ताभयं भीतिकरं खलानामात्मानमेकं कलनाविमुक्तम् ।
सर्वं स्वभासा किल भासयन्तं हेतुत्वमुक्तं हरिमानतोऽस्मि॥१॥
विश्वोद्भवे विश्वलये स्थितौ वा सदाऽसहायोऽपि करोति सर्वम् ।
यो विश्वनाथोऽखिलशक्तियुक्तस्तं सादरं जन्महरं नमामि ॥२॥
माया यदीयाऽखिलकार्यशक्ता स्वयं सदा साक्षितया विरक्तः ।
सक्तो न च क्वापि न वा विरक्तस्तं सादरं जन्महरं नमामि ॥३॥
यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं यस्य वै जगत् ।
येन यस्मै च सर्वं स्यात् तं देवं सर्वगं भजे ॥४॥

जो हरि, ईश्वर गुरु के भक्तों के लिये, अभयप्रद, अभय स्वरूप =ईश्वर गुरु स्वरूप है और खलों को यमादि रूप से भयकारक है, सो कलना=गिनती से रहित, माया द्वारा असंख्य स्वरूप है और वस्तुतः एक सर्वात्मस्वरूप है और अपने प्रकाश से सब को प्रकाशते हुए भी हेतुत्व=कारणता से मुक्त=रहित है। अर्थात् भक्त और खल अपने अपने कर्मादि के फलों को हरि=ईश्वर द्वारा पाते हैं। हरि वस्तुतः भयादि का कारण नहीं है, उस हरि के प्रति मैं नत मस्तक हूँ ॥१॥

जो विश्वनाथ=ईश्वर सदा सहायक रहित होता हुआ भी सर्व-शक्ति से युक्त होने के कारण विश्व की उत्पत्ति स्थिति और लय में सहाय के विना सब कार्य करता है, उस जन्मनाशक (स्वविषयक ज्ञान मात्र से मुक्तिप्रद) विश्वनाथ को सादर नमस्कार करता हूँ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि अन्य कार्यों के समान जन्म का निवारण भी गुरु ज्ञानादि रूप से वही कर सकता है और वस्तुतः जिसकी शक्तिरूप माया चिदाभास युक्त होकर सब कार्य की शक्ति वाली है और स्वयं साक्षिस्वरूप से विरक्त = असङ्ग = उदासीन रहता है। अतः वह न कहीं सक्त (आसक्ति = रागवाला) है, न कहीं विरक्त = द्वेषादि वाला है। उस जन्म हर्ता = ज्ञानमात्र से मोक्षप्रद को सादर प्रणाम करता हूँ ॥२-३॥

विभुता सर्वाधारता से जिसमें सब जगत है और (यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते) इत्यादि श्रुति के अनुसार जिस से सब जगत् उत्पन्न होता है और (सर्वं खल्विदं ब्रह्म। आत्मैव देवताः सर्वाः) इत्यादि श्रुति स्मृति के अनुसार जो सब जगत् स्वरूप है और जिसके कार्य विभूति क्रीड़ा रूप जगत् है। अत एव जिसके हिरण्यगर्भादि स्वरूप द्वारा जिसकी क्रीड़ा लीला आदि के लिये जगत् होता है, उस सर्वगत = विभु सर्वात्मा देव को नमस्कार करता हूँ ॥४॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषाखण्डः सप्तम उच्यते ।
जीवन्मुक्ति विदेहाख्या मुक्तिश्चात्र निरूप्यते ॥५॥

उत्तमो मध्यमश्चैव कनिष्ठश्च त्रयोऽपिहि ।
शुश्रुवुश्चोपदेशं ते गुरुवाक्यात्समं खलु ॥६॥

उत्तमो दृष्टवाँस्तत्र ब्रह्मात्मानमसंशयम् ।
जीवन्मुक्तोऽभवत्सर्वद्वन्द्वमोहविवर्जितः ॥७॥

शुष्कपिप्पलपत्रेण समः सोऽत्र भ्रमन् भुवि ।
शेषप्रारब्धतश्चार्थक्रियां कुर्वन्न दृश्यत ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"निर्वासनो निरालम्बः स्वच्छन्दो मुक्तबन्धनः।
क्षिप्तः संस्कारवातेन चेष्टते शुष्कपर्णवत्" ॥९॥
कर्हिचिद् गजमारूढो रथारूढोऽश्वमाश्रितः।
पश्यन्नुपवनोद्याने नग्नपादेकलः क्वचित् ॥१०॥
उत्तमं भोजनं भोगं भुञ्जानो बहुवेषवान्।
शय्यायां शयने स्थित्वा शयानश्चाप्यदृश्यत ॥११॥

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा का सप्तम खण्ड अब कहा जाता है और इस में जीवन्मुक्ति तथा विदेह मुक्ति का निरूपण=विचार किया जाता है। यद्यपि उत्तम मध्यम और कनिष्ठ तीनों ने ही गुरुवाक्य से तुल्य ही उपदेश सुना, तथापि उनमें उत्तम ने तो ब्रह्म स्वरूप आत्मा को संशय रहित समझा, अतः जीवन्मुक्त, सब द्वन्द्व मोह से रहित हो गया और सूखे हुए पीपर के पत्ते के समान (रस) रागादि रहित, वह यहाँ भूमि में भ्रमण करता हुआ भी शेष= बाकी प्रारब्ध के बल से अर्थ=फल सम्बन्धी क्रिया करता हुआ देखा गया। अष्टावक्रगीता में कहा गया है कि वासना रहित निरालम्ब= अनासक्त, स्वतन्त्र, निर्मुक्त ज्ञानी भी संस्कार=प्रारब्धरूप वायु से क्षिप्त=प्रेरित होकर शुष्कपर्ण तुल्य चेष्टा करता है। कभी कहीं गज=हाथी पर, कभी रथ पर आरूढ होकर=चढ़ कर कभी अश्वाश्रित=अश्वारूढ़ होकर, उपवन और उद्यानों बगीचों को देखता हुआ देखा गया और कभी कहीं नग्नपाद अकेला देखा गया। और कभी उत्तम भोजन रूप भोग का भोजन करता हुआ देखा गया तथा बहुत वेष वाला और शयन पर स्थिर होकर, उसी शय्या पर सोया हुआ भी देखा गया ॥५—११॥

कदाचिच्चोपवासेन युक्तो गिरिगुहाश्रयः।
रात्रौ शिलाप्रसुप्तोऽयमदृश्यत जनैः खलु ॥१२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृत्वैव प्रणतिं क्वापि पूजयन्ति सहस्रशः ।
जनाः परेश्वरं मत्वा श्रद्दधाना गुरौ यथा ॥१३॥
लोकद्वयात्परिभ्रष्टं ज्ञात्वा कर्मिजनाः खलु ।
धिक् कुर्वन्ति विनिन्दन्ति सज्जनास्तं स्तुवन्ति च ॥१४॥
पूजां कुर्वन्ति ये तस्य पुण्यं गृह्णन्ति तस्य ते ।
निन्दन्ति दोषदृष्ट्या ये पापं गृह्णन्ति ते तथा ॥१५॥
निन्दया न विकारं च स्तुत्या हर्षं न याति सः ।
बालवद् वर्तते विज्ञो हर्षशोकविवर्जितः ॥१६॥
इत्थं तस्य विदेहस्य देहस्य नियमं विना ।
व्यवहारोऽमलो लोके जायते दोषनाशतः ॥१७॥
भ्रमो न जायते तस्य सन्देहो वा कथञ्चन ।
यतस्तत्त्वं सुनिर्धार्यं निजरूपमवाप्तवान् ॥१८॥

और कभी उपवास से युक्त तथा पर्वत की गुफा रूप आश्रय वाला रात्रि में केवल पत्थर पर सोया हुआ यह मनुष्यों से देखा गया और कहीं हज़ारो मनुष्य जैसे गुरु में श्रद्धा वाले हो तैसे श्रद्धायुक्त होकर प्रणाम करके, उस को परमात्मा मान कर उसकी पूजा करते हैं। और कर्मी जन उसको लोक परलोक से पतित जान कर धिक्कार करते हैं और निन्दा करते हैं, परन्तु विवेकी सज्जन तो उस की स्तुति ही करते हैं। जो उस की पूजा करते हैं, सो तो उसके ज्ञानभृष्ट पुण्य का ग्रहण = प्राप्ति करते हैं और दोष दृष्टि से उसकी निन्दा करते हैं, सो भृष्ट पाप को ग्रहण करते हैं। वह जीवन्मुक्त ज्ञानी निन्दा से क्रोधादि विकार को या स्तुति से हर्ष को नहीं प्राप्त होता है, अतः हर्ष शोक से रहित और बालक के समान कामादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकारों से रहित रहता है। इस प्रकार विदेह (देहाभिमान रहित) उस ज्ञानी के देह का व्यवहार (केवल शारीर कर्म) नियमों के विना होता है, सो दोषों के नाश से सदा लोक में निर्मल व्यवहार होता है। और जिससे तत्त्व = सत्य का सुन्दर निर्धारण = विवेकादि करके ज्ञानी ने अपने स्वरूप को प्राप्त किया है, अतः उस को भ्रम या संशय किसी प्रकार नहीं होता है॥१२–१८

कर्तव्यं विद्यते नास्य किञ्चिद् भ्रमविनाशतः।
वेदप्रमाणतो ज्ञातं यतो ब्रह्माऽहमद्वयम् ॥१६॥
ज्ञायते तेन कार्येषु करणादिषु तुच्छता।
सिद्ध्यति स्वयमेवात्र नातः कर्म प्रयोजनम् ॥२०॥
ज्ञानिनां व्यवहारेऽपि मन्यन्ते नियमं बुधाः।
केऽप्यतस्त्रिपुटीं हित्वा दुःखबुद्ध्या समभ्यसेत् ॥२१॥
समाधिं श्रद्धया प्रेमसम्यगादरपूर्वकम्।
त्यजेदन्यक्रियां सर्वां समाधेः प्रातिबन्धिकाम् ॥२२॥
यं कञ्चिद् व्यवहारं च शिक्षाभोजनमाचरेत्।
विस्मरेन्नैव तत्रापि समाधिसुखमव्ययम् ॥२३॥
दोषदृष्ट्या च भोगेषु मिथ्यात्वादिसुबुद्धितः।
रागद्वेषाद्यभावेन प्रवृत्तिरधिका न हि ॥२४॥

और यतः वेद रूप परम प्रमाण से समझा है कि मैं द्वैत रहित ब्रह्म स्वरूप हूँ। अतःभ्रम के विनाश से उस ज्ञानी को कुछ भी कर्तव्य नहीं रहता है। और उस ज्ञानी से शरीरादिरूप कार्यों और करणादि में तुच्छता समझी जाती है, अतः इस ज्ञानी में स्वयं ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म का प्रयोजन = फल नहीं सिद्ध होता है, अर्थात् कर्मफल निवारण के लिये कोई कर्तव्य नहीं रहता है। कोई विद्वान् ज्ञानी के व्यवहार में भी नियम मानते हैं, अतः उनके मत के अनुसार त्रिपुटी को दुःख रूप समझ कर, ज्ञानी त्रिपुटी को त्यागे और त्रिपुटी को त्याग कर प्रेम तथा सम्यक् आदर पूर्वक श्रद्धा से समाधि का सम्यक् अभ्यास करे और समाधि के प्रतिबन्धक अन्य सब क्रियाओं को त्याग दे। और भिक्षा भोजन रूप जो कुछ व्यवहार करे उस व्यवहार काल में भी अव्यय = अविनाशी स्वरूप समाधि सम्बन्धी सुख को नहीं भूले = समाधि से जन्य = व्यक्त होने वाले नित्य सुख के लिये सदा ध्यानादि को स्थिर रखे। और भोगों में अनित्यता मलिनता तुच्छता आदिरूप दोष दृष्टि से, तथा मिथ्यात्वादि की सुबुद्धि = अनुभूति से और राग द्वेषादि के अभाव से ज्ञानी की अधिक प्रवृत्ति स्वभावतः नहीं होनी चाहिये, न होती है ॥१९–२४॥

प्रारब्धमात्रभोगार्था देहधारणकारणम् ।
प्रवृत्ति र्जायते ज्ञस्य नेतरा दुःखलक्षणा ॥२५॥
ज्ञानात्सञ्चितनाशेऽपि भाविनोऽसङ्गमेऽपि च ।
प्रारब्धकर्मनाशो हि भोगाज्ज्ञानवतामपि ॥२६॥
उत्क्रामन्ति न वै तस्य प्राणा इति श्रुतत्वतः ।
अन्ते जन्मनि बोधोऽस्य जायते न तु मध्यतः ॥२७॥
मनसश्चञ्चलत्वाच्च प्रवृत्तावुन्मुखे सति ।
तत्र दुःखं समालोक्य समाधिं सततं चरेत् ॥२८॥
समाधिजं सुखं हित्वा ये भ्रमन्ति कुबुद्धयः ।
ते नराः खरतुल्याश्च प्रेतादिसमदृष्टयः ॥२९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गौडपादमुनिस्तस्मात्समाधे भेंदमुक्तवान् ।
तं विदित्वाऽथविक्षेपं हित्वैव लभते सुखम् ॥३०॥

किन्तु प्रारब्ध मात्र के भोग के लिये देह के धारण के कारण रूप प्रवृत्ति ज्ञानी की होती है। दुःख स्वरूप ग्रन्य वासनादि मूलक प्रवृत्ति नहीं होती है। क्योंकि ज्ञान से सञ्चित कर्मों का नाश और आगामी कर्मों का असम्बन्ध होते भी ज्ञानी के भी प्रारब्ध कर्म का नाश भोग से ही होता है, अतः प्रारब्ध भोगार्थक ज्ञानी की प्रवृत्ति अवश्य होती है। और उस ज्ञानी के प्राण शरीर के अन्तकाल में लोकान्तरादि में गमन के लिये शरीर से उत्क्रमण नहीं करते हैं। इस प्रकार श्रुति में श्रुत (ज्ञात) होने से, जिसके अनेक जन्म के हेतु प्रारब्ध कर्म रहते हैं और उसको यदि ज्ञान होता है, तो अन्तिम जन्म में ही ज्ञान होता है, प्रथम या मध्य में नहीं। और ज्ञान होने पर भी यदि मन की चञ्चलता के कारण, मन प्रवृत्ति में उन्मुख हो (प्रवृत्ति विषयक मन में इच्छा आदि हो) तो प्रवृत्ति में दुःख को समझ कर ज्ञानी सदा समाधि का अनुष्ठान करे। जो कुबुद्धि वाले मनुष्य समाधिजन्य सुख को त्याग कर बाहर भ्रमते हैं, सो खर तुल्य या प्रेतादि के समान दृष्टि वाले हैं। अर्थात् ऐसे वाह्य प्रवृत्तिवाले, यथार्थ ज्ञान रहित ज्ञानाभिमानी मात्र हैं। इसी से गौडपाद मुनि ने ज्ञानी के लिये भी समाधि के भेदों का वर्णन किया है कि जिससे समाधि के भेदों को जान कर और समाधि द्वारा विक्षेप को त्याग कर के ही ज्ञानी मनुष्य सुख का लाभ करता है ॥२५-३०॥

अष्टाङ्गैश्च विना नैव समाधिं लभते जनः ।
सुखमूलसमाधेः स श्रूयतामङ्ग ! निर्णयः ॥३१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ।
यमाः पञ्च बुधैः प्रोक्ता निवृत्तिफलकाः समे ॥३२॥

नियमाः शौचसन्तोषतपःस्वाध्याय संज्ञकाः ।
ईश्वरप्रणिधानेन सहिताः पञ्चसम्मताः ॥३३॥

सुखस्थैर्यकरं यत्तदासनं योगसाधनम् ।
सिद्धपद्मासने तद्वत् सिंहभद्रासनादिकम् ॥३४॥

अन्यद् रोगादिनाशार्थं बहुधा कथ्यते बुधैः ।
वीरकूर्ममयूरादि प्रसिद्धं सर्वयोगिषु ॥३५॥

आसनस्य च संस्थैर्ये श्वासप्रश्वासयो र्गतेः ।
स्वाभाविक्याः सुविच्छेदः प्राणायामस्त्वनेकधाः ॥३६॥

"प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्याऽऽयामो निरोधनम् ।
रेचकं पूरकश्चैव कुम्भकश्च त्रिधोच्यते ॥३७॥

परन्तु आठ समाधि के अङ्गों के विना मनुष्य समाधि नहीं पाता है, अतः सुख के मूल रूप समाधि के अङ्गो का वह निर्णय सुना जाय। तहाँ अहिंसा, सत्य. अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह = असंग्रह ये पाँच यम सब निवृत्ति रूप फल और स्वरूप वाले विद्वानों से कहे गये हैं। ईश्वरप्राणिधान = भक्तिध्यान सहित, शौच, शन्तोष, तप और स्वाध्याय = जप, अध्ययन नाम वाले पांच नियम सम्मत = स्वीकृत मान्य हैं। सुख और स्थिरता का हेतु = सुख से स्थिरता का कारण जो आसन हैं सो योग का साधन हैं। सो सिद्धासन, पद्मासन और सिंहासन, भद्रासनादिक वर्णित हैं और रोगादि के नाश के लिये अन्य बहुत प्रकार के आसन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वानों से कहे जाते हैं, सो वीर, कूर्म, मयूरादि नामक आसन सब योगियों में प्रसिद्ध है। और आसन के सम्यक् स्थिर होने पर श्वास प्रश्वास की स्वाभाविक गति का सुविच्छेद रूप प्रणायाम होता है, सो अनेक प्रकार का होता है, शिव पुराण में कहा गया है कि स्वदेह जन्य वायु प्राण है, उस का निरोध आयाम कहा जाता है। इस प्रकार वह प्राणायाम रेचकपूरक और कुम्भक भेद से तीन प्रकार का कहा जाता है ॥३१-३७॥

अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः।
जपध्याने विनाऽगर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ॥३८॥

अगर्भाद् गर्भसंयुक्तः प्राणयामः शताधिकः।
तस्मात्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राणसंयमम्'' ॥३९॥

''बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत्।
धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत् ।४०॥

प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः।
विधिवत् कुम्भकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥४१॥

येन त्यजेत्तेन पीत्वा धारयेदतिरोधतः।
रेचयेच्च ततोऽन्येन शनैरेव न वेगतः'' ॥४२॥

स्वार्थेन सह चित्तस्य संप्रयोगो यदा न हि।
प्रत्याहारस्तदातद्वदिन्द्रियाणां प्रवर्तनम् ॥४३॥

''इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।
बलादाहरणां तेषां प्रत्याहारः स उच्यते'' ॥४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो तीनो प्रकार का प्राणायाम अगर्भ और सगर्भ भेद से दो दो प्रकार का कहा गया है। तहाँ मानस जप और ध्यान के विना अगर्भ होता है। और मानस जप तथा ध्यान के सम्बन्ध से वह सगर्भ होता है। और अगर्भ की अपेक्षा सौगुणा अधिक = श्रेष्ठ सगर्भ प्राणायाम होता है। अतः योगी जन सगर्भ प्राणायाम करते हैं। हठयोगप्रदीपिका का कथन है कि—पद्मासन बाँध = लगा कर बैठा हुआ योगी प्रथम चद्रनाड़ी से प्राण को उदर में पूरण करे, फिर यथाशक्ति धारण = कुम्भक करके सूर्यनाड़ी द्वारा रेचन = धीरे धीरे त्याग करे। फिर सूर्य नाड़ी द्वारा प्राण को अन्दर में खींच कर उदर को धीरे धीरे पूर्ण करे और यथा शक्ति विधियुक्त कुम्भक कर के चन्द्र नाड़ी से रेचन करे। जिस नाड़ी से प्राण को त्यागे = रेचन करे, उसी से प्राण को फिर पीकर = पूरक करके, अति निरोध से यथाशक्ति धारण करे, फिर उसकी अपेक्षा अन्य नाड़ी से धीरे धीरे रेंचन, करे, वेग से नहीं और जिस समय चित्त को अपने अर्थ = विषय के साथ सम्बन्ध नहीं हो; उस समय इन्द्रियों की भी वैसी ही प्रवृत्ति होनी अर्थात् चित्त के समान विषय सम्बन्ध से रहित इन्द्रियों को होना ही प्रत्याहार होता है। क्योंकि स्वभाव से विषयों में विचरने वाले इन्द्रियों का विचारादि रूप बल से जो आहरण = निरोध = निवारण, वही उन का प्रत्याहार कहा जाता है ॥३८-४४॥

चित्तस्य देशबन्धो हि धारणा प्रथमा स्मृता ।
अन्या ब्रह्मणि शुद्धे सा धारणा तूत्तमा सदा ॥४५॥
"नाभ्यां च हृदये चैव कण्ठे चोरसि चानने ।
नासाग्रे तु तथा नेत्रे भ्रुवो र्मध्येऽथ मूर्धनि" ॥
किञ्चिदूर्ध्वं परस्मिँश्च धारणा परमा स्मृता ॥४६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ।
मनसो धारणं चैव धारणा परमा मता ॥४७॥
सान्तराया स्थितिः सा चेद् धारणा कथ्यते तदा ।
निरन्तरा स्थिति र्जाता ध्यानशब्देन कथ्यते ॥४८॥
अथवा धारणादेशे विषये ज्ञानसन्ततिः ।
एकाकारा भवेद् या तद् ध्यानमित्यभिधीयते ॥४९॥

वक्ष्यमाण = आगे वर्णित नाभि आदि देशों में जो चित्त का बन्ध = बन्धन = निरन्तर स्थापन सो पहली धारणा कही गई है। और शुद्ध ब्रह्म में जो सदा चित्त का वन्धन होता है, सो उस से उत्तम अन्य धारणा होती है। नाभि, हृदय, कण्ठ, उर = बुद्धि, मुख, = जिह्वाग्रादि, नासिकाग्र, नेत्र, भ्रूमध्य = त्रिकुटी, मूर्धा = शिर और शिर से कुछ ऊपर में धारणा कही गई है। और परात्म वस्तु में उत्ताम धारणा कही गई हैं। क्योंकि स्वभाव से जहाँ-जहाँ मन जाता हो, तहाँ तहाँ ब्रह्म के दर्शन से = सत्ता स्फूर्ति आदि की अनुभूति से उस ब्रह्म में ही मन के धारण को ही परम = उत्ताम धारणा मानी गई हैं। और सान्तराय = कभी कभी वृत्त्यन्तर से अन्तराय = व्यवधान सहित वह देशादि में चित्त की स्थिति यदि होती है, तब तो वह स्थिति धारणा कही जातो है। और अन्तराय रहित निरन्तर स्थिति होने पर वह धारणा ही ध्यान शब्द से कही जाती है। अथवा नाभि आदि रूप धारणा के देश में, अन्य ध्येय वस्तु विषयक जो एक आकार वाली ज्ञान की सन्तति (प्रवाह = धारा) होती है, सो ध्यान इस शब्द से कहा जाता है ॥४५-४९

"ध्यानमात्मस्वरूपस्य वेदनं मनसः खलु ।
एकं ज्योतिर्मयं शुद्धं सर्वगं व्योमगं दृढम् ॥५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनन्तमचलं नित्यमादिमध्यान्तवर्जितम् ।
ब्रह्म ब्रह्ममयोऽहं स्यामिति यद्वेदनं भवेत् ॥५१॥
तदेतन्निर्गुणं ध्यानं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ।
अहमेव परं ब्रह्म परमात्माऽहमव्ययम् ॥५२॥
एवं यद्वेदनं तच्च सगुणं ध्यानमुच्यते ।
एवं ध्यानामृतं कुर्वन् षण्मासान्मृत्युजिद् भवेत् ॥५३॥
वत्सरान्मुक्त एव स्याज्जीवन्नेव न संशयः'' ।
व्युत्थानजान् हि संस्काराँस्तिरस्कृत्य निरोधजान् ॥५४॥
संस्कारान् प्रकटीकृत्य स्थितौ सत्यां प्रजायते ।
एकाग्रा मनसो वृत्तिः सा समाधिरिति स्थितिः ॥५५॥
सविकल्पो निर्विकल्प इति द्वेधा निगद्यते ।
त्रिपुटी भानसंयुक्तः समाधिः सविकल्पकः ॥५६॥

निश्चयात्मक मन का परिणाम रूप जो आत्मस्वरूप का सम्वेदन = सम्यक् ज्ञान सोई ध्यान कहा जाता है, सो संवदेन ऐसा होता है कि एक ज्योतिर्मय, शुद्ध, सर्वगत, हृदयाकाशगत, अत एव दृढ़ = निश्चित, अनन्त, अचल, नित्य, आदि अन्त मध्य रहित ब्रह्म है, मैं उस ब्रह्ममय ज्ञान से होऊँगा, ऐसा जो ज्ञान होता है, सो यह निर्गुण ध्यान होता है, उस ध्यान को ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही जानते हैं और मैं ही अव्यय = अविनाशी पर ब्रह्म = ईश्वर हूँ, ऐसा जो ज्ञान होता है, सो सगुन ध्यान कहा जाता है और इस प्रकार के ध्यान रूप अमृत को करने वाला छः मास में मृत्यु को जीतने वाला होता है। एक वर्ष तक ध्यान के करने से जीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल में ही मुक्त होता है, इस में संशय नहीं है। और व्युत्थान = व्यवहार कालिक व्यवहार जन्य संस्कारों का तिरस्कार = नाश = अभिभव करके और चित्त के निरोध जनित संस्कारों को प्रकट करके स्थिति को पाने पर जो मन की एकाग्र = सदा एकाकार निश्चल वृत्ति होती है, सो समाधि कही जाती है, यह स्थिति = व्यवस्था है। वह समाधि सविकल्प नाम वाली और निर्विकल्प नाम वाली, ये दो प्रकार की कही जाती है। तहाँ त्रिपुटी = ध्याता ध्यान, ध्येय का समूह के ज्ञान से संयुक्त समाधि सविकल्प कही जाती है ।५०-५६।

सन्मात्रवस्तुभानेऽपि त्रिपुटी भाति तन्मयी ।
समाधिरत एवाऽयं सविकल्प इतीर्यते ॥५७॥

दृश्यशब्दानुविद्धः स तद्भिन्नश्च द्विधा मतः ।
कामाद्याश्चित्तगा दृश्यास्तत्साक्षित्वेन चेतनम् ।
ध्यायेद् दृश्यानुबिद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ॥५८॥

असङ्गः सच्चिदानन्दः स्वप्रभो द्वैतवर्जितः ।
अस्मीति शब्दविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ॥५९॥

मृदो यथैव भानेऽपि मृन्मयं वस्तु भासते ।
तथा सद्वस्तु भानेऽपि त्रिपुटी भासते मृषा ॥६०॥

ब्रह्मानन्दरसावेशादेकीभूय तदात्मना ।
बुद्धे र्या निश्चलावस्था स समाधिरकल्पकः ॥६१॥

स्वानुभूतिरसावेशाद् दृश्यशब्दावुपेक्षितुः ।
निर्विकल्पः समाधिः स्यान्निवातस्थितदीपवत् ॥६२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधि से सत्य मात्र वस्तु के भान होने पर भी जब तक सत्य वस्तुमयी = सत्य वस्तु के कार्यादि रूप त्रिपुटी भासती रहती है, तब तक इस कारण से ही यह समाधि सविकल्प इस शब्द से कही जाती है। वह सविकल्प समाधि दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध दो प्रकार की पूर्व वर्णित से भिन्न मानी गई है। तहाँ कामादि जो चित्तगत दृश्य = चिदात्मा के विषय होते हैं उनके साक्षिस्वरूप से चेतन का ध्यान किया जाता है, उस ध्यान की परिपाकावस्थारूप यह समाधि दृश्यानुविद्ध होती है, सो सविकल्प होती है। और मैं असङ्ग, सच्चिदानन्द, स्वयंप्रकाश, अद्वैत हूँ, इत्यादि शब्दों के चिन्तन युक्त समाधि शब्दानुविद्ध होती है, सविकल्पक होती है और जैसे घटादि में मृतिका के ही सत रूप से भान होने पर भी मृन्मय मिथ्या घटादि भासते हैं, तैसे ही बाह्य त्रिपुटी युक्त समाधि में सत्यात्म वस्तु के भान होने पर भी मिथ्या त्रिपुटी भासती है। ब्रह्मानन्द विषयक रस = प्रेम के आवेश से उस के साथ एक ही ब्रह्मानन्द स्वरूप से ही जो बुद्धि की निश्चलावस्था होती है, सो अकल्पक = निर्विकल्पक समाधि होती है। और अपनी अनुभूति विषयक प्रेम के आवेश से दृश्य और शब्द दोनों की उपेक्षा = त्याग करने वाले को निवात स्थित दीप के समान निर्विकल्प समाधि होती है ।।५७-६२।।

सविकल्पसमाधौ हि द्वैतं संभासतेऽनृतम् ।
विद्यमानमपि द्वैतं निर्विकल्पे न भासते ।।६३।।

समाधौ विद्यते ज्ञानं सुप्तौ तन्न हि विद्यते ।
इतीममनयो र्भेदं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।६४।।

अद्वैतभावनारूपाऽद्वैतावस्थानरूपतः ।
निर्विकल्पस्य भेदोऽयं जायतेऽभ्यासभेदतः ।।६५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृत्तेः सत्त्वे भवेदाद्यो वृत्तिनाशे द्वितीयकः ।
सविकल्पसमाधेस्तु फलभूताविमौ स्मृतौ ॥६६॥

सुप्तौ वृत्तिलयोऽज्ञाने समाधौ शुद्धसत्त्वके ।
ब्रह्मण्येव चिदानन्दे भेदोऽयमनयोर्मतः ॥६७॥

अज्ञानावृत्त आनन्दः सुप्तौ स्पष्टं न भासते ।
समाधौ भासते सैव निरावरणरूपतः ॥६८॥

समाधौ तत्र विघ्नाश्च लयविक्षेपनामकौ ।
रसाऽऽस्वादकषायाख्यौ भवन्त्येते चतुर्विधाः ॥६९॥

सविकल्प समाधि में मिथ्या द्वैत भासता है और निर्विकल्प समाधि में वर्तमान भी द्वैत नहीं भासता है। और समाधि काल में ब्रह्मात्मविषयक ज्ञान रहता है, सुषुप्ति में किसी वस्तु का ज्ञान नहीं रहता है, इन दोनों के इस भेद को विद्वान् कहते हैं। और अद्वैत की भावना रूप तथा अद्वैत स्वरूप से अवस्थान = स्थिति रूप से निर्विकल्प समाधि का यह भेद अभ्यास के भेद से होता है। तहाँ वृत्ति की सत्ता रहते तो अद्वैत भावना रूप पहली समाधि होती है। और वृत्ति के नाश होने पर दूसरी = अद्वैतावस्थान रूप समाधि होती है, सो दोनों यह निर्विकल्प समाधि सविकल्प समाधि का फल स्वरूप कही गई है। और सुषुप्ति काल में वृत्ति का विलय अज्ञान में होता है और समाधि काल में शुद्ध सत्त्व-गुण में तथा चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म में ही वृत्ति का विलय होता है। यह भेद सुषुप्ति और अद्वैतावस्थानरूप समाधि में माना गया है। और सुषुप्ति में अज्ञान से आवृत्त आनन्द स्पष्ट नहीं भासता है और समाधि में वही आनन्द निरावरणरूप से भासता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। उस समाधि में लय, विक्षेप 'रसाऽऽस्वाद और कषाय नाम वाले ये चार प्रकार के विघ्न होते हैं ॥६३-६६॥

योगिभि र्वारणीयाश्च वर्ण्यन्ते ते सदा बुधैः ।
निद्रयाऽऽलस्यतो वाऽपि वृत्त्यभावो लयः स्मृतः ॥७०॥
तं निरुध्य प्रयत्नेन वृत्तेः संस्थापनं हि यत् ।
चित्तसम्बोधनाख्यं तत् कर्तव्यं समुदाहृतम् ॥७१॥
ज्ञेयस्य ब्रह्मणः सौक्ष्म्यात्तत्र चित्तानवस्थितिः ।
विक्षेपः कथ्यते विघ्नः स्वानन्दप्रतिरोधकः ॥७२॥
बाह्ये दोषावलोकेन चित्तस्य स्थापनं हृदि ।
ब्रह्मण्येव शमः प्रोक्तः साधनं योगवित्तमैः ॥७३॥
सविकल्पसमाधौ य आनन्द उपलभ्यते ।
तत्रालमिति या बुद्धिः सा रसाऽऽस्वाद उच्यते ॥७४॥
भारवाही यथा भारनिवृत्त्या मन्यते सुखम् ।
विक्षेपस्य निवृत्त्यैवं योगी यन्मन्यते सुखम् ॥७५॥
रसाऽऽस्वादो भवेत् सोऽपि विघ्न एव समाधिषु ।
तं निरुध्य प्रयत्नेन समाधिमभ्यसेन्मुनिः ॥७६॥

उक्त चारो विघ्न योगियों से सदा वारण = त्याग योग्य विद्वानों से वर्णन किये जाते हैं। तहाँ निद्रा या आलस्य से ध्येयाकार वृत्ति का अभाव लय कहा गया है। उस लय का निरोध करके वृत्ति का जो स्थापन किया जाता है। वही चित्त का सम्बोधन नामक योगी का कर्तव्य कार्य कहा गया है। ज्ञेय ब्रह्म की सूक्ष्मता से उस में चित्त की अनवस्थिति = स्थिरता का अभाव ही आत्मानन्द का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिरोधक (आनन्द भान का विरोधी) विक्षेप रूप विघ्न कहा जाता है। विक्षेप के हेतु बाह्य विषयादि में दोष के दर्शन=ज्ञान से चित्त को हृदय में और ब्रह्म में ही स्थापन रूप शम नामक योग का साधन श्रेष्ठ योगज्ञों से कहा गया है और सविकल्प समाधि में जो आनन्द उपलब्ध (प्राप्त=अनुभूत) होता है, उसी में जो अलं=पूर्ण बुद्धि होती है, सो रसास्वाद कहा जाता है। जैसे भार ढोने वाला भार तज्जन्य दुःख की निवृत्ति से सुख मानता है, इसी प्रकार विक्षेप तज्जन्य दुःख की निवृत्ति मात्र से जो योगी सुख मानता है, वह मानना भी रसास्वाद ही होता है। और वह भी समाधियों में विघ्न रूप ही होता है। अतः प्रयत्न से उसका निरोध करके मुनि (मननशील योगी) समाधि का ही अभ्यास करे ॥७०-७६॥

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं मग्नं संसारवारिधौ ।
योगारूढत्वमासाद्य सम्यग् दर्शननिष्ठया ॥७७॥
उपायेन निगृह्णीयाद् विक्षिप्तं कामभोगयोः ।
सुप्रसन्नं लये चैव यथा कामो लयस्तथा ॥७८॥
दुःखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवारयेत् ।
अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति ॥७९॥
लये सम्बोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत् पुनः ।
सकषायं विजानीयात्समप्राप्तं न चालयेत् ॥८०॥
नाऽऽस्वादयेत्सुखं तत्र निःसङ्गः प्रज्ञया भवेत् ।
निश्चलं निश्चरच्चित्तमेकी कुर्यात् प्रयत्नतः ॥८१॥
यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ।
अनिङ्गनमनाभासं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥८२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि गौडपादाचार्य का उपदेश है कि संसार समुद्र में मग्न आत्मा को योगारूढत्व को प्राप्त करके सम्यग् दर्शन में निष्ठा = प्रीति = स्थिति द्वारा अपने आप उद्धार = मुक्त करे। काम और भोग में विक्षिप्त चञ्चल चित्त को यौगिक उपायों से ग्रहण करे और लय = सुषुप्ति में सुप्रसन्न चित्त को भी उपाय से ग्रहण करे, क्योंकि जैसे काम योग का विघ्नरूप है, तैसे लय भी विघ्नरूप ही है। और सब संसार को दुःख रूप समझकर कामयुक्त भोग से चित्त का निवारण करे और सब को अज आत्म स्वरूप ही समझ कर, जात = उत्पन्न वस्तु को विवेकी सत्य नहीं देखता है, माया मात्र जानता है। लय काल से चित्त को संबोधित करे = सावधान करे = जगावे, विक्षिप्त को फिर शान्त करे, कषाय युक्त को समझे और कषाय का वारण करे फिर समता को प्राप्त शान्त चित्त को चञ्चल नहीं करे। और उस समता अवस्था में सुख में राग नहीं करे, विवेक रूप प्रज्ञा से असङ्ग होकर रहे और निश्चल होकर भी चित्त बाहर निश्चरण = गमन करना चाहे, तो प्रयत्न से एक आत्माकार चित्त को करे। इन उपायों से जब चित्त लीन नहीं होता है, न फिर विषयों में चञ्चल होता है, तब अनिङ्गन = अचल और अनाभास = विषयाकार नहीं भासने वाला चित्त उस समय ब्रह्म रूपता को प्राप्त होता है ॥७७–८२॥

विषयासक्तिरागाद्या मनोराज्यादिकास्तथा ।
वाह्याश्चाभ्यन्तरा दोषाः कषायाः परिकीर्तिताः ॥८३॥
योगनिष्ठेषु तेषां हि नास्ति यद्यपि सम्भवः ।
यत्र एकाग्रचित्तो वा निरुद्धे तत्र योगिता ॥८४॥
जायते नैव सा क्षिप्ते मूढे विक्षिप्त एव वा ।
रागादिदोषयुक्तं हि चित्तं क्षिप्तमिति स्मृतम् ॥८५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निद्रालस्यादियुक्तं च मूढमित्यभिधीयते ।
विक्षिप्तं चञ्चलं चित्तं तत्रापि नहि योगिता ॥८६॥

ततः कथं भवेद्दोषः कषायो योगकारिषु ।
एकाग्रेऽथ निरुद्धे ते कषायाः सम्भवन्ति न ॥८७॥

तथापि चित्तसत्त्वं तु वर्तते यावदेव तत् ।
तावत् काषायसंस्कारा वर्तन्तेऽव्यक्तरूपतः ॥८८॥

यहाँ शंका होती है कि विषयों में आसक्ति, रागादि तथा मनोराज्यादि ये ही सब बाहर और भीतर के कषाय और दोष कहे गये हैं। उन दोषों का योगनिष्ठ पुरुषों में सम्भव नहीं है, क्योंकि चित्त के एकाग्र या निरुद्ध होने पर उन योगियों में योगीपन होती है, सो योगीपन क्षिप्त, मूढ या विक्षिप्त चित्त के रहते नहीं होती है, क्योंकि रागादि दोष युक्त चित्त क्षिप्त कहा जाता है निद्रा और आलस्यादि से युक्त चित्त मूढ कहा जाता है, चञ्चल चित्त विक्षिप्त कहा जाता है, तिस विक्षिप्त चित्त के रहते भी योगिता नहीं होती है तो योग करने वालों में कषाय दोष कैसे हो सकता है। क्योंकि एकाग्र और निरुद्ध चित्त में वे कषाय हो नहीं सकते हैं। इस शंका का उत्तर है कि, तो भी चित्त रूप वह सत्त्व (वस्तु) जब तक रहता है, तब तक कषायों के संस्कार अव्यक्तरूप से रहते हैं ॥८३--८८॥

उद्‌बुद्धास्ते च संस्काराः कषायाः सम्भवन्ति हि ।
विघ्नरूपास्ततस्तान् हि वारयेद् दोषदृष्टितः ॥८९॥

इत्थं तांश्चतुरो विघ्नान् समाधौ विनिरुध्य सः ।
समाधौ परमानन्दं विद्वान् वेत्ति निरन्तरम् ॥९०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्युत्थानेऽपिसमाधेश्च परानन्दं स्मरत्यसौ ।
तस्मान्न विदुषां चित्तं निरालम्बं भवेत् क्वचित् ॥९१॥

प्रारब्धबलतो ज्ञानी भोजनादौ प्रवर्तते ।
दुःखबुद्ध्यैव तस्यान्या प्रवृत्तिस्तु कथं भवेत् ॥९२॥
जीवन्मुक्तेः सदानन्दः प्रवृत्तौ नोपलभ्यते ।
तस्मादपि नहि ज्ञानी बहिः क्वापि प्रवर्तते ॥९३॥

अविद्या विलयादेव ज्ञानकाष्ठा समाप्यते ।
सिद्धयो युक्तिसाध्या यास्ता भवन्त्वथवा नहि ॥९४॥
प्रशान्तवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददीपकम् ।
असम्प्रज्ञातनामाऽसौ समाधि र्ज्ञानिनां प्रियः ॥९५॥

सो संस्कार भी उद्बुद्ध = व्यक्त होने पर, कषाय विघ्नरूप हो जाते हैं, अतः उन व्यक्त संस्कारों को दोष दृष्टि से योगी निवारण करे। इस प्रकार वह विद्वान् योगी समाधि के चारो विघ्नों का निरोध करके समाधि में परमानन्द का अनुभव निरन्तर करता है। समाधि से व्युत्थान = उपरत होने पर भी वह विद्वान् = ज्ञानी योगी परमानन्द का स्मरण करता है, समाधिकालिक सुख को भूलता नहीं है। अतः विद्वानों का चित्त निरालम्ब = आनन्दानुभव रहित कहीं नहीं होता है, आनन्द शून्य चित्त नहीं रहता है। और प्रारब्ध के बल से भोजनादि आवश्यक व्यवहार में भी जो ज्ञानी दुःख बुद्धि से ही प्रवृत्त होता है, उसकी अन्य अनर्थ रूप प्रवृत्ति तो कैसे हो, सकती है किसी प्रकार भी नहीं हो सकती है। और जीवन्मुक्ति का तो सत्यानन्द का अनुभव रूप फल होता है। सो आनन्द प्रवृत्ति में उपलब्ध = अनुभूत नहीं होता है। इस कारण से भी ज्ञानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाहर कहीं प्रवृत्त नहीं होता है। इस प्रकार ज्ञान की प्राप्ति से ज्ञान द्वारा अविद्या के विलय से ही ज्ञान की काष्ठा = सीमा पूर्णता सम्यक् प्राप्त हो जाती है। अविद्या की निवृत्ति से ज्ञान का फल पूर्ण हो जाता है। युक्तियों से साध्य जो सिद्धियाँ होती हैं, सो हों या नहीं, उन के विना ज्ञान के फल में न्यूनता नहीं रहती है। प्रशान्त वृत्ति वाला और परमानन्द का प्रकाशक जो चित्त होता है, सोई असम्प्रज्ञात नाम वाला समाधि ज्ञानियों का प्रिय होता है, सिद्धि आदि नहीं ॥८९–९५॥

आत्मवानिह सर्वस्मादतीतो विगतैषणः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टो न करोति न चेहते ॥९६॥

इत्थं वदन्ति यं केचित्समाधे र्नियमं बुधाः।
स नैव युज्यते नित्यं विचारादि परे जने ॥९७॥

ज्ञाने विधेरभावेऽपि श्रवणे वर्तते विधिः।
नियमः परिसंख्या वा सोऽपूर्वोऽस्त्वत्र नाग्रहः ॥९८॥

श्रोतव्यश्रुतिमूला हि सद्विचारस्य बुध्यते।
कर्तव्यता सुबोधार्था ब्रह्म सूत्रेण सर्वथा ॥९९॥

विनाप्यतः समाधिं हि विचारे तत्परस्य च।
विवेकादिमतो ज्ञानं जायते नात्र संशयः ॥१००॥

विचारे तत्पराः केचित् समाधौ तत्पराः परे।
शिक्षादि व्यवहारेषु तत्पराः केऽपि साधवः ॥१०१॥

विदुषां व्यवहारो हि परस्यानन्दकारकः।
विविधो दृश्यते चैवं श्रूयते पावनः परम् ॥१०२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मवान् ज्ञानी इस संसार में सब से अतीत = विमुक्त इच्छा रहित, आत्मा ही में सन्तुष्ट रहते हैं, अतः न कुछ करते हैं, न चाहते हैं। इस प्रकार ज्ञानी के समाधि के जिस नियम को कोई विद्वान कहते हैं, सो नियम नित्य विचारादि परायण जन = ज्ञानी में युक्त नहीं हो सकता है। और प्रमाणादि से स्वयं होने वाले ज्ञान की विधि = विधान के अभाव होते भी विचारादि रूप श्रवण विषयक विधि शास्त्र में वर्तमान है, सो नियम विधि या परिसंख्या विधि अथवा अपूर्व विधि है, इस विशेष विषयक आग्रह नहीं है, चाहे नियमादि में से जो हो, परन्तु (आत्मा श्रोतव्यः) इत्यादि श्रुति से श्रवणादि का विधान किया गया है। क्योंकि (आत्मा श्रोतव्यः) इस श्रुति मूलक सुवोधार्थक सद्विचार की कर्तव्यता ब्रह्मसूत्र से सर्वथा समझा जाता है कि विवेकादि के सम्पादन के बाद ब्रह्म विचार कर्तव्य है। अतः विचार में तत्पर विवेकादि युक्त जिज्ञासु को समाधि के विना भी ज्ञान होता है, इसमें संशय नहीं है। और ज्ञान होने पर ज्ञान की दृढ़ता आदि के लिये कोई ज्ञानी विचार में तत्पर रहते हैं, कोई अन्य ज्ञानी समाधि में तत्पर रहते हैं, कोई अधिकारी आचार्यादि परोपकारी ज्ञानी शिक्षादिरूप व्यवहार में तत्पर रहते हैं, क्योंकि ज्ञानियों का व्यवहार ही वस्तुतः अन्य के आनन्द का हेतु होता है, सो उत्तम पावन अनेक प्रकार के ज्ञानी का व्यवहार देखा और एवं सुना जाता है ॥९६--१०२॥

प्रारब्धानुसारेण प्रवृत्तिस्त्वन्यथाऽन्यथा ।
जायते वा निवृत्ति र्वा ज्ञानं मुक्ति र्न भिद्यते ॥१०३॥

"स्वस्वकर्मानुसारेण वर्तन्तां ते यथा तथा ।
अविशिष्टः सर्वबोधः समा मुक्तिरिति स्थितिः" ॥१०४॥

शुकस्याऽऽसीद्यथा ज्ञानं जनकस्य तथैव तत् ।
वामदेववसिष्ठादे र्ज्ञाने मुक्तौ न भिन्नता ॥१०५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवृत्तावपि बुद्धानां निवृत्ति र्वर्तते सदा ।
आसक्त्यादेरभावेन परवैराग्यसम्भवात् ॥१०६॥

"निवृत्तिरपि मूढस्य प्रवृत्तिरुपजायते ।
प्रवृत्तिरपि धीरस्य निवृत्तिफलभागिनी "॥१०७॥

उत्कटा रागमोहाद्या द्वेषाद्याश्च कुबुद्धयः ।
ज्ञानस्योत्पत्तिकाले ते क्षणान्नश्यन्ति मूलतः ॥१०८॥

दृढ़ज्ञानवतां ज्ञानं कदापि न हि नश्यति ।
ततश्च गतमज्ञानं नागच्छति कदाचन ॥१०९॥

प्रारब्ध के अनुसार ज्ञानी की प्रवृत्ति अन्य अन्य प्रकार की होती है या निवृत्ति होती है, परन्तु वस्तुमूलक ज्ञान और मुक्ति तुल्य होते हैं, भिन्न नहीं। अतः ज्ञानी अपने प्रारब्ध कर्म के अनुसार जैसे तैसे वर्ते, परन्तु सबका ज्ञान तुल्य रहता है। और मुक्ति तुल्य होती है, ऐसी स्थिति = मर्यादा है। शुकदेव मुनि का जैसा ज्ञान हुआ, वैसा ही राजा जनक का हुआ और वामदेव वसिष्ठादि महा मुनियों के ज्ञान और मुक्ति में भिन्नता नहीं हुई। अभिमान उत्कट राग द्वेषादि के अभाव से ज्ञानी की प्रवृत्ति में भी सदा निवृत्ति वर्तमान रहती है तथा आसक्ति आदि के अभाव से और विवेक मूलक परवैराग्य के सम्भव से ज्ञानी की प्रवृत्ति, निवृत्ति रूप होती है। अभिमानादि मूलक अज्ञ की निवृत्ति भी प्रवृत्ति रूप सिद्ध होती है और निरभिमान ज्ञानी की प्रवृत्ति निवृत्ति के फल वाली होती है। उत्कट = तीव्र राग, मोहादि, द्वेषादि और कुबुद्धियां = भ्रम संशयादि ये सब ज्ञान की उत्पत्ति काल में ही क्षण मात्र में मूल सहित नष्ट हो जाते हैं। और दृढ़ ज्ञानी के ज्ञान का विदेह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्ति पर्यन्त कभी नाश नहीं होता है। अतः निवृत्त हुआ अज्ञान फिर कभी नहीं आता है॥१०३-१०९॥

जीवन्मुक्तौ प्रवृत्त्याऽपि बाधा नैवेह जायते ।
किन्तु नित्यसुखाऽऽस्वादे बाधिका सा प्रगीयते ॥११०॥

ज्ञानादज्ञाननाशे ज्ञः परलोकं न वाञ्छति ।
प्रारब्धबलतश्चात्र भोगं त्वधिकमिच्छति ।१११।

प्रारब्धस्य फले ह्येते भोगो ज्ञानं च कर्मणः ।
अविरोधस्तयो र्युक्तो वैधर्म्यमितरस्य तु ॥११२॥

"प्रवृत्तौ जायते रागो निवृत्तौ द्वेष एव च ।
रागद्वेषविमुक्तो ज्ञो यथाऽऽरब्धं प्रवर्तते" ॥११३॥

प्रारब्धान्ते तु बुद्ध्यादे ब्रंह्मणि प्रलयेऽद्वये ।
विदेहमोक्षमाप्नोति सतां नास्त्यत्र संशयः ॥११४॥

मन्दप्रारब्धवशतः प्रवृत्तिरुपजायते ।
निवृत्तिरुत्तमादेवं निश्चित्य ज्ञो निवर्तते ॥११५॥

इस शास्त्र सिद्ध जीवन्मुक्ति में ज्ञानी की प्रवृत्ति से बाधा= हानी नहीं होती है, किन्तु वह प्रवृत्ति नित्यसुख के निरन्तर अनुभव में बाधिका होती है। और ज्ञान से अज्ञान के नष्ट होने पर ज्ञानी पुरुष मिथ्यारूप से ज्ञात परलोकादि की इच्छा नहीं करता है, किन्तु प्रारब्ध के बल से यहाँ मिथ्या ज्ञात अधिक भोग की इच्छा करता है। क्योंकि प्रारब्ध कर्म के ही फल रूप भोग और ज्ञान दोनों होते हैं अतः उन दोनों में अविरोध होना=साथ रहना युक्त है। परन्तु इतर उन दोनों से अन्य परलोक के कामादि में इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से वैधर्म्य = विरोधिता है, परलोक कामादि प्रारब्ध के फलरूप नहीं होते हैं, किन्तु अज्ञानादि से होते हैं, अतः ज्ञानी में अज्ञानादि के अभाव से परलोक के कामादि नहीं होते हैं। और वस्तुतः अज्ञ को प्रवृत्ति में राग होता है, निवृत्ति में द्वेष हेतु होता है, अतः राग द्वेष से रहित ज्ञानी प्रारब्ध के अनुसार ही प्रवृत्त होता है। और प्रारब्ध के अन्त में बुद्धि आदि का अद्वैत ब्रह्म में लय होने पर, ज्ञानी विदेह मोक्ष को प्राप्त करता है, इस निर्णीतार्थ में सतपुरुषों को संशय नहीं है। परन्तु मन्द = हीन प्रारब्ध से प्रवृत्ति अधिक होती है और उत्तम प्रारब्ध से निवृत्ति होती है, इस प्रकार निश्चय करके उत्तम प्रारब्ध वाले ज्ञानी निवृत्त होते हैं ॥११०-११५॥

मन्दज्ञानवतां क्वापि कुसङ्गादौ प्रवृत्तितः ।
नश्यति ज्ञानमेवात्र संशयो न हि विद्यते ॥११६॥

मन्दज्ञानस्य साहाय्यं निवृत्तिः कुरुते सदा ।
दत्ते चोत्तमसौख्यं सा तस्या उत्तमता ततः ॥११७॥

ज्ञानाऽऽभासवतां रागो जायते ज्ञानिनां नहि ।
अविद्यामूलनाशे हि कुतो रागादिसम्भवः ॥११८॥

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीतिपूरुषः ।
कमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्" ॥११९॥

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं,
केषाञ्चिदेतन्मदमानकारणम् ।
स्थानं विमुक्तं यमिनां विमुक्तये,
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥१२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और मन्द ज्ञान वालों का कहीं कुसङ्गादि में प्रवृत्ति से ज्ञान ही नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। और मन्द ज्ञान की सहायता = उपकार, निवृत्ति सदा करती है तथा मन्द ज्ञानवान् को भी वह निवृत्ति उत्तम सुख देती है। अतः उसकी उत्तमता सिद्ध है। और ज्ञानाभास = मिथ्या ज्ञान वालों को राग होता है, ज्ञानियों को नहीं। क्योंकि ज्ञान से राग के मूल रूप अविद्या के नष्ट होने पर, ज्ञानी में रागादि का सम्भव = जन्म किससे हो सकता है। इसीसे श्रुति कहती है कि यदि यह पुरुष जीवात्मा अपने आत्मा = पारमार्थिक स्वरूप को अपरोक्ष जान जाय कि (अयमहमस्मि) यह सच्चिदानन्द सर्वाच्छादकविभुस्वरूप मैं हूँ, देहादि नहीं हूँ, तो किस की इच्छा करता हुआ तथा किस काम के लिए शरीर को अनुसंज्वरित = पीड़ित कर सकता है। अर्थात् ज्ञानी सब इच्छा आदि से रहित होने से शरीर को भी पीड़ित नहीं करता है क्योंकि सच्चे ज्ञानियों का ज्ञान, मान = अभिमान और मद = गर्व, काम, क्रोधादि दोषों का नाशक होता है। और किसी अनधिकारी का यह ज्ञान = ज्ञानाभास मदमानादि का कारण होता है। जैसे कि विविक्त = एकान्त स्थान संयमी = ब्रह्मचर्यादि युक्त योगीकी विमुक्ति के लिए होता है और कामातुर के अत्यन्त काम का कारण होता है ॥११६-१२०॥

अशुद्धेरुच्छालनं हित्वा कर्मध्यानादि साधनैः ।
बलाज्ज्ञाने प्रवृत्तस्य ज्ञानाभासो हि जायते ।।१२१।।
"प्रायशः क्षीणपापस्य नित्यं धर्मरतस्य च ।
नरस्योत्पद्यते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षं च गच्छति ।।१२२।।
वासनारज्जुबद्धा ये ह्याशापाशवशीकृताः ।
वश्यतां यान्ति ते लोके रज्जुवद्धाः खगा इव ।।१२३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन्मुक्तो भवेन्मुक्तो विदेहोऽपिविवासनः ।
मरणाद् या भवेद् मुक्तिः साऽनित्या स्वर्गलक्षणा॥१२४॥

ब्रह्मलोकेऽपि यो जीवन्मुक्तः स मुक्त उच्यते।
नान्यथा परमेशोऽपि वेदाः सर्वे वदन्ति तम्॥१२५॥

"देहन्द्रियेष्वहं भाव इदं भावस्तदन्यके।
यस्य न भवतः क्वापि स जीवन्मुक्त उच्यते॥१२६॥

निष्काम सत्कर्म और ध्यान = भक्ति योगोपासना आदिरूप साधनों के द्वारा चित्त की अशुद्धि के छालन = निवारण को हित्वा = त्याग कर, बलात् हठ से ज्ञानमार्ग श्रवणादि में प्रवृत्त ज्ञानानधिकारी को ज्ञानाभास होता है, ज्ञान नहीं। क्योंकि प्रायशः = बहुत नष्ट पाप वाला, सदा धर्मरत मनुष्य को ज्ञान होता है और ज्ञान से मोक्ष होता है। ज्ञान के विना जो वासना रूप रज्जु में बँधे हैं और आशारूप पाश = बन्धन के वश में प्राप्त हैं, वे लोग रज्जु से बँधे पक्षियों के समान लोक में परवशता को पाते है और ज्ञान द्वारा वासना रहित जो जीवन्मुक्त = मोह राग द्वेषादि रहित होता है, वही ज्ञानी विदेह मुक्त भी होता है। जीवन्मुक्ति के विना जो सालोक्यादिरूप मुक्ति मरण से ही होती है, सो स्वर्ग स्वरूप अनित्य मुक्ति होती है। ब्रह्मलोक में भी जो जीवन्मुक्त होता है, सोई मुक्त कहा जाता है। परमेश्वर = ब्रह्मलोक वासी ब्रह्मा भी अन्यथा = जीवन्मुक्ति के विना मुक्त नहीं होते हैं। अतः उस जीवन्मुक्त के मोक्ष को सब वेद कहते हैं। जिस को देहेन्द्रियादि विषयक अहंभाव = अहंकार और देहादि से अन्य में इदंभाव = ममता कहीं नहीं होते हैं, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। ॥१२१–१२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणदोषविशिष्टेऽस्मिन् स्वभावेन विलक्षणे ।
सर्वत्र समदृष्टित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥१२७॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो भूतानामभयं यतः ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥१२८॥

ज्ञानारामस्य बुद्धस्य सर्वभूताविरोधिनः ।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥१२९॥

तनुं त्यजतु वा तीर्थे श्वपचस्य गृहेऽथवा ।
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥१३०॥,,

इत्थं निश्चयवानेव तत्त्वदृष्टिः सुदृष्टिमान् ।
प्रारब्धकर्म भोगान्तं भ्रमन् भुविनिरङ्कुशः ॥१३१॥

श्रुत्वा कर्तव्यतां सोऽत्र समाधे विदुषामपि ।
हसति स्म न च ब्रूते ज्ञात्वाऽकिञ्चित्करं वचः ॥१३२॥

"निः सङ्गो निष्क्रियोऽसि त्वं स्वप्रकाशो निरञ्जनः ।
अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि" ॥१३३॥

गुण दोष युक्त, स्वाभाव से विलक्षण इस संसार में सर्वत्र समदृष्टिता जीवन्मुक्त का लक्षण है । जिस समदृष्टि वाले को सब प्राणी से अभय = भय का अभाव हो और जिसे से प्राणियों को अभय हो, देह से विमुक्त उस पुरुष को किसी से भय नहीं होता है, न है । सब प्राणी के अविरोधी, ज्ञान से आराम = शान्तिवाले ज्ञानी को इस संसार में आवृत्ति का भय नहीं हैं, न रहता है, फिर परलोक का भय किससे और कैसे हो सकता है । वह आशय =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मवासना रहित ज्ञानी चाहे काशी आदि पुण्य तीर्थ में देह का त्याग करे, या श्वपच के घर में त्याग करे, ज्ञान की प्राप्ति काल में ही वह मुक्त हो चुका है। ज्ञान की सम्यक् प्राप्ति काल में ही ज्ञानी जीवन्मुक्त होता है कहीं देह त्यागादि से उसकी विदेह मुक्ति में भी हानि या विशेषता नहीं होती है, इस प्रकार के निश्चय वाला ही सुन्दर ज्ञान वाला तत्त्वदृष्टि, भूमि में प्रारब्ध भोग पर्यन्त निरङ्कुश = स्वतन्त्र भ्रमण करता हुआ, विद्वानों को भी समाधि की कर्तव्यता को यहाँ = जीवन काल में सुनकर, वह हँसने लगा और उस कर्तव्य विषयक वचन को अकिञ्चित्कर = निष्फल जान कर कुछ बोला नहीं। क्योंकि अष्टावक्र मुनि का शिष्य के प्रति कथन है, कि तुम स्वयं-प्रकाश अक्रिय, निरञ्जन = निर्गुण निर्मम स्वरूप हो, परन्तु तुम में यही बन्धन है कि जो ज्ञान होने पर भी समाधि का अनुष्ठान कर्तव्य बुद्धि से करते हो १२७–१३३॥

"स्थितप्रज्ञस्य मुक्तस्य गुणातीतस्य सर्वथा।
अस्ति किञ्चिन्न कर्तव्यं नाक्रियानियमोऽपि च ॥१३४॥
ब्रह्मात्मनोः शोधितयोरेकभावावगाहिनी।
निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते ॥१३५॥
स्थिताऽसौ च भवेद्यस्य स्थितप्रज्ञः स उच्यते।
तस्य निरन्तरानन्दो जीवन्मुक्तः स एव तु ॥१३६॥
इष्टानिष्टार्थसम्प्राप्तौ समदर्शितयाऽऽत्मनि।
उभयत्राविकारित्वं जीवन्मुक्तस्यलक्षणम् ॥१३७॥
समाधिमथ कर्माणि मा करोतु करोतु वा।
हृदयेनास्तसर्वास्थो मुक्त एवोत्तमाशयः ॥१३८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नैष्कर्म्येण न तस्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति न कर्मभिः ।
न समाधानजप्याभ्यां यस्य निर्वासनं मनः" ॥१३९॥

प्रारब्धस्य च भोगान्ते तत्त्वदृष्टे हि वायवः ।
प्राणाद्या हेतुलीनत्वमगवन्न वहिः क्वचित् ॥१४०॥

भगवान् शंकरराचार्य कहते हैं कि स्थित प्रज्ञ = स्थिर बुद्धि वाला, सर्वथा गुणातीत = हर्ष शोकादि रहित, अत एव कामादि से मुक्त पुरुष को कुछ भी कर्तव्य नहीं है और क्रिया = कर्म के अभाव का भी नियम नहीं है; और विवेक से शोधित जीव और ब्रह्म की एकता को ग्रहण करने वाली विकल्प = संशय रहित, चिन्तमात्र विषयक अन्तः करण की वृत्ति प्रज्ञा कही जाती है, सो उक्त प्रज्ञा = बुद्धि वृत्ति जिसकी स्थिर हो, सो स्थित प्रज्ञ कहा जाता है और उस स्थितप्रज्ञ को निरन्तर आनन्द रहता (भासता) है, वही जीवन्मुक्त भी होता है। और इष्ट = वाञ्छित तथा अनिष्ट अर्थ = वस्तु की संप्राप्ति होने पर, अत्मविषयक समदर्शिता से, इष्ट अनिष्ट दोनों विषयक निर्विकारिता = राग द्वेष रहितता जीवन्मुक्त का लक्षण है। जिसने हृदय से सब आस्था = आसक्ति राग को त्यागा है, वह उत्तम आशय = भाव बाला, समाधि या कर्म करे या नहीं करे, वह मुक्त ही है। और निष्कर्मता = कर्मत्याग से उसको कोई फल नहीं मिलता है, न कर्मों से कोई फल मिलता है, न समाधान और जप से ही उसे कोई फल मिलता है, कि जिसका मन वासना रहित है (नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥अ०३।१८) इत्यादि भ० गीता के वचन ऐसे ही हैं। प्रारब्ध भोग के अन्त में जीवन्मुक्त तत्त्वदृष्टि के प्राणादि रूप वायु अपने हेतु में लीनता को पाये, लीन हुए, कहीं बाहर नहीं निकले। क्योंकि श्रुति है कि (न तस्यप्राणा उत्क्रामन्ति) इत्यादि ॥१३४-१४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशकालाद्यनालोच्य शरीरं त्यक्तवान् सुधीः ।
जले[1] जलसमः सोऽत्र प्राविशन्निष्कलेऽव्यये ॥१४१॥
अधिकारिजना ये च ज्ञानिनोऽपि भवन्ति हि ।
ते त्वत्र लोकशिक्षार्थं विधिं कुर्वन्ति नान्यथा ॥१४२॥
द्वितीयोऽदृष्टिनामाऽऽसीच्छिष्यो गङ्गातटे शुभे ।
एकान्ते पावने स्थाने ब्रह्मध्यानं चकार सः ॥१४३॥
देशकालाद्यपेक्षं च देहं त्यक्त्वा विधानतः ।
उत्तरायणमार्गेण ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥१४४॥
तृतीयस्तर्कदृष्टिस्तु कृत्वापि श्रवणं गुरोः ।
उपदेशं च लब्ध्वापि तस्य निश्चयहेतवे ॥१४५॥
विद्याप्रस्थानरूपमदष्टादशमितं समम् ।
तस्यालोचनं सम्यक् कृतवान् स सुबुद्धितः ॥१४६॥

और वह सुधी = विद्वान् तत्त्वदृष्टि देशकालादि का आलोचन = विचार नहीं कर के देह को त्यागा और जल में जल के समान, इस निरवयव निर्विकार ब्रह्म में प्रवेश किया। और जो अधिकारी = नेता लोग ज्ञानी भी होते हैं, सो तो यहाँ लोकशिक्षा के लिये देशकालादि की अपेक्षा रूप विधि करते हैं, अन्यथा

१—यथोदकं शुद्धं शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुने विजानत आत्मा भवति गौतम ! ॥कठ०अ०२।४।१५॥
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय ।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥
मुण्डक०३।२।८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं। दूसरा अदृष्टिनामक = अल्प विवेकी शिष्य था, उसने शुभ गङ्गा तट रूप एकान्त पावन स्थान में ब्रह्म का ध्यान किया, फिर देशकालादि की अपेक्षा = विचार पूर्वक विधि के अनुसार शरीर को त्याग कर, उत्तरायण = देव मार्ग से वह ब्रह्मलोक में गया। तीसरा शिष्य तर्कदृष्टि तो गुरु से श्रवण कर के, उपदेश पाकर भी उसके निश्चय के लिये, जो विद्या का प्रस्थान स्वरूप सब = सम्पूर्ण अष्टादश = अठारह संख्या से परिमित है, उन सबका सम्यक् आलोचन = विचार अपनी बुद्धि से उसने किया॥ १४१-१४६ ॥

"अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्यास्त्वेताश्चतुर्दश ॥१४७॥
आयुर्वेदो धनर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या अष्टादशैव तु ॥१४८॥
वेत्ति तत्त्वं यया विद्या सा बुधैः परिकीर्तिता।
तत्त्वं त्वद्वय आत्मैव सैव ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥१४९॥
प्रतिष्ठन्ते जनाः येन मार्गेणाभिष्टलब्धये ।
प्रस्थानं कथ्यते तद्धि विद्यास्थानमनुत्तमम् ॥१५०॥
कर्म चोपासनं ज्ञानं त्रयो मार्गाः प्रकीर्तिताः।
कथितास्ते त्रयो योगा विशेषावस्थया युताः ॥१५१॥
एतेषां बोधका वेदाः सतां नैवात्र संशयः।
अद्वैततत्त्वबोधार्थाः सर्वे ते सुविनिश्चताः ॥१५२॥

वेद के अर्थ केबोधादि में सहायक वेद के छः अङ्ग व्याकरणादि, चार वेद, मीमांसा, न्याय का विस्तार, धर्मशास्त्र और पुराण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये चौदह विद्या कही गई है। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद ये तीन और चतुर्थ अर्थशास्त्र इनके सहित विद्या अष्टादश १८ ही हैं। वस्तुतः जिसके द्वारा जिज्ञासु तत्त्व=सत्य वस्तु को जानता है, सो विद्वानों से विद्या कही गई है और तत्त्व तो अद्वैत आत्मा ही है, सो आत्मा ही ब्रह्म=विभु भी कहा जाता है। मनुष्य अपने अभिमत=इष्ट की प्राप्ति के लिये जिस मार्ग से प्रस्थान=गमन करते हैं, वही विद्या का सर्वोत्तम स्थान=प्रस्थान कहा जाता है। यद्यपि लोकान्तरादि में गमन के लिये उत्तरायण दक्षिणायणादि मार्ग कहे गये हैं, तथापि उन मार्गों में सत वस्तु में गमन तथा प्राप्ति के लिये, कर्म उपासना और ज्ञान ये तीन मार्ग कहे गये हैं, वे ही कर्मादि निष्कामता आदि विशेष अवस्था से युक्त होने पर तीन योग कहे गये हैं। इन मार्गों के बोधक वेद हैं, सत पुरुषों को इसमें संशय नहीं है और अद्वैत तत्त्व के बोध के लिये भी वे सब वेद सुविनिश्चित हैं ॥१४७-१५२॥

केचित्साक्षात्तथा केचित् पारम्पर्येण बोधकाः ।
चित्त शुद्ध्यादिमार्गेण ज्ञानस्यैवोपकारकाः । १५३॥
प्रवृत्तौ च विशेषं ये बोधयन्ति हि शब्दकाः ।
वेदमन्त्रादिरूपास्तेऽप्यनिष्टां वारयन्ति ताम ॥१५४॥
अनर्थकारिणीमित्थं प्रविृत्तिं वारयन् सदा ।
करोति जनकल्याणं वेदः सर्वो न संशयः ॥१५५॥
तत्राङ्गानि तु सर्वाणि तत्तद् द्वारेण सर्वदा ।
उपकुर्वन्ति तान्येवं ज्ञानार्थानि भवन्ति हि ॥१५६॥
उच्चारणविधा ज्ञानं शिक्षया जायते तथा ।
साधुशब्दाः प्रमीयन्ते शब्दानामनुशासनात् । १५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मानुष्ठानविज्ञानं कल्पसूत्रेण जायते ।
वैदिकानां च शब्दानामर्थज्ञानं निरुक्ततः ।१५८।

तहाँ कोई मन्त्रादिरूप वेद साक्षात् अद्वैत तत्त्व के बोधक हैं, कोई परम्परा से बोधक हैं, क्योंकि चित्त की शुद्धि आदि के द्वारा सब वेद ज्ञान के ही उपकारक हैं। जो वेद के मन्त्रादिरूप शब्द प्रवृत्ति में = प्रवृत्ति विषयक विशेष बोध कराते हैं, सो भी अनिष्ट उस प्रवृत्ति का वारण करते हैं। इस प्रकार अनर्थ कारक प्रवृत्ति का सदा वारण करता हुआ सब वेद जन का कल्याण कारक है, इसमें संशय नहीं। और वेद के सब[1] अङ्ग तत्तत् उपकार द्वारा, वेदार्थादि के ज्ञानादि में सदा उपकार = सहाय्य करते हैं, इस प्रकार सब वेदाङ्ग, ज्ञानार्थक होते हैं। उन अङ्गों में शिक्षा से शब्दोच्चारण की रीति का ज्ञान होता है और शब्दों के अनुशासन = शिक्षणरूप व्याकरण से साधु = शुद्ध शब्दों का ज्ञान होता है, व्याकरण से साधु शब्द समझे जाते हैं। कल्पसूत्रों से कर्म के अनुष्ठान = क्रिया की रीति का ज्ञान होता है और निरुक्त से वैदिक शब्दों के अर्थों का ज्ञान होता है। १५३-१५८ ॥

ज्योतिषा कर्मकालादेः पिङ्गलेन च छन्दसाम् ।
विज्ञानं जायते तेन त्रय्या अङ्गानि तानि ह ॥ १५९॥
चत्वार आयुर्वेदाद्या उपवेदाः प्रकीर्तिताः ।
तेऽप्यारोग्यप्रदानेन [2]धर्मरक्षणतस्तथा ॥१६०॥

१—अपौरुषेयवाक्यत्वं वेदत्वम् । कार्यंजनने सहकारित्वमङ्गत्वम् । इति भाट्टचिन्तामणौ ।

२—अलौकिकश्रेयः साधनत्वेन विहितक्रियात्वं विहितत्वं वा धर्मत्वम् । निषेधबोधिताऽलौकिकानिष्टसाधनत्वमधर्मत्वम् ॥ भाट्टचिन्तामणौ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रजापालनमार्गेण कीर्तनाद् भजनादितः ।
न्यायोपार्जितवित्तेन दानयज्ञादिसाधनात् ॥१६१॥

संसारतरणोपायान् प्रवदन्ति विमुक्तिदान् ।
गान्धर्वशास्त्राभ्यासेन समाधि र्जायते शुभः ॥१६२॥

स्मृतयो धर्मशास्त्राणि सेतिहासानि सर्वशः ।
कायिकादिसुकर्माणि कथयन्ति विमुक्तये ॥१६३॥

ज्योतिष से कर्म के कालादि का ज्ञान होता है और पिङ्गल से छन्दों का ज्ञान होता है, इस से वे शिक्षा व्याकरणादि छः त्रयी=वेद के अङ्ग=उपकारक होते हैं। आयुर्वेदादि चार उपवेद कहे गये हैं, वे भी आरोग्य के प्रदान द्वारा तथा धर्म की रक्षा द्वारा, प्रजा-पालन द्वारा संसार से तरने के उपायों को कहते हैं तथा कीर्तन और भजनादि से और न्यायोपार्जित वित्त द्वारा यज्ञदानादि साधनों से विमुक्ति प्रद उपायों को कहते हैं। गान्धर्वशास्त्र के अभ्यास से शुभ समाधि भी सिद्ध होती है। इतिहास सहित सब स्मृतियाँ धर्मशास्त्र कहाती हैं, सो भी विमुक्ति के लिये कायिक वाचनिक और मानस कर्मों का कथन करती हैं ॥१५९-१६३॥

निष्कामकर्मतः शुद्धे चित्ते स्वादर्शसन्निभे ।
जायते स्वात्मनो ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षो न संशयः ॥१६४॥

पुराणोपपुराणानि कारणब्रह्मलब्धये ।
उपासनानि संप्राहुरर्चिरादिक्रमेण तु ॥१६५॥

तत्तन्नामादिभेदेन भान्ति भिन्नानि यद्यपि ।
तथापि चित्तरोधेन सर्वाण्येकफलानि हि ॥१६६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महतां चरितान्येवं धर्मा ये चापि वैदिकाः ।
विज्ञानमौपनिषदं पुराणेषूपलभ्यते ॥१६७॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थस्योपवृहणम् ।
जायते नात्र संदेहो वचनाद् गम्यते तथा ॥१६८॥

निष्काम कर्म से सुन्दर दर्पण तुल्य शुद्ध चित्त में आत्मा का ज्ञान होता है और ज्ञान से मोक्ष होता है, इसमें संशय नहीं है। पुराण उपपुराण, अर्चि आदि उत्तरायणमार्ग के क्रम से कारण ब्रह्म की प्राप्ति के लिये उपासनाओं का संकथन करते हैं। यद्यपि तत्तत् नाम के भेद से उपासना सब भिन्न भिन्न भासती है तथापि चित्त के निरोध द्वारा सब एक फल वाली होती हैं। इसी प्रकार महापुरुषों के चरित्र और वैदिक धर्म तथा उपनिषद् से प्राप्ति योग्य ज्ञान भी पुराणों में उपलब्ध होता है। और इतिहास पुराण से वेदार्थ का उपवृंहण = विस्तार होता है, इसमें संशय नहीं है, ऐसा वचन से समझा जाता है। (इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपवृहयेत्) ॥१६४-१६८॥

न्यायादिदर्शनान्येवं सोपानारोहयुक्तितः ।
ब्रह्मात्मबोधकान्येवं सिद्धं सर्वैकमत्यकम्[1] ॥१६९॥

१—सर्वारोपविनिर्मुक्तं स्वतस्तत्त्वं प्रकाशते ।
शून्यताद्यभिधानैस्तु तत्रारोपनिराक्रिया ॥१॥
इत्यादिवृद्धवादैश्च प्रकाशात्मा प्रतीयते ।
शून्यतादिकथाभिश्च तत्रारोपो निषिध्यते ॥२॥
भक्तिज्ञाने यत्र विष्णो यंत्र वेदः परा प्रमा ।
मतानि तानि सर्वाणि जीवोद्धारस्य हेतवः ॥३॥
सत्त्वादिभेदतो जीवाश्चित्रप्रकृतयोऽखिलाः ।
उद्धर्तुं प्रभुणा तांस्तु सम्प्रदायाः प्रकाशिताः ॥४॥
(वेदान्त चिंतामणौ० प्र० ११)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार न्ययादि दर्शन भी सोपानारोहयुक्ति=न्याय से ब्रह्मात्मा के ही बोधक हैं और इस प्रकार सब प्रस्थान का ऐकमत्य सिद्ध होता है ॥१६४-१६९॥

सर्वैक्यमत्यमालोच्य कुतर्कं कुमतिं तथा ।
नास्तिक्यं दूरतस्त्यक्त्वा तर्कदृष्टिः सुबुद्धिमान् ॥१७०॥
स शान्तिं परमां लेभे दर्शनार्थं विचार्य च ।
सत्यात्मानं परं तत्त्वं सर्वत्रैवोपलब्धवान् ॥१७१॥
भावान् षोडशधा यद्वा षड्धा सम्यग् विभज्य तौ ।
तर्कान् मननयुक्त्याख्यान् विदधानौ महामुनी ॥१७२॥
अज्ञानमूलके जन्मदुःखे ज्ञानाद्विमुक्तिताम् ।
भाषमाणौ हि बोधस्याऽवस्थे द्वे सम्यगूचतुः ॥१७३॥
अक्षपादः कणादश्च परमाणुकदम्बकात् ।
सामान्यलोकबोधाय गदतः सृष्टिमद्भुताम् ॥१७४॥
शुभेच्छा सुविचाराभ्यां यथा स्वान्तं विशुध्यति ।
तथा कर्मविचारेण कर्मानुष्ठानतः सदा ॥१७५॥

सुबुद्धिमान् तर्कदृष्टि ने सब के ऐक्यमत्य=अविरोध को समझ कर कुतर्क कुबुद्धि और नास्तिकता को दूर से त्याग कर वह परम शान्ति को प्राप्त किया। और दर्शनों के अर्थों को विचार कर सत्यात्मा रूप परम तत्त्व को सर्वत्र समझा। क्योंकि अक्षपाद और कणाद नाम के वे दोनों महामुनियों ने सोलह प्रकार से अथवा छः प्रकार से भाव पदार्थों का सम्यक् विभाग कर के मनन और युक्ति नामक तर्कों का विधान करते हुए और अज्ञानमूलक जन्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और दुःख को कहते हुए तथा ज्ञान से विमुक्तता को कहते हुए ज्ञान के शुभेच्छा और सुविचार रूप दो अवस्था को उक्त मुनियों ने सम्यक् कहा है और सामान्य लोकों के बोध के लिए परमाणु समूह से अद्भुत सृष्टि का कथन दोनों मुनि करते हैं। और जैसे शुभेच्छा और सुविचार से स्वान्तः = मन शुद्ध होता है, तैसे ही सदा सत्कर्म के विचार द्वारा सत्कर्म के निष्काम अनुष्ठान आचरण से मन शुद्ध होता है ॥१७०-१७५॥

अतो विधि प्रभेदादि मन्त्रादिप्रविभागतः ।
श्रुतिलिङ्गादिमानानामुपपत्त्या व्यवस्थया ॥१७६॥

कर्तव्यकर्मजालानि नित्यादीनि विशेषतः ।
मीमांसते मुनिः शुद्धो जैमिनिः कर्मतत्त्व वित् ॥१७७॥

मनसस्तनुतार्थं च कपिलाख्यो मुनिः स्वयम् ।
तत्त्वानि विभजन्नेव विरागं विदधत् परम् ॥१७८॥

असङ्गमाह चात्मानं नित्यमुक्तातिनिर्मलम् ।
अविवेकात्तु संसारं मुक्तिमाह विवेकतः ॥१७९॥

मनसस्तनुतासिद्धौ सत्त्वापत्तिप्रसिद्धये ।
असङ्गमीश्वरं प्राह पतञ्जलि र्महामुनि ॥१८०॥

तस्य ध्यानादि योगेन प्रत्यक्षे पुरुषस्य हि ।
असङ्गयोस्तयो र्जीवपरयोस्तु स्वयं तदा ॥१८१॥

निर्विशेषतयाऽभेदः सिद्ध्यतीति मुने र्मतम् ।
आभात्यज्ञानतो भेदस्तस्य सम्यग् निवृत्तये ॥१८२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म से मन शुद्ध होता है इसी कारण से कर्म के तत्त्व को जानने वाले शुद्ध जैमिनिमुनि, विधि के प्रभेदादि और मन्त्रादि के प्रविभाग द्वारा, तथा श्रुति लिङ्गादि प्रमाणों की उपपत्ति = सिद्धि और व्यवस्था द्वारा विशेष रूप से नित्य नैमित्तिकादि कर्म समूहों की मीमांसा = श्रेष्ठ विचार करते हैं। मन की तनुता के लिये कपिल नामक मुनि स्वयं तत्त्वों का विभाग करते हुए तथा विवेक द्वारा परविराग का विधान करते हुए आत्मा को असङ्ग और नित्य मुक्त अत्यन्त निर्मल कहते हैं और अविवेक से जन्मादि संसार कहते हैं, विवेक से मुक्ति कहते हैं। विवेक से मन की तनुता (तनुमनसा) नामक ज्ञान की भूमिका सिद्ध होने पर सत्त्वापत्ति = सत्त्वस्वरूपता की प्राप्ति के लिये महामुनि पतञ्जलि असङ्ग ईश्वर का वर्णन करते हैं, कि जिससे उस असङ्ग ईश्वर के ध्यान विचारादि रूप योग से जीवात्मा और परमात्मा स्वरूप पुरुष के प्रत्यक्ष अनुभव होने पर, उस समय निर्विशेषता के कारण उस असङ्ग जीव और परमात्मा का अभेद स्वयं सिद्ध होता है, कहने मात्र का भेद रहता है, यह मुनि का मत = तात्पर्य है। और अज्ञान से भेद भासता है, उसकी अत्यन्त निवृत्ति के लिए मुनि योग का विधान करते हैं ॥ १७६-१८२ ॥

विदधाति मुनि र्योगमष्टसाधनसंयुतम् ।
साधनानि पुरोक्तानि योगः स प्रोच्यतेऽधुना ॥ १८३ ॥
"योगस्य प्रथमंद्वारं वाङ् निरोधोऽपरिग्रहः ।
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता ॥ १८४ ॥
चित्तवृत्तिनिरोधाख्यो योगो द्वेधा स वर्णितः ।
संप्रज्ञातो भवत्याद्यः साधनात्मा सबीजकः ॥ १८५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंप्रज्ञातनामान्यः फलात्मा कथ्यते हि सः ।
एकाग्रे चेतसि त्वेतौ निरुद्धे भवतः क्रमात् ॥१८६॥

अभ्यासादथ वैराग्यान्निरुध्यन्ते कुवृत्तयः ।
क्लेशमूलास्ततः शान्ताः सत्त्वमूला भवन्ति हि ॥१८७।

स्थूलसूक्ष्मेन्द्रियात्मानो भवन्ति विषया यदा ।
सवितर्कस्तदा त्वाद्यः सविचारो द्वितीयकः ॥१८८॥

सानन्दस्तु तृतीयः स्यादस्मितामात्रकोऽपरः ।
समाधिः स चतुर्धा वै साधनात्मैव कथ्यते ॥१८९॥

उक्त मुनि आठ साधन युक्त योग का विधान करते हैं। तहाँ यम नियमादि साधन प्रथम कहे गये हैं और वेदान्त सम्मत योग भी कहा गया है, मुनि का सम्मत योग अब कहा जाता है। योग का प्रथम द्वार मौन, अपरिग्रह, आशा का त्याग, विशेष ईहा क्रिया का त्याग और सदा एकान्त शीलता है। चित्त वृत्ति का निरोध नामक वह योग है, सो दो प्रकार का वर्णित है। जिसमें साधन स्वरूप सबीज और संप्रज्ञात नाम वाला योग प्रथम होता है। असंप्रज्ञात नाम वाला दूसरा होता है, वह प्रथम का फलस्वरूप कहा जाता है। और एकाग्र चित्त में संप्रज्ञात होता है, निरुद्ध में असंप्रज्ञात होता है, दोनों क्रम से होते हैं। अभ्यास और वैराग्य से राजस, तामस कुवृत्तियाँ निरुद्ध होती हैं, जो क्लेश मूलक रहती हैं, फिर सत्त्वगुण मूलक शान्तवृत्तियाँ होती हैं। उन शान्तवृत्तियों के जब स्थूल, सूक्ष्म, इन्द्रिय और आत्मा विषय होते हैं, तब स्थूल विषयक पहला सवितर्क कहा जाता है, सूक्ष्म विषयक दूसरा सविचार समाधि होती है, इन्द्रिय विषयक तीसरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सानन्द होती है, चतुर्थ आत्मविषयक अस्मितामात्रक होती है और यह चारो प्रकार की समाधि साधन स्वरूप ही कही जाती है ॥ १८३-१८६ ॥

सर्ववृत्तिनिरोधे स्यादसंप्रज्ञातनामकः ।
संस्कारमात्रशेषोऽयं परवैराग्यजः स्मृतः ॥१९०॥

अतः सर्वत्र वैराग्याद् विशुद्धस्वात्मवोधतः ।
क्लेशकर्मनिवृत्त्यैव कैवल्यमवशिष्यते ॥१९१॥

पञ्चरात्रादितन्त्राणामुपासनपरत्वतः ।
चित्तस्थैर्यादिमार्गेण ज्ञानहेतुत्वमिष्यते ॥१९२॥

सात्त्विकानि तु कर्माणि भक्तिश्चोपासनानि च ।
सर्वाण्येतानि मोक्षस्य साधनानि विहाय यत् ॥१९३॥

वामतन्त्रक्रियाः सर्वा अशुचित्वयुता मताः ।
अतस्ता दूरतस्त्यक्त्वा तर्कदृष्टिः स्थिरोऽभवत् ॥१९४॥

वामकौलादि मार्गेषु राक्षसी जायते मतिः ।
पैशाची जायते यद्वा गतिसिद्धी च तादृशी ॥१९५॥

सब वृत्तियों के निरोध होने पर असंप्रज्ञात नामक समाधि होती है। जिसमें संस्कार मात्र शेष रहता है और यह समाधि परवैराग्य जन्य कही गयी है। अतः इस समाधि से पूर्वकाल में सर्वत्र वैराग्य से विशुद्ध निजात्मा के ज्ञान से क्लेश कर्मादि की निवृत्ति से ही कैवल्य = मोक्ष ही अवशेष रहता है। पञ्चरात्रादि तन्त्रशास्त्र के उपासना परक होने से चित्त की स्थिरता द्वारा उनमें ज्ञान हेतुता मानी जाती है। और सात्त्विक कर्म और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति तथा उपासनाओं को जो सब ये मोक्ष के साधन हैं, उनको छोड़कर, उनसे अन्य जो वामतन्त्र की क्रिया सब हैं, सो जिससे अशुचिता युक्त मानी गई हैं। अतः तर्क दृष्टि उन क्रियाओं को दूर से त्याग कर स्थिर हुआ। वामकौलादि मार्गों में राक्षसी बुद्धि होती है अथवा पैशाची बुद्धि होती है और गति सिद्धि भी वैसी ही होती है ॥ १९०-१९५ ॥

अविवेकस्तथाऽज्ञानं शौचहानिरसत्यता ।
पिशाचानामयं धर्मः सदा चामिषगृध्नुता "॥१९६॥

इति निश्चित्य ताँस्त्यक्त्वा मार्गान् सत्त्वे व्यवस्थितः ।
निर्गुणं मार्गमास्थाय विदित्वा निर्गुणं प्रभुम् ॥१९७॥
आत्मानं ब्रह्म निश्चित्य श्रीव्यासवचनादितः ।
सप्तावस्थायुतं ज्ञानं ज्ञात्वा वासिष्ठवाक्यतः ॥१९८॥
ब्रह्मसूत्रविचारेण तज्ज्ञानं प्राप्य निश्चितम् ।
विज्ञानमौपनिषदं प्राप्याऽसौ तर्कदृष्टितः ॥१९९॥
शोधनायैव बोधस्य प्रसिद्धविदुषः स्थितिम् ।
श्रुत्वा क्वापि गतस्तत्र श्रावितोऽसौ स्वनिश्चयम् ॥२००॥
श्रुत्वा स निश्चयं तस्य प्रोवाच ज्ञानिसत्तमः ।
त्वयोक्तोऽयं हि सिद्धान्तो मम मुख्यतमो मतः ॥२०१॥
इत्थं स संशयं सर्वं विनाश्य निजबोधतः ।
ज्ञात्वा ब्रह्मापरोक्षं च जगन्मिथ्यात्वमैक्षत ॥२०२॥

अविवेक, अज्ञान, अशौच, असत्यता और सदा मांसेच्छुकता ये पिशाचों के धर्म हैं। इस प्रकार निश्चय करके और मार्गों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्याग कर सत्त्वमार्ग में व्यवस्थित = स्थिर होता हुआ, निर्गुण मार्ग में आस्था = प्रेम स्थिति करके निर्गुण प्रभु को जान कर श्रीव्यासदेव के वचनादि से आत्मा को ब्रह्मस्वरूप निश्चय करके और योग वासिष्ठ के वाक्य से सात अवस्था युक्त ज्ञान को समझकर और ब्रह्मसूत्र के विचार से उस निश्चय ज्ञान को पा कर, वह तर्कदृष्टि औपनिषद् विज्ञान को प्राप्त करके, फिर उसी ज्ञान को शोधने ही के लिये, कहीं प्रसिद्ध विद्वान् की स्थिति को सुनकर और वहाँ प्राप्त होकर उसने अपने निश्चय को विद्वान् के प्रति सुनाया। वह श्रेष्ठ ज्ञानी उसके निश्चय को सुन कर बोला कि तुझ से कहा गया सिद्धान्त ही मुझे अत्यन्त मुख्य मान्य है। इस प्रकार वह तर्कदृष्टि अपने अनुभव से सब संशय को नष्ट करके अपरोक्ष ब्रह्म को समझ कर, जगत् के मिथ्यात्व को देखा ॥१९९-२०२॥

बन्धमोक्षादिकं सर्वं ज्ञात्वापि व्यावहारिकम् ।
मिथ्या[1] त्वात्मन्यसम्बद्धं जगत्तुल्यमवैक्षत ।२०३॥
विचारः शमसन्तोषौ सत्सङ्गश्च तपो दमः ।
विवेकः परवैराग्यं श्रद्धा शास्त्रे परे रतिः ॥२०४॥

१—सत्त्वासत्त्वाभाववत्त्वं, सत्त्वात्यन्ताभाववत्त्वे सत्यसत्त्वात्यन्यन्ताभाववत्त्वं वा. मिथ्यात्वम् । प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिक निषेधप्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्, निश्चिताधिकरणेऽत्यन्ताऽभावप्रतियोगित्वमिति यावत् । स चात्यन्ताभावो ब्रह्मस्वरूप इति न द्वैतापत्तिः, नेह नानेति श्रुत्या च स्वरूपेण जगतो निषेधः प्रतीयते, इति । ज्ञाननिवर्त्यत्वं,मिथ्यात्वं, तच्च ज्ञान प्रयुक्तावस्थिति सामान्य विरहप्रतियोगित्वम् । साक्षात्कारत्वेन तु ज्ञाननिवर्त्यत्वं बोध्यं, ते नोत्तरज्ञानादिना निवर्त्ये पूर्वज्ञानादौ नातिव्याप्तिः एवं स्वात्यन्ताभावाधिकरणे एव प्रतीयमानत्वं स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभाव प्रतियोगित्वं, सद्ब्रह्मभिन्नत्वं वा मिथ्यात्वम् । तद् दृश्यत्वप्रयोजकं रज्जुसर्पादौ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा सत्यवचनं तत्परत्वं च सर्वथा ।
चेतसोऽथ समाधानं गुरौ भक्तिः समुत्कटा ॥२०५॥

गृहीत्वैतानि सर्वाणि ततोऽसावतरद् भवम् ।
तर्क दृष्टिः प्रसन्नात्मा विगताशेषवासनः ॥२०६॥

बुद्धौ सत्त्वप्रधानत्वसत्त्वेऽपि रजसोंऽशतः ।
प्रारब्धशेषसत्त्वाच्चास्येयमाशा व्यजायत ॥२०७॥

बन्ध, मोक्ष, जन्म, मरणादि सब को व्यावहारिक समझकर भी, जगत् के समान इनको मिथ्या और आत्मा में सम्बन्ध रहित समझा और विचार, शम, सन्तोष, सत्संग, तप, दम, विवेक, परवैराग्य, शास्त्रादि में श्रद्धा, परतत्त्व में रति = प्रीति = भक्ति, अहिंसा, सत्यवचन, सर्वथा तत्परता और चित्त का समाधान, गुरु में अत्यन्त उत्कट भक्ति इन साधनों का ग्रहण करके वह तर्क दृष्टि सब वासनाओं से रहित प्रसन्नात्मा होकर तब संसार को तरा । परन्तु बुद्धि में सत्त्व गुण प्रधानत्व के रहते भी रजोगुण के अंश से तथा प्रारब्ध भोग के शेष रहने के कारण उस तर्क दृष्टि को यह वक्ष्यमाण आशा उत्पन्न हुई ॥२०३–२०७॥

मातापितृयुतं गेहं पश्येयं तत्र सम्प्रति ।
गत्वा शीघ्रं भवेत्तेन ममात्मन्यत्र का क्षतिः ॥२०८॥

"न कदाचन निर्मुक्तं चेतो भूयो निबध्यते ।
यत्नेनापि पुनर्बद्धं केन वृन्तच्युतं फलम् ॥२०९॥

देहस्तु देहधर्मेण जीवन्मुक्तिमतामपि ।
गृह्यते तद्गतं तेषां चेतस्त्वचलमेव तत् ॥२१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहारे यथैवाज्ञस्तथैव खलु पण्डितः ।
वासनावासने[1] एव कारणं बन्धमोक्षयोः" ॥२११॥

गृहात् पुत्रान् गताञ्ज्ञात्वा राजाऽसौ शुभसन्ततिः।
मन्दवैराग्यतो राज्यं शून्यं ज्ञात्वा न चात्यजत् ॥२१२॥

वैराग्याद् भोगजं सौख्यं नाभून्नापि विरागजम् ।
वैराग्यस्यातिमन्दत्वाद्द्विधा स दुःखभागभूत् ॥२१३॥

कि वहाँ शीघ्र जाकर माता पिता सहित घर इस समय देखें, उससे मेरी इस आत्मा में क्या क्षति होगी, अर्थात् कोई क्षति = हानि नहीं होगी। क्योंकि संसार से निर्मुक्त चित्त फिर कभी बद्ध नहीं होता है, भला वृन्त से गिरे हुए फल को यत्न से भी फिर किसने बाँधा है। और जीवन्मुक्तिवालों की भी देह तो देह-धर्मों से युक्त ही रहती है, देह धर्म युक्त ही देखी जाती है, किन्तु उस देहगत उनका वह मुक्त चित्त अचल ही रहता है। लोक व्यवहार में जैसे ही अज्ञ रहता है, तैसे ही ज्ञानी रहते हैं, किन्तु वासना और वासना का अभाव ही उनके बन्ध और मोक्षरूप विलक्षण फल के कारण होते हैं। यहाँ तर्कदृष्टि का ऐसा विचार हुआ। और वहाँ घर से चले गए पुत्रों को जानकर, वह शुभसन्तति राजा मन्द-वैराग्य के कारण राज्य को शून्य समझ कर, राज्य को नहीं त्यागा। और वैराग्य के कारण भोग जन्य सुख उसको नहीं हुआ और वैराग्य की अति मन्दता से वैराग्यजन्य सुख भी नहीं हुआ, अतः वह दोनों प्रकार से दुःख भागी हुआ ॥२०८–२१३॥

१—वासनासदसद्भ्यां बद्धमुक्तव्यवस्था मुक्तसुषुप्तयोरिति ।
न्यायभाष्ये अ० ४।१।६३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दवैराग्यवानासीद् राजाऽसौ शुभभाग्यवान् ।
ततो ध्येयस्य देवस्य जिज्ञासा समपद्यत ॥२१४॥

ध्येयः कोऽस्ति परो देवो यस्य ध्यानं समाचरन् ।
जनः संलभते शान्तिं सौख्यं च परमं पदम् ॥२१५॥

इत्थं विचार्य राजाऽसौ ध्येयनिर्णयकारणात् ।
आहूय पण्डितान् ताँश्च स्वासनाद्यैः सुसत्कृतान् ॥२१६॥

अपृच्छत् कोऽस्त्यसौ देवो यो जागर्ति सदा सुखम् ।
न च शेते कदाप्यत्र मोहाज्ञानविवर्जितः ॥२१७॥

पुरुषार्थस्य लाभार्थं यं जनो याचते सदा ।
तथा भक्तिमतां चित्ते रोचते यश्च सर्वदा ॥२१८॥

नृपस्य वचनं श्रुत्वा तेषां मध्यगतः सुधीः ।
उवाच वचनं राजन् शृणु देवं तु वच्मि ते ॥२१९॥

शम्भु र्यं सेवते देवं यं च ब्रह्मापि सेवते ।
शंखचक्रगदापद्मधारी स देव उत्तमः ॥२२०॥

मन्दवैराग्य वाला भी वह राजा शुभभाग्य वाला था, तिससे ध्येय देव को जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। कौन उत्तम देव ध्येय है कि जिसका सम्यक् ध्यान करता हुआ मनुष्य शान्ति सुख और परम पद को सम्यक् प्राप्त करता है। इस प्रकार विचार करके वह राजा ध्येय के निर्णय के लिये, पण्डितों को बुलाकर और सुन्दर आसनादि के द्वारा उनका सत्कार करके उन सत्कृत पण्डितों को पूछा कि वह देव कौन है कि जो सदा सुख पूर्वक जागता है और यहाँ मोह अज्ञान रहित होता हुआ, जो कभी सोता नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और पुरुषार्थ (अर्थ धर्मादि) की प्राप्ति के लिये मनुष्य जिसकी सदा प्रार्थना करते है और भक्तिवालों के चित्त में जो सदा प्रकाशता है। राजा के इस बचन को सुनकर उन पण्डितों के मध्यगत एक पण्डित बचन बोला कि हे राजन्! सुनो तुझे देव को कहता हूँ। जिस देव को शम्भु और ब्रह्मा भी सेवते हैं, सो शंखादि को धारण करने वाला देव उत्तम है॥ २१४-२२०॥

परोपकारकारी स दयालु र्मङ्गलाकृतिः।
ज्ञात्वा तु सेवकं स्वस्य कृतकृत्यं करोति सः॥२२१॥
शिव शक्ति र्गणेशश्च सर्वे चान्ये सुरास्तथा।
तदाज्ञापालका एव सर्वे तद्वशवर्तिनः॥२२२॥
भारतादीतिहासश्च पुराणं पद्मसंज्ञकम्।
तथैवोपनिषत्प्राह तापनीनामिका शुभा॥२२३॥
विष्णोरुत्पद्यते सर्वं जगत् तेनैव पाल्यते।
आपत्तौ प्रार्थ्यते सैव देवैः सर्वैश्चराचरैः॥२२४॥
विविधाकारयुक्ताः स धृत्वा मूर्तीरनेकशः।
करोति देवसाहाय्यं पूजा तस्य विधीयतां॥२२५॥
केशवेन समो देवो नान्यः सेव्यस्तु विद्यते।
शिवस्तु विष्णुभक्तोऽसौ कथ्यते सत्तमः सदा॥२२६॥
तथापि सेव्यरूपोऽसौ जायते न कदाचन।
यतोऽमङ्गलरूपोऽसौ शवतुल्यो हि विद्यते॥२२७॥

वह देव परोपकार कर्ता, दयालु, मङ्गलाकार है, अपने सेवक को जान कर वह कृतकृत्य करता है। शिव, शक्ति, गणेश अन्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब देव उसकी आज्ञा को पालन करने वाले हैं। अत एव सब उसके वशवर्ती हैं। महाभारतादि इतिहास और पद्मनामक पुराण, इसी प्रकार तापनी नामक उपनिषद्, ये सब कहते हैं कि सब जगत् विष्णु से उत्पन्न होता है, उसी से पालित होता है और आपत्ति में सब देव और चराचर से उसी की प्रार्थना की जाती है। वही विष्णुदेव अनेक प्रकार के आकारों से युक्त अनेक मूर्तियों का धारण करके देवों की सहायता करता है, अतः उसी की पूजा की जाय यही कर्तव्य है। और केशव = विष्णु के तुल्य अन्य सेव्य देव नहीं है, और वह शिव तो यद्यपि विष्णु के सदा उत्तम भक्त कहे जाते हैं, तथापि वह शिव कभी सेव्य स्वरूप नहीं होते हैं, जिससे वे सदा अमङ्गलस्वरूप और मृतक तुल्य रहते हैं॥ २२१-२२७॥

गजत्वग्वसनो ढक्कानादो भस्मविलेपनः।
कमन्यं कुशली कुर्यात्कपालेनाऽशिवः स्वयम्॥२२८॥

तस्यपुत्रो गणेशोऽपि तादृगेव विलक्षणः।
वपु र्यस्य नराकारं शिरो हस्तिन ईक्ष्यते॥२२९॥

यः शठो हठतो देवीं ध्यायत्यनिशमादरात्।
याति तत्समतामेव स्त्रीत्वं जन्मान्तरेऽवशः॥२३०॥

स्त्रियोऽतिनिन्दितास्तत्राशुचित्वं वर्तते सदा।
विचित्रोऽवगुणस्तासु वर्ततेऽनन्त एव हि॥२३१॥

मायाखनिः पराधीना स्वातन्त्र्यपरिवर्जिता।
कथ्यते स्त्रीति तत्सेवी नरस्तद्वाञ्छकोऽधमः॥२३२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ्रमन् रात्रिदिवं भानुः स्थितिं न लभते क्षणम् ।
तस्य चोपासकोऽप्येवं भ्रमेत्तत्साम्य लाभतः ।।२३३।।

गजचर्म के वस्त्रवाला, ढक्का = डमरु के नाद वाला, भस्म के विलेपनवाला, कपाल से स्वयं अशिवस्वरूप किस अन्य को कुशली = अकुशल को कुशल करेगें। उनका पुत्र भी वैसा ही विलक्षण है कि जिसका शरीर नराकार वाला है और शिर हाथी का दीखता है। जो शठ पुरुष हठ = आग्रह से देवी को सदा आदर से ध्यान करता है, सो उसकी तुल्यता को प्राप्त करता है और जन्मान्तर में स्त्रीत्व को अवश = परतन्त्र होता हुआ प्राप्त करता है। स्त्रियाँ अतिनिन्दित हैं, क्योंकि उनमें सदा अपवित्रता रहती है और उनमें विचित्र अनन्त अवगुण रहते ही हैं। क्योंकि माया की खानि, पराधीन, स्वतन्त्रता से सर्वथा रहित, स्त्री कही जाती है, अतः उसको सेवने वाला और उसके इच्छुक नर अधम हैं। सूर्य भी रात दिन भ्रमण करते हुए क्षणमात्र भी स्थिति नहीं पाते हैं। अतः उनके उपासक भी उनकी तुल्यता को पाकर उनके समान ही भ्रमेंगे ।।२२८-२३३।

अतोऽन्यदेवताः सर्वास्त्यजेदेकं हरिं भजेत् ।
जागर्ति हरिरेवैकः सेवनीयः स एव च ।।२३४।।
पूजाध्यानविधिस्तस्य पाञ्चरात्रेषु विद्यते ।
ततो ज्ञात्वा हि कर्तव्या पूजा ध्यानं च सर्वदा ।।२३५।।
शिवाद्युपासनानां च निषेधे नैव सर्वथा ।
स्मार्ता चोपासना सर्वा निषिद्धैव भविष्यति ।।२३६।
शिवभक्तो मुनिः कश्चिच्छ्रुत्वोक्तवचनं सुधीः ।
उवाच क्रोधसंरक्तनेत्रः पृथ्वीपतिं प्रति ।।२३७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजन् संश्रूयतामेकं वचनं मम धार्मिकम् ।
कोटयो यत्र मानानि सन्ति शास्त्रवचांसि हि ॥२३८॥
शिवे न सदृशो नान्यः कोऽपि देवोऽभिधीयते ।
याचितो यस्य योऽभीष्टस्तं ददाति सदा शिवः ॥२३९॥

अतः उक्त हेतुओं से अन्य सब देवताओं को त्यागे और एक हरि को भजे। क्योंकि एक हरि ही जागते हैं और सो हरि ही सेवने योग्य हैं। पाञ्चरात्र नामक तन्त्र ग्रन्थों में उस हरि की पूजा और ध्यान की विधि वर्णित है। उससे समझकर पूजा और ध्यान सदा कर्तव्य है। शिवादि की उपासनाओं के निषेध से ही स्मार्त सर्व उपासना भी सर्वथा निषिद्ध हो जाती हैं, क्योंकि पञ्चदेव की सम बुद्धि से उपासना स्मार्त उपासना होती है। शिवभक्त कोई विद्वान् मुनि उक्त वैष्णव वचन को सुन कर, क्रोध से रक्त नेत्रवाला होकर राजा के प्रति बोला कि हे राजन्! मेरा एक धार्मिक वचन सुनो कि करोड़ों शास्त्र के वचन रूप प्रमाण जिस में हैं। शिव के समान कोई अन्य देव नहीं कहा जाता है, क्योंकि याचना = प्रार्थना करने पर जिस पुरुष को जो अभीष्ट रहता है, उस को वह पदार्थ शिव जी सदा देते हैं ॥२३४-२३९॥

याचितो हरये प्रादात्सर्वां भूतिमनुत्तमाम् ।
विभूते र्धारको विष्णुः स त्यागनिरतः स्वयम्॥२४०॥
सर्वत्र समबुद्धिश्च नोत्तमाधममध्यदृक् ।
समं पश्यति तस्माच्च भस्मचर्मादिधारकः ॥२४१॥
नग्नः स्थित्वोपदेशं च ददाति स सदा प्रभुः ।
विरागेण समं क्वापि सुखं नैवेह कस्यचित् ॥२४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काश्यां नित्यं महादानं ददातीत्थं महेश्वरः ।
यत्काश्यां प्राणमुत्सृज्य साजुज्यं याति मानवः ॥२४३॥

गर्भवासं न चाप्नोति, भूत्वा शिवसमाः समे ।
नरा नार्यश्च भोगाँस्ते दिव्यान् संप्राप्नुवन्ति हि ॥२४४॥

अद्वयस्योपदेशं च करोति स शिवः स्वयम् ।
लिङ्गदेहं यतस्त्यक्त्वा ब्रह्मलीना भवन्ति हि ॥२४५॥

याचने पर शिवजी ने विष्णु को सर्व श्रेष्ठ विभूति दी, जिससे विष्णु विभूति को धारण करने वाले हुए, वह शिव स्वयं त्याग निरत हुए। और शिवजी सर्वत्र समबुद्धिवाले = समदृष्टि हैं, उत्तम मध्यम और अधम दृष्टिवाले नहीं हैं। और सब को सम देखते हैं, इसी से भस्म चर्मादि का धारण करते हैं। और वह प्रभु शिवजी सदा नग्न स्थिर रह कर, स्वचरित्र से सदा यह उपदेश देते हैं कि इस संसार में विराग के समान सुख कहीं किसी को नहीं है। और महेश्वर शिव काशी में इस प्रकार का महादान सदा देते हैं, आत्मज्ञान देते हैं कि जिससे काशी में प्राण त्याग कर मनुष्य सायुज्य नामक मोक्ष को प्राप्त करता है और काशी में प्राण त्याग कर मनुष्य गर्भवास में नहीं आता है। और नर तथा नारी सभी काशी में प्राण त्यागने वाले शिव के समान होकर, वे सब दिव्य भोगों को सम्यक् प्राप्त करते हैं। वह शिव स्वयम् अद्वैत आत्मा का उपदेश करते हैं कि जिससे सूक्ष्म देह को त्याग कर प्राणी ब्रह्म में लीन होते हैं, निर्वाण पद पाते हैं ॥२४०-२४५॥

उत्तमं मध्यमं हीनं स किञ्चिन्न हि पश्यति ।
सर्वेभ्यश्च समं मोक्षं ददाति करुणानिधिः ॥२४६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्तस्य भक्तिशून्यस्य त्राता शिवसमः सदा।
राजन् कोऽन्योऽस्ति देवोऽत्र समः सर्वस्य रक्षकः।।२४७।।

विष्णोस्तु श्रूयते लोके स्वभावः प्राकृते यथा ।
जने भवति तत्तुल्यो भक्तौ रक्षा न यथा।।२४८।।

हरिश्च सेवकः शम्भुः सेव्य एव हि कथ्यते ।
रामचन्द्रस्ततः श्रीमद्रामेश्वरममन्यत ।।२४९।

वक्ता स्कन्दपुराणस्य व्यासोऽसौ सेवकं हरिम्।
हरं सेव्यमुवाचाथ निश्चितं भारते तथा ।।२५०।।

अप्पय्यदीक्षितो विद्वान् तात्पर्यं भारतस्य तु ।
उक्तवान् गिरिशं सेव्यं हरिञ्चाप्यथ सेवकम् ।।२५१।।

वह शिव उत्तम मध्यम और हीन किसी को नहीं देखते हैं, किन्तु करुणा निधि शिव सब को तुल्य मोक्ष देते हैं। हे राजन्! भक्त और भक्ति रहित का सदा रक्षक शिव के समान अन्य, सब का रक्षक सम देव यहाँ कौन है, अर्थात् कोई नहीं है। और लोक में प्राकृत जन में जैसा स्वभाव होता है, उस के समान विष्णु का स्वभाव सुना जाता है कि भक्ति के रहते उन से रक्षा होती है, अन्यथा नहीं और हरि सेवक तथा शम्भु सेव्य ही कहे जाते हैं, इसी से श्री रामचन्द्र ने राम का ईश्वर रामेश्वर शिव को माना है। और स्कन्द पुराण का वक्ता वह व्यास मुनि भी हरि को सेवक और शिव को सेव्य कहा है। तथा महाभारत में इसी प्रकार सेवकत्व और सेव्यत्व निश्चित है। विद्वान् अप्पय्यदीक्षित ने महाभारत का तात्पर्य कहा है और गिरिश = शिव को सेव्य कहा है और हरि को भी सेवक कहा है ।।२४६-२५१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीकृष्णमर्जुनादींश्च परिजेतुमनीश्वरम् ।
अश्वत्थामानमाह स्म व्यासः कृष्णार्जुनावुभौ ॥२५२॥

शिवभक्तौ ततस्तौ हि रक्षत्येव स्वयं शिवः ।
विष्णोश्च महिमा सर्वः शिवानुग्रहजोऽमलः ॥२५३॥

सेव्यत्वमपि यद्विष्णोस्तदपीशप्रसादजम् ।
शिवश्च सर्वशास्त्राणां प्रतिपाद्यो महेश्वरः ॥२५४॥

भक्तेषु चोत्तमो विष्णुः स तु देवेति कथ्यते ।
महादेवो महेशश्च शिव एव हि केवलः ॥२५५॥

शिवादन्योऽशिवः प्रोक्तस्ततोऽकल्याण एव सः ।
अशुभश्चाशिवं त्यक्त्वा शिवं कल्याणमाश्रयेत् ॥२५६॥

विषं दृष्ट्वा भयं जातं सर्वेषां तु यदा तदा ।
विषं कृत्वा स्वकण्ठस्थं सर्वेषामहरद् भयम् ॥२५७॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनादि को पराजय करने में असमर्थ अश्वत्थामा के प्रति व्यास जी ने कहा कि कृष्ण और अर्जुन ये दोनों शिव भक्त हैं। ततः उन दोनों की रक्षा शिव जी स्वयं करते हैं और विष्णु की सब अमल महिमा शिव के अनुग्रह जन्य हैं। और विष्णु को जो सेव्यत्व भी है, सो शिव की कृपा से जन्य है और शिव सब शास्त्रों का प्रतिपाद्य = विषय हैं, यतः महान् ईश्वर हैं। और शिव भक्तों में विष्णु उत्तम हैं, सो भी देव इस शब्द से कहे जाते हैं। महादेव और महेश तो केवल शिव ही कहाते हैं और शिव से अन्य अशिव कहा गया है, इस से वह अकल्याण स्वरूप ही है। अतः अशुभरूप अशिव को त्याग कर कल्याण रूप शिव का आश्रयण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करे। जिस समय समुद्र मन्थन जन्य विष को देख कर सब को भय उत्पन्न हुआ तो उस समय विष को अपने कण्ठ में स्थिर करके शिवजी ने ही सब के भय को नष्ट किया ॥२५२-२५७॥

तस्यपुत्रो गणेशोऽपि कथ्यते विघ्ननाशकः ।
कार्यें हेतुगुणप्राप्ते हरो विघ्नस्य हारकः ॥२५८॥

जन्ममृत्युसमुत्थं तु दुःखं विघ्नोऽभिधीयते ।
शिवध्यानं समूलं तं नाशयत्येव सर्वदा ॥२५९॥

सेवनीयः सदैकः स शिवो जागर्ति सर्वदा ।
विवेकसहितः सैव समाधिसहितस्तथा ॥२६०॥

तन्त्रे पाशुपते प्रोक्तविधिना तं प्रपूज्य तु ।
तस्य ध्यानं सदा कुर्यान्मुमुक्षुः सुसमाहितः ॥२६१॥

पाश्वरात्रमतं मिथ्या यथा सर्वं तथा जगौ ।
ग्रन्थे परिमले कल्पतरो व्याख्यानरूपके ॥२६२॥

अतः शिवस्य सेवायां स्वमनः स्थापयेद् बुधः ।
यतः स्ववाञ्छितं सर्वं पुरुषार्थमवाप्नुयात् ॥२६३॥

तिस शिवजी के पुत्र गणेशजी भी विघ्न नाशक कहे जाते हैं, तहाँ कार्य में कारण के गुण की प्राप्ति से वस्तुतः शिव ही विघ्नहारक = नाशक हैं। और जन्म मृत्यु से उत्पन्न होने वाला दुःख विघ्न कहा जाता है। तिस मूल सहित विघ्न को शिव का ध्यान ही सर्वदा नष्ट करता है। सदा सेवन के योग्य एक ही शिव ही सदा जागते हैं और वही विवेक सहित तथा समाधि सहित हैं। पाशुपततन्त्र में कथित विधि से उस शिव की पूजा करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुमुक्षु पुरुष सदा सुसमाहित = एकाग्र होकर उस शिव का ध्यान करे। और नारद पञ्चरात्र का सूब मत जिस प्रकार मिथ्या है, तिस प्रकार सबको कल्पतरु के व्याख्यान रूप परिमल नामक ग्रन्थ में कहा है। अतः शिव की सेवा में विद्वान् मन को स्थिर करे, कि जिस सेवा से अपने वाञ्छित सब पुरुषार्थ को प्राप्त करें। २५८-२६३ ॥

...रिया, (का. हि. वि. वि.) वाराणसी

शैवः शिवस्य पुत्रं तु गणेशं प्रोक्तवाँस्तथा।
कारणस्य गुणः कार्ये गणेशे वर्णितोऽप्यभूत् ॥२६४॥
श्रुत्वागणेशभक्तस्तद् वचनं क्रोधमूर्च्छितः।
उवाच श्रूयतां राजन्निमौ मिथ्याप्रभाषिणौ ॥२६५॥

शिवस्य पुत्रतामुक्त्वा गणेशे परतन्त्रताम्।
उक्तवाँस्तत्र ते तथ्यं प्रसङ्गं कथये शृणु ॥२६६॥
पुरत्रयस्य नाशाय देवा हरिहरादयः।
गणेशमप्रपूज्यैव प्रोद्यता अभवन् पुरा ॥२६७॥

किन्तु नाशक्नुवन् हन्तुं तदा तं परिपूज्य तु।
त्रिपुरं हतवन्तस्ते देवा नास्त्यत्र संशयः ॥२६८॥
तस्मात्स एव पूज्यश्च सेव्यः सत्यः सनातनः।
रामोदाशरथिर्यद्वत्तथा शिवसुतोऽस्त्ययम् ॥२६९॥

प्रथम शैवभक्त ने शिव के पुत्र गणेश को कहा है तथा कारण रूप शिव के गुण का कार्य रूप गणेश में वर्णित हुआ है। गणेश का भक्त उक्त बचन को सुनकर और क्रोध से मूर्छित होकर बोला कि हे राजन्! सुनो, ये वैष्णव और शैव दोनों मिथ्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभाषण करने वाले हैं। क्योंकि गणेश में शिवपुत्रता को कह कर, जो गणेश की परतन्त्रता को कहा है, इस विषय में एक सत्य प्रसङ्ग मैं तुम से कहता हूँ, सो तुम सुनो। त्रिपुरा नामक असुर के पुरत्रय के नाश के लिये, गणेश को पूजे बिना हरिहरादि सब देव प्रथम अत्यन्त उद्यत हुए, किन्तु उसका नाश नहीं कर सके, तो उस गणेश की पूजा करके उद्यम करने पर वे देवों ने त्रिपुर को नष्ट किया, इसमें संशय नहीं है। अतः वह गणेश ही पूज्य और सनातन = अनादि सत्य सेव्य हैं। किन्तु जैसे पूज्यादि होते भी रामदाशरथि = दशरथ के पुत्र हैं, तैसे ही गणेश शिव के पुत्र हैं॥ २६४-२६९॥

गणेशाख्यं पुराणं च व्यासो रचितवान् स्वयम्।
तत्र सर्वस्य हेतुत्वं गणेशस्यैव चोक्तवान्॥२७०॥

हरिश्शम्भुस्तथा ब्रह्मा सूर्यः शक्तिः सुरादयः।
जायन्ते तुण्डितः सर्वे नात्र कार्या विचारणा॥२७१॥

यस्मिन् क्षणे जनो ध्यानं करोति तस्य मानसे।
तत्कालं हरते विघ्नान् गणेशो गणनायकः॥२७२॥

अतो विघ्नहरो देवो जागर्ति सर्वदा ततः।
भक्त्या तं सेवतां राजन् भवाँस्तद्गतमानसः॥२७३॥

गणेशे शक्ति हेतुत्वं श्रुतवान् सर्वथा सुधीः।
शक्तिभक्तो विचार्याथ ह्युवाच वचनं त्विदम्॥२७४॥

राजन् शृणु सुवाक्यं मे त्रयोऽप्येतेऽनृताश्रयाः।
शक्तिं विनाऽखिला देवा मृततुल्या न संशयः॥२७५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणेश नामक पुराण को व्यासदेव ने स्वयं रचा है और उस पुराण में सब संसार के हेतुत्व = कारणत्व को गणेश को ही कहा है। विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, शक्ति और देवादि सब तुण्डी = गणेश से ही उत्पन्न होते हैं, इसमें विचार कर्तव्य नहीं है, क्योंकि यह निश्चित सिद्धान्त है। और मनुष्य जिस क्षण में उस गणेश का ध्यान अपने मन में करता है, उस काल में ही गणों का नेता गणेश विघ्नों को हरते हैं। अतः विघ्ननाशक गणेश देव ही सदा जागते हैं। हे राजन्! ततः = तिस कारण से तद्गत मन वाला होकर आप भक्ति से उस गणेश की ही सेवा करो। इस प्रकार गणेश में सर्वथा शक्ति की हेतुता = कारणता को विद्वान् शक्ति का भक्त सुना, फिर विचार कर यह वक्ष्यमाण वचन बोला, कि हे राजन्! मेरा वचन सुनो, ये वैष्णवादि तीनों ही मिथ्या आश्रय वाले हैं, क्योंकि शक्ति के बिना सब देव मृतक तुल्य हैं ॥ २ ०-२७५ ॥

शक्तिहीनो जनो लोकेऽसमर्थः कथ्यते सदा ।
न तेन कार्यसिद्धिश्च जायतेऽत्र कथञ्चन ॥२७६।
शक्तेरुपासनं यैस्तु बहुधैव कृतं पुरा ।
ततस्तैः सकलं प्राप्तमधिकारादिकं शुभम् ॥२७७॥
हरिः शम्भुर्गणेशाद्याः प्रधाना दृष्टिगोचराः ।
तेषु चान्यत्र दृश्यन्ते शक्तयो या पृथग्विधाः ।२७८॥
भगवत्याः समेंऽशास्ते दृश्यन्ते ह्यन्यथाऽन्यथा ।
भगवत्याः न भिन्नाश्च विद्यन्ते शक्तयः क्वचित् ॥२७९॥
सामान्यं च विशेषश्च स्वरूपं द्विविधं सदा ।
वर्तते भगवत्यास्तु सामान्यांशा अनन्तकाः ॥२८०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते न्यूनाधिकभावेन वर्तन्ते देवतादिषु ।
तन्निमित्तक ऐश्वर्यभेदः सर्वत्र दृश्यते ॥२८१॥

शक्ति से रहित जन लोक में सदा असमर्थ कहा जाता है और उस शक्ति हीन से यहाँ कार्य की सिद्धि किसी प्रकार नहीं होती है और जिन लोगों ने प्रथम शक्ति की उपासना बहुत प्रकार से की है, उस उपासना से ही उन लोगों ने अधिकारादि सब शुभ को प्राप्त किया है। विष्णु, शिव, और गणेशादि जो प्रधान दृष्टि श्रुति गोचर = विषय हुए या होते हैं, उन प्रधानों में या अन्यत्र = अन्य में जो अनेक प्रकार की शक्तियाँ देखी सुनी जाती हैं, वे सब भगवती के अंश हैं और अन्य अन्य प्रकार से दीखते हैं, परन्तु भगवती से भिन्न शक्तियाँ कहीं है नहीं। भगवती के सामन्य और विशेष दो प्रकार के स्वरूप सदा रहते हैं, तहाँ भगवती के सामान्य अंश अनन्त हैं। और वे ही सामान्यांश न्यूनाधिक भाव = स्वरूप से देवता आदि में रहते हैं और उस सामान्यांश निमित्तक = सामान्यांशजन्य ऐश्वर्य का भेद सर्वत्र देखा जाता है ॥२७६-२८१॥

निराकारांशसाम्येन साकारांशोऽप्यनन्तकः ।
काली तत्र प्रधानाथ त्वन्या गौण्य उदाहृताः ॥२८२॥

विधिर्हरिहराद्याश्च सर्वे ध्यायन्ति तामतः ।
तस्याः कृपालवात्तस्या अंशांश्च प्राप्नुवन्ति ते ॥२८३॥

उपासनस्य संसिद्धौ ध्याता ध्येयत्वमाव्रजेत् ।
हरेश्चैवं हरस्यापि ह्यासीत्संसिद्धिरागता ॥२८४।
अतस्तौ नरतां त्यक्त्वा नारीत्वं विमलाद्भुतम् ।
प्राप्तवन्तौ स्वकार्येण मोहिन्यर्धनरेश्वरौ ॥२८५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वामतन्त्रमतेनापि सेवनीया सदैव सा।
महामाया यया शीघ्रं प्राप्यन्ते सर्वसिद्धयः ॥२८६॥
"मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रां मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहु र्योगिनां मुक्तिदायकम् ॥२८७॥

निराकार शक्ति के अंशो की समता से साकार के अंश भी अनन्त हैं, तिन में काली प्रधान है और अन्य अंश गौणी शक्ति कही गई है। अतः ब्रह्मा, हरि, हरादि सब उस का ध्यान करते हैं और उस की कृपा के लवमात्र से वे सब उसके अंशां को प्राप्त करते हैं। उपासना की सम्यक् सिद्धि होने पर उपासक उपास्य रूपता को प्राप्त होता है और विष्णु तथा शिव को भी शक्ति की उपासना की सम्यक् सिद्धि प्राप्त हो गई थी। अतः वे दोनों अपने कार्य वश नरता को त्याग कर विमल अद्भुत नारीत्व को प्राप्त करने वाले मोहिनी और अर्ध नारीश्वर हुए। वाम तन्त्रमार्ग से भी वह महामाया सदा सेवन योग्य हैं, कि जिस से सब सिद्धियाँ शीघ्र प्राप्त होती हैं। वाम तन्त्र में मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन ये पाँच मकार योगियों के मुक्तिदायक कहते हैं ॥२८२-२८७॥

व्योमपङ्कज निःस्यन्दसुधापानरतो नरः।
मधुपायी समः प्रोक्तस्त्वितरे मद्यपायिनः ॥२८८॥

जिह्वया गलसंयोगादमृतं पीयते तदा।
योगिभि र्यतचित्तैस्तु न मद्यं गौडपैष्टिकम् ॥२८९॥

पुण्यपापे पशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं मांसाशी स निगद्यते ॥२९०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गङ्गायमुनयो र्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा ।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः ॥२६१॥

सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेन बन्धनम् ।
असत्सङ्गमुद्रणं यत् तन्मुद्रा परिकीर्तिता ॥२६२॥

ईडापिङ्गलयोः प्राणान् सूष्मणायां प्रवर्तयेत् ।
सुष्मणा शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः ।
तयोस्तु सङ्गमे देवैः सुरतं नाम कीर्तितम् ॥२६३॥

व्योमपङ्कज=सहस्रदल कमल से निःस्यन्द गमन वाला सुधा=रस विशेष के पान रत खेचरी मुद्रा वाला योगी नर मधु=मद्यपायी और समता युक्त कहा गया है, अन्य संसारी केवल मद्यपायी हैं। गले में जिह्वा के संयोग से जिह्वा द्वारा उस समय यतचित्त वाले योगियों से अमृत पिया जाता है, गुड़ और पिष्ट से बना हुआ मद्य नहीं पिया जाता है। योगवेत्ता ज्ञानरूप खड्ग से पुण्य पाप रूप पशु को मार कर, परतत्त्व में चित्त का लय करता है, वही मांसाशी कहा गया है। गङ्गा यमुना=ईडा पिंगला के मध्य में प्राण अपान रूप दो मत्स्य सदा चरते=चलते हैं, उनका जो भक्षण करे, उन्हें सुष्मणा में स्थिर करे, वह मत्स्यसाधक कहा जाता है। सत्सङ्ग से मुक्ति होती है, असत् के सङ्ग से बन्धन होता है, तहाँ असत्सङ्ग का जो मुद्रण=त्याग=आवरण होता है, वह मुद्रा कही गई है। ईडा और पिङ्गला=चन्द्र, सूर्य नाडी के प्राणों को सुष्मणा में प्रवृत्त करे, क्योंकि सुष्मणा शक्ति कही गई है और यह जीव पर शिव है, तहाँ शिव शक्ति के सङ्गम होने पर देवों से सुरत=मैथुन नाम कहा गया है ॥ २८८-२९३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्थं वामाख्यतन्त्रं प्राक् शुद्धमासीत् सुनिर्मलम् ।
तत्पापजनसंसङ्गात्पापात्मकमभूत्पुनः ॥२६४॥

शुद्धमार्गेण मायाख्यामीशशक्तिं प्रपूजयन् ।
प्राप्नोति तेन तुल्यं हि शुद्धतामप्यसङ्गताम् । २६५।

"प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्"॥२६६॥

शुद्धमार्गात्परिभ्रष्टा अशौचाः कामिनः सदा ।
भोगैर्मोक्षं वदन्तीह मांसादिनिरता नराः ॥२६७॥

स्वतुल्यान् पूर्वजाँश्चैव मन्यन्ते पुरुषोत्तमान् ।
पापिनस्ते हि नरकान् प्रयान्त्यत्र न संशयः ॥२६८॥

"द्यूतं च मद्यं पिशितं च वेश्या
पापर्द्धिचौर्यौं परदारसेवा ।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके
घोरातिघोरं नरकं नयन्ति" ॥२६९॥

इस प्रकार खेचरी मुद्रा आदिरूप से प्रथम वामन्तन्त्र शुद्ध अत्यन्त निर्मल था, सो फिर पापी जनों के सङ्ग से पापात्मक हो गया। परन्तु शुद्ध मार्ग से माया नामक ईश्वर की शक्ति की श्रेष्ठ पूजा करता हुआ मनुष्य उस ईश्वर के तुल्य शुद्धता असङ्गता को प्राप्त करता है। सो शास्त्र कहता है कि प्राणायामों से दोषों को, धारणाओं से किल्विष = पाप को, प्रत्याहार से संसर्ग को और ध्यान से अनीश्वर गुण अशुद्धिसङ्गादि को नष्ट करे। शुद्धमार्ग से पतित

२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शौच रहित सदा कामी मांसादि में निरत मनुष्य यहाँ भोगों से ही मोक्ष कहते हैं और अपने शुद्ध पूर्वजों को पुरुषोत्तमों को भी अपने तुल्य मांसाशी मद्यपादि मानते हैं, वे पापी नरकों में जाते हैं, इस में संशय नहीं है। क्योंकि द्यूत = जूआ, मद्य, वेश्या, मांस पापार्द्धि = मृगया = शिकार, मृगया सहित चौर्य = चोरी और पर स्त्री का सेवन ये सात व्यसन घोर से अतिघोर नरक में ले जाते हैं ॥२९४–२९९॥

व्यसनं व्यस्यति श्वभ्रे संनाशयति सर्वथा ।
ततस्तत् परितो बुद्ध्वा त्याज्यमेव सुखेच्छुभिः ॥३००॥

व्यसनं मृत्युतो घोरं मृत्यु र्हन्ति कलेवरम् ।
व्यसनं सर्वधर्मादिसहितां देहिनस्तनुम् ॥३०१॥

अतोऽत्र व्यसनं त्यक्त्वा शक्तिमेव भजेन्नरः ।
तेषामित्थं वचः श्रुत्वा सूर्यभक्तो मुनिः शुचिः ॥३०२।

उवाच क्रोधताम्राक्षः शृणु राजन् वचो मम ।
सत्यं वच्मि मतं हीदं पापिष्ठं विद्धि सर्वथा ॥३०३॥

सर्वदोषः कुभोगेषु वर्तते नात्र संशयः ।
विपरीतो मते त्वस्मिन् व्यवहारोऽस्ति सर्वथा ॥३०४॥

किञ्च सूर्यं विना देवाः सर्वेऽप्यन्धा भवन्ति हि ।
येषु चैषां मनो लग्नं वर्तते केशवादिषु ॥३०५॥

सर्वे प्रकाशका लोके सूर्यस्यैवांशरूपिणः ।
सूर्यः परहितप्रेप्सु र्भ्रमतीह निरन्तरम् ॥३०६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यसन नरकादिरूप श्वभ्र = खढ्ढे में गिराता है और सर्वथा = सम्यक् नाश करता है, अतः उस को सर्वथा समझ कर सुखेच्छु को उसे त्यागना ही चाहिये। व्यसन मृत्यु से भयंकर है क्योंकि मृत्यु शरीर मात्र को नष्ट करता है और व्यसन सब धर्मादि सहित देही के देह को नष्ट करता है अतः यहाँ व्यसन को त्याग कर मनुष्य शक्ति का ही भजन करे, इस प्रकार उन वैष्णवादि के वचनों को सुन कर सूर्य का भक्त पवित्र मुनि क्रोध से ताम्र तुल्य आँख वाला होकर बोला, कि हेराजन् ! मेरा वचन सुनों, मैं सत्य कहता हूँ। इस वाम मत को सर्वथा पापिष्ठ = अत्यन्त पाप रूप समझो, क्योंकि कुभोग में सब दोष रहता है, इसमें संशय नहीं है। और इस मत में सर्वथा विपरीत व्यवहार है। और दूसरी बात है कि सूर्य के विना सब देव भी अन्ध होते हैं। और जिन केशव = विष्णु आदि में इन लोगों का मन लगा है, वे भी अन्ध होते हैं। सभी प्रकाशक पदार्थ लोक में सूर्य के ही अंश स्वरूप हैं और परहित की प्राप्ति के इच्छुक होकर सूर्य यहाँ सदा भ्रमण करते हैं ॥२०९–३०६॥

तत्तुल्यो वर्तते नैव कश्चित्सर्वोपकारकः ।
तेन भूतादि कालस्य यतः सिद्धिः प्रजायते ॥३०७॥
कालाच्च जायते सर्वं सूर्योऽतः सर्वकारणम् ।
तस्य कोपेन कल्पान्ते नाशः सर्वस्य जायते ॥३०८॥

निराकारोऽथ साकारो द्विविधो वर्तते रविः ।
निराकारस्तु सर्वत्र व्यापको नामरूपयोः ॥३०९॥
अधिष्ठानं स सर्वस्य भातिशब्देन कथ्यते ।
यदज्ञानाद् विवर्तं च प्रभवत्यखिलं जगत् ॥३१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहं भानुरितीत्थं च विज्ञानं जायते यदि ।
तदा तत्राभिभातोऽसौ हन्ति स्वात्माश्रितं तमः ।।३११।।

तमो नाशेन जन्मादि दुःखं नश्यति हि ध्रुवम् ।
तस्मात्स एव बोधव्यो ध्येयश्चैष सदा बुधैः ।३१२।।

ध्येयः साकार एवासौ प्रसिद्धो लोकवेदयोः ।
ज्ञेयश्च स निराकारो वेदस्तं भासते चितिम् ।।३१३।।

उस सूर्य के तुल्य सर्वोपकारक लोक में कोई नहीं है, जिससे उस सूर्य से ही भूतभावी वर्तमान काल की सिद्धि होती है और काल से सब कार्य उत्पन्न होता है, अतः काल द्वारा सूर्य सबका कारण है और कल्प के अन्त में उस सूर्य के कोप से ही सबका नाश होता है। निराकार और साकार दो प्रकार के सूर्य हैं। तहाँ निराकार सर्वत्र नाम रूप में व्यापक है और वह निराकार सूर्य का स्वरूप सबका अधिष्ठान है, वह भाति शब्द से कहा जाता है और जिसके अज्ञान माया शक्ति से सम्पूर्ण जगत् रूप विवर्त्त = मिथ्याकार्य होता है, मैं उस निराकार भानु स्वरूप हूँ, यदि ऐसा विज्ञान होता है, तो उस विज्ञान में प्रकाशित वह सूर्य निजात्माश्रित तम अज्ञान को नष्ट करते हैं और अज्ञान के नाश से जन्मादिरूप दुःख संसार अवश्य नष्ट होता है, अतः वह सूर्य ही विद्वानों से ज्ञेय और सदा ध्येय भी यही हैं। परन्तु लोक वेद में प्रसिद्ध साकार ही वह सूर्य ध्येय है और निराकार सूर्य ज्ञेय है, उस निराकार को वेद चिति कहता है ॥ ३०७-३१३ ॥

निराकारोऽगुणं ब्रह्म साकारः सगुणं हि तत् ।
तत्र नैव तमोलेशः संवृति र्वापि वर्तते ।।३१४।।

यं दृष्ट्वाऽन्योऽपि जागर्ति स जागर्ति सदा रविः ।
तद्ध्यायिनां नराणां तु तमो नश्यति संततम् ।।३१५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जागर्तिमन्यदेवानां पुरुषाः प्रवदन्ति ये ।
मिथ्या वदन्ति तद्वाक्ये तथ्यं किञ्चिन्न विद्यते ॥३१६॥
पञ्चोपासकभक्तै हि पृथक् पृथगुदाहृतम् ।
स्वं स्वं मतमथान्यैश्च पण्डितैः कथितं मतम् ॥३१७॥
विरुद्धं तन्मतं तेषां श्रुत्वा राज्ञो निजे हृदि ।
नूतनः संशयो जातः सत्यवक्ताऽत्रकोऽस्ति हि ॥३१८॥
सर्वे वदन्ति युक्तिं च प्रमाणं वर्णयन्ति च ।
क उपास्योऽत्र देवः स्यान्निश्चयो न हि जायते॥३१९॥
इत्थं चिन्तयतस्तस्य कालो बहुरगादथ ।
आगत्य तर्कदृष्टि र्वै प्राप्तोऽभूत् स्वसुतः स्वयम् ॥३२०॥

निराकार सूर्यं निर्गुण ब्रह्म हैं और साकार सगुण ब्रह्म हैं। उस सूर्य में तम का लेश या संवरण=आवरण नहीं रहता है। जिस सूर्य को देखकर अन्य भी जागता है, सो रवि सदा जागता है, उसको ध्यान करने वाले नरों का संतत तम नष्ट होता है। जो पुरुष अन्य देवों की जागृति को कहते हैं, सो मिथ्या कहते हैं। उनके वाक्य में सत्य कुछ नहीं है। उक्त रीति से पांच उपासक भक्तों से अपना अपना मत पृथक् पृथक् कहा गया, अन्य पण्डितों से भी पृथक् पृथक् मत कहे गए। उनके वे विरुद्ध मतों को सुनकर राजा के अपने हृदय में नवीन संशय उत्पन्न हुआ कि इनमें सत्य-वक्ता कौन हैं। अपने मत में सब युक्ति कहते हैं और प्रमाण का वर्णन करते हैं। अतः इनमें कौन देव उपास्य होगा, यह निश्चय नहीं होता है। इसी प्रकार चिन्ता विचार करते हुए राजा का बहुत समय जाने पर तर्कदृष्टि नामक अपना पुत्र स्वयं आकर मिला ॥ ३१४–३२० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्परं मिलित्वा तौ पितापुत्रानुसारतः ।
प्रणामाशीर्वचोऽन्ते च पीठे जगृहतु मुंदा ॥३२१॥

आलक्ष्याथ पितुश्चिन्तां तर्कदृष्टिरुवाच तम् ।
का चिन्ता वर्तते चित्तो मुखं म्लानं प्रदृश्यते ॥३२२॥

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा स्वकथामुक्तवाँस्तु सः ।
उपास्यस्याऽपरिज्ञानं चिन्तायाः कारणं मम ॥३२३॥

पितुः स वचनं श्रुत्वा तर्कदृष्टिरुवाच तम् ।
यथा पितु र्भवेत् सौख्यं संशयस्य विनाशतः ॥३२४॥

भोस्तात ! कारणं[1] ब्रह्म सूपास्यमिति निश्चिनु ।
तस्य नामान्यनन्तानि विद्धि सर्वेशितुस्तथा ॥३२५॥

कार्यरूपं जगत्तुच्छं ज्ञात्वा तत्त्यज्यतां त्वया ।
अयमेवास्ति वेदानां सिद्धान्तस्तं त्वमाश्रय ॥३२६॥

पिता और पुत्रके अनुसार से वे दोनों परस्पर मिलकर, प्रणाम आशीर्वाद वचन के अन्त में आनन्द पूर्वक पीठ=आसन का ग्रहण किए, आसनों पर बैठे। फिर पिता की चिन्ता को समझ कर तर्क-दृष्टि ने उस से कहा कि चित्त में कौन चिन्ता है ? मुख मलिन दीखता है। पुत्र के वचन को सुनकर उस राजा ने अपनी कथा कही और कहा कि उपास्यदेव का अपरिज्ञान मेरी चिन्ता का

१—ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् । न्यायसूत्र अ० ४।१।१९।
ईशसूत्रविराड्वेधोविष्णुरुद्रे न्द्रवह्नयः । ईश्वराः सर्वं एवैते पूजिताः फलदायिनः॥
पञ्चदशो ६।६८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण है। उस तर्कदृष्टि ने पिता के वचन को सुन कर, पिता को ऐसा वचन कहा कि जिस प्रकार संशय के नाश से पिता को सुख हो। हे तात! कारणरूप ब्रह्म सुन्दर उपास्य है, ऐसा निश्चय करो और उस सर्वेश्वर के अनन्त नाम समझो। कार्यरूप जगत् को तुच्छ जान कर, उसे आप त्यागो (उस में सत्यता की बुद्धि त्यागो) यही वेद का सिद्धान्त है, उस का स्वीकार करो ॥३२१-३२६॥

इतिहासपुराणानि वेदव्यासो व्यरीरचत् ।
तेषामयं हि सिद्धान्त एको नानाविधो नहि ॥३२७॥
विचारेण विना चैतन्मर्मज्ञानं विनैव हि ।
पण्डिता विवदन्तोऽत्र खण्डयन्ति परस्परम् ॥३२८॥
नीलकण्ठो बुधो व्याख्यां भारते कृतवान् सुधीः ।
तत्रारम्भे हि सिद्धान्तोऽयमेव समुदीरितः ॥३२९॥
एकस्य स्तुतये चान्यनिन्दा तु बहुशः श्रुता ।
पुराणेषु न चान्यस्य हानार्थं निन्दनाय वा ॥३३०॥
अन्यथा सर्वनिन्दायां सर्वत्यागप्रसङ्गतः ।
एकव्यासकृतिः सर्वा सर्वथाऽनर्थिका भवेत् ॥३३१॥
उदितेऽनुदिते चैव नित्यहोमं विधाय हि ।
वेदेऽप्युभयनिन्दा च वर्तते सा यथा तथा[1] ॥३३२॥

१—अभ्युपेत्य कालभेदे दोष वचनात् । न्यायसू० अ०२।१।५९

"उदिते जुहोति, अनुदिते जुहोति समयाध्युषिते जुहोति" इति विषयः ।
"श्यावोऽस्याहुतिमभ्यवहरति य उदिते जुहोति, शवलोऽस्याऽऽहुतिमभ्यवहरति योऽनुदिते जुहोति, श्यावशवलावस्याहुतिमभ्यवहरतो यः समयाध्युषिते जुहोति" इति निन्दा वचनानि ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वत्रैव पुराणादौ ज्ञेयमन्यस्य निन्दनम् ।
एकस्य स्तुतये तत्र श्रद्धया सम्प्रवृत्तये ॥३३३॥

इतिहास और पुराणों को वेदव्यास जी ने रचा है, उन सबका यह उक्त ही एक सिद्धान्त है, नाना विध नहीं। विचार और इस मर्म = रहस्य ज्ञान के बिना ही इस उपास्य के विषय में पण्डित सब भी विवाद करते हैं और परस्पर खण्डन करते हैं सुन्दर बुद्धिमान् नीलकण्ठनामक बुध = पण्डित ने महाभारत विषयक व्याख्या किया है, तहाँ उस व्याख्या के आरम्भ में यही सिद्धान्त कहा है। पुराणों में एक की स्तुति के लिये अन्य की निन्दा बहुत सुनी गई, अन्य की निन्दा या त्याग के लिये निन्दा नहीं है। अन्यथा त्याग और निन्दा के लिये होने पर एक व्यास कृति = कार्य इतिहास पुराण सब सर्वथा अनर्थक होगा। जैसे वेद में सूर्य के उदित और अनुदित काल में (उदिते जुहोति-अनुदिते जुहोति) इस प्रकार नित्याग्निहोत्र का विधान करके दोनों की निन्दा है। इसी प्रकार पुराणादि में सर्वत्र ही अन्य की निन्दा को एक की स्तुति और श्रद्धा से एक में प्रवृत्ति के लिये समझना चाहिये॥ ३२७-३३३ ॥

उदिते होत्रमारभ्याऽनुदिते कर्तुमिच्छतः ।
समारभ्यानभ्युदिते वोदिते कर्तुमिच्छतः ॥३३४॥

निरोधाय तथाऽऽरब्धनियमाय श्रुते र्वचः ।
उदितानुदितनिन्दां तु करोति क्रमलङ्घने ॥३३५॥

तथा नियमतो नित्यमेकोपासनसिद्धये ।
श्रद्धाया दृढतायै चाप्यन्यनिन्दां प्रवर्तते ॥३३६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सात्त्विका[1] देवताः सर्वा जीवाः स्वकर्मभोगिनः ।
तथापि दिव्यतायोगादैश्वर्यगुणसम्भृताः ॥३३७॥

ऐश्वर्यं प्राक्तपोयोगात्तत्रोत्तमसमाश्रये ।
ध्यातः कारणरूपेशो ददाति बहुलं फलम् ॥३३८॥

उदित काल में अग्नि होत्र का आरम्भ करके अनुदित रहते जो अग्नि होत्र करना चाहता है या अनभ्युदित में आरम्भ करके उदित काल में करना चाहता है, उसके निरोध के लिये श्रुति का निन्दा रूप वचन है। और आरम्भ के अनुसार नियम के लिये, क्रम के उलङ्घन प्राप्त होने पर उदित अनुदित दोनों की निन्दा श्रुति करती है। इसी प्रकार नियम से सदा एक उपासना की सिद्धि के लिये और एक में श्रद्धा की दृढ़ता के लिये भी पुराणादि में अन्य की निन्दा प्रवृत्त होती है। यद्यपि सात्त्विक देव सभी अपने कर्मों को भोगने वाले जीव हैं, तथापि दिव्यता के सम्बन्ध से ऐश्वर्य गुण से संभृत=पुष्ट पूर्ण हैं। पूर्वार्जित तप के सम्बन्ध से उन में ऐश्वर्य होता है, तिस उत्तम सुन्दर आश्रय में ध्यात=ध्यान का विषय किया गया कारणरूप ईश्वर बहुत फल देता है ॥३३४-३३८॥

१—धर्माद् देवत्वमेति व्रजति पुनरधः पातकैः स्थावरादीन् देहान् प्राप्य प्रणश्यन् क्वचिदपि लभते मानुषत्वं च ताभ्यां ॥ धर्मज्ञानोभयेन व्रजति विधिपदं मुच्यते कोऽपि तस्मिन्, रागी प्रत्येति भूयो जनिमृतिविषमं वम्भ्रमीतीह लोकः ॥१॥ इत्थं यः कर्मबद्धो भ्रमति परवशः प्राणभृज्जन्मसङ्घैः, दुःखस्यान्तं न वेत्ति स्मरति न जनिव्रातमज्ञानयोगात् । तं सर्वानर्थमूलप्रशमनविधिना स्वात्मराज्ये निषेक्तुं तात्पर्येण प्रवृत्ताः श्रुतिशिखरगिरः सूत्रभाष्यादयश्च ॥२॥ स्वराज्य सिद्धौ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईशः शक्त्याऽभितस्तत्र व्यक्तो भवति तेन ते ।
ईश्वरा[1] एव कथ्यन्ते नेशो नाना तु विद्यते ॥३३९॥

ईश्वर अपनी माया रूप शक्तिद्वारा उन देवताओं में व्यक्त होता है, इस से वे देव ईश्वर ही कहे जाते हैं, परन्तु ईश्वर नाना —अनेक नहीं है ॥३३९॥

१—अत्रायं विचारः। सच्चिदानन्दं ब्रह्मैकमेवाखण्डं च वर्तते, परमविभुसामान्यचैतन्यं च तत्कथ्यते। अत्रोपास्योपासकादिभेदो न वर्तते। मायाविशिष्टः सर्वज्ञतादियुक्तस्तस्मिन् ब्रह्मण्येवानादिसिद्ध ईश्वरो वर्तते। तस्योपाधिविशेषणरूपमायायां ह्यनन्ताः शक्तयः (पराऽस्यशक्ति र्विविधैव श्रूयते) इत्यादि श्रुतितः सिद्ध्यन्ति, मायिनीश्वरे ह्युपाधिस्वरूपमायायाम् अतिरिक्ता अपि मायाशक्तयोऽनन्ता विद्यन्ते याभिः स बहुरूपतामपि प्राप्नोति (इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते) इत्यादि श्रुत्यनुसारात्। एवं यद्यपि (श्रुतेश्च। ब्रह्म सू० अ० १।२।६) देहेन्द्रियमनोबुद्ध्याद्युपाधिभिः परिच्छिद्यमानो बालैः शारीर (जीव) इत्युपचर्यते। इत्यादि भाष्यात् केवलं देहादिभिः परिच्छिन्नचेतनो जीवः प्रतीयते, तथापि भाष्ये आदि शब्देनाविद्याया ग्रहणात्, तथा (आभास एव च। ब्रह्म सू० अ० २।३.५०) इत्यादि सूत्र श्रुति वचनानुसारेणाविद्यान्तःकरणेषु चिदाभासस्य जीवस्वरूपेऽन्तर्गत्वात्। व्यष्टिमायावस्थात्मकाविद्यान्तःकरणादिविशिष्टमविद्याप्रयुक्तं जीवस्य व्यावहारिकं स्वरूपं सिद्ध्यति, पारमार्थिकं तु ब्रह्मैव। यथा मायायामीश्वरेऽनन्ता मायाशक्तयो वर्णिता, तथैवाविद्यायां जीवेऽपि ह्यविद्याप्रयुक्तेऽनन्तशक्त्यात्मिका अनन्ता अज्ञानशक्तयो विषय भेदेन भिन्ना जीवोपाधिभूताविद्याया अपि भिन्नाः संकोचविकाशशीला वर्तन्ते। अत एव च (तादृशानां—अनाद्यविद्याऽवच्छेदलब्धजीवभावानां, जीवानामविद्या न तु निरुपा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मविष्णुशिवादीनि नामानि ब्रह्मणः खलु ।
कारणब्रह्मणस्तद्वत्कार्याख्य ब्रह्मणोऽपि हि ॥३४०॥
ब्रह्मपरपुराणेषु ब्रह्मशब्देन चेश्वरः ।
कथ्यते विष्णुशब्दाद्यै रनीशोऽत्राभिधीयते ।३४१॥
विष्णुपरपुराणेषु विष्णुशब्दात्तथेश्वरः ।
अन्यशब्दैरनीशाश्च कथ्यन्तेऽन्यत्र बुध्यताम् ॥३४२॥

वस्तुतः—तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तदब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥३४३॥
यजुः । अ० ३२।१।

धिनो ब्रह्मणः) इत्यादि श्रीवाचस्पतिमिश्रैरुक्तम् । तासु च जीवाविद्यासु काचिद् ब्रह्मात्मविषयाऽनादिर्महत्यविद्या वर्तते, या सर्वानर्थकरी भवति, तां बिना त्वन्या अकिञ्चित्कर्य इति मन्तव्यम् । ब्रह्मात्मविषयाया ब्रह्मात्मज्ञानेन निवृत्तिकाले एव जीवोपाधिभूताप्यविद्या बाधिता भृष्टबीजतुल्या सम्पद्यते, समानयोगक्षेमत्वात् । तथाऽविद्यात्वसामान्येन विद्यया सह विरोधिस्वरूपत्वात् । इत्थं ब्रह्मेश्वरजीवभेदेन त्रिविधचेतनसत्त्वेपि वस्तुतत्त्वमेकमद्वैतं ब्रह्मैव विज्ञेयं विद्यते । तथा (नाम रूपे व्याकरवाणि) इति श्रुत्यनुसारेण द्विविधं नामरूपात्मकमेवानात्मतत्त्वं विद्यते । अथवा, नाम रूपं कर्म, इति त्रिविधं वर्तते । तत्सर्वं मायामयं मिथ्येति कथ्यते । ईश्वरः कारणं ब्रह्म कथ्यते । हिरण्यगर्भश्च कार्यं ब्रह्म कथ्यते, स चापञ्चीकृतभूतोत्थलिङ्गशरीरवान् प्राणः सूत्रात्मापि च कथ्यते, तदंशा इव देवाः सर्वे भवन्तीत्यादि ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।३४४।।
कठ० २।४।१०।।बृ०।४।४।१६।।

चिन्मयः परमाकाशो य एव कथितो मया ।
एषोऽसौ शिव इत्युक्तो भवत्येष सनातनः ।।३४५।।
स एष हरिरित्यास्ते भवत्येष पितामहः ।
चन्द्रोऽर्कः इन्द्रो वरुणो यमो वैश्रवणोऽनलः ।।३४६।।
योगवासिष्ठ० प्र० ६–२ । स० ८२।२०–२१।।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेशादि नाम ब्रह्म के और कारण ब्रह्म के और कार्य ब्रह्म के भी हैं। ब्रह्मपरक = ब्रह्मा जिसमें उत्तम माने जाते हैं, उनपुराणों में ब्रह्म शब्द से मायी ईश्वर कहा जाता है। और उस विष्णु शब्दादि से अनीश = जीव कहा जाता है। विष्णु परक पुराणों में विष्णु शब्द से उसी प्रकार ईश्वर कहा जाता है और अन्य शब्दों से जीव कहे जाते हैं। अन्यत्र गणेश सूर्यादि परक पुराणों में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। और वस्तुतः वह कारण ब्रह्म ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुद्ध-ब्रह्म, आप, प्रजापति स्वरूप है। सर्वत्र एक की सत्ता ऐश्वर्य प्रकाशादि हैं। जो ब्रह्म इस लोक में, सो परलोक में है, जो परलोक में सो यहाँ है, जो इसमें नाना के समान देखता है सो मृत्यु से मृत्यु को पाता है। जो मैंने चेतन मय परम आकाश विभु चिदात्मा कहा है, वही यह शिव कहा गया है। यह सनातन = अनादि है। वही चिदाकाश यह हरि है, यही पितामह होता है, चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, वरुण, यम, कुवेर और अग्नि वही है ।।३४०—३४६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मेशविष्ण्वादि शरीरभेदै
विश्वं सृजत्यत्ति च पाति विप्राः ! ।
तमादिदेवं परमं परेश-
माधाय चेतस्युपयाति मुक्तिम् ॥३४७॥

ब्रह्मेन्द्ररुद्रानिलवायुमर्त्य-
गन्धर्वयक्षासुरदेवसङ्घैः ।
स्वमूर्तिभेदैःस्थित एक ईश-
स्तमादिमात्मानमहं भजामि ॥३४८॥
नारदीय पु० अ० १।६६॥ अ० २।३२॥

इत्यादिवचनैस्तावद् भान्ति पञ्च न हीश्वराः ।
ऐश्वर्यस्य तु योगाद्वै बहव ईश्वरा मताः ॥३४६॥
ब्रह्मा चेन्द्रादयो देवाः पञ्चभिन्नाः सदीश्वराः ।
सन्ति यद्यपि तेषां तूपासकाभावतः सदा ॥३५०॥
ईश्वरा नैव गण्यन्ते नोपास्याः कथितास्तथा ।
आपेक्षिकीशता लोके बहुष्वस्ति नरेषु हि ॥३५१॥
एवं सर्वेषु तेष्वेव जीवत्वं वर्ततेऽशतः ।
ईशत्वमंशतश्चैवं निरंशस्त्वेक ईश्वरः ॥३५२॥

हे विप्रों ! ब्रह्मा शिव विष्णु आदि शरीर भेदों के द्वारा जो देव संसार के उत्पत्ति पालन और भक्षण=नाश करता है, उस परेश परम आदि देव को चित्त में धारण करके मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। और ब्रह्मा इन्द्र, रुद्र, अनल, वायु, मनुष्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गन्धर्व, यक्ष, असुर और देवों के समूह रूप अपनी मूर्तियों के भेद द्वारा जो एक ईश्वर स्थिर है, उस सर्वादि आत्मा को मैं भजता हूँ। इत्यादि वचनों से प्रथम पाँच ईश्वर नहीं भासते हैं, किन्तु ऐश्वर्य के सम्बन्ध से बहुत ईश्वर माने गए हैं। ब्रह्मा और इन्द्रादि देव पाँच उपास्य देव से भिन्न यद्यपि सत्य ईश्वर वर्णित हैं, तथापि उनके उपासक के सदा अभाव से ईश्वर नहीं गने जाते हैं। तथा उपास्य रूप नहीं कहे गये हैं। और आपेक्षिकी ईश्वरता तो लोक में बहुत मनुष्यों में भी है। इसी प्रकार उन ईश्वरता वालों में ही अंशरूप से जीवत्व भी रहता है और अंशरूप से ईश्वरता भी रहती है इस प्रकार निरंश ईश्वर तो एक ही है, अनेक नहीं ॥३४७—३५२॥

तदुपाधि र्जगद्बीजमजाशब्देन कथ्यते ।
शुक्ला च लोहिता कृष्णा मायाऽविद्या च सैव हि ।३५३॥
अवस्थाभेदतः सैव बहुरूपा भवन्त्यपि ।
नानेका जायतेऽचिन्त्या माया सानुगता सदा ॥३५४॥
तस्या गुणाख्यशक्तिस्थ इन्द्रोऽपि बहुधा भवन् ।
वस्तुतो बहुधा नैव जायते स कदाचन ॥३५५॥
अत इन्द्रात्मनश्चैव प्रकृतेश्च विचारतः ।
जगच्चराचरमिदं सकलं स्याद् विचारितम् ॥३५६॥
"सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ।
सर्वमात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥३५७॥
आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥३५८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस ईश्वर के उपाधिरूप माया जगत् का बीज है, सोई अजा शब्द से कही जाती है और वह अवस्था भेद से शुक्ला, लोहिता, कृष्णा और अविद्या भी है। वही अवस्था भेद से बहुत रूप वाली होती हुई भी अचिन्त्या माया अनेक नहीं होती है। अनेक में सदा अनुगत वह एक ही रहती है। उसी के गुण नामक शक्ति में स्थिर ईश्वर भी बहुधा होता हुआ भी वस्तुतः वह कभी बहुधा नहीं होता है। अतः एक इन्द्र=आत्मा और एक प्रकृति=माया के विचार से यह सकल चराचर जगत् विचारित होता है। अतः भगवान् मनु कहते हैं कि समाहित होकर सत् असत्=कार्य कारण सब को आत्मा में देखे क्योंकि सबको आत्मा में देखता हुआ पुरुष अधर्म में मन को नहीं प्रवृत्त करता है। आत्मा ही सब देवता स्वरूप है, आत्मा ही में सब जगत् स्थिर है, आत्मा ही ईश्वर रूपता को प्राप्त करके इन शरीरियों=जीवों के कर्मयोग को उत्पन्न करता है ॥३५३—३५८॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥३५९॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माऽभ्येति परं पदम् ॥३६०॥

आत्माऽतो ब्रह्मविष्णवीशगणेशाद्याश्च देवताः ।
प्रकृतिश्च जगत् सर्वं जडं नास्त्यत्र संशयः ॥३६१॥

"आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दृश्यते श्रूयते च यत् ।
सैषा प्रकृतिरित्युक्ता सैव मायेति कीर्तिता ॥३६२॥

सा वा एतस्य सन्द्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिकाः ।
मायानाम महाभाग ! ययेदं निर्ममे विभुः" ॥३६३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं सत्यप्युपासार्थं प्रकृतेः कल्पना पुरुः ।
क्रियते या पुराणेषु किञ्चिदत्रोच्यते शृणु ॥३६४॥

इसी एक परमात्मा को एक कोई अग्नि कहते हैं, अन्य मनु प्रजा-पति कहते हैं, कोई इन्द्र कहते हैं, अन्य कोई प्राण कहते हैं, कोई शाश्वत ब्रह्म कहते हैं। इस प्रकार जो सब भूतों में आत्मा को आत्मा से समझता है, वह सब में समता को प्राप्त करके परं पद ब्रह्म को प्राप्त करता है। अतः ब्रह्मा विष्णु आदि देवता आत्मा हैं और सब जगत् प्रकृति स्वरूप है, इस में संशय नहीं है। ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त जो कुछ देखा और सुना जाता है, सो यह प्रकृति कही गई है और वही माया कही जाती है। हे महाभाग! वह इस सम्यक् द्रष्टा की सदसदात्मक माया नामक शक्ति है कि जिसके द्वारा विभु परमात्मा इस जगत् को रचता है। इस प्रकार प्रकृति के एक और ईश्वर की शक्ति स्वरूप होते भी उपासना के लिये बहुत प्रकृति की कल्पना जो पुराणों में की जाती है, तहाँ कुछ कहा जाता है, सो सुनो ॥३४९—३६४॥

"गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता" ॥३६५॥

सीता तथाऽनसूया च कौशल्या द्रौपदी सती ।
अन्या अपि सुमित्राद्यास्तथा कल्पयितुं क्षमाः ॥३६६॥

उपासनाप्रसिद्ध्यर्थं पञ्चदेवादिकल्पना ।
एवमेवास्ति वेदेऽपिकल्पना बहुरूपिणी ॥३६७॥

एकतत्त्वस्य चाज्ञानात्कलहो वर्तते सदा ।
अयमज्ञोऽस्त्यहं तज्ज्ञ इत्यादि वहुरूपभाक् ॥३६८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वेष्वपि पुराणेषु कारणं ब्रह्म वर्ण्यते ।
तदेकं च सदा शुद्धं मायया कारणं स्मृतम् ॥३६९॥
परिणामो हि मायाया विवर्तो ब्रह्मणो जगत् ।
विवर्तेन त्वधिष्ठाने हानिः क्वापि न जायते ॥३७०॥
तद् ब्रह्मात्मानमाज्ञाय जीवः संसार बन्धनात् ।
मुच्यतेऽज्ञानरूपाद्धि नात्र कार्या विचारणा ॥३७१॥

पार्वती रूप दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री सृष्टि-विधि में ये पाँच प्रकार की प्रकृति कही गई हैं। सीता, अनसूया, कौशल्या, सती द्रौपदी और सुमित्रा आदि भी उस प्रकार प्रकृति रूप से कल्पित हो सकती हैं। परन्तु उपासना की सिद्धि के लिये पञ्चदेव की ईश्वर रूप से कल्पना हुई है, तथा पाँच प्रकृति की कल्पना पुराण में हुई है। और इस प्रकार की बहुत रूप वाली कल्पना वेद में भी है। तहाँ एक सत्य के अज्ञान से बहुत रूप भागी कलह सदा रहता है, कि यह अज्ञ है और मैं तत्त्वज्ञ हूँ इत्यादि। सब पुराणों में कारणरूप ब्रह्म का वर्णन किया जाता है, परन्तु वह एक ब्रह्म तो सदा शुद्ध = कारणतादि रहित है, माया से कारण कहा गया है। माया का परिणाम और ब्रह्म का विवर्त रूप जगत् है और विवर्त से अधिष्ठान में कोई हानि नहीं होती है, अतः ब्रह्म शुद्ध ही रहता है। उस ब्रह्म स्वरूप निजात्मा को अपरोक्ष जानकर, जीव अज्ञानरूप संसार बन्धन से मुक्त होता है, इस में विचारणा नहीं कर्तव्य है, यह निश्चित कथा है ॥३६५४—३७१॥

इत्यादिपुत्र सद्वाक्यं श्रुत्वैव शुभसन्ततिः ।
किञ्चिच्छान्तोऽभवत्तेन पृष्टवाँश्च पुनः सुतम् ॥३७२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनात्मकशास्त्राणि विरुद्धं कथयन्ति हि ।
तत्र सत्यं किमस्त्येवं मिथ्या किञ्च तदुच्यताम् ॥३७३॥

तर्कं दृष्टिस्तु तच्छ्रुत्वा वचनं पितृभाषितम् ।
उवाच वचनं सत्यं सर्वमोहनिवृत्तये ॥३७४॥

वेद वाक्यानुसारित्वाद् ब्रह्म सूत्रं सुमङ्गलम् ।
सोपानारोहयुक्त्या च सर्वं तस्यैव पोषकम् ॥३७५॥

एतत्तत्त्वविवेकेन विनैव बहवो जनाः ।
असत्येष्वाग्रहं कृत्वा मोहान्नश्यन्ति मानवाः॥३७६॥

असत्येष्वाग्रहं त्यक्त्वा शनैर्मार्गेषु संसरन् ।
प्राप्नोति परमं तत्त्वं वेदान्तगुरुवाक्यतः ॥३७७॥

श्रुत्वेत्थं वचनं स्वस्य पुत्रस्य शुभ सन्ततिः ।
शोकं ससंशयं दग्ध्वा हृदये शान्तिमाप्तवान् ॥३७८॥

इत्यादि पुत्र के सद्वाक्य को सुनकर, शुभसन्तति कुछ शान्त उस वाक्य से हुआ और फिर अपने पुत्र को पूछा, कि दर्शन रूप शास्त्र सब परस्पर विरुद्ध ही कहते हैं, तहाँ सत्य कौन है और इसी प्रकार मिथ्या कौन है, सो कहो। तर्कदृष्टि पिता से कथित वचन को सुनकर, सब मोह की निवृत्ति के लिये सत्य वचन बोला, कि वेद वाक्यों के अनुसार होने से ब्रह्मसूत्र अत्यन्त मङ्गल रूप है और अन्य सब वैदिक दर्शन सोपानारोह न्याय से उस ब्रह्मसूत्र का ही पोषक हैं। इस तत्त्व के विवेक के बिना ही बहुत जन मानव=विवेकी=शास्त्रज्ञ होते भी असत्यों में आग्रह करके मोह से नष्ट होते हैं। असत्य अनात्मा भेदादि में आग्रह को त्याग कर वेदशास्त्र-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्गों में धीरे धीरे भी चलता हुआ मनुष्य वेदान्त और गुरु वाक्य से परम तत्त्व को प्राप्त करता है। शुभसंतति ने इस प्रकार के अपने पुत्र के वचनों को सुनकर संशयों के सहित शोक को दग्ध कर के हृदय में शान्ति को प्राप्त किया। ३७२—३७८॥

पुत्रोपदेशमाश्रुत्य शुभसन्ततिरादरात्।
पुत्रमेव गुरुं मत्वा राज्यं तस्मै समर्प्य च ॥३७९॥
कारणब्रह्मणः साङ्गमुपासनमनन्यधीः।
कृतवान् सादरं नित्यं निःश्रेयसफलप्रदम् ॥३८०॥
अनुतिष्ठत एवं च कालः कश्चिदगाद् यदा।
त्यक्त्वा कलेवरं सोऽत्र ब्रह्मलोकमगात्सुधीः ॥३८१॥

योगिनो यत्र योगेन ध्यानाभ्यासरसेन च।
देशं कालादि सापेक्षा यान्त्युपासनया युताः ॥३८२॥
भक्ता यान्त्यनपेक्ष्यैव देशकालादिकान् सदा।
प्रेते पितरि तस्मिँस्तु क्रियां कृत्वौर्ध्वलौकिकीम् ॥३८३॥
श्रीरामेण समस्तद्व्यञ्जनकेन समस्तथा।
तर्कदृष्टिस्तदा राज्यकार्यं सुकृतवान् सुधीः ॥३८४॥
कुर्वन्नपि च राज्यादि लिप्तोऽभून्न कदाचन।
आत्मारामः सदाऽसङ्गो ब्रह्मनिष्ठोऽभवन्मुनिः ॥३८५॥

शुभसन्तति पुत्र के उपदेश को आदर से अच्छी तरह से सुन कर और पुत्र को ही गुरु मान कर उसके प्रति राज्य का समर्पण करके, अनन्य बुद्धि होकर निःश्रेयस=मोक्ष फल प्रद कारण ब्रह्म की अङ्गसहित उपासना आदर सहित सदा किया। इस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपासना के अनुष्ठान करते हुए जब कुछ काल गया, तब वह यहाँ शरीर को त्याग कर, सुन्दर बुद्धि वाला शुभसन्तति ब्रह्मलोक में गया। उपासना युक्त योगी योग और ध्यानाभ्यास में प्रेम द्वारा जिस ब्रह्म लोक में देश कालादि की अपेक्षा सहित जाते हैं, भक्त जन देशकालादि की अपेक्षा बिना ही सदा वहाँ जाते हैं। इस प्रकार उस पिता के परलोक जाने पर, उसको पारलौकिकी श्राद्धादि क्रिया करके सुबुद्धिमान् तर्कदृष्टि ने श्रीरामचन्द्र के समान तथा राजा जनक के समान उस समय राजकार्य को सुन्दर किया। और राज्यादि करता हुआ भी कभी लिप्त = आसक्त नहीं हुआ, किन्तु सदा आत्मा में आराम वाला असङ्ग ब्रह्मनिष्ठ मुनि हुआ ॥ ३७९—३८५ ॥

प्रारब्धस्यान्तकाले स ब्रह्मलीनोऽभवत्ततः ।
देहस्य सर्वथा नाशोऽभवच्चैवापुनर्भवः ॥३८६॥

कार्याऽविद्यादि मायायां तदा तद्भावतामगात् ।
कूटस्थो ब्रह्मरूपत्वमगमच्चानुपाधिकम् ॥३८७॥

चिदाभासस्तु निर्वाणं दीपनिर्वाणवत्तदा ।
अगमन्निर्गुणे शुद्धे ब्रह्मतत्त्वेऽविकारिणि ॥३८८॥

सूर्यसत्त्वेऽपि दीपस्य निर्वाणं जायते स्वके ।
सामान्ये तेजसो रूपे सूर्ये नैव कदाचन ॥३८९॥

तथैवेश्वरसत्त्वेऽपि जीवो निर्वाणमृच्छति ।
नित्ये निर्मलरूपे स्वे नेश्वरे तु कदाचन ॥३९०॥

मठाकाशान्तरे यत्र घटाकाशोऽपि विद्यते ।
तत्र चात्मा तयो नित्यं महाकाशोऽपि वर्तते ॥३९१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घटापाये घटाकाशो महाकाशे विलीयते ।
न मठाकाशरूपे स लीयते दृश्यते मृषा ॥३६२॥

प्रारब्ध के अन्तकाल में वह ब्रह्म में लीन हुआ, तब देह का सर्वथा नाश हुआ और अपुनर्भव=मोक्ष हुआ। कार्य अविद्यादि उस समय माया में तद्रूपता को प्राप्त हुए और कूटस्थ अनुपाधिक ब्रह्मरूपता को प्राप्त हुआ। और चिदाभास ने दीपनिर्वाण के समान उस समय निर्वाण को पाया, सो निर्गुण, शुद्ध, निर्विकार ब्रह्मस्वरूप में निर्वाण पाया। जैसे सूर्य के रहते भी दीप का निर्वाण अपने सामान्य तेज के स्वरूप में होता है, सूर्य में कभी दीपका निर्वाण नहीं होता है। इसी प्रकार ईश्वर के रहते भी जीव अपने नित्य निर्मल स्वरूप में निर्वाण को प्राप्त करता है और ईश्वर में कभी नहीं निर्वाण पाता है। जहाँ मठाकाश के अन्दर घटाकाश भी रहता है, तहाँ उस मठाकाश और घटाकाश दोनों का आत्मारूप महाकाश भी रहता ही है। अतः घट के नाश होने पर महाकाश में ही घटाकाश विलीन होता है, वह घटाकाश मठाकाश में नहीं लीन होता है, किन्तु मठाकाश में लीन होता हुआ मिथ्या दीखता है ॥३८६—३९२॥

चिदाकाशे तथैवेशे जीवो यद्यपि वर्तते ।
तथापि लीयते मुक्तौ ब्रह्मण्येव न चेश्वरे ॥३९३॥

अतो विलीयते ज्ञानी विदेहो यत्र सोऽव्ययः ।
सर्वात्मा निर्गुणं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥३९४॥

नामरूपेषु सर्वेषु व्यभिचारिषु सर्वदा ।
असङ्गोऽव्यभिचारी च स्फुरत्यात्माह्यनिष्क्रियः ।३९५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वशब्दस्यलक्ष्योऽसौ वाच्यो नैव तु कस्यचित् ।
अस्ति भाति प्रियाकारै र्भाति स सर्ववस्तुषु ॥३९६॥
सर्वस्य भासको नित्यः सर्वादिः सर्वधारकः ।
सर्ववेदैश्च संवेद्यं तं शुद्धं सद्गुरुं नुमः ॥३९७॥
ब्रह्मविष्णुशिवैः शब्दैरग्नीन्द्रादिसुशब्दकैः ।
ईश्वरः कथ्यते क्वापि कथ्यन्ते देवताः क्वचित् ॥३९८॥

इस प्रकार यद्यपि चिदाकाश = ब्रह्म और ईश्वर में जीव रहता है तथापि मोक्षावस्था में ब्रह्म में ही लीन होता है, ईश्वर में नहीं । अतः ज्ञानी जिसमें विलीन होता है, वह अविनाशी सर्वात्मा है, वही सच्चिदानन्द स्वरूप निगुंण ब्रह्म है । वह निर्विकार आत्मा व्यभिचारी सब नाम रूपों में सदा असङ्ग अव्यभिचारी स्वरूप से प्रकाशता है । वह सब शब्दों का लक्ष्य है और वाच्य किसी शब्द का नहीं है और अस्ति भाति तथा प्रिय स्वरूप से वही सब वस्तु में भासता है । सबका प्रकाशक, नित्य, सर्वादि, सर्वधारक जो है, सब वेदों से वेद्य = ज्ञातव्य उस शुद्ध गुरु को हम नमस्कार करते हैं । ब्रह्म, विष्णु, शिव, अग्नि, इन्द्रादि सुन्दर शब्दों से शास्त्र में कहीं ईश्वर कहा जाता है और कहीं देवता कहे जाते हैं । ३९३—३९८ ।।

एवं देवर्षिशब्दाभ्यां कथ्यते चेश्वरः क्वचित् ।
क्वचिद्देवाश्च कथ्यन्ते ऋषयो ज्ञानिनो जनाः ॥३९९॥
वाचका ईश्वरस्यैते यत्र शब्दा व्यवस्थिताः ।
तत्राप्युपाधिभेदेन बहुधा वर्णयन्ति तम् ॥४००॥
न कर्मवश्यतां नापि फलभोक्तृत्वदीनते ।
वर्णयन्तीशशास्त्राणि परस्मिन् वर्णयन्ति च ॥४०१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वंभूतेषु देवैक्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ।
मायाभिः पुरुरूपत्वं त्र्यम्बकं च यजामहे ।।४०२।।
ऋषिः सर्वंगतत्वाच्च विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ।
मायासन्बन्धतश्चेशो ह्यवनादोमितिस्मृतः ।।४०३।।
ज्ञानं नैवात्मनो धर्मो न गुणो वा कथञ्चन ।
ज्ञानस्वरूप एवात्मा नित्यःसवंगतः शिवः ।।४०४।।

इसी प्रकार देव और ऋषि शब्द से कहीं ईश्वर कहा जाता है, कहीं देव और ऋषि कहे जाते हैं। ये शब्द जहाँ ईश्वर के वाचक निश्चित हैं, वहाँ उपाधि भेद से उस ईश्वर को बहुत प्रकार से वर्णन करते हैं। परन्तु ईश्वर के वर्णन में कर्मवश्यता, कर्मफल भोग और दीनता को नहीं वर्णन करते हैं। और पर= ईश्वर भिन्न जीव के वर्णन में शास्त्र कर्मवश्यता आदि का वर्णन करते हैं। सब भूतों में देव की एकता, वह विष्णु का परंपद स्वरूप, माया से बहुरूपता, सूर्याग्निचन्द्ररूप तीन नेत्र वाले की हम पूजा करें। इत्यादि ईश्वर का वर्णन है। सवंगत होने से ईश्वर ऋषि है। सब में प्रवेश से अन्तर्यामी विष्णु है मायारूप शक्ति के सम्बन्ध से आत्मा ईश्वर हैं और अवन=रक्षण से ही ओम् कहा गया है। ज्ञान आत्मा का धर्म नहीं है, न किसी प्रकार गुण है, किन्तु ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है और नित्य सर्वंगत शिव=कल्याण स्वरूप आत्मा है ।।३९९—४०४।।

अद्वैतमेकं परममात्मानं ज्ञानविग्रहम् ।
नानात्मानं प्रपश्यन्ति मायया मोहिता जनाः ।।४०५।।
सर्वेच्छारहिते भानौ यथा व्योमनि तिष्ठति ।
जायते व्यवहारश्च सति देवे तथा क्रिया ।।४०६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शङ्करः स्वयम् ।
सत्त्वेन सर्वगो विष्णुः सर्वात्मत्वे महेश्वरः ॥४०७॥
सत्त्वं ब्रह्मा रजोविष्णुस्तमोऽहं संप्रकीर्तितः ।
ओंकारस्तत्परं ब्रह्म गायत्री प्रकृतिः परा ॥४०८॥
उभावेतौ नरो ज्ञात्वा न विच्यवति मुच्यते ।
इति साक्षात् शिववचः स्कान्दे चित्रं हि लक्ष्यते।४०९॥
"अहं विष्णुश्च शर्वश्च देवी विघ्नेश्वरस्तथा ।
एकोऽहं पञ्चधा जाता नाट्ये सूत्रधरो यथा ॥४१०॥

परम अद्वैत ज्ञान स्वरूप एक आत्मा को माया से मोहित जन नाना स्वरूप देखते हैं। जैसे सब इच्छा से रहित सूर्य के आकाश में रहते व्यवहार सब सूर्य के प्रकाश में होता है, तैसे ही देव के रहते क्रिया होती है। वह देव स्वयं रजोगुण से हिरण्यगर्भ, तमोगुण से शङ्कर, सत्त्वगुण से सर्वगत विष्णु होता है और सर्वात्मत्व के रहते महेश्वर कहाता है। सत्त्वगुण रूप ब्रह्मा, रजोगुण विष्णु हैं, मैं=शिव तमोगुण कहा गया हूँ। ओंकार उस परब्रह्म, रूप है गायत्री परा प्रकृति है, ब्रह्म और प्रकृति दोनों को जानकर मनुष्य विच्युत नहीं होता है, मुक्त होता है। इस प्रकार स्कन्द पुराण में साक्षात् शिव जी के विचित्र वचन देखे जाते हैं। सूर्य भगवान् कहते हैं कि व्यक्त स्वरूप मैं विष्णु, शिव, देवी और गणेश इस प्रकार के स्वरूप वाला एक ही अव्यक्तात्मा हुआ हूँ, जैसे नाट्य में एक सूत्रधर अनेक रूप होता है ॥४०४—४१०।

अप्रत्यक्षाः सर्वदेवाः प्रत्यक्षो भगवानयम् ।
सर्वे देवाः कालवशाः कालकालो दिवाकरः" ॥४११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्कान्दे सूर्यवचश्चैवं श्रूयते हि विशेषतः ।
सूतसंहितया चैवं कथ्यते तदिहोच्यते ॥४१२॥

"असंख्याः प्रलयं याता ब्रह्माणः पण्डितोत्तमाः ।
असंख्या विष्णवो रुद्रा असंख्या वासवादयः ॥४१३॥
एक एव शिवःसाक्षात् सृष्टिस्थित्यन्तसिद्धये ।
ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिः कल्पनाभि र्विजृम्भितः ॥४१४॥

ब्रह्मणो मूर्तयोऽनन्ता जायन्ते गुणभेदत ।
तथा विष्णोस्तथेशस्य गुणभेदेन सुव्रताः ॥४१५॥
परस्परोपजीव्या स्यु र्हिताय जगतो द्विजाः ।
सर्वमूर्तिष्वयं साक्षाच्छिवः सत्यादिलक्षणः ॥४१६॥

सब देव अप्रत्यक्ष हैं, परन्तु यह सूर्य भगवान् प्रत्यक्ष हैं। तथा सब देव काल के वश में हैं और सूयं कालों का काल हैं। स्कन्द पुराण में यह विशेष रूप से सूर्यवचन सुना जाता है और सूतसंहिता से भी ऐसा कहा जाता है. सो यहाँ कहा जाता है। हे पण्डितोत्तमों ! असंख्य ब्रह्मा प्रलय को प्राप्त हुए। तथा असंख्य विष्णु रुद्र और वासव इन्द्रादि प्रलय को प्राप्त हुए। एक साक्षात् शिव ही सृष्टि आदि की सिद्धि के लिये ब्रह्मा विष्णु शिवनामों के द्वारा कल्पनाओं से विस्तृत होता है। हे सुव्रतों ! ब्रह्मा,विष्णु तथा महेश की अनन्त अनन्त मूर्तियाँ गुणों के भेद से उत्पन्न होती हैं। हे द्विजों ! वे मूर्तियाँ परस्पर उपजीव्य=साध्य सहकृत होती हैं, सो जगत् के हित के लिये होती हैं। और सब मूर्तियों में यह सत्यादि स्वरूप साक्षात् शिवस्वरूप वर्तमान रहता है ॥४११—४१६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रच्युतात्मभावेन स प्रतिष्ठति सुव्रताः ।
तमहं प्रत्ययंव्याजात् सर्वे जानन्ति जन्तवः ।।
तथापि शिवरूपेण नैव जानन्ति मायया ।।४१७।।"

वासिष्ठेतु—साधूपदिष्टमार्गेण यन्मनोऽङ्ग विचेष्टितम् ।
तत्पौरुषं तत्सफलमन्यदुन्मत्तचेष्टितम् ।।४१८।।
यो यमर्थं प्रार्थयते यदर्थं चेहते क्रमात् ।
अवश्यं तदवाप्नोति न चेदर्धान्निवर्तते ।।४१९।।

पौरुषेण प्रयत्नेन त्रैलोक्यैश्वर्यसुन्दराम् ।
कश्चित्प्राणिविशेषो हि शक्रतां समुपागतः ।।४२०।।
पौरुषेणैव यत्नेन सहसाम्भारुहास्पदाम् ।
कश्चिदेव चिदुल्लासो ब्रह्मतामधितिष्ठति ।।४२१।।

हे सुव्रतों ! वह शिवस्वरूप अप्रच्युत = अविनाशी आत्मस्वरूप से सर्वत्र प्रतिष्ठित = स्थिर रहता है और उसको अहं ज्ञान के व्याज = अहंकार के साक्षी रूप से सब प्राणी समझते हैं, क्योंकि विचारादि पुरुषार्थ से वह जाना जाता है, अन्यथा नहीं। तथापि माया अविद्या से साक्षात् शिवरूप से नित्य शुद्धादिस्वरूप सब नहीं जानते हैं। और साधु से उपदिष्ट = दर्शित मार्ग से जो मन और शरीर का विचेष्टित = व्यवहार होता है, वही पौरुष = पुरुषार्थ कहा जाता है और वह सफल होता है। सदुपदेशादि रहित जो अन्य चेष्टा है, सो उन्मत्त चेष्टित है। उपदेश के अनुसार जो जिस अर्थ की प्रर्थना करता है, जिसके लिये क्रम से चेष्टा करता है, सो उस अर्थ को अवश्य प्राप्त करता है, यदि अर्धमार्ग से नहीं लौटता है। पौरुष रूप प्रयत्न से कोई प्राणी विशेष ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीनों लोक के ऐश्वर्य से सुन्दर शक्रता = इन्द्रता को प्राप्त किया है। पौरुष प्रयत्न से ही कोई चिदुल्लास = विद्विलास सहसकमला-श्रयवाली ब्रह्मता को अधिष्ठित है, ब्रह्मा हुआ है ॥४१७—४२१

सारेण पुरुषार्थेन स्वेनैव गरुडध्वजः ।
कश्चिदेष पुमानेव पुरुषोत्तमतां गतः । ४२२॥
पौरुषेनैव यत्नेन ललनावलिताकृतिः ।
शरीरी कश्चिदेवेह गतश्चन्द्रार्धचूडताम् ॥४२३।
प्र० २।४।११-१६॥

देवीभागवते तु श्रीविष्णुवाक्यम्—

परतन्त्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने ! निशामय ।
तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः ॥४२४॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः ।
न जानीमो वयं धातः परं वस्तुसनातनम् ॥४२५॥
स्क०४।१८।१६॥

अतएव—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
विष्णु र्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥४२६॥

अपने सार पुरुषार्थ से ही कोई पुरुष रूप ही यह गरुडध्वज = विष्णु पुरुषोत्तमता को प्राप्त है। पुरुषार्थरूप यत्न से ही स्त्री युक्तशरीरवाला कोई शरीरी = जीव ही चन्द्रार्ध के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिरोभूषणवाला हुआ है। भगवान् विष्णु ब्रह्मा से कहते हैं कि हे पद्मयोने! मैं अवश्य परतन्त्र हूँ सो देखो, तथा तुम और रुद्र और अन्य सब देवोत्तम परतन्त्र हैं। मैं विष्णु हूँ, स्वयं ब्रह्मा वा शिव हूँ, इस प्रकार हम सब मोहित हैं। अतः हे धातः! हम सब सनातन पर वस्तु को नहीं जानते हैं। जिस कर्म ने ब्रह्मा को कुलाल के समान ब्रह्माण्ड रूप भाण्ड के उदर में नियमित किया है। विष्णु को महा संकट रूप दशावतारगहन में प्रेरित किया है। रूद्र को कपाल युक्त पाणि पुटक में भिक्षाटन करवाया है जिस से सूर्य सदा गगन में = आकाश में भ्रमते हैं, उस कर्म को नमस्कार है ।।४२२-४२६।।

अखण्डानन्दस्वभावं चैतन्यमविद्यासहायं, सृज्यमानप्राणिकर्मानुरोधेनेक्षणपुरःसरमपञ्चीकृतपञ्चमहाभूतान्युत्पादयति, तानि च तत्कर्मानुरोधेन लिङ्गशरीरं जनयन्ति। अपञ्चीकृतभूतानि च कर्मानुरोधाच्चिदधिष्ठानाच्च पञ्चीकृतत्वमापद्यन्ते, तानि च पञ्चीकृतानि प्राग्भवीय सञ्चित कर्मानुरोधेन स्थूलशरीरमारभन्ते। तत्र यद्यत्कर्मणारब्धं तस्य तत्र प्रवेशोनान्यत्र, इति तत्त्वदीपने। अतश्च सर्वेषां शरीर सम्बन्धः कर्मणैवेति सिद्धयति ॥

शास्त्रादिषु सुदृष्टापि साङ्गा सहफलोदया।
न प्रसीदति सा विद्या विना सदुपदेशतः ।।४२७।।
कामं लोकप्रमाणस्य कामाः सिद्धयन्ति कामिनः।
गृहीत सत्पदस्यैव निरापायफलोदयः ।।४२८।।
भारद्वाज स० अ० १।३५-३६।।

अङ्गों के सहित तथा फलोदय सहित शास्त्रादि में सुदृष्ट भी वह विद्या सद्गुरु के उपदेश के विना प्रसन्न = फलप्रद नही होती है। अतः आत्मविद्या सद्गुरु से प्राप्त कर्तव्य है, कि जिससे कर्मबन्ध नष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। क्योंकि लोक ही जिसको प्रमाण है ऐसा कामी के यथेष्ट काम लोकादि से सद्गुरु के बिना भले ही सिद्ध होयँ, परन्तु अविनाशी फल का उदय=प्राकट्य तो सद्गुरु के पद को ग्रहण करने वाले को ही होता है ।।४२७-४२८।।

गुरु प्रसादतो मर्त्यो देवेश्वरकृपावशात् ।
जानाति बन्धनिर्मुक्तं शुद्धं सत्यं सनातनम् ।।४२९।।
सदैकरसमत्यच्छं भोगयोगविवर्जितम् ।
तस्माद् वन्दे परानन्दं सद्गुरुं सर्वसाक्षिणम् ।।४३०।।
वाचां सारं मनः सारं जगत्सारं च जन्मनः ।
सर्वस्माच्च परं पारं निर्विकारमहं भजे ।।४३१।।
कबीरं करुणागारं नित्यं वन्दे परं गुरुम् ।
यत्पादे नमनाद् भूयो नमनं नैव जायते ।।४३२।
योगज्ञं योगदं योगै र्युक्तं ध्येयं सुनिर्मलम् ।
सर्वज्ञं सद्गुरुं वन्दे कबीरं केवलं ध्रुवम् ।।४३३।।

गुरु की प्रसन्नता से तथा देव ईश्वर की कृपावश से मनुष्य बन्ध रहित, शुद्ध, सत्य, अनादि, सदा एकरस, अत्यन्त स्वच्छ, भोग योग से रहित स्वरूप को जानता है, अतः उत्तमानन्दस्वरूप सद्गुरु और सर्वसाक्षी की बन्दना करता हूँ। सब वाक् वाणी=शब्द का सार, मन का सार, जगत् का सार, और मानव जन्म का सार, सब से पर और पार स्वरूप निर्विकार को मैं भजता हूँ। करुणा का आगार=गृह परगुरु कबीर साहब की वन्दना करता हूँ, कि जिनके पाद पर एक वार नमने से फिर कहीं नमन नहीं होता नित्य निजस्वरूप में लीनता होती है। अतः योग के पूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानी योगप्रद स्वयं सर्व योगयुक्त, अत्यन्त निर्मल ध्येय, सर्वज्ञ ध्रुव केवल सद्गुरु की वन्दना करता हूँ ।।४२९-४३३।।

अवतारान् वितन्वन्तं तारयन्तमनुग्रहात् ।
वारयन्तं महामोहात् कबीरं केवलं भजे ।।४३४।।
शिष्टानां च विशिष्टं तं सतां सत्यं परं महः ।
क्षमावतां धुरीणं तं वन्देऽहं करुणाकरम् ।।४३५।।
सर्वाधारं निराधारं परं पारं भवार्णवात् ।
सन्तुष्टं ज्ञानपुष्टं तं वन्देऽहं करुणाकरम् ।४३६।।
मोहहन्तारमत्यच्छं रमितारामम्व्ययम् ।
हरिहरं कृपालुं च गुरून् वन्दे शिवात्मकान् ।४३७।।

इति हनुमदीयतत्त्वार्थमणिमञ्जूषायां सप्तमः खण्डः ।।७।।

।।समाप्तोऽयं ग्रन्थः।।

जन हित के लिये अवतारों का विस्तार करते हुए, अनुग्रह से तारते हुए, महा मोह से हटाते हुए, केवल कबीर साहब को भजता हूँ। शिष्टों में श्रेष्ठ, सत्यों का सत्य, परम तेज स्वरूप, क्षमा वालों में अग्रगण्य, उस कबीर साहब की वन्दना करता हूँ। सर्वाधार, स्वयं निराधार, भवार्णव से पार, पर सन्तुष्ट, ज्ञान से पुष्ट उस करूणाकर कबीर साहब की मैं वन्दना करता हूँ। मोह नाशक अत्यन्त स्वच्छ अव्यय रमिताराम जी गुरु महाराज की और हरिहरकृपालु जी गुरु महाराज की वन्दना करता हूँ कि जो शिव स्वरूप सदा वर्तमान हैं ।। ४३४—४३७ ।।

—:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका शुद्धि पत्रका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	३	निर्मल	निर्मलं
५	१७	परुष	पुरुष
१०	२२	माश्व	मीश्व
११	१३	सद्विचात्म	सद्विचारात्म,
१३	२५	मिलाकार	मिलाकर,
१४	६	रस्यचि	रस्याचि
"	१८	मन साथ	साथ मन
"	२२	प्राप्ति	प्राप्ति,
१५	४	दिशओं	दिशाओं,
"	२१	समभा	समझा,
१८	२०	सवभू	सर्वंभू,
२३	२३	कोऽह	कोऽहं
२४	१३	कि	किं
"	२५	निर्मलम्	निर्मलम्,
२७	२१	पावन तं	पावनं तं,
२८	५	सदाचार	सदाचारं
"	९	सुख्याय	सुखाय
"	२४	विनिमुक्तः	विनिर्मुक्तः
२९	१०	प्रत्येक	प्रत्येकं
३०	२१	विवेकन	विवेकेन,
"	२२	एवैस्थ	एवैकस्य,
३१	३	नाता	जाता,

तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा का शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	४	वर्णनार्थ	वर्णनार्हं
"	१५	ह्ययम्	ह्यहम्,
७	१	जीववं	जीवत्वं
२०	१९	उपावि	उपाधि,
१३	१५	प्रवृन	प्रवृत्त,
१७	६	दथिभिः	दर्थिभिः,
"	१२	उन क	उन के
"	२१	प्राहु	प्राहुः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८	१०	मुमुक्षता	मुमुक्षुता,
"	२१	त्वत्यनन्तं	त्वत्यन्तं,
३३	१४	मञ्जाषा	मञ्जूषा,
३९	१३	दोप	दोष
४०	१२	निथ्यात्वे	मिथ्यात्वे,
"	१९	क्हाँ	कहाँ,
४१	१	कोर्मादि	कर्मादि,
४२	१८	अगुष्ठान	अनुष्ठान,
४३	८	भुक्वा	भुक्त्वा,
"	९	विनिष्टे	विनष्टे,
"	१४	भंवष्यद्	भविष्यद्
"	१७	धिकारि	धिकारिण,
४५	१	नश्यन्ति	नश्यति,
"	३	समन्ध	सम्बन्ध
५२	८	प्रकास	प्रकाश
५३	२५	साधना	साधनता,
५६	९	से मय	से भय,
५७	२२	अप्रमाणिता	अप्रमाणता,
५९	२३	संर्वं	सर्वं
६०	११	नापादि	जापादि,
६६	६	अवयश्	अवश्य
"	७	परामात्म	परमात्म,
"	१५	नात्माविवे	नात्मविवे,
"	२४	संस्पठे	संपठे,
६७	५	आंत्मनिष्ट	आत्मनिष्ठ,
७०	१२	कराति	करोति,
"	१३	तिष्ठात	तिष्ठति,
"	२४	बुद्धया	बुद्ध्या,
७८	९	वायन्ति	संवारयन्ति,
७९	६	लक्षरण	लक्षणं,
"	१७	मुखात्	मुंखात्,
८०	१४	बढ़	पढ़,
"	२०	विनष्ठ	विनष्ट
८४	१	धनर्पं	धनार्पं
"	९	आश्रण	आश्रयण
८७	३	तन्वा	तत्त्वा
९०	४	भुंमि	भूंमि
९८	१५	अनन्द	आनन्द,
१००	१७	स्वप	स्वप्न
१०१	९	रञ्जु	रज्जु
१०२	१५	भ्रस	भ्रम
"	२४	रञ्जु	रज्जु
१०३	४	रञ्जु	रज्जु,
१०५	४	तमु	नमु
"	१०	रञ्जु	रज्जु,
११०	५	मुख	सुख,
"	२१	हारङ्ग	हाराङ्ग,
१११	१०	विरूद्ध	विरुद्ध,,
११४	२	पेघे	मेघे,
११५	२०	करणाद्यै	करणाद्यै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
११९	४	युक्ति	युक्त,
१२०	६	भद	भेद,
"	१४	हाती	होती,
१२४	६	आभसे	आभासे,
"	"	ब्रह्मति	ब्रह्मेति,
१२७	५	साक्षि	साक्षी,
१२८	२२	भेर्दः	भेदः ।
१३५	४	तज्जानं	तज्ज्ञानं ।
"	१०	इन्दियों	इन्द्रियों,
१४५	३	ध्यायिनां	ध्यायिनो,
"	५	हनुनदीय	हनुमदीय,
१५२	१	स्मृति स	स्मृति से,
१६२	७	कर्तन्थ	कर्तव्य,
१६४	१८	मलवाला	मतवाला
१६८		स्त्री पुरुषके	स्त्री पुत्रके
१७०	७	निष्टो	निष्ठो,
१७१	२०	कतंव्यः	कर्तव्यः,
७६	१५	आयुद्ध	आयुध,
१८१	२	स्तभ्य	स्तेभ्य,
१८२	६	भासकं	भासिकं
१८९	२०	विचारा	विचार,
१९२	२	कांशा	कोशा,
"	१२	आत्माना	आत्मनो,
१९८	१	स्पृर्शन्	स्पृशन्,
१९९	१६	सर्वंशक्ति	सर्वशक्तिः,
२०२	८	याथेषु	यार्थेषु,
२०३	१५	मुपदेश	मुपदेशं,
२११	६	प्राणामां	प्राणिनां,
२१४	१७	पायुश्च	वायुश्च,
२१५	२१	विद्याय	विधाय,
"	२४	स्वेतरेस्वेव	स्वतरेष्वेव,
२२१	११	आर	और,
२२३	१	निव्वाभिन्न	विश्वाभिन्न
"	२०	से हा	से ही
२२७	१०	बोधित	संबोधित,
२३५	११	व्यावहाकि	व्यावहारिक,
२३८	४	प्रप्ते	प्राप्ते,
"	१६	करणं	कारणं,
"	२१	परिमाण	परिणाम,
२४४	२३	जनः	जनाः,
२५३	१२	कतृत्वं	कर्तृत्वं,
२५५	१	व्यंर्ञ्जनं	व्यंञ्जनं,
२५६	१३	शुद्धात्मक	शुद्धात्मा,
२५८	१६	आत्मास्व	आत्मस्व,
२५९	६	तथायुक्तो	तयायुक्तो,
२६०	८	शब्दार्थं	शब्दार्थः,
२६५	३	दृष्टं	दृढं
२६७	४	कतृत्वं	कर्तृत्वं
२८०	८	गङ्गयांघोस	गङ्गयांघोषः
"	१२	सवाँ	सर्वां,
२९०	३	वाक्याथ	वाक्वार्थं,
२९१	२१	पत्पर	तत्पर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
२९४	२३	दृश्यत	ऽदृश्यत,
३०१	३	प्रणयाम	प्राणायाम,
३०३	१८	जातो है	जाती है,
३९७	१८	कमिच्छन्	किमिच्छन्,
३२०	१७	जिसे से	जिससे,
३३०	१७	मुनि	मुनिः,
३३१	१	वाड्नि	वाङ्नि,
३३२	२२	होते	होते हैं,
३३४	२२	मार्गों	उन मार्गों,
३३९	६	शिव	शिवः

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
,,	२०	पताऽम	यतोऽम,
३४४	३	प्राकृते यं	प्राकृते य,
”	४	न यथा	न चान्यथा,
३४२	३	शिवे न	शिवेन,
३५३	१४	वामन्तन्त्र	वामतन्त्र
३५६	२४	जागति	जागर्ति,
३५७	१	जागति	जागर्ति,
३७८	२०	प्राथना	प्रार्थना,
३७९	२	विद्विलाम्र	चिद्विलास,
१७	१६	कृलाल	कुलाल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ ॐ राम ॥

लघुधर्मचन्द्रिका

प्रकाशकः सम्पादकश्च

स्वामी श्री हनुमद्दासः षट्शास्त्री ।

प्रथमं संस्करणं २००० संख्या परिमितम् ।

विजया दशमी २०२२ विक्रमाब्द	१९६५ ईशवीयाब्द	अमूल्यं वितरितम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक —
स्वामी श्री हनुमद्दासः षट्शास्त्री ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥१॥
धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मो धारयते प्रजाः ।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति कीर्तितः ॥२॥

मुद्रक—
सहदेव राम
सी० ६/७३ वाग बरियार सिंह
वाराणसी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ ॐ राम ॥

॥ लघुधर्मचन्द्रिका ॥

॥ मङ्गलाचरण ॥

वन्दे वेदान्तसंवेद्यं सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
रामं शिवं गणाधीशं ब्रह्म हरिमनामयम् ॥१॥

जगदाधारमव्यक्तं जगद्योनिं निरन्तरम् ।
सर्वात्मानं सदा शुद्धं निर्गुणं राममाश्रये ॥२॥

यच्चिदाभाससम्बन्धान्मायैव कुरुते जगत् ।
साक्षी स्वयं सदा तिष्ठेत्तं वन्दे पावनं परम् ॥३॥

निर्गुणोऽपि सदा रामो ज्ञेयोऽन्यप्रतिषेधतः ।
भवत्येवमुपास्योऽपि भजनीयोऽतिनिर्मलः ॥४॥

यत्कृपालवलेशेन भवन्ति सर्वसिद्धयः ।
पुरुषार्था विशुद्धाश्च तं कबीरं गुरुं भजे ॥५॥

सकल परम शुभ दानि, हरण सकल अज्ञान तम ।
गुरु कबीर सत ज्ञानि, करउ कृपा दारिद दमन ॥१॥
मङ्गल रूप अनूप, विघ्न व्याधि बाधक हरण ।
परमानन्द स्वरूप, सर्व सिद्धिप्रद देव पर ॥२॥
दीन बन्धु गुरु देव, जिहि सेवत भव तरत जन ।
नशत काल कलि छेव, रहत न काम कलेश मन ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समदर्शी सर्वज्ञ, विमल बोध वारिद अचल ।
हरण ताप त्रय तज्ज्ञ, ब्रह्मानन्द अगाध प्रद ।।४।।
योगेश्वर योगीश, सकल सिद्धिप्रद ज्ञानयुत ।
सदा सिद्ध जगदीश, मान रहित बन्दौं चरण ।।५।।

सृष्टि आदि ।। १ ।।

मान रहित जगदीश, ब्रह्म सच्चिदानन्द अज ।
यों कह वेद मुनीश, सृष्टि स्थिति लय हेतु शिव ।।६।।

ईश्वर जीव जगत सब साँचा । करिये कर्म काय मन वाचा ।।
पाइय सुखद लोक परलोका । पुनि न तहाँ पाइय दुःख शोका ।।
इमि कोइ स्वर्गादिक सुख चाहैं । भक्ति कर्म ता हेतु निवाहैं ।।
स्वर्गंहुँ ते परिये भू माहीं । पाइय दुख जन्मादि सदा हीं ।।
याते करि विवेक निज रूपम् । सुखदुखरहित समुझु इकरूपम् ।।
करिय प्रमाणादिक सुविवेका । भजिय ईश गहि धर्मक टेका ।।
सकल दुःख नाशिय इमि भाई । इमि कोई विज्ञ मुनिहुँ ठहराई ।।
मन कुयोग से सुख दुख सारा । राग द्वेष भय विविध पसारा ।।
आतम में गुण धर्म स्वरूपा । होवत देह हुँ द्वन्द्व कुरूपा ।।
हुए विवेक कुकर्म विहाई । सब दुख रहित जीव हो जाई ।।
संचित कर्म जन्म इक माहीं । भोगि पुनर्भव पावत नाहीं ।।
एक जन्म में कर्म अपारा । भोगिय नहिं यह अन्य विचारा ।।
याते प्रकृति रचित संसारा । विनु विवेक के होवत सारा ।।
भोग मोक्ष कारक है सोई । करि विवेक तिहि नाशै कोई ।।
जन विवेकि पै नष्ट सु होवै । अविवेकि हि को भव संयोवै ।।
पूर्ण विवेक योग बिनु किये । आवत नहिं सब जनके हिये ।।
याते यम नियमादिक साधी । ईश्वर गुरु देवादि अराधी ।।
करि समाधि वैराग्य हुँ पाई । पूर्ण विवेक लहै सुखदाई ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब प्रकृति हुँ नहिं बाँधै ताही । रहत असंग स्वरूपक माही ॥
केवल जड़ प्रकृति हि से सारा । होय सकत नहिं भव व्यवहारा ॥
माया शक्ति युक्त जगदीशा । रचत विविध भव कहत मुनीशा ॥
नभो वायु तेजो जल भूमी । रचत ईश सब भोगक[1] भूमी ॥
तहाँ स्थूल सूक्षम सब[2] देहा । ईश रहत नित मुक्त अदेहा ॥
जन्मादिक[2] सब देहन काही । धर्म[3] जानियत जीवन माही ॥
यह अज्ञान विमोह स्वरूपा । कहिय दुःख संसार कुरूपा ॥

षट् जन्मादि विकार, जीवन का संसार यह ।
ब्रह्महि रचत अपार, मायामय निज शक्ति से ॥७॥

साधारण तहँ हेतु, ब्रह्म होत जन्मादि के ।
कर्मादिक ह्वे हेतु, सब विशेष सर्गादि के ॥८॥

ज्यों जल होवत हेतु, सस्य तिरण वृक्षादि के ।
तथा ब्रह्म सब हेतु, बीज तुल्य कर्मादि सब ॥९॥

यों आनन्द जल माहिं, तृषित वसत सब जीव जड़ ।
लखत स्वरूप हि नाहिं, परमानन्द विमुक्त विभु ॥१०॥

ब्रह्महि सब स्वरूप सत एकम् । व्यवहारिक सब रूप अनेकम् ॥
चिदाभास युत सूक्षम देहा । व्यवहारिक सब जीव सनेहा ॥
परमार्थिक सब रूप असङ्गा । एक अखण्ड अभेद्य अभङ्गा ॥
ताके ज्ञान पाय व्यवहारी । जीव मुक्त होवत सम्हारी ॥

दीपक ज्यों विभु तेज में, पावत निज निर्वान ।
त्यों विमुक्त यह जीव सब, होवत ब्रह्म महान ॥११॥

---

१ भोगों के स्थान । २ सब जीवों की देह होते हैं । ३ जन्मादिक सब देहों के धर्म हैं, सो जीवों में समझे जाते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन्मुक्त विमुक्त ह्वै, जो पावै सत ज्ञान ।
ज्ञान हेतु ताते सदा, करिय सुकर्म सुध्यान ।।१२।।
सत सुखेच्छु दुखनाश अभीच्छुक, यद्यपि सब संसारि ।
तदपि मूलयुत दुःख न विनशत, बिनाज्ञान अवतारि ।।१३।।

दुःख[1] हेतु जन्मादि विकारा । जन्म हेतु कर्मादि पसारा ।।
कर्म हेतु कामादिक दोषा । दोष हेतु अज्ञान कुकोशा ।।
ज्ञान भानु बल बाधि अबोधा । दोष नाशि बुध कर्म जु शोधा ।।
सो जन्मादि विकार विनाशी । दुःख नाशि सुख लहै अनाशी ।।
त्रिविध देह दुःख रूप महाना । मोह मदादिक दुःख हि नाना ।।
सकल द्वन्द्व दुःख रूप सदा ही । भय चिन्ता व्यापक भवमाहीं ।।
सकल दुःख का बीज सदा ही । रहत अछय कारण तनु माही ।।
मोह विपिन सब भय का थाना । मिटत न सो पाये बिनु ज्ञाना ।।
काम क्रोध ईर्ष्या हंकारा । मत्सर द्रोह लोभ छल सारा ।।
रहत सूक्ष्म तनु में दुख हेतू । दुःख रूप मानहु ग्रह केतू ।।
वात पित्त कफ जनित कुरोगा । स्थूल देह महँ दुखद कुभोगा ।।
इष्ट वियोग अनिष्टक लाभा । जन्म जरा मरणादिक लाभा ।।
देही को ये अवश सतावैं । बिनु विदेह जन सुख नहिं पावैं ।।
सुख स्वरूप सो ब्रह्म महाना । सो सर्वातम एक न नाना ।।
परम प्रेम विषयहुँ जग सोई । चिदानन्द सत आतम जोई ।।
जब लगि ताहि न जानत प्राणी । तब लगि भ्रमत सहत बहु हानि ।।
ब्रह्महि लखत तरत सब शोका । ह्वै विमुक्त पद लहत अशोका ।।

---

१ दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः । न्याय सूत्र ।। अविद्या हेतवः कामाः काममूलाः प्रवृत्तयः । धर्माधर्मौ च तन्मूलौ देहोऽनर्थाश्रयस्ततः ।।१।। अतो ऽविद्या निरोधे स्यान्निरोधो विदुषः सदा । सर्वानर्थस्य हेतूनां कामादीनां न संशयः ।। वार्तिकम् ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मज्ञान[1] बिनु धन विद्यादी। दुःख न नाशत शोक अनादी ॥
कर्म उपासना हुँ बहु कोये। कामि न लहत चैन निज हीये ॥
काम न नशत विवेक विनाही। बिनु विचार नहिं संशय जाही ॥
भ्रम संशय कामादि अपारा। सकल अविद्या के परिवारा ॥
सब अनर्थ के हेतु सदा ही। महा अन्धतम सम जग माही ॥
ज्ञान भानु के भै उजियारे। नशत मिलत सुख सिन्धुहि प्यारे॥
ज्ञान समान सुखद नहिं कोई। हित लोकहुँ परलोकहुँ होई ॥
ज्ञान दानि सम दानि न आना। सद्गुरु सम नहिं आन महाना ॥
ज्ञान समान पवित्र न कोई। नाशत सब अनादि मल सोई ॥
कर्म योग करि शोधै चित्तम्। तब विवेक लहि पावै वित्ताम् ॥
वित्त सो ब्रह्मानन्द महाना। मोह अविद्या तम दुख हाना ॥
काम मोहयुत कर्महुँ कीये। योगादिक हूँ में मन दीये ॥
पाय सिद्धि अणिमादिक नाना। मिटत न मोह मान दुख नाना ॥
काम त्यागि करि कर्म विचारा। ज्ञान पाय उतरिय भव पारा ॥

॥ विवेकादि ॥ २ ॥

ज्ञान न विनु विवेक जन पावत, नाहिं विशद वैराग्य।
नहिं शमादि सद्गुरु सत्सङ्गति, विना सुसञ्चित भाग्य ॥१४॥
संचित भाग्य आज के शुभभीं, भावी शुभ जब होय।
वैराग्यादि सहित सत्सङ्गति, भव भञ्जन लह कोय ॥१५॥

मैं चित अचित सकल संसारा। यह विवेक शुभ सुखद अपारा ॥
अचल आतमा चल संसारा। देह गेह सब भूत विकारा ॥
इमि विवेक ज्ञान हुँ के हुए। ब्रह्म ज्ञान विनु मन नहिं मूये ॥
भेदक भ्रम अज्ञान न जाई। हर्ष शोक भय नाहिं मिटाई ॥

---

१ अक्रोध बैराग्य जितेन्द्रियत्वं क्षमा दया सर्वजनप्रियत्वम्।
निर्लोभदानं भयशोकहानं ज्ञानस्य चिन्हं दशलक्षणानि ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनु विराग शम दम के पाये। ब्रह्म ज्ञान नहिं हृदय समाये ॥
मन निरुद्ध विषयन से होई । शान्ति सहित शम कहियत सोई ॥
इन्द्रिय गण निरोध दम भाई । तब श्रद्धा वश हृदय सुहाई ॥
गुरु सद्वाक्यादिक विश्वासा । श्रद्धा करत पाप का नाशा ॥
श्रद्धालु सुविराग सुयुक्ता । उपरति सहित मोह मद मुक्ता ॥
ह्वै तितिक्षु गुरु सेवै सोई । जो मुमुक्षु बड़भागी होई ॥

जब[1] लो मन थिर होत नहिं, नहिं शिव तत्त्व विचार ।
जब लो गुरु करुणा नहीं, तब लो सुनिय न सार ॥१६॥

राम कथा गुरु सन्तन सङ्गा । पाइय विमल विचार अभङ्गा ॥
तब लहि ब्रह्म ज्ञान निज ज्ञाना। मेटिय मोह शोक भ्रम नाना ॥

"कथा कीरतन सुननमें, जो कोइ करै सनेह ।
कहैं कबिर तादासकी, मुक्ती निःसंदेह" ॥१७॥

निर्गुण राम कथा गुण टारी। ब्रह्मज्ञान दै ह्वै भवहारी ॥
सगुण राम की कथा पुनीता। दै विवेक जन करत विनीता ॥
निर्गुण राम सच्चिदानन्दा। शुद्ध सर्वगत गत दुख द्वन्द्वा ॥
कहत सुनत समरत नित ताही। जन विवेकि तन्मय हो जाही ॥
नाम रूप मय जग सब जेते । तिहि निषेधि ब्रह्महि मन लेते ॥
नाम रूप से रहित हि जो है । नाम रूप परकाशक सो है ॥
सर्वातम परदेव कहावै । ब्रह्म आदि जो नाम हुँ पावे ॥
सो सामान्य नाम धी हेतू । कल्पित भवसागर के सेतू ॥
नाहिं विशेष नाम है वाको। निर्विशेष मुनि कहते ताको ॥
जाती गुण क्रियादि हैं जामें। नाम विशेष युक्त ह्वैं तामें ॥
गुण क्रियादि सम्बन्ध विहीना। अति असङ्ग सुख सिन्धु महीना ॥

१—यावन्न मनसः स्थैर्यं यावन्न तत्त्वचिन्तनम् ।
यावन्न गुरुकारुण्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्गुण राम आतमा सोई। ताकी कथा करत जो कोई ॥
सो पावन दुर्लभ संसारा। श्रोता विमल मोह मद पारा ॥
माया मोह अनृत नहिं जामें। ब्रह्मचर्य तप सत हो वामें ॥
सो गुरुभक्त सुदेव स्वरूपा। राम कथा शुभ कहै अनूपा ॥
सो वक्ता आश्चर्य स्वरूपा। श्रोता लब्धा कुशल अनूपा ॥
सगुण राम सर्वज्ञ महाना। महिमा आगम निगम बखाना ॥
सोउ दुर्लभ दुर्ज्ञेय अनन्ता। अगम अगोचर गावहि सन्ता ॥
कार्य करण नहिं ताके माहीं। पराशक्ति विविधहिं तहँ आहीं ॥
स्वाभाविकि मति क्रिया बलादी। रहत तहाँ सो देव अनादी ॥
ईश्वरहुँ का ईश कहावै। शक्तिहि से बहु रूप दिखावै ॥
नित्यहुँका अति नित्य महाना। लखत ताहि कोइ सन्त सुजाना ॥
सोइ शान्ति शाश्वत सुख पावैं। जो सर्वात्म राम लखि पावैं ॥
सर्व हृदय में सदा निवासी। अन्तर्यामि राम सुख राशी ॥
व्यापक ब्रह्म हि सदा असङ्गा। मायामय सब उत्पति भङ्गा ॥
कालकाल गुणीहुं कहलावै। अक्षर अकल ताहि मुनि गावैं ॥
आवागमन विहीनहि सोई। सर्वाधार निरञ्जन होई ॥
सूर्य चन्द्र तारादि प्रकाशक। लखतहि होत मोहतम नाशक ॥
अद्भुत कथा ज्ञान ताकाही। देत परम सुख दुःख हरता ही ॥

॥ राम और भक्ति ॥३॥

जग उतपति पालन संहारा। करत राम सो परम उदारा ॥
जीव कर्म कामक अनुसारा। राम करत भव दुखसुख सारा ॥
निरपेक्षहि सो नित्य विमुक्ता। एक विमल माया बल युक्ता ॥
गुणकृत भेद भास युत होई। ब्रह्म[1] विष्णु हर होवत सोई ॥

---

१ सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेतिसञ्ज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनो नृणां स्युः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रज गुण युत ब्रह्मा कहलावै। सत्त्व गुणो विष्णु पद पावै ।।
तम गुण युत हर हरत विभेदा। करत प्रलय जहँ नहिं सुख खेदा ।।
सुख स्वरूप में लीन विभेदा। रहत सुप्ति जनु गत भय भेदा ।।
विभु स्वरूप ये सकल सदा ही। शुद्ध ब्रह्म में कल्पित आही ।।
देवरूप ब्रह्मादिक नाना। कल्पित होहिं कल्प लहि आना ।।
ईशरूप ब्रह्मादिक एका। रहहिं सदा नहिं होहिं अनेका ।।
निर्गुण सगुण राम सब आदी। अधिष्ठान जड़ हेतु अनादी ।।
भजहिं सन्त नित निर्गुण रामा। सगुण तहाँ गत भेद ललामा ।।
श्रवण सुमनन ध्यान नित जोई। राम भजन सो सब शुभ होई ।।
श्रवणादिक कारण सत्सङ्गा। गुरु सेवा पूजा मद भङ्गा ।।
शम दमादि निज धर्माचारा। तोष क्षमा शुभ सत्य विचारा ।।
समता सरल स्वभाव अमाया। इत्यादिक सद्भक्ति कहाया ।।
ज्ञान विराग भक्ति उपजावै। जाते जन भव बहुरि न आवै ।।
सकल योग भक्तिहि शुभ होई। योग मूल यम नियमहुँ सोई ।।
कर्म योग मल दोष विनाशै। भक्ति योग मद मोह विवासै ।।
ज्ञान योग सत करै प्रकाशा। हरै अविद्या तम छल आशा ।।
ज्ञान[२] समान न पावन कोई। योग शुद्ध जन पावत सोई ।।
कर्म योग शोधित मन नीके। लखत राम निज जीवन जीके ।।
पावन मन महँ भासत रामा। योगशान्त महँ सब सुख धामा ।।

।। ज्ञानी और ज्ञान ।।४।।

याते ज्ञानिहि सत सुख पावै। तासु सुजीवन सन्तन गावैं ।।
सब विभक्त संसारक माहीं। एक विभाग रहित जो आहीं ।।

---

२ न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।।
तत्स्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।।१।'
(भ० गीता० अ० ४।३८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्विकार सत ब्रह्म सुदेवा। ताकि ज्ञप्ति सात्त्विक शुभ भेवा॥
जीवन्मुक्ति विमुक्तिद सोई। जहाँ भेद सत भास न कोई॥
नाना भाव पृथक् लख जाते। सोइ ज्ञान राजस कहलाते॥
ताते करि कर्मादि स्वधर्मा। लौकिक यश धन लहैं सुशर्मा॥
राग द्वेष युत करि अपकारा। जन्मादिक दुखलहत विकारा॥
देहादिक आसक्तिक कारण। तत्त्वरहित सो ज्ञान सधारण॥
तुच्छ फलद तामस सो ज्ञाना। देहादिकहि जु आतम माना॥
अस्ति ब्रह्म यह ज्ञान जु होई। ताहि परोक्ष कहत मुनि कोई॥
अहं ब्रह्म यह ज्ञान महाना। तिहि अपरोक्षहि कहत सुजाना॥
मान दम्भ हिंसा मद त्यागा। क्षमा शौच स्थिरता सुविरागा॥
सरल स्वभाव सुगुरु सेवकाई। पुत्र स्त्री गृह संग विहाई॥
इष्टानिष्ट वस्तु के पाये। समचित्तहि रह प्रकृति सुहाये॥
जन्मादिक दुख देखि सदाही। रहि इकान्त जनरति विलगाही॥
आत्मानात्म विवेक परायण। रहै नित्य तत्त्वार्थ परायण॥
तत्त्वज्ञान फल समुझै नीकै। करै सदातम चिन्तन जीकै॥
ये सब ज्ञान स्वरूप कहावैं। मानादिक अज्ञानहिं गावैं॥
अहंकार के शान्त हुए ते। भव भेषज गुरु ज्ञान जु देते॥
ताते रागादिक सब रोगा। नशत न होवत कोइ कुभोगा॥
ज्ञान पाय निज हृदय निवासी। ब्रह्मनिष्ठ लह मुक्ति निराशी॥
शुभ इच्छा सुविचार स्वरूपा। तनुमानसा सुसाधन रूपा॥
सत्त्वापत्ति साध्य शुभ पाये। असंसक्ति बुध लहत सुहाये॥
लहि पदारथाऽभाविनि रूपा। ज्ञान भूमि पुनि तूर्य स्वरूपा॥
ब्रह्मनिष्ठ रहते बुध जोई। जीवन्मुक्त कहावत सोई॥
ज्ञान हि से विमुक्त[1] जन होई। अन्य यत्न शत से नहिं कोई॥

१—ज्ञानवानेव सुखवान् ज्ञानवानेव जीवति।
ज्ञानादेव विमुक्तः स्यान्नान्ययत्नशतादपि ॥१॥ (योग वासिष्ठ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मनिष्ठ गत काम मद परम हँस गत द्रोह ।
जीवन मुक्त विमुक्त सो, हांत विगत कलि कोह ।।१८।।

ज्ञान हीन जन कृपण[1] कहावैं । जो न सन्त गुरु ईश्वर ध्यावैं ।।
ज्ञानी जन उदार सब भाँती । पूजनीय सो विगत अराती ।।
शत्रु मित्र उनके नहिं कोई । विगत भेद लख आतम जोई ।।
ब्रह्मनिष्ठ मुनि जन विज्ञानी । शील दया युत सन्त अमानी ।।
सो परहित निज हितकरि सारा । जीवन्मुक्त विमुक्त उदारा ।।
शोक मोह वश कभी न होहीं । ध्येय ज्ञेय भक्तन का सोही ।।
शिष्य प्रथम निज गुरु पद पावै । पुनि पर ब्रह्म स्वरूप हो जावै ।।
शोक न लहै सुधर्म परायण । विगत काम शुभ धर्म चरायण ।।
पर उपकारि विवेक सुयुक्ता । शोक न पावै विमल विमुक्ता ।।
शोक पात्र सो नहिं किहि भाँती । जो विज्ञान निरत दिन राती ।।
काल जाल नहिं व्यापै ताही । जो विज्ञान निरत जग माँही ।।
आत्मज्ञान यम जाल विनाशक । शोक विपिन का सो अतिनाशक।।
आत्मज्ञान ही ज्ञान कहावै । जाते जन्म मरण नहिं पावै ।।
आत्मज्ञान नाशै अज्ञाना । जाते द्वन्द्व सकल का हाना ।।
ज्ञानाऽऽभास और ह्वै ज्ञाना । जाते मोह न काम नशाना ।।
काम मोह मद नाशक जोई । परपदप्रद निज ज्ञानहि सोई ।।
परमहंस परपद लह ज्ञानी । आश्रम वर्णादिक सम मानी ।।
पक्षपात द्वेषादि वियुक्ता । परमहंस ज्ञानी नित मुक्ता ।।
लोकलाज परलोकक ध्याना । त्यागि रहत निज रूप समाना ।।
देह गेह की सुधि नहिं ताकी । निज स्वरूप थिति होवत जाकी ।।

परम हंस नित पूज्य सो, विश्वाधारहुं राम ।
जाना विगत विकार जिन, सर्वोतम सुख धाम ।।१६।।

१—यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः ।। ।बृ०३।८।१० ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ शुद्धऽऽहारादि ॥५॥

शुद्धाहार[1] विचार सुकर्मा । शोधत मन मति देत सुशर्मा ॥
शूद्धाहारि बुद्धि निज शोधी । समाधान गुरु वच अनुरोधी ॥
करै विचार विमल नित सोई । जाते ध्रुव समरण हिय होई ॥
सत्सङ्गति युत नित्य विचारी । वसि इकान्त सत ब्रह्म सम्हारी ॥
खर्व गर्व को देत विनाशी । ग्रन्थिहुँ नाशि मिलै अविनाशी ॥
शुद्ध बुद्धि जन राग विनाशै । कपट काम तजि सङ्ग विवासै ॥
क्रोध लोभ मद रहित असङ्गा । अनासक्त जित मन मति अङ्गा॥
ममता रहित विमद वैरागी । अहंकार हठ संग्रह त्यागी ॥
विषय विरत रति राम सम्हारी । तृष्णा तजि सत धीरज धारी ॥
ब्रह्मनिष्ठ ह्वै ब्रह्मस्वरूपा । निज भक्तहुं तारै भवकूपा ॥

गुणातीत को सेविके, गुणातीत जन होय ।
याते गुणव्यतीत को, सेविय काम विगोय ॥२०॥

॥ गुणातीत ॥६॥

गुणातीत निर्गुण इक रामा । ज्ञानी सुगुरु सन्त सुख धामा ॥
गुणातीत ये रहत सदा ही । इनहि सेवि जन गुण पर जाही ॥
विषयज सुखासक्ति अभिमाना । ज्ञान गुणहुँ आतम में माना ॥
सो अभिमानी जन अविवेकी । बँधत सत्त्व गुणको हिय टेकी ॥
निर्मल गुण प्रकाश मय जोऊ । सुखासङ्ग से बाँधत सोऊ ॥
ज्ञानासङ्ग हुँ बँधनकारी । त्यागि तिनहि ह्वै सन्त सुखारी ॥
कर्म सङ्ग से रजगुण बाँधै । मोहादिक से तमगुण बाधै ॥
रांग द्वेष अभिमान विहीना । जो तिहि नहिं बाधै गुण तीना ॥

१—आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः । छा० ७।२६।२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राग द्वेष अभिमान से, रहित ज्ञानि मति धीर ।
उदासीन सम रहत नित, गुणातीत बुध वीर ॥२१॥

निर्गुण राम ब्रह्म[१] जिन जाना । ब्रह्मनिष्ठ सो रहत सयाना ॥
ब्रह्मनिष्ठ श्रोतिय सुज्ञानी । सद्गुरु परम कृपालु अमानी ॥
सेविय इनहि पाय शिव ज्ञाना । मेटिय अखिल विमोह निदाना ॥
राम प्रेम हृदये गहि गाढ़ी । विषय प्रेम तन मन से काढ़ी ॥
जगत् प्रेम सब राग वहाई । भजिय राम भव भय विसराई ॥
जपिय नाम पाइय विश्रामा । शान्ति परम सुख शुभ सब ठामा ॥
यद्यपि राम अगुण अविकारा । मन वच क्रिया सकल से पारा ॥
अलख अखण्ड असङ्ग हि देवा । कोई मुनि जन ताकर लख भेवा ॥
परं ब्रह्म कहते हैं ताही । ईश्वर सगुन ब्रह्म कहलाही ॥
सो दयालु सर्वज्ञ महाना । ताको भजहीं सुसन्त सुजाना ॥
सगुणहुँ भजि निर्गुण मति पावहिं । सगुन अधार अगुण ठहरावहिं ।
सगुन माँह रह अगुण समाई । समुझहि ताहि विवेकी भाई ॥
सगुण न देही देह स्वरूपा । सोउ सर्वज्ञ विभुहि सत रूपा ॥
सत रज तम युत सगुण जहावै । शब्दादिक को गुण मुनि गावै ॥
शब्द स्पर्श रूपादि सुयुक्ता । सगुण कहिय मायी श्रुति उक्ता॥
अगुण शब्द स्पर्शादि विहीना । तमः सत्त्व रज गुण से भीना ॥
अगुणि भक्त तिहि भजहि सदाही । कोइ तिहि अगम लखहि मन माही

किन्तु न अगम विवेकि कहँ, सुख स्वरूप सो आहिं ।
चित स्वरूप सत आतमा, अगुण राम कहि जाहिं ॥२२॥

१--रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥१॥ राम पूर्व ता० १।७॥ सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये । न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥२॥ राम रहस्योपनि० ५।१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

।। भक्ति ।।७।।

भक्ति प्रेम रुचि प्रीति कहावै। सुख स्वरूप रुचि को नहिं पावै ।।
चिदानन्द निर्गुण को जानी। को न भजै तजि सकल गलानी ।।
जानै विना भजै नहिं कोई। सो न वस्तु गत दूषण होई ।।
सद्गुरु से तिहि जानि परोक्षम्। भजि करही जन अति अपरोक्षम् ।।
प्रेम सहित विचार अघ हारी। भक्ति कहिय चिन्तन सुखकारी ।।
विषय काम सङ्गादि विहीना। प्रेम भक्ति लहि होय न दीना।
गुरु वच चरण प्रेम सेवकाई। करत सहज अघ ओघ नशाई ।।
पुनि प्रभु चिदानन्द का ध्याना। जो मन माहिं करहि तजि माना।
सो पावहि सुख सिन्धु अपारा। जाका कण विखरा जग सारा ।।

सुख ब्रह्मादिक देव के, जाके सिकर समान।
अगुणिभक्त तिहि राम को, भजहिं लखहि मतिमान ।।२३।।

यद्यपि राभ सकल गुण हीना। संख्या रहितहि कहहिं प्रवीना ।।
तहँ एकत्व गुणहुँ नहिं साँचा। निर्गुणत्व यों धर्म असाँचा ।।
गुणधर्मादि रहित अविनाशी। चिदानन्द सत स्वयं प्रकाशी ।।
तदपि सुकल्पित गुण शुभ धर्मा। गाय हरिहि जन पावहिं शर्मा ।।

।। कृपण ।।८।।

जो न राम रति नहिं गुण गावहि। निजस्वरूप की सुधि नहिं पावहि।।
विषय पुत्र तिय पाय लुभाना। जग सुख को हि अमृत सत माना।।
अथवा स्वर्ग सुखन के लागी। काम्य कर्म महँ रह नित जागी ।।
काम विमुक्त होत जो नाहीं। कृपण ताहि कहते श्रुति माहीं ।।
कृपण काम रत पर अपकारी। वेद सन्त मत सुगुण विसारी ।।
शोचनीय होवत सब ठाहीं। पर पीड़ा बश जिहि मन माहीं ।।
तजि निज धर्म जु अधरम कीन्हा। अथवा अन्य धरम गहि लीन्हा ।।
मानवता सुख मूल विगोई। शोचनीय भव सब बिधि सोई ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानवता बिनु धर्म न पावै । धर्म विना गुण ज्ञान नशावै ॥
चलै कुपन्थ वेद मत खोई । गम्यागम्य न जानै कोई ॥
शुद्ध वेद मत परम अहिंसा । सत्य दान दम दया न हिंसा ॥
यज्ञ जाप पूज्यन की पूजा । कुपथ त्याग गहि भाव अदूजा ॥
जो न वेद मत सत्य पिछानै । विनु विवेक सो अनरथ ठानै ॥
पूज्याऽपूज्य विवेक न पावै । हेय धेय की मति विसरावै ॥
भक्ष्याऽभक्ष्य न चीन्है सोई । मीन मांस रुचि मद्यप होई ॥
पर धन कण तिय का करि भोगा । पावै मोह कठिन सब रोगा ॥
न्यायार्जित धन हेतु सुयोगा । लहै न सत उद्यम सत भोगा ॥
अन्यायार्जित भोग किये ते । जात धर्म हरि प्रीति हिये ते ॥
राम भक्ति गुरु भक्ति न भावै । सत्सङ्गति नहिं हृदय सुहावै ॥
श्रद्धा गुरुवच वेदन माहीं । रहै न यदि परधन नित खाहीं ॥
ह्वै कुभक्ष्य से मन सुमलीना । तहाँ न दरशै राम सुभीना ॥
मन दर्पन दर्शन का हेतू । चाहिय शुद्ध ज्ञान सुख खेतू ॥

सत्य शौच सन्तोष तप । दया क्षमा सद्भक्ति ।
होवत नाहिं कुभोगि को । नहिं सद्ज्ञान विरक्ति ॥२४॥

अज्ञ कुभोगि कामबश होई । करै कामबश कर्म हुँ सोई ॥
कर्म विवश देवादि अधीना । ईश अधीन रहत अति दीना ॥
करत कर्म परतन्त्र सदा ही । भोगहुँ मिलै स्वतन्त्र न ताही ॥
यों दुख रूपहि सब संसारा । परतन्त्रता दुःख अति भारा ॥
बिनु स्वतन्त्रता सुख ले मानी । सो विमूढ़ बहु पावत हानी ॥
काम विरहित ईश्वराधीना । सुगुरु शरणागत धर्म धुरीणा ॥
सो परधर्म ज्ञान निज पाई । परम स्वतन्त्र मुक्त हो जाई ॥
कामिहुँ को निज कर्मन माहीं । कहत[1] स्वतन्त्र भोग में नाहीं ॥

१ एष ह्येवैनं साधु कर्म कारयति । एष ह्येवैनमसाधु कर्म कारयति । कौषीतकि ब्रा० ।३।८॥ जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो मतिमान कि मति के हीना। करिय विचार न होइय दीना॥

नहिं परतन्त्र स्वतन्त्र नहिं, नहीं एक नहिं दोय।
राम सकल की आतमा, निज आतम है सोय॥२५॥

सुख स्वरूप तिहि आतम ज्ञानी। लखहिंजहाँ कोइ लाभ न हानी॥
स्वयं प्रकाश एक सब मांही। विषय लाभ से क्षरण प्रकटाही॥

॥ मानव का कर्तव्य ॥६॥

सुख अति प्रिय अनुकूल सभी का। दुःख अप्रिय प्रतिकूल अनीका॥
आत्मा हुँ प्रतिकूल न होई। नित अनुकूल जान सब कोई॥
निज सुख दुख सम सबके जानी। पर प्रतिकूल तजहि मुनि ज्ञानी॥
सो कर्तव्य मानव सबही का। भेद भाव सब तजन अलीका॥
जो निज[1] पर में अल्प हुँ भेदा। लखै सत्य तिहि यम दे खेदा॥
सकल भूत में सम इक देवा। आतमा हि सेव्य हुँ का सेवा॥
ताहि लखै पुनि तामें सब ही। पूजै ताहि न और हि कबही॥
सोइ सर्ववेदज्ञ सुज्ञानी। वेद शास्त्र तत्त्वार्थ पिछानी॥
जिस किस आश्रम लोक निवासी। मुक्त ह्वै सब काटै फाँसी॥
अतः समाहित ह्वै सत झूठा। कारण कारज जगत अनूठा॥
सब कहँ निज आतम में देखै। इनके सत्त्व आतमा पेखै॥
सर्व देवहूँ आतम जानी। कर्म भोग प्रद आतम मानी॥
मायामय सब भेद पिछानी। आतम निष्ठ रहै जो ज्ञानी॥
राग द्वेष मद मोह विमुक्ता। पाप बुद्धि से नित्य वियुक्ता॥
सर्व साम्य सो पाय सदा ही। यम कर्मादिक बश नहिं जाहीं॥

१—श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥१॥ आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम्। तस्य भिन्नदृशो मृत्यु विंदधे भयमुल्वणम्॥२॥ (उत् आपि अरम्—अल्पम्। अन्तरम् = भेदम्)॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहंकार दम्भहुँ छल त्यागी । हिंसा स्तेय रहित सुविरागी ॥
अनासक्त शुचि शान्त सुचेता । भक्त अनन्य एकान्त निकेता ॥
तत्त्वज्ञान फल दर्शन युक्ता । ब्रह्मज्ञान लहि होत विमुक्ता ॥
सदाचार युत शम दम युक्ता । संतोषी मदमोह विमुक्ता ॥
विषय दोषदर्शी सुविवेकी । श्रद्धा सहित सुगुरु पद टेकी ॥
जितेन्द्रिय अभ्यास परायण । सत्यवादि जन होहिं नरायण ॥
ज्ञानाभ्यास विना चल चित्तम् । सब अनर्थ का होत निमित्तम् ॥
चितचञ्चलता छाड़िय याते । सतगुरु सत्य कहत यह बाते ॥
भजिये राम जो अचल सदा ही । चित्त पकड़ि धारिय ता माही ॥
किहि विधि रामहि जानिय भाई । सर्वातम सुख सिन्धु सुहाई ॥
सर्वाधार सकल कर्ता सो । भजत जु ताहि न पुनि मर्ता सो ॥
मिथ्या दुख स्वरूप जग जानी । मायामय अद्‌भुत पहिचानी ॥
मायामय जग से मन मोरी । धरै राम में करै न चोरी ॥
सत्य अहिंसा को नित धारै । शुचि सब विधि रहि ब्रह्म विचारै ॥
ब्रह्मचारी सब हित सो प्राणी । संतोषी ह्वै सब सुख खानी ॥
याते वेद कहत सो सुनिये । सदा राम को मन में गुनिये ॥

"चित चञ्चलता छाड़ दे, माया से मन फेर ।
जाहि ते सब कछु भया, ताही काह न हेर ॥२६।

अन्वेषण[1] दर्शन के लायक । आतमाहि इक सब सुख दायक ॥
सोइ ब्रह्म सत ईश कहावै । माया सहित विश्व उपजावै ॥
स्वयं असंग एक रस सोई । विविध जगत माया से होई ॥
उपादान परिणामिनि माया । चिच्छाया युत जगत वनाया ॥
माया सहित ब्रह्म सत सोई । उपादान निमित्तहूँ होई ॥
इमि सत ब्रह्म सकल आधारा । सर्वरूप सब ही से न्यारा ॥

---

१ आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥बृ० २।४।५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताहि असत[1] जानत जो कोई। स्वयं असत सो सब विधि होई ॥
अस्ति ब्रह्म जानत जो प्राणी। ताकहँ सत्य लखहिं मुनिज्ञानी ॥
लखि सत ब्रह्म ब्रह्म ह्वै जावै। आवागमन बहुरि नहिं पावै ॥

॥ ज्ञानकारणरूप योग ॥१०॥

सत ब्रह्मातम ज्ञान हित, योग विदित हैं दोय।
कर्म योग सत भक्ति मय, जाते मन थिर होय ॥२७॥

गुरु से ब्रह्म परोक्षहुँ जानी। भजै ताहि तजि दुविधा प्राणी ॥
ज्ञात क्रिया अघ सब करि हाना। पुनि पावै निज बोध सुजाना ॥
नास्तिक ब्रह्म विचार विहिना। महा कृपण होवै अति दीना ॥
आस्तिक कर्म करै निष्कामा। भक्ति करै पावै विश्रामा ॥
करि उपासना मन ठहरावै। जाते मन चञ्चलता जावै ॥
राजस तामस मन परिणामा। चञ्चल मन का होवै कामा ॥
लोभ काम ईर्ष्या आरम्भा। नित्य अशान्ति प्रवृत्ति दम्भा ॥
इत्यादिक राजस परिणामा। अप्रकाश मोहादि तमामा ॥
अज्ञान रु अविवेक प्रमादा। निद्राऽऽलस्य हुँ तमः दयादा ॥
इनका विनिरोधक परिणामा। सात्त्विक चित्तवृत्ति सुख धामा ॥
चित्तकुवृत्ति निरोध स्वरूपा। चित्तैकाग्र्य योग का रूपा ॥
यमनियमादि[2] सुशोधित काया। होवै मनहुं विगत सब माया ॥
तब गुरुवचनादिक अनुसारी। करै जु ध्यान-योग लह सारी ॥
सात्त्विक वृत्ति रह ध्येयाकारा। अन्य वृत्ति सब मिटै विकारा ॥

१—असन्नेव स भवति, असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्तिब्रह्मेति चेद वेद, सन्तमेनं ततो विदुः ॥तैत्तिरीय० २।६।१॥

२—रजस्तमस्तु सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥
श्रीमद्भागवत स्क० ७।१५।२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो सविकल्प योग कहलावै। तहाँ ध्येय का दर्शन पावै ॥
सकल वृत्ति जब जाय विलाई। निर्विकल्प तब योग कहाई ॥

एकाग्र सुनिरुद्ध जब, मन होवत अति शुद्ध ।
तब क्रम से द्वौ योग ह्वै, कहत समाधि सुबुद्ध ॥२८॥

निर्विकल्प समाधि को पाये। योगी निज स्वरूप ठहराये ।
निज स्वरूप तहँ मुक्त सुयुक्ता। रहत मुक्त सम बन्ध विमुक्ता ॥
पुनः योग व्युत्थित ह्वै चित्तम्। चित्तवृत्ति सम आतम स्थित्तम् ॥
योगी हुँ भोग लहै पुनि सोई। प्रारब्ध जाके जस होई ॥
किन्तु ज्ञान प्रकाश उजासै। जाते मोहादिक तम नाशै ।
तमः सकल संसृति का कारण। तमः गये नहीं जन्मक धारण ॥
करै योगि ह्वै जीवन्मुक्ता। ह्वै विदेह मुक्त हुँ श्रुति उक्ता ॥

चित्तवृत्ति संसार के, हेतु जु सकल प्रसिद्ध ।
होय न सो पुनि ज्ञानि को, सो योगी श्रुति सिद्ध ॥२९॥

चित्तवृत्ति निरोध के लायक[1]। पाँच प्रकारक ह्वै दुख दायक ॥
अविद्यादि क्लेश संयुक्ता। क्लेश जनित क्लिष्टा सो उक्ता ॥
तद्विपरीत अक्लिष्टा होई। गुणबन्धन वारण कर सोई ॥
प्रथम प्रमाण वृत्ति कहि जाई। द्वितीय भ्रान्ति विपर्यय भाई ॥
तृतीय कहिय विकल्पक नामा। निद्रा चौथी स्मृति पञ्चामा ॥
इन्द्रिय द्वारा वृत्ति जु होई। शब्दादिक निश्चय मय सोई ॥
सो प्रत्यक्ष प्रमाण कहावै। प्रमिति ताहि को बुद्ध कोइ गावै ॥
इन्द्रिय करण रूप परमाना। तन्निरोध दम साधन माना ॥
अर्थ समान्य विशेष स्वरूपम्। भासत प्रत्यक्ष हि से रूपम् ॥
अविनाभाव सह स्थिति रूपा। व्याप्ति कहिय सम्बन्ध अनूपा ॥

१—वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः। प्रमाणविपर्यंविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥
योग सू० १ । ५ । ६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताके ज्ञान जनित जो ज्ञाना। सो अनुमान वृत्ति परमाना॥
शक्ति लक्षणा ज्ञान सुयुक्ता। आप्त वाक्य सुनिये जो उक्ता॥
ताते ज्ञान वृत्ति जो होई। आगम कहिय प्रमाणहि सोई॥
साधु शब्द है, शीत सुस्पर्शा। शुक्लरूप रस मधुर विमर्शा॥
सुरभि गन्ध इत्यादि स्वरूपम्। होत प्रमाण वृत्ति का रूपम्॥
अनुमान रु आगम परमाणा। होत समान्य विषय नहिं आना॥
जानामि शृणोमि इत्यादी। पौरुषेय बोधहि फल सादी॥
चित्तवृत्तिका बोध स्वरूपा। योगि जन वर्णत फल रूपा॥
चित्तवृत्ति रूप हि सो होई। पुरुष[1] विकार न पावै कोई॥
किन्तु चित्त पौरुष अभिमाना। करत अस्मिता[2] रूप महाना॥
चित् जड़ के एकत्व समाना। लखत बुद्धि स अस्मिता जाना॥
मिथ्या ज्ञान विपर्यय होई। जिमि रज्जु हि सर्प हुँ लख कोई॥
मिथ्या बोध हि बाधित होई। सत्य ज्ञान प्रकटै जब कोई॥
शब्द ज्ञान अनुसारि जु ज्ञाना। बाध रहित विनु वस्तु हि माना॥
चेतन का चैतन्य न आना। राहु का शिर आन न माना॥
तो भि कहत जन जानत ऐसा। शब्द ज्ञान होवत है जैसा॥
सोइ विकल्प वृत्ति कहलावै। निद्रा वृत्ति सुषुप्तिक गावै॥
ज्ञानाभाव कारण अज्ञाना। तद्विषयक ता वृत्ति हि माना॥
सुख विषयक वृत्ति हुँ सो होई। जाग्रत स्मृति ते जानिय सोई॥
सुख से सोया कछु नहिं जाना। इत्यादिक हि जागि कह स्याना॥
स्मृति नामक वृत्ति हुँ सुप्रसिद्धा। संस्कारज सोउ योग विरुद्धा॥
ताते प्रबल विराग सम्हारी। दोषदर्शि संगादि निवारी॥
करत नित्य अभ्यास ही जोई। मेटि कुवृत्ति योगि सो होई॥
ईश्वर भक्ति नाम जप ध्याना। मेटि विघ्न सब देत सुज्ञाना॥

१—आत्मा॥ २—दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवाऽस्मिता।
योग सूत्र पा० २। ६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थूल देहादि उपाधि सुयुक्ता। ईश आतमा ध्यान नियुक्ता ।।
करि विवेक युत उनका ज्ञाना। सूक्षम ध्यान करै मतिमाना ।।
करि विवेक युत उनका ज्ञाना। कारण ध्यान करै मतिमाना ।।
कारण रूप प्रकृति पहिचानी। तद्‌गत कारण ब्रह्म पिछानी ।।
कारण कारज भाव वियुक्तम्। ब्रह्मातम लख योगि सुयुक्तम् ।।
अन्नमयादिक कोश विचारा। उपनिषद कह याते सारा ।।
अन्नमय हि आतम को मानिय। प्रथम ताहिको सविधि सुजानिय ।।
प्राणमयहुँ का पुनः विचारा। पुनः मनोमय का सम्भारा ।।
विज्ञानक मय पुनः विचारी। आनन्दक मय महँ मति धारी ।।
इमि सोपानाऽऽरोहक रीती। गहि होइय ज्ञानी गत भीती ।।
यह सद्‌गुरु का सत उपदेशा। योग ग्रन्थ से जानु अशेषा ।।
साधुशास्त्र[1] का करु अभ्यासा। पुण्यकर्म तप ब्रह्माभ्यासा ।
जाते संशय दोष विनाशै। ब्रह्म आतमा ज्ञान प्रकाशै ।।
जब लगि ज्ञान प्रकाश न कीजै। सुखद समाधि हि नाहिं लहीजै ।।
तब लगि मिटै न यह संसारा। जन्म मरण भय शोक अपारा ।।

"तब लगि तारा जग मगै, जब लगि उगै न सूर ।
तब लगि जीव कर्म वशी, जब लगि ज्ञान न पूर"।।३०।।

योग रु सद्विचार ये दोऊ। होत ज्ञान साधन लखु सोऊ ।।
विनु विचार योगहुँ के कोये। होत न ज्ञान मोह रह हीये ।।

१—अभ्यासात् साधुशास्त्राणां करणात् पुण्यकर्मणाम् ।
जन्तो र्यंथावदेवेयं वस्तुदृष्टिः प्रसीदति ।।१।। (यो०वा०)

सम्यग् दर्शनसम्पन्नः कर्मभि र्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।।२।।

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।३।। (मनुः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव प्रत्यय = भव हेतुक योगा। विनु विचार के पावैं लोगा।।
सो विदेह नामक ह्वै देवा। प्रकृति लीन वा सेवि कुसेवा।।
श्रद्धा युत सुविचार सुयुक्ता। योगी ज्ञान पाय ह्वै मुक्ता।।
कहिय उपाय प्रत्यय सो योगा। जो श्रद्धादि हेतुक संयोगा।

।। यम की स्थिरता से सिद्धि ।।११।।

अहिंसादि सब योगन काही। मूल विशुद्ध जानिये ताही।।
जो सर्वथा अहिंसा होई। परम सुधर्म महाव्रत सोई।।
अहिंसा हि प्रस्थिति जब पावै। तब तहँ बैर भाव नहिं आवै।।
उक्त अहिंसक निकट जु जाये। सकल प्राणि दे वैर विहाये।।
सत्य प्रस्थिति जामें होई। ताकी वाक् विफल नहिं कोई।।
अस्तेयहुँ जहँ प्रस्थिति पावै। सर्व रत्न तहँ पासहि आवै।।
सर्व रत्न प्राप्तिज सत सूखम्। लहै अचोर न लोभज दुःखम्।।
ब्रह्मचर्य जब प्रस्थिति पावै। तन मन में तब बल बहु आवै।।
आतम लाभ[1] योग्य नहिं ताही। बल विहीन जो ह्वै मन माँही।।
बलि शमादि निज गुणन बढ़ावै। सिद्ध होय शिष्यन समुझावै।
सत्य ज्ञान तप उपरति योगा। ब्रह्मचर्य नित त्याग कुभोगा।।
आत्म लाभ के ये सब साधन। होत सदा संसृति तम बाधन।।
सदा[2] परिग्रह त्यागैं जोई। जन्म कथंता सब लख सोई।।
क्या था प्रथम और था कैसा। जानत सब है होगा जैसा।।

सदा वेद अभ्यास तप, शौच करै जो कोय।
द्रोह रहित सब भूत से, पूर्व जन्म लख सोय।।३१।।

१—नाऽयमात्मा वलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।। मुण्डक०।।३।२।४।।

२—अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्ता संबोधः। योग द०२।३९।।
वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च।
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्वकीम्।। मनुः अ०४।।१४८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

।। नियम की स्थिति से सिद्धि ।।१२।।

शौचाभ्यास करै जो कोई। स्वाङ्गे ताहि जुगुप्सा होई ।।
पर देहादि संग का त्यागा। होत बुद्धि कि शुद्धिविरागा ।।
मनः प्रसन्न एकाग्रहुँ होई। इन्द्रिय विजय करै पुनि सोई ।।

आत्मज्ञान की योग्यता, शुचिता से ह्वे प्राप्त ।
अर्थादिक सब शौच युत, लहै ज्ञान कह आप्त ।।३२।।

शुचि सन्तोष युक्त जो होई। सर्वोत्ताम सुख पावै सोई ।।
कामज दिव्य महा सुख जोई। सन्तोषज सुख लब सम सोई।।
तप से पापाऽवरण नशाहीं। कायेन्द्रिय[1] सिद्धि हि तब पाहीं ।।
काय सिद्धि अणिमादि कहावै। महा सिद्धि जिहि योगी गावै ।।
दूर दरश श्रवणादि स्वरूपा। इन्द्रिय सिद्धि हि गौण स्वरूपा ।।
वेद मन्त्र जप अध्ययनादी। सो स्वाध्याय कहत सतवादी ।।
स्वाध्याय हि से इष्ट सुदेवा। मिलहि सिद्ध ऋषि मुनि गणदेवा ।।
साधहिं कार्य स्वशक्ति समाना। अतिवाहिक तिहि देह न आना ।।
अधिकारी स्वरूप सो रहहीं। भक्तन के बहु पातक दहहीं ।।
आर्य हुं जो कहलाव विमूढा। सो न लखै यह तत्त्व निगूढा ।।
क्षिप्त मूढ विक्षिप्त स्वरूपा। एकाग्रहुँ सुनिरुद्ध अनूपा ।।

१—कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः। योगद० २।४३। श्रीमद्भागवतस्क० ११।१५।। में मुख्य गौण सिद्धियों के भेद द्रष्टव्य हैं ।।अणिमा, महिमा मूर्तें लंघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः। प्राकाश्यं श्रुत दृष्टेषु शक्ति प्रेरणमीशिता ।।१।। गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ।। इत्यादि ।।

अनूर्मिमत्वं देहेऽस्मिन् दूरश्रवणदर्शनम् ।
मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ।।१।।
स्वच्छन्दमृत्यु र्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथा संकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहता गतिः ।।२ ।। इत्यादि ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्च भूमिका चित्त कि होई। क्षिप्त विमूढ बहिर्मुख सोई॥
योगारम्भ काल की जोई। कहिय विक्षिप्त रूप हि सोई॥
सविकल्प समाधि के पाये। ध्येय दर्शि ह्वे योगि सुहाये॥
तहँ एकाग्र चित्त शुभ रहई। इष्ट दरश निज आतम गहई॥
परवैराग्य विचार सुयुक्ता। वृत्ति निरोधि योगि ह्वे मुक्ता॥
कर्म प्रबल जन्मादिक हेतू। अविद्यादि तहँ होवत खेतू॥
शुक्ल कृष्ण अरु उभय स्वरूपम्। होय अशुक्ल कृष्ण हुँ रूपम्॥
आद्य तीन जन्मादिक हेतू। होत अविद्या रह तहँ खेतू॥
ज्ञान हि अग्नि अविद्या नाशै। संचित कर्म समूल विनाशै॥
ज्ञान अवस्था में जो होई। शुक्ल न कृष्ण न उभय हुँ सोई॥
दग्ध बीज सम सो भव कारण। होत नहीं होवत भव तारण॥

ईश्वर के प्रणिधान से, होत समाधिक लाभ।
सो सत ज्ञान स्वरूप ही, जाते जन्म अलाभ ॥३३॥

यह यम नियम प्रभावहि गाई। जिहि विनु योग न होत सुहाई॥
यम अरु नियम युक्त ह्वे जोई। लहै ज्ञान सो मुक्तहि होई॥

॥ मुक्त की अपुनरावृत्ति ॥१३॥

मुक्त न होवै पुनि संसारी। ब्रह्म रूप निजरूप सम्हारी॥
मुक्तक कहै जु पुनि संसारा। सो जनु वहत मोह की धारा॥

अपुनराविरति[1] हि कहये, वेद सुस्मृति पुरान।
सकल सन्त मत साधु यह, जानत सुहृद सुजान ॥३४॥

मुक्त न यदि पुनि ह्वे संसारी। घटि हैं जग यों कहत अनारी॥
जग अनन्त सो समुझत नाहीं। ईश शक्ति नहिं लख मन माहीं॥

१—न च पुनरावर्तते। छा०८।१५।१॥ ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।बृ०४।६।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥श्वेता० ३।८॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ भ० गी० ५॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माया शक्ति न मन को जानै। ताते विषमहि शंका ठानै ॥
महा प्रलय के अन्त जु आवै। ईश्वर तब यह जगत बनावै ॥
निज स्वरूप में लीन अनन्ता। रचै चराचर श्रीभगवन्ता ॥
स्वप्न समान हि विनहि प्रयासा। संकल्प हि से रचत तमासा ॥
कर्मादिक भोगक अनुसारा। ईश्वर संकल्पहुँ हो सारा ॥
सांशहि जीवन केर उपाधी। ताहु विभाजि सकै निरुपाधी ॥
वृद्धि ह्रास ईश्वर आधीना। कर्म तन्त्र सब लखहिं प्रवीना ॥
एकहि से करि सकै अनन्ता। बीज विभाजि सकै भगवन्ता ॥
योगिहुँ करत अनन्त स्वदेहा। भोगत पृथक न कछु सन्देहा ॥
नास्तिक कहँ यह सूझत नाहीं। दम्भाचार धरत मन माहीं ॥
यहाँ छाड़ि सर्वज्ञ सुस्वामी। लोकान्तर स्वामिक अनुगामी ॥
नित्यमुक्ति नहिं जाने सोई। जाते आवागमन न होई ॥

"ते नर कहहु कहा गये, जिनहिं दीन्ह गुरु घोंटि ॥
राम नाम निज जानिके, छाड़हु वस्तुहि खोंटि ॥३५॥

मातु हितैषिणि सम गुरु स्वामी। ज्ञान घांटि देही अनुगामी ॥
सो विरक्त गुरु भक्त सयाना। आवागमन न लहै निदाना ॥
रामनामि निज सत्य स्वरूपम्। गहि मायामय तजै कुरूपम् ॥
याते सत्य स्वरूप हि जानी। नश्वर देहादिक दुख मानी ॥
ममता मोह तजो तहँ भाई। जाते द्वन्द्व हुँ सकल नशाई ॥
नश्वर अशुचि अनातम दुःखम्। लखै नित्य शुचि आतम सुखम् ॥
यह कारज अज्ञान कहावै। कारण रूप अनादिहिं गावैं ॥
निज अविवेक राग द्वेषादी। अज्ञानहि सब सादि अनादी ॥
ईश्वर भक्ति सुगुरु का ध्याना। करि विचार पाइय निज ज्ञाना ॥
नाशिय सब अज्ञान अनादी। जाते नशै सहज सब सादी ॥
कारण ब्रह्म कौन है कैसा। जाते सब जग जीवन ऐसा ॥
सर्वाधार सब हि का पालक। सुख दुख देत जु सब का चालक ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल स्वभावादिक नहिं सोई। करि विचार तिहि जानिय लोई॥
सुख दुख भागि जीव सो नाहीं। भूतादिक जड़ नियति हुँ नाहीं॥
क्लेश कर्म तत् फल जन्मादी। वासनाहुँ नहिं सादि अनादी॥
सो सर्वज्ञ विभेद विहीना। कारण ब्रह्म मायि अति झीना॥
सर्व भूतगुण देहन माहीं। रहत गुप्त तिहि जन लख नाहीं॥
व्यवहारिक तहँ भेद अपारा। परमारथ तहँ एकहि सारा।
परमारथ एक हि लख जोई। मायामय सब भेद विगोई॥
सोइ शान्ति सुख पावै नित्यम्। ज्ञान पाय जो तजै अनित्यम्॥

"यह मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्म ज्ञान।
जिहि वैसन्दर जग जरै, सो पुनि उदक समान" ॥३६॥
ज्यों गिरि सायर मुकुर में, भींज भार कछु नाहिं।
ऐसे सुख दुख रहित है, ज्ञानी के घट माँहिं ॥३७॥

॥ मोक्षेच्छा के हेतु ॥१४॥

मानुषता मोक्षेच्छा भारी। जाहि शुभेच्छा कहत विचारी॥
महापुरुष[1] ज्ञानी का सङ्गा। ईश कृपा से लहिय अभङ्गा।
जन विवेक मोक्षेच्छा पाई। शम श्रद्धादिक प्रबल दृढ़ाई॥
सद्गुरु शरण जु पावै आजू। मिले ज्ञान सुधरै सब काजू॥
ईश्वर[2] सम हित बड़ नहिं कोई। नहिं सद्गुरु सम सुहृदहुँ होई॥
यद्यपि कर्म भक्ति अनुसारी। ईश देत फल सब नर नारी॥
सकल प्राणि को सुख दुख दाता। बन्ध मोक्ष शुभ अशुभ विधाता।
तदपि सोइ सब जाननिहारा। सम्मुख हुए करत सुसहारा॥

१—दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरूष संश्रयः ॥१॥
(विवेक चूड़ामणि)

२ न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। प्रधानक्षेत्रपति गुंणेशः संसारमोक्षस्थितिवन्धहेतुः (श्वेताश्वतरोपनिषद्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देत मनुषता ज्ञान प्रकाशा। सद्गुरु सङ्ग मोह मद नाशा ॥
सब विधि करत सोइ अनुकूला। नाशत मोह भरम सब शूला ॥
सद्गुरु ज्ञान प्रकाशहि देई। योग युक्ति से तम हरि लेई ॥
मोह सकल अभिमान विनाशै। जाते अद्वय ब्रह्म प्रकाशै ॥
भेद भाव भय रहै न कोई। ममता मूल सहित दे खोई ॥
याते नित्य हि करिय विचारा। करिय भक्ति पाइय भव पारा ॥

"हरि कृपा तब जानिये, दे मानव अवतार।
गुरु कृपा तब जानिये, बन्ध छुड़ावनहार ॥३८॥

देवी बड़ा न देवता सूरज बड़ा न चन्द।
आदि अन्त दोऊ बड़े कै गुरु कै गोविन्द ॥३९॥

सकल मोह भव बन्ध नशावन। ज्ञान विराग भक्ति अति पावन ॥
विनु गुरु कृपा मिलै नहिं कोई। गुरु विनु अन्तर तम नहिं खोई ॥
देवि देव निज कर्म समाना। फल साधत छाया सम[1] नाना ॥
स्वारथ वश फल साधत एते। हरि गुरु विनु स्वारथ फल देते ॥
पूर्वगुरुहुँ का गुरु जगदीशा। हरि तिहि नमत सुदेव मुनीशा ॥
सर्वातम सब देव हुँ सोई। सर्वाधार कर्मफल नोई ॥

याते देव न देवि कोउ, ईश्वर गुरु से श्रेष्ठ।
होय सकत नहिं रवि शशि हुँ, होय सकत कभि ज्येष्ठ ॥४०॥

धर्माधर्म विवेक महाना। पूज्यापूज्य विवेकहुँ नाना ॥
भक्ष्याभक्ष्य विवेक सदाही। गम्यागम्य विवेक तथाही ॥
जामें होय रु अधरम त्यागै। यथाशक्ति पूजा में लागै ॥
तजि अभक्ष्य भक्ष्य हि को धारै। गम्य गमन करि सत्य विचारै ॥

१—भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान्।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः॥१॥श्रीमद्भागवत ११।२।६॥
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। भ० गी० ४।११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदा अहिंसादिक व्रत धारै। दया क्षमा सन्तोष न टारै ॥
ईश कृपा से ऐसा होई। सत्य मनुष कहियत है सोई ॥
सुगुरु कृपा से योग विरागा। ज्ञान हुए जहँ सब तम भागा ॥
तहाँ आदि में हरि वड़ हुए। अन्ते गरु जाते भय मूये ॥
एक देव सब भूत निवासी। व्यापक सर्वातम अविनाशी ॥
कर्माध्यक्ष अगुण सुखराशी। अति निगूढ अति विमल उदासी ॥
ब्रह्मा[1] विष्णु महेश न सोई। इन्द्र कुवेर गणेश न कोई।
ता सुदेव के ज्ञान विनाहीं। दुःख नाश चाहत मन माहीं ॥
सो जनु चर्म सम नभहुँ समेटन। चाहत विनु श्रम रामहुँ भेटन ॥
भय भगाय चाहै सुख भारी। सो विनु ज्ञान न होय सुखारी ॥
एक देव सत जानत जोई। सुगुरु प्रताप सुखित सो होई ॥
सब मद खोय होय सुख राशी। जीवन्मुक्त अभय अविनाशी ॥
जीवन्मुक्त[2] होवत द्वि रूपा। ईशरूप अरु शुद्ध स्वरूपा।
ईश कोटि के जीवन्मुक्ता। अधिकारी जन होत सुयुक्ता ॥
तप बल करत सुजग व्यवहारा। ज्ञान सुबल से निज सम्भारा ॥
जानत सो निज ब्रह्मस्वरूपम्। उत्पत्ति पालन लय रूपम् ॥
विद्याऽविद्या को पहचानै। गमनागमन स्वरूपहुँ जानै ॥

१—न देवः पुण्डरीकाक्षो न च देवस्त्रिलोचनः।
न देवः कमलोद्भुतो न देवस्त्रिदशेश्वरः ॥१॥ (इत्यादि योगवासिष्ठ)

२—ब्रह्मेशकोटिभेदेन जीवन्मुक्तो द्विधामतः। प्रारब्धकर्मणां तत्र जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ॥१॥ वैचित्र्यमेव हेतुः स्यात्प्रभेदे द्विविधे ध्रुवम्। ब्रह्मकोटिसमापन्ना जीवन्मुक्ता भवन्त्यहो ॥२॥ आत्मारामा सदा मुक्ता जगत्सम्बन्धवर्जिताः। ईशकोटिश्रिता ये च जीवन्मुक्ताः स्ववेदिनः ॥३॥ त ईश प्रतिमाः सन्तो भगवत्कार्यरूपतः। संरक्ता विश्वकल्याणे सन्तिष्टन्ते महीतले ॥४॥ विश्वमेवं विधैरेव ह्येकमात्रं स्वधाभुजः। भवन्त्युपकृतं धन्यं जीवन्मुक्तै र्महात्मभिः ॥५॥ (शम्भु गीता)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करत सुदण्ड अनुग्रह सोई। अघ अवगुण शुभ धर्महुँ जोई॥
राग द्वेष विनु सब व्यवहारा। ज्ञान प्रभाव सुधर्म अचारा॥
होवत अधिकारिन के सब ही। मोह जनित विपरीत न कबही॥
गुणउपाधि मय व्यापिस्वरूपम्। रहत अनघ अज ईश स्वरूपम्॥
रहि अव्यक्त रूप सब काला। ज्ञान प्रभाव लखत जग जाला॥
रहि अव्यक्त जग कारज धारै। ह्वै कहुँ व्यक्तहुँ भक्त सँभारै॥

सोई विभु जगदीश हुँ में, होत प्रत्यक्ष प्रमाण।
व्यक्त रूप लखि लखत भक्त जन, महाऽव्यक्त भगवान॥४१॥

॥ ईश्वरता ॥१६॥

विभु समष्टि मायापति स्वामी। ईश कहिय सब अन्तर्यामी॥
व्यष्टि सुसत रज तम युत ईशा। हरि ब्रह्मा शंकर गण ईशा॥
सूर्य शक्ति सब गुणकृत भेदा। निर्गुण ब्रह्म अभेद अछेदा॥
सगुण सम हि मायापति एकम्। गुणकृत भेद सु विविध अनेकम्॥
सत्ता सब की एक न नाना। व्यापक सब सुख सिन्धु महाना॥
अधिकारिन में तप बल से ही। ईश्वरत्व होवत अविदेही॥
देह करण श्रवणादि विहीना। ईश एक झीनहुँ से झीना॥
ईश्वरत्व[1] हेतू तप नाना। अति हठ योग सुध्यान महाना॥
राजस कर्म भक्ति औ दाना। पूजा मन क्रम वचन विधाना॥
जप उपवास व्रतादिककारी। ईश्वरत्व कभि लहै विचारी॥

१—प्राणायामै र्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥१॥ (मनुः)
ब्रह्मचर्यं जपो होमः काले शुद्धाल्पभोजनम्।
अरागद्वेषमोहाश्च तप उक्तः स्वयंभुवा ॥२॥
जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते।
अहिंसया हि भूतानां जपयज्ञः प्रवर्तते ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तामस तप हिंसादिककारी। होवत ईश दुखद भयकारी॥
भूत पिशाच प्रेत अघ नाना। मारक देव देवि परधाना॥
पूज्य होत ये अज्ञन से ही। पूजक को सो फल कछु देहीं॥
सात्त्विक राजस तप करि योगी। ईश्वरत्व ज्ञानहुँ संयोगी॥
होवत व्यास वसिष्ठ समाना। अथवा राम कृष्ण सम माना॥
अति तप प्रबल किये ते भाई। ब्रह्मा विष्णु महेश कहाई॥
जग उतपति पालन छयकारी। जीवन्मुक्त होत अधिकारी॥
ईशाधीन करत सब काजा। अधिकारिन मानिय ज्यों राजा॥
यह प्रवृत्ति मारग की काथा। कहत सन्त सब वेदहुँ गाथा॥
पर निवृत्ति मारग अधिकारी। शुक सनकादि कपिल हितकारी॥
नारद वाम देव दत्तादी। रामानन्द कबीर कणादी।
नानकादि सब भक्त महाना। ज्ञानवान अधिकारि हि नाना॥

ईश्वरत्व नहिं चाहहीं, ये करि सत उपदेश।
जीवन तारत जगत से, सो परहंस देश ॥४२॥*

॥ ज्ञानजनक तप ॥१७॥

ज्ञान हेतु तप होवत आना। गुरु सेवा सत्सङ्ग महाना॥
शम दमादि सद्भक्ति अपारा। विमल विचार विवेकहुँ सारा॥
दम्भ कपट मद त्याग सदाई। सत्य दया तजि सब निठुराई॥
ब्रह्मचर्य सङ्गादिक त्यागा। राजयोग जपयोग विभागा॥
परम विराग कुभोगक त्यागा। ज्ञान हेतु ह्वै पर अनुरागा॥
केवल सात्त्विक तप हि कियेते। नशत पाप सब कुमति हियते॥
सूझत पन्थ विशुद्ध सदाई। ब्रह्मचर्य पावत सुख दाई॥
सङ्ग दोष लखि सब ते न्यारा। रहै सो अवशि लहै भव पारा॥
रहि असङ्ग गुरु वचन विचारै। हिंसा दम्भ कपट नहिं धारै॥
गुणातीत सो होवत योगी। हर्ष शोक भय रहित अरोगी॥
मानस रोग गये सो ध्यानी। स्थिति प्रज्ञहुँ होवत विज्ञानी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखदुख स्तुति निन्दा समजानी। मानामानहुँ को सम मानी ॥
प्रारब्धक फल सब को जानै। क्षणिक स्वप्रसम सब को मानै ॥
करै न राग द्वेष काहू से। उदासीन रह शठ साहू से ॥
लाभालाभहुँ सम करि मानै। कञ्चन काँच समहि पहिचानै ॥
प्रारब्ध भोगै निज भोगा। त्यागै सब निज मानस रोगा।

यथा सिन्धु जल पाय बहु,लहता नाहिं विकार।
तथा हंस परहंस जन ,लहत न भोग विकार ॥४३॥

॥ज्ञानी की सेवा से मुक्ति॥१८॥

द्वेष ममत्व रहित[1] विज्ञानी। समता सहित सुसज्जन ध्यानी ॥
सर्वारम्भ रहित स्थिर चेता। विमल योग युत रहित निकेता ॥
पक्षपात विनु सब हितकारी। सेवत सकल मनोमल हारी ॥
ब्रह्म सदा सब जगदाधारा। अधिष्ठान गत सकल विकारा ॥
शुद्ध सदा सर्वोत्तम सोई। ताहि लखत ज्ञानी तस होई ॥
उन ज्ञानिन को सेवनहारा। काम रहित सब भक्त उदारा ॥
गर्भवास संकट नहिं आवैं। शुक्रादिक मय देह न पावैं ॥
भक्ति योग से ज्ञान हि पाई। अति विरक्त मुक्तहि ह्वै जाई ॥
परम हंस ज्ञानी का सेवक। सत्सङ्गी ह्वै देवक देवक ॥
कुटीचकहुँ सुवहूँदक हँसा। ब्रह्मचारिगृहि मुनि जन वंशा ॥
वर्णाश्रम सब ही सब जाती। काम त्यागि लहि भक्ति सुभाती ॥
निरभिमान माया छल होना। होत मुक्त लहि ज्ञान न दीना ॥
परसहंस ज्ञानी हरि रूपा। सोइ शिव ब्रह्म असङ्ग स्वरूपा ॥

१—स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्। उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥१॥मुण्ड० ३।२।१। स = ज्ञानी। यत्र = ब्रह्मणि 'विश्व' निहितं, तथापि ब्रह्म शुभ्रं भाति। पुरुषं = ब्रह्मज्ञम्: ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मा विष्णु महेश सुदेवा। ज्ञान प्रभाव परम पद लेवा॥
तप प्रभाव से ईश कहाई। सेव्य होत जग विदित सदाई॥
ज्ञान विहीन देव मुनि जेते। सोउ कर्मवश भव दुख लेते॥
कर्माधीन सकल संसारी। ऊँच नीच गति लहै अनारी॥

कर्मविवश[1] अज्ञानि सब, ज्ञानि कर्म से पार।
ताके भक्त हुँ ज्ञान लहि, पुनि न रहै भवधार॥४४॥

यदि सुमन्द प्रारब्ध अधीना। भक्त न लहै सुज्ञान सुभीना॥
तदपि दीन सो होवत नाहीं। मारग स्थिर जन नाश न पाहीं॥
भोगि सकल प्रारब्ध सुमन्दा। कर्म काटि पुनि लहत अनन्दा॥
धीरेहु चलत स्वपन्थ सदा हीं। जो निज धर्महुं विसरत नाहीं॥
काम क्रोध लोभादिक त्यागी। गहत भक्ति पथ सो बड़ भागी॥
ईर्ष्या मत्सर को विसराई। सेवै ज्ञानि सन्त गुरु भाई॥
सङ्गदोष लखि संगहु त्यागी। सकल कुभोग रोग से भागी॥
व्यसन विहाय विमल मति पावै। सो जन भव में वहुरि न आवै॥
प्राणायामादिक करि योगा। दोष पाप सब नाशि कुरोगा॥
ईश्वर ध्यानि होत जन जोई। सो अनीशता धर्म विगोई॥
ईश धर्म सब ज्ञान असङ्गा। पावै सकल मोह मद भङ्गा॥
सात्त्विक दया धर्म विज्ञाना। पक्षपात राहित्य महाना॥
सर्वातम हरि भक्तिहुँ पाई। परमहंस गुरु सुखद सुहाई॥
पाय लहै जन परमानन्दा। पड़ै न मोह भोग दुख फन्दा॥

१—कर्म विवश चर अचर है, कर्म विवश संसार।
विधि हरि हर सब कर्म वश, जग के सिरजनहार॥१।
पापी सुकृती कर्म वश, यमपुर आवहिं जाहिं।
ज्ञानी भक्त न जाहिं कहूँ, यम न ताहि लख पाहिं।२॥
न्यायार्जित धन दान शुभ, तप तें अधिक कहाय।
करि सुदान लहि ज्ञान नर, यम वश कभी न जाय॥३॥ (सन्त वचन)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमहंस गुरु सेवि नित, पाइ हंसता खास ।
भजहिं राम सद्ब्रह्म को, होहिं मुक्त हरिदास ।।४५।।

सुगुरु भक्ति नाशै सब दोषा । देइ विवेक काटै सब कोशा ।।
सुगुरु सदा पर विष्णु स्वरूपा । पालक सो पर ब्रह्म अनूपा ।।
पर दुख तम मोहज[1] पहिचानी । साध्य हेय अनरथ तिहि मानी ।।
जो ज्ञानी हरहीं जन दुःखम् । साधुवाक्य से देइ पियूखम् ।।
सो सत्त्वस्थ विष्णु भगवाना । परहित परम धर्म जिन माना ।।
परहित कर विवेक युत जो है । जग रक्षक विष्णु हि शिव सो है।।
हरत मोह अज्ञान गुमाना । ताते हरि सब सन्तन जाना ।।
देह रहित परमार्थ स्वरूपा । हरि अज अमर अनन्त अनूपा ।।
रूप रहित शिव अचल अनादी । भूत करण रहित हि सर्वादी ।।
अति महान सब कला विहीना । व्यापक हि सत नित्य नवीना ।।
माया मोह रहित सब स्वामी । मायापति सब अन्तर्यामी ।।
शुद्ध सुखाकर निर्गुण देवा । परम हंस ताकर लख भेवा ।।
ता कहँ अगुण राम शिव भाखैं । निर्गुण ब्रह्म परम सुख आखैं ।।
ज्ञान स्वरूप प्रकाश अनन्ता । जाकी गति कोइ पावै सन्ता ।।
ज्ञानी जन तिहि आतम जानैं । भेद सकल मायामय मानैं ।।
मायी ईश्वर सत्य कहावै । मायामय सो जगत बनावै ।।

१—योऽन्यदुःखानि विज्ञाय साधु वाक्यैः प्रबोधयेत् ।
स एव विष्णुः सत्त्वस्थो यतः परहिते स्थितः ।।१।।
अन्यदुःखेन यो दुःखी योऽन्यहर्षेण हर्षितः ।
स एव जगतामीशो नररूपधरो हरिः ।।२।। (नारदीयपुराण)
अजममरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवमचलमनादिं भूतदेहादिहीनम् ।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिमकलममायं सर्वगं वन्द एकम् ।।३।।
(गुरुड़पुराण)
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते । इत्यादि (श्वेताश्वतर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मायामय असत्य संसारा। निज स्वरूप याका नहिं सारा॥
कारणात्म से सत्यहि सोऊ। याते प्रकट लखिय सब कोऊ॥
मन वच देह स्वप्न सम जानी। सब अभिमान तजै मुनि ज्ञानी॥
एक अखण्ड सत्य हरि जानी। ताहि भजैं भक्तहुँ विज्ञानी॥
दासहुँ होय अदासस्वरूपा। ब्रह्म अजर अल अलख अनूपा॥
परमानन्द सदा सुखराशी। अज अद्वैत रु स्वयं प्रकाशी॥
विगत विभेद रु खेद विहीना। भक्त होत सो परम प्रवीना॥

भक्तन की शुभ रीति यह, सुनिय गहिय मतिमान।
राग द्वेष अभिमान छल, त्यागि रहिय गलतान॥४६॥

॥ हरिजन ॥१९॥

हरिजन हंस दशा लिये डोलै। निर्मल नाम चूनि चुनि बोलै॥
मुक्ता हल लिये चोंच लभावै। मौन रहैं की हरि यश गावै॥
मानसरोवर तट के वासी। राम चरण चित अन्त उदासी॥
कागा कुबुधि निकट नहिं आवै। प्रतिदिन हंसा दरशन पावै॥
क्षीर नीर का करै निवेरा। कहहिं कबीर सोइ जन मेरा।१।
(बीजक शब्द ६८)

नीर रूप संसार सब, क्षीर सुगुरु हरि राम।
ईश ब्रह्म सब देव शुभ, एक वस्तु वहुनाम[1]॥४७॥

१—सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः।
सर्वमात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः॥१॥

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम्॥२॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥३॥ (मनुः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हंस दशा गुण विगुण विवेका। विगुण विहाय सुगुण का टेका॥
शम दमादि विरती अति रूरी। हरि गुरु भक्ति सुमति रस पूरी॥
काम क्रोध मद दम्भक त्यागा। हंस दशा सो परम सुभागा॥
निर्मल नाम राम गुण गाथा। ब्रह्म विचार ज्ञानमय काथा॥
मुक्ताहल विमुक्ति विज्ञाना। चोंच ताहि हित निशि दिन ध्याना॥
मानसरोवर मानस जापा। परम विचार त्यागि सब पापा॥
तट ताके सत्सङ्ग सुहावन। प्रीति सहित हरि गुरु गुण भावन॥
गुरुवर चरण सन्त सेवकाई। अखिल मोह मद काम विहाई॥
उदासीनता जग से होई। धर्म प्रीति नित दुर्मति खोई॥
यहि विधि कुमति कुभोग बिहाई। त्यागि कुसंग कुभक्ष्य सदाई॥
स्वयं प्रकाश हंस हरि केरा। दर्शन पावत भक्त सवेरा॥
परमहंस गुरु से निज देशा। पहुँचहिं भक्त सुमानि निदेशा॥
परम प्रकाश स्वरूप स्वदेशा। लखहिं अनातम सकल विदेशा॥
निर्गुण ब्रह्म सगुण सो ईशा। अज्ञजीव सब वश जगदीशा॥
जब लगि जीव स्वदेश न पावै। तब लगि जन्म मरण भय पावै॥

"हरिजन ऐसा चाहिये, जाको ज्ञान विवेक।
बाहर मिलता सा मिलै, अन्तर सब सो एक"॥४८॥

हंस दशा[1] युत हरिजन सोई। जाको ज्ञान विवेकहुँ होई॥
सात्त्विक ज्ञान सेहि सो साधू। सम इकात्म लख अगम अगाधू॥
निर्विकार सब भूत निवासी। नाश युक्त में लख अविनाशी॥
शुभ ब्राह्मण जो हस्ति हु माहीं। सम आतम लख अमल सदाही॥

१—हरि र्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः। स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥१॥ भा०स्कं० १०।८८।५॥ सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते। अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥ विद्या विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥२॥ इत्यादि भ० गीता)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब विभक्त में विगत विभेदा । लखत एक आतम गत खेदा ॥
लखि विवेक से मलिन क्रियादी । मिथ्या दम्भ कपट गर्वादी ॥
मिलत न अस असन्त से कोई । जो विवेक युत हरिजन होई ॥
विमल क्रियादि सहित सतवादी । सदाचार युत सगुण अनादी ॥
पर उपकार निरत हित से ही । मिलते हरिजन सत्य सनेही ॥

"इष्ट मिलै अरु मन मिलै, मिलै सकल रस रीत ।
कहैं कबिर तहँ जाइये, यहं सन्तन की रीत" ॥४९॥

इष्ट सुपूज्य मान्य भगवाना । चिदानन्द घन सत्य समाना ॥
पूरण ब्रह्म देव निज धर्मा । मिलै जहाँ उपदेश सुशर्मा ॥
मनहुँ मिलै मद काम विहीना । मिलै प्रेम रस सुगुण हुँ भीना ॥
सकल रीति व्यवहारिक शुद्धम् । मिलै नहीं श्रुति सन्त विरुद्धम् ॥
जाइय तहँ सब मान विहाई । मिलहि तहाँ सुख सहजहि भाई ॥
निज अज्ञानज देहन धारी । स्वर्ग नरक भव भ्रमहि अनारी ॥
गहै शरण गुरु सत गुण धारी । सो न भ्रमै भव सिन्धु मझारी ॥

॥ ज्ञान के अधिकारी ॥२०॥

ताते सत गुरु शरण गहि, अधिकारी जन नीत ।
पाइय परम स्वदेश हीं, रहु सँभारि थिर चीत ॥५०॥

अधिकारी को पावन हारा । पावन योग्य देश को सारा ॥
निज स्वरूप प्राप्त हि नित जो है । ताकि प्राप्ति कहिये अब को है ॥
इत्यादिक संशय जो होई । सुनि गुरु वचन निवारिय सोई ॥
तप जपादि[1] निष्कामजु होई । कर्म योग कहियत हैं सोई ॥

१—कर्म कर्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु ।
बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते ॥१॥
यत्तु चित्तस्य सततमर्थे श्रेयसि बन्धनम् ।
ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः ॥२॥
(त्रिशिखि ब्रा० २५-२६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकल स्वधर्म तपहि का रूपा। मन वच कर्म जनित अनुरूपा ॥
ताते तन मन वचनहुँ शोधी। ध्यान सुमति से मन हुँ निरोधी ॥
करि उपासना योग सुसाधी। मलिन वासना काम हुँ बाधी ॥
सुखितन से करि मैत्रि अहेतू। दुखितन पर दाया निर्हेतू ॥
पर पुण्य हुँ से मोद ही मानी। उदासीन पापी हुँ को जानी ॥
रहत सदा सो शोधि स्वचित्तम्। रहत प्रसन्न पाय जनु वित्तम् ।
निज आतम में मन को धारी। लहत विवेक सदा सुख कारी ॥
जन विवेकि श्रद्धादि सुयुक्ता। निर्मल मन गर्वादि विमुक्ता ॥
शम दमादि साधन युत जोई। प्रबल मुमुक्षा मति युत होई ॥
जिज्ञासुहि अधिकारि कहावै। करि गुरु भक्ति सुसद्गति पावै

व्यवहारिक हि स्वरूप में, अधिकार हुँ सो होय।
विमल विवेक विराग शुभ, श्रद्धादिक संयोय ॥५१॥

॥ पारमार्थिक व्यावहारिक स्वरूप ॥२१॥

परमार्थिक निज विमल स्वरूपा। पावन योग्य अरूप अनूपा ॥
प्राणेन्द्रिय सब अन्तःकरणा। सूक्षम तनु अबोध युत वरणा ॥
चिदाभास चिद् युत संघाता। व्यवहारिक सो जीव कहाता ॥
परमाता पुनि कहते ताहि। सो प्रमाण युत रहत सदा ही ॥
प्रत्यक्षादि प्रमाण कहावै। हित अहित हुँ जाते लखि पावै ॥
ताते सुख दुख भोक्ता होई। गमनागमन करत नित सोई ॥
लोभ कामवश भ्रमत सदाही। जब लो निज स्वरूप नहीं पाही ॥
ममता मत्सर भ्रम अज्ञाना। संशयादि भय जन्म निदाना ॥
निज स्वरूप सत अनुभव जोई। नित्य[1] अभय पद दायक सोई ॥
ताते ममतादिकन विनाशी। जीव लहै सत सुख अविनाशी ॥

१—स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माऽभयं वै ब्रह्माऽभयं ह वै ब्रह्म भवति य एवं वेद ॥वृ०४।४।२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविनाशी सत सुख निजरूपा । लहत न मूढ पड़त तम कूपा ॥
जब निज मोह ज्ञान से नाशै । तब निज सुख स्वरूप सत भासै॥
नित्य प्राप्त की प्राप्तिहि होई । रहत अप्राप्त भरम से जोई ॥
ईश्वर[1] हूँ नित हृदय निवाशी । अन्तर्यामि सदा सुख राशी ॥
भ्रान्त ताहि समुझत है नाहीं । दूर असत वा कहत सदा ही ॥

"पैठा है घट भीतरे, बैठा है सहचेत ।
जब जैसी गति चाहये, तव तैसी मति देत ॥,,५२॥

उर प्रेरक हुँ न समुझत प्राणी । जो सह चेत सकल गुण खानी ॥
कर्मादिक अनुसारक देहा । देत आयु सुख भोग्य हुँ येहा ॥
शुभाशुभादिक लक्षण पूरा । जिहि समुझत कोइ धीरहि शूरा
यों सब जगत नियन्ता जोई । गहि निज शक्ति अलख गति सोई॥
नित्य प्राप्त हुँ पाइय नाहीं । ज्ञान भक्ति से पाइय ताही ॥
यों निजात्म नित प्राप्त हि भाई । पाइय करि विचार इक ताई ॥
अन्तर्यामि ईश जग जोई । ताके वश जग जीव जु होई ॥
सो तदंश आभास समाना । अभिव्यक्त चिद्रूप न आना ॥
व्यापक ब्रह्म सच्चिदानन्दा । जीव ईश मँह सहज स्वछन्दा ॥
सो सत रूप उभय का एकम् । ताहि लखत जो सहित विवेकम्॥
जन्म मरण सो पावत नाहीं । व्यापक ब्रह्म रूप ह्वे जाहीं ॥
महातेज में निज निर्वाना । दीप लहै ज्यों सकल जहाना ॥
त्योंहि सकल व्यवहारिक जीवा । पाय ज्ञान लह परम सुशीवा ॥
चिदानन्दघन सर्व निवासी । सर्वरूप सब रहित उदासी ॥
सदा अबाध्य निरोध विहीना । सदा अचल जहँ रात न दीना ॥

१—एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च । श्वे० ॥६।११॥ एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टा । अन्यदार्तम् । वृ० ३।७।२३॥ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति (गीता) ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिहि स्वरूप में जात समाई। ज्ञान भक्ति जाके उर आई ॥
ज्ञान भक्ति निज मोक्ष विधायक। और सकल बन्धन दुख दायक ॥

तैल वर्तिका नाश से, ज्यों विलीन ह्वै दीप
अज्ञानादि विनाश से, जीव जात त्यों छीप ॥५३॥

जीव[1] अछय अज अमर अनादी। नशत न सो सत कह सतवादी ॥
शून्यादिक स्वरूप सो नाहीं। जन्म मरण सो पावत नाहीं ॥
किन्तु स्थूल सूक्षम तनु योगा। जन्म कहिय औ मरण वियोगा ॥
तदपि अविद्यादिक का नाशा। होत ज्ञान बल परम प्रकाशा ॥
अविद्यादि तम रूप जु आहीं। हुए दीप्ति सो ठहरत नाहीं ॥
नशत जिवत्व अविद्या रूपा। जीव स्वरूप रहत सुख रूपा ॥
आत्मज्ञान दुख मूल विनाशै। सुख स्वरूप तब स्वयं प्रकाशै ॥
सुख स्वरूप से ही संसारा। मायाऽविद्यारूप पसारा ॥
नशै अविद्या सब नशि जाई। जन्मादिक संसृति दुखदाई ॥
मन मति इन्द्रिय प्राण अधारा। चिदानन्द सारहुँ का सारा ॥
सो जीवन का सत्य स्वरूपा। सर्वसाक्षि अति अगम अनूपा ॥
देहन[2] माँहि अदेहहि सोई। भूत भावि तहँ भेद न कोई ॥
तदपि अविद्या से तहँ भासै। भेदादिक तिहि ज्ञान विनाशै ॥
वृत्ति स्वरूप ज्ञान जो होई। नाशि मोह नशता पुनि सोई ॥
आश्रयाश अग्निहि सम नाशा। होत तहाँ करि सत्य प्रकाशा ॥

१—अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा। ४।५।१४ ॥

२—अशीरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥कठ० १।३।२१॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ईश० ७॥
अयमात्मा ब्रह्म ॥वृ० ४।४।५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब अनात्म मिथ्या दर्शाई। स्वयम् हु मिथ्या लय ह्वै जाई॥
निर्विकल्प तब सत्य प्रकाशै। सो निज रूप हि आनन्द भासै॥
अद्यपि निज सो सत्य स्वरूपा। सदा रहत अविकल्प अनूपा॥
तदपि सुज्ञान विना नहिं भासै। ज्ञान हुए सतरूप प्रकाशै।

॥ ज्ञान के लिये कर्तव्य ॥२२॥

ज्ञान हेतु ताते सदा, करिये कर्म विचार।
शमदम योगादिक सकल, शुद्धाहार विहार॥५४॥

व्यवहारिक[1] स्वरूप से दासा। होइय भजिय गहिय विश्वासा॥
निर्गुण राम भजिय मन लाई। श्रद्धा प्रेम सुभक्ति दिढ़ाई॥
अन्तर्यामि अनादि सुदेवा। गुरु बुध सन्तन की करु सेवा॥
पूजिय पूज्यन शौच सुधारी। ब्रह्मचर्य युत तप गहु सारी॥
सत्य मधुर हित वचन विचारी। बोलिय जपिय नाम जय कारी॥

मन निज निर्मल शान्त करि, कपट काम करि दूर।
भजिय ईश गुरु देव को, पाइय ज्ञान सुपूर॥५५॥

जो जेहि भजै सुनियम समेता। श्रद्धा युत ह्वै करण विजेता॥
सो उपासना पूरण धारी। ह्वै तद्रूप पूर्ण अधिकारी॥
सालोक्यादि मोक्ष जो पावै। सो जन बहुरि जगत में आवै॥
ईश रूपता पाय सुज्ञानी। गुरुस्वरूपता पाय सुध्यानी॥
पुनि भव में नहिं आवै कोई। यह गति विमल ज्ञान से होई॥

१—आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥१॥

इन्द्रियाणि हयानाहु र्विषयाँस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्तेत्याहु र्मनीषिणः॥२॥

कठ० १। ३। ३४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीट भृङ्ग सम यह गति जाके। मल अभिमान रहै नहिं ताके ॥
जीवत हि लहि ब्रह्म स्वरूपम्। ज्ञान वारि शोधित शिव रूपम् ।
होत विदेह मुक्त अकलंका। जामें रहत न एकहुँ शंका ॥
यामें है आश्चर्य न कोई। श्रुति सद्गुरु सम्मुख जो होई ॥
मान मोह तजि करै विचारा। तजि कुसङ्ग गहि राम अधारा ॥
द्वन्द्व रहित ज्ञानी सो होवै। सुख स्वरूप निज ब्रह्महि जोवै ॥
निराकार निर्गुण अविनाशी। ब्रह्म निरन्तर सब जग वासी ॥
सर्वाधार असङ्ग अपारा। चिदानन्द आतम अविकारा ॥
ज्यों बाहर परकाशहि पाई। नेत्र स्वविषय लखत तहँ जाई ॥
यों मन बुद्धि जहाँ कहिं जावै। आत्म ज्योति तहँ सहजहि पावै ॥
ता बल ते निज विषय प्रकाशै। निज स्वरूप गुण सकल उजासै
आत्म सत्त्व विनु सत्त्व न कोई। ता विनु कहुं प्रकाश नहिं होई ॥
आतम सुख सब सुख का मूला। आतमाहि अतिशय अनुकूला ॥

आत्म विभासित बुद्धि से, भासित इन्द्रिय होय।
ताते भासत विषय तहं, भासक आतम सोय ॥५६॥

सर्व विभासक आतम जोई। ब्रह्म राम पर देव हुँ सोई ॥
देश काल से अन्त न याको। इति अनन्त जानिय सब ताको ॥
सर्व आतमा जो है नित्यम्। वस्तु कृतहुँ तहँ अन्त न चिन्त्यम्॥
मायामय तहँ भेद पिछानीं। सत्य भेद नहिं लीजै मानी ॥
सत्य स्वरूप ब्रह्म जु एकम्। तत्स्वरूप सब जगत अनेकम् ॥
आतमा हि सो ब्रह्म न आना। ईश सोइ सर्वज्ञ महाना ॥
सब अनातमा जड़ दुख रूपा। आतमा हि चित् सत् सुख रूपा ॥

यों सत समुझि विचारि अपि, सदा भजिय प्रभुराम ।
तब लहि नित अपरोक्ष निज, रूप होउ निष्काम ॥५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वथा[1] हि सब कामक त्यागा। जानिय जीवन्मुक्ति सुभागा॥
ज्ञान विना सब त्याग न होई। याते ज्ञान यत्न करु सोई॥
जाते मोह मिटै सब कामा। काम रहित सूझै निज ठामा॥
लखिये सब पदार्थं प्रभु काही। भाग्याधीन लहत जन ताहि॥
सुख दुख निज कर्मक अनुसारा। पावत जन भय हर्ष अपारा॥
कोई नहिं सुख दुख का दाता। कर्मानुग है ईश विधाता॥
निज कर्मज[2] फल ही के माहीं। अन्य निमित्त हेतु ह्वे जाहीं॥
तहाँ राग द्वेषादि दिढ़ाई। अनरथ करते जन समुदाई॥
जन विवेकि गुरु भक्त सयाने। राग द्वेष नहिं मन में आने॥
सो विराग निज बोध हुँ पाई। मुक्त होहिं सब जन सुख दाई॥
राग काम भवबन्धन हेतु। त्यागिय ताहि लहिय भव सेतू॥

परमारथ निज रूप में, स्थिर ज्यों यह हंसार।
त्यों व्यवहारिक रूप में, व्यष्टि द्वन्द्व विस्तार॥५८॥

ईश्वर सकल जगत का कर्ता। होत सोइ भर्ता संहर्ता॥
प्रकृति रूप माया तँह होई। उपादान कहते तिहि कोई॥
नभो वायु तेजो जल भूमी। सूक्ष्म भूत ब्रह्म हि तँह भूमी॥
पञ्चीकरण परस्पर मेला। ईश्वर इन का करत अकेला॥
यों इन का करि स्थूल स्वरूपा। ब्रह्म ही में धारत बहु रूपा॥

सकल लोक ब्रह्माण्ड का, ब्रह्म हि होत अधार।
अधिष्ठान निज रूप सो, सन्तन किया विचार॥५९॥

१—यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥कठ०२।६।१४
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥मुण्डक०२।२।७॥

२—स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः।
निमित्तकारणे वैरं करोति कुमतिः खलु॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्म भूतमय सूक्षम देहा। प्रोणेन्द्रिय मन बुद्धिक गेहा ।।
चिदाभास युत चिद् युत संघा। व्यवहारिक तँह जीव असंघा ।।
संघ माँहि हर्षादिक होवैं। जन्मादिक पाई जन रोवैं ।।
संघ धर्म सब निज में मानी। जन्मादिक पावैं सब प्राणी ।।
क्षुधा[1] पिपासा प्राणक धर्मा। शोक मोह मन हि का कर्मा ।।
जन्म मरण देह हि का होई। विनु विवेक लख पाव न कोई ।।

भव समद्र के ऊर्मि ये, रहते भव के माहिं।
शिव स्वँरूप सत्यात्म में, रहते हैं कभि नाहिं ।।६०।।

नाम रूप मायिक विस्तारा। जन्मादिक तहँ सकल विकारा ।।
अस्ति भाति प्रिय भासत जोई। नाम रूप महँ व्यापक सोई ।।
सत् चित् आनन्द रूपहि सोई। एक अखण्ड ब्रह्म सो होई ।।
करि समाधि मन प्राण निरोधै। ब्रह्मनिष्ठ ह्वै दोषण शोधै ।।
तब सब ऊर्मि रहित निज रूपम्। लखै सत्य सुख ब्रह्म स्वरूपम् ।।

ऊर्मि रहित निज रूप हूँ, ब्रह्म रूप नहिं आन।
करि सुविचार विवेक दृढ़, नीकै लीजै जान ।।६१।।

दुश्चरित्र दुष्काम विहाई। शान्त समाहित मन ह्वै जाई।
तव जु करिय नित सत्य विचारा। तब पाइये सुख सिन्धु अपारा ।।
मोक्ष द्वार पालक सत्सङ्गा। शम सन्तोष विचार अभङ्गा ।।
पाइय सत्य मनुषता पाई। तव सत सुख सहजे नियराई ।।

याके[2] विन वेदादि बहु, पढ़िय करिय व्याख्यान।
पाइय कहिं सुख लेश नहिं, निश दिन रहिय भुलान ।।६२।।

१—क्षुधा पिपासा प्राणस्य मनसः शोकमोहकौ ।
जन्ममृत्यु शरीरस्य षड्रूमि रहितः शिवः ।।१।।

२—नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ।।१।।
नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।२।।कठ०१।२।२२-२३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शम विचार करि तन मन शोधै। सत्सङ्गति से मनहि प्रबोधै॥
सन्तोषी ह्वै रामहि ध्यावै। स्वयं राम तब हृदय समावै॥
चिदानन्द सत भासै सोई। यह अति कृपा राम की होई॥

राम कृपा ते बहुरि नहिं, पावै जन संसार।
राम रूप ह्वै सर्वदा, पावै सुखहि अपार॥६३॥

जन्म अस्ति वृद्धि परिणामा। ह्रास विनाश अनातम ग्रामा॥
आत्म लाभ अस्ति कहलावै। ब्रह्म आतमा सो नहिं पावै॥
सदा स्वलब्ध स्वरूपहि रामा। तदपि अस्ति कहियत सुखधामा॥
अस्ति रूप जानिय प्रभु जब ही। तत्त्व रूप से जानिय तब ही॥
नास्तिकता ताते सब त्यागी। भजै राम सो जन बड़भागी॥
सदा अस्ति भाति प्रिय रूपा। ब्रह्म सोइ नित सर्वस्वरूपा॥

वचन मन हुं निज चक्षु से, जानन योग्य न जोय।
अस्ति ब्रह्म इस शब्द से, ताहि लखत जन कोय॥६४॥

अस्ति शब्द से लखिय परोक्षम्। मनन ध्यान से करि अपरोक्षम्॥
ब्रह्मनिष्ठ होवै जो ज्ञानी। जीवन्मुक्त कहिय शुभ ध्यानी॥
काम क्रोध मद मोह विमुक्ता। ब्रह्मानन्द भोगि सो युक्ता॥
उत्तम वैष्णव सो कहलावे। ताके सङ्गिहि सब सुख पावै॥
व्यापक विष्णु जानि जो पावै। भेद भाव सो मोह नशावै॥
हर्ष शोक तजि सो सुखराशी। पावै राम निरन्तर वासी॥
राम हि सर्व जगत आधारा। सर्व रूप सबसे अति न्यारा॥

शुद्धाहार विचार ध्यान से, जानि असङ्गहि ताहि।
निज स्वरूप सत ताहि लखि पुनि, पड़त न जन भव माँहि॥६५॥

सर्व जगत का मूल जो, सर्वाधारहुं एक।
'तत् त्वम् असि' नहिं आन कछु, 'साम[१]' सुकहत विवेक॥६६॥

१—सामवेदीय उपनिषद् छान्दोग्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व प्रिय जो पूर्व था, ब्रह्मातम सुख रूप।
'सोऽहं ब्रह्मास्मि' इति पुनि, यजुर[1] कहै शिव रूप ॥६७॥

ओंकारार्थ सर्वातमा, 'अयमातमा ब्रह्म'।
कहत अथर्वा[2] वेद यों, कोइ न सत्य अब्रह्म ॥६८॥

ब्रह्म वेद सो ब्रह्म ही, होत शोक तरि जाय।
शुद्ध ही जल में शुद्ध जल, सम तँह रहत समाय ॥६९॥
सर्व प्रकाशक ज्ञान जो, दर्शनादि का हेतु।
'प्रज्ञानं ब्रह्म, सोइ सत्, 'ऋग्'[3] कहता सब हेतु ॥७०॥

इत्यादिक सत वाक्य विचारी। सत्य वस्तु लीजै उर धारी ॥
तव स्वरूप ही तव दुख कारी। जो न लखिय निज हृदय विचारी॥
तब स्वरूप ही तृप्ति विधायक। जो जानिय तम नाशि विनायक॥
निज स्वरूप का उलटा ज्ञाना। आतम घातहि कहत सुजाना ॥
सत्य निजातम ज्ञान विहीना। चौरासी में भ्रमहि सुदीना ॥
सत्य निजातम ज्ञान हि पाई। होंहि सुखी सब भय विसराई ॥
आत्मघात परघात विहाई। भजिय राम नित सुखद सुहाई ॥
अक्षर ब्रह्म जो जानै ज्ञानी। सो सर्वज्ञ न घातै प्राणी ॥

याते तजि हनुमान सब, नश्वर क्रिया मलीन।
भजिये अक्षर ब्रह्म को, होय रहिय तल्लीन ॥७१॥

यह लघुधर्म सुचन्द्रिका, ज्ञान चन्द्रिका जानु।
याके सुखद प्रकाश में, लहिय निजातम भानु ॥७२॥
"है छोटा अति डोरवा, मोती अनन्त अपार।
मन में तो अति चाह है, कैसे पोऊँ हार ॥७३॥

१—बृहदारण्यक यजुर्वेदीयोपनिषद्।
२—अथर्व वेदीय, माण्डूक्योपनिषद्।
३—ऋग् वेदीय, ऐतरेयोपनिषद्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गूँथत गूँथत गूँथिया रहा अधूरा सोय ।
ऐसा अद्भुत हार है, पहिरे पूरा होय"॥७४॥

योग धर्म की वासना, तन्तु अल्प जो होय ।
परं ब्रह्म मोती महा, ताहि भजन चह कोय ।७५॥

गुरु वच में विश्वास करि, भजै निरन्तर जोय ।
भक्ति पूरी होवै न वा, लखै ब्रह्म सुख सोय ।७६॥

निष्कामक निज धर्ममय, भक्ति योग फल येह ।
अल्पहुँ सो सत ब्रह्म को लखवत निःसंदेह ॥७७॥

ब्रह्म मोति मय हार शुभ, ज्ञान ध्यान मन माहिं ।
धारत जो कभि लोक में, सों पूरा पद पाहिं ॥७८॥

याते लहि लघुचन्द्रिका, पोइय हार सुजान ।
आवागमन मिटाय के, पाइय पद निर्वान ॥७९॥

—:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२३	किय-हिये	कीये-हीये।
८	१५	याग	योग।
१०	२	हात	होत।
,,	२६	वृि०	वृ०।
१२	१६	जहावै	कहावै।
१५	२४	उत् अपिं	उत्-अपि,।
१७	६	विहिना	विहीना।
१६	१७	छाड़	छोड़ि।
१७	२१	चेद	चेद्
१८	१३	हाय	होय।
२०	२०	शास्त्राणं	शास्त्राणां।
२१	२२	प्रमादातप	प्रमादात्तप।
,,	२४	सबोधः	सम्बोधः।
२२	३	बुद्धि कि	बुद्धि की।
२४	१५	घाटि	घोंटि।
२६	१७	दावि	देवि।
२७	४	गरु	गुरु।
३०	३	कर न	करै न।
,,	७	भाग	भोग।
,,	२०	होना	हीना।

—:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खुशालचन्द्र गोरावाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धि पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३४	१७	मा मिले	सों मिले।
३६	६	प्रसन्न	प्रसन्न।
३९	४	सम्मुख	सम्मुख।
४०	१५	साय	सोय।
४१	१२	हंसार	संसार।
४२	१	प्रोणेन्द्रि	प्राणेन्द्रि।
४२	१५	कि	करि।
४२	२३	जन्ममृत्यु	जन्ममृत्यू।
४२	२५	लभ्य	लभ्य।
४४	२	ब्रह्मास्मि	ब्रह्मास्मि।

केवल आवरण पृष्ठ—निर्गुण रामायण प्रिंटिंग प्रेस
के० ६७।७८ ईश्वरगंगी वाराणसी में मुद्रित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi